भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ

[बी० एड० के नवीनतम पाठ्यक्रमानुसार]

लेखक

पी० डी० पाठक

भू० पू० लेक्चरार इन हिस्ट्री आफ़ ऐजूकेशन

आर० ई० आई० टीचर्स ट्रेनिंग कॉलिज,

दयालबाग

विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा

भूमिका

"भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएँ"—इस विषय पर अनेक पुस्तकें होते हुए भी, मुझे इस नई पुस्तक को आपके हाथों में रखते हुए, कुछ सतोष का अनुभव हो रहा है। वह इसलिए कि इस पुस्तक का लेखन—बी० एड० परीक्षा में पूछे जाने वाले प्रश्नों के परिवर्तित स्वरूप को निरन्तर ध्यान में रखकर किया गया है। इसीलिए, भारतीय शिक्षा की समस्याओं के सम्बन्ध में विभिन्न समितियों एवं आयोगों, विशेषत: कोठारी कमीशन, के विचारों को सकलित करके, यथास्थान प्रस्तुत किया गया है। साथ ही, शिक्षा के क्षेत्र में किए जाने वाले विभिन्न परीक्षणों एवं सर्वेक्षणों पर आधारित आँकड़ो एव तथ्यों को भी उपस्थित किया गया है।

अपने इस प्रयास के कारण मुझे पूरा भरोसा है कि छात्र—भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याओं का गहन एव विस्तृत अध्ययन करने के लिए इस अकेली पुस्तक पर निस्सकोच रूप से निर्भर हो सकते हैं और प्रश्नपत्रों के उत्तर देने में अपनी विशेष योग्यता का परिचय दे सकते हैं।

रक्षाबन्धन
3 अगस्त, 1974

—पी० डी० पाठक

विषय-सूची

भारतीय शिक्षा का इतिहास

1

प्राचीन भारतीय शिक्षा
ANCIENT INDIAN EDUCATION
(2500 B. C.—500 B. C.)

"The pre-eminent position, which India once occupied in the contemporary world, was mainly due to the success of her educational system."—**Dr. A. S. Altekar.**

विषय-प्रवेश

भारतीय शिक्षा का बीजारोपण सुदूर अतीत मे आज से लगभग 4,000 वर्ष पूर्व हुआ था। किन्तु, उसके सुसम्बद्ध स्वरूप के दर्शन वैदिक काल के आरम्भ मे होते हैं। इस काल में शिक्षा पर ब्राह्मणों का आधिपत्य था। अत कुछ लेखकों ने वैदिक कालीन शिक्षा को "ब्राह्मणीय शिक्षा" और कुछ ने "हिन्दू-शिक्षा" की संज्ञा दी है।

प्राचीन भारत के मनीषी इस तथ्य से भलीभाँति अवगत थे कि शिक्षा—व्यक्ति के सर्वाङ्गीण विकास, समाज की चतुर्मुखी उन्नति और सभ्यता की बहुमुखी प्रगति की आधार-शिला है। अतः उन्होंने शिक्षा की ऐसी प्रशंसनीय प्रणाली का प्रतिपादन किया, जिसने न केवल विशाल वैदिक साहित्य को सुरक्षित रखा, वरन् ज्ञान के विविध क्षेत्रों मे मौलिक विचारकों को भी जन्म दिया, जिनसे भारत का भाल आज भी गर्व और गौरव से उन्नत है। इस दृष्टि से भारत की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हुए एफ० डब्ल्यू० टामस ने लिखा है —'भारत मे शिक्षा, विदेशी पौधा नहीं है। संसार का कोई भी ऐसा देश नहीं है, जहाँ ज्ञान के प्रति प्रेम का इतने प्राचीन समय में आविर्भाव हुआ हो, या जिसने इतना चिरस्थायी
डाला हो।"

"Education is no exotic in India. There has been no country, where the love of learning had so early an origin or has exercised so lasting and powerful an influence."—F. W. Thomas : *The History and Prospects of British Education in India*, p. 1.

शिक्षा का अर्थ
Meaning of Education

वैदिक साहित्य में 'शिक्षा' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया गया है; यथा :—'विद्या', 'ज्ञान', 'बोध' और विनय'। आधुनिक शिक्षा-शास्त्रियों के समान प्राचीन भारतीयों ने भी 'शिक्षा' शब्द का प्रयोग 'व्यापक' और 'सीमित'—दोनों अर्थों में किया है। डा० ए० एस० अल्तेकर के अनुसार :—व्यापक अर्थ में शिक्षा का तात्पर्य है—व्यक्ति को सभ्य और उन्नत बनाना। इस दृष्टि से शिक्षा, आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। सीमित अर्थ में शिक्षा का अभिप्राय उस औपचारिक शिक्षा से है, जो व्यक्ति को गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने से पूर्व छात्र के रूप में गुरु से प्राप्त होती थी।

प्राचीन युग में 'शिक्षा' को न तो पुस्तकीय ज्ञान का पर्यायवाची माना गया और न जीविकोपार्जन का साधन। इसके विपरीत, शिक्षा को वह प्रकाश माना गया, जो व्यक्ति को अपना बहुअंगी विकास करने, उत्तम जीवन व्यतीत करने और मोक्ष प्राप्त करने में सहायता देती थी। दूसरे शब्दों में, शिक्षा को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में व्यक्ति को पथ-प्रदर्शन करने वाला प्रकाश माना गया। इस कथन की पुष्टि में डा० ए० एस० अल्तेकर के अग्रांकित शब्द उल्लेखनीय हैं :—"वैदिक युग से आज तक शिक्षा के सम्बन्ध में भारतीयों की मुख्य धारणा यह रही है कि शिक्षा, प्रकाश का वह स्रोत है, जो जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में हमारा सच्चा पथ-प्रदर्शन करती है।"

शिक्षा का महत्त्व
Importance of Education

प्राचीन भारत में शिक्षा को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था। इसका एक प्रमाण यह है कि शिक्षा को प्रकाश का स्रोत, अन्तर्दृष्टि, अन्तर्ज्योति, ज्ञान-चक्षु और मनुष्य का तीसरा नेत्र माना जाता था। उस युग के भारतीयों का विचार था कि शिक्षा का प्रकाश, भ्रान्ति के सब संशयों का उन्मूलन और उसकी सब बाधाओं का निवारण करता है। शिक्षा से प्राप्त अन्तर्दृष्टि व्यक्ति की बुद्धि, विवेक और कुशलता में वृद्धि करती है। शिक्षा—व्यक्ति को वास्तविक शक्ति से सम्पन्न करती है, उसके गुण, गुयश एवं समृद्धि में योग देती है, उसे जीवन के यथार्थ महत्त्व को समझने की क्षमता प्रदान करती है, और उसे भव-सागर को पार करके, मोक्ष-प्राप्ति में सहायता देती है।

शिक्षा के महत्त्व के सम्बन्ध में उपर्युक्त और अनेक अन्य धारणाएँ व्यक्त

करके भारतीयों ने यह विश्वास व्यक्त किया कि शिक्षा—कामधेनु या कल्पतरु के समान व्यक्ति की सब मनोकामनाओं को पूर्ण करती है और उसका सर्वांगीण विकास करती है। उनके इसी विश्वास के आधार पर डा० ए० एस० अल्तेकर ने अपना यह मत अक्षरबद्ध किया है :—"शिक्षा को प्रकाश और शक्ति का ऐसा स्रोत माना जाता था, जो हमारी शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक शक्तियों तथा क्षमताओं का निरन्तर एवं सामंजस्यपूर्ण विकास करके, हमारे स्वभाव को परिवर्तित करती है और उसे उत्कृष्ट बनाती है।"

"*Education was regarded* as a source *of illumination* and power, which transforms and ennobles our nature by the progressive and harmonious development of our physical, mental, intellectual and spiritual powers and faculties."—Dr. A. S. Altekar : *Education in Ancient India*, p 8.

शिक्षा के उद्देश्य व आदर्श
Aims & Ideals of Education

प्राचीन भारतीय शिक्षा के उद्देश्यों और आदर्शों पर प्रकाश डालते हुए डा० ए० एस० अल्तेकर ने लिखा है —"प्राचीन भारतीय शिक्षा के मुख्य उद्देश्यों एवं आदर्शों का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है—ईश्वर-भक्ति एवं धार्मिकता का समावेश, चरित्र का निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक एवं सामाजिक कर्त्तव्य-पालन की भावना का समावेश, सामाजिक कुशलता की उन्नति और राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार।"

"Infusion of a spirit of piety and religiousness, formation of character, development of personality, inculcation of civic and social duties, promotion of social efficiency, and preservation and spread of national culture may be described as the chief aims and ideals of ancient Indian education"—Dr A. S. Altekar, pp. 8-9.

हम उपर्युक्त उद्देश्यों और आदर्शों एवं दो अन्य का संक्षिप्त विवरण उपस्थित कर रहे हैं; यथा :—

1. ज्ञान व अनुभव पर बल . Stress on Knowledge & Realization—*प्राचीन भारत में शिक्षा का पहला उद्देश्य—ज्ञान और अनुभव पर बल देना था।* उस समय छात्रों की मानसिक योग्यता का मापदंड उनके द्वारा प्राप्त किये जाने वाले अंक, प्रमाण-पत्र या उपाधि-पत्र नहीं थे। इनके स्थान पर, उनकी योग्यता का मापदंड था—उनके द्वारा अर्जित किया गया ज्ञान, जिसका प्रमाण वे विद्वत्परिषदों में शास्त्रार्थ करके देते थे।

"छान्दोग्य उपनिषद्" में हमें श्वेतकेतु और कमनायन के उ

है, जिनको बारह वर्ष के अध्ययन के उपरान्त भी उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकारी नहीं समझा गया। इन उदाहरणों से सिद्ध होता है कि प्राचीन काल में शिक्षा का उद्देश्य या आदर्श केवल पढ़ना नहीं था, वरन् मनन, स्मरण और स्वाध्याय द्वारा ज्ञान को आत्मसात् करना भी था। डा० आर० के० मुकर्जी के शब्दों में :—"शिक्षा का उद्देश्य पढ़ना नहीं था, अपितु ज्ञान और अनुभव को आत्मसात् करना था।"

2. चित्त-वृत्तियों का निरोध : Chitta Vritti Nirodh—प्राचीनकाल में शिक्षा का दूसरा उद्देश्य—छात्रों की चित्त-वृत्तियों का निरोध करना था। उस समय शरीर की अपेक्षा आत्मा को बहुत अधिक महत्त्व दिया जाता था, क्योंकि शरीर नश्वर है, जबकि आत्मा अनश्वर है। अतः आत्मा के उत्थान के लिए, जप, तप और योग पर विशेष बल दिया जाता था। ये कार्य—चित्त की वृत्तियों का निरोध करके अर्थात् मन पर नियन्त्रण करके ही सम्भव थे। इसलिए, छात्रों को विभिन्न प्रकार के अभ्यासों द्वारा अपनी चित्त-वृत्तियों का निरोध करने का प्रशिक्षण दिया जाता था, ताकि उनका मन इधर-उधर भटक कर उनकी मोक्ष-प्राप्ति में, जिसे जीवन का चरम लक्ष्य समझा जाता था, बाधा उपस्थित न करे। इस प्रकार, हम डा० आर० के० मुकर्जी के शब्दों में कह सकते हैं :—"शिक्षा का उद्देश्य—चित्त-वृत्ति निरोध, अर्थात् मन के उन कार्यों का निषेध था, जिनके कारण वह भौतिक संसार में उलझ जाता है।"

"The aim of education was Chitta Vritti Nirodh, the inhibition of those activities of the mind by which it gets connected with the world of matter or object."—Dr. R. K. Mookerji : *Ancient Indian Education,* p. 366.

3. ईश्वर-भक्ति व धार्मिकता का समावेश : Infusion of Piety & Religiousness—प्राचीन भारत में शिक्षा का तीसरा उद्देश्य—छात्रों में ईश्वर भक्ति और धार्मिकता की भावना का समावेश करना था। उस समय उसी शिक्षा को सार्थक माना जाता था, जो इस संसार से व्यक्ति की मुक्ति को सम्भव बनाए—"सा विद्या या विमुक्तये"। व्यक्ति को मुक्ति तभी प्राप्त हो सकती थी, जब वह ईश्वर-भक्ति और धार्मिकता की भावना से सराबोर हो। छात्रों में इस भावना को व्रत, यज्ञ, उपासना, धार्मिक उत्सवों आदि के द्वारा विकसित किया जाता था। डा० ए० एस० अल्तेकर ने लिखा है :—"सब प्रकार की शिक्षा का प्रत्यक्ष उद्देश्य—छात्र को समाज का धार्मिक सदस्य बनाना था।"

4. चरित्र का निर्माण : Formation of Character—प्राचीन भारत में शिक्षा का चौथा उद्देश्य—छात्रों के चरित्र का निर्माण करना था। उस समय व्यक्ति के चरित्र को उसके पांडित्य से अधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता था। "मनुस्मृति" में लिखा है :—"केवल गायत्री मन्त्र का ज्ञान रखने वाला चरित्रवान् ब्राह्मण, सम्पूर्ण वेदों के ज्ञाता, पर चरित्रहीन विद्वान् से कहीं अधिक श्रेष्ठ है।" गुरुकुलों के उत्तम

वातावरण, सदाचार के उपदेशो, महापुरुषों के उदाहरणो, महान् विभूतियों के आदर्शों आदि के द्वारा छात्रो के चरित्र का निर्माण किया जाता था। डा० वेद मित्र का कथन है :—"छात्रों के चरित्र का निर्माण करना, शिक्षा का एक अनिवार्य उद्देश्य माना जाता था।"

"The building of character of the students was deemed as one of the essential objects of education."—**Dr. Veda Mitra :** *Education in Ancient India*, pp 55-56.

5. व्यक्तित्व का विकास : Development of Personality—प्राचीन भारत मे शिक्षा का पांचवां उद्देश्य—छात्रों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना था। इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उनमे आत्म-सयम, आत्म-सम्मान, आत्म-विश्वास आदि सद्गुणों को उत्पन्न किया जाता था। साथ ही, गोष्ठियों और वादविवाद-सभाओं का आयोजन करके उनमे विवेक, न्याय और निष्पक्षता की शक्तियो को जन्म देकर उनको बलवती बनाया जाता था।

6 नागरिक व सामाजिक कर्त्तव्य-पालन की भावना का समावेश : Inculcation of Civic & Social Duties—प्राचीन भारत मे शिक्षा का छठवां उद्देश्य—छात्रों में नागरिक और सामाजिक कर्त्तव्यो का पालन करने की भावना का समावेश करना था। उस समय प्रत्येक व्यक्ति से यह आशा की जाती थी कि वह गृहस्थ जीवन व्यतीत करते समय अपने नागरिक और सामाजिक कर्त्तव्यो का पालन करे। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए छात्रो को गुरु द्वारा विभिन्न प्रकार के उपदेश दिये जाते थे; यथा —अतिथियों का सत्कार करना, दीन-दु:खियों की सहायता करना, वैदिक साहित्य की नि:शुल्क शिक्षा देना, दूसरो के प्रति निस्स्वार्थता का व्यवहार करना, और पुत्र, पिता एव पति के रूप मे अपने कर्त्तव्यों का पालन करना।

7. सामाजिक कुशलता की उन्नति : Promotion of Social Efficiency—प्राचीन भारत मे शिक्षा का सातवां उद्देश्य—छात्रों की सामाजिक कुशलता मे उन्नति करना था। उस समय शिक्षा केवल व्यक्ति का मानसिक विकास ही नहीं करती थी, वरन् सामाजिक कुशलता मे उसकी उन्नति भी करती थी, ताकि वह सरलता से अपनी जीविका का उपार्जन करके, अपने सुख मे अभिवृद्धि कर सके। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए छात्रो को उनकी रुचि और वर्ण के अनुसार किसी उद्योग या व्यवसाय की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाती थी। डा० आर० के० मुकर्जी के शब्दो मे :—"शिक्षा पूर्णतया सैद्धान्तिक और साहित्यिक नहीं थी, वरन् किसी-न-किसी शिल्प से सम्बद्ध थी।"

8. राष्ट्रीय संस्कृति का सरक्षण व प्रसार Preservation & Spread of National Culture—प्राचीन भारत मे शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य—राष्ट्रीय संस्कृति का सरक्षण और प्रसार करना था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए इसके

पिता अपने पुत्र को अपने व्यवसाय में दक्ष बनाता था, प्रत्येक ब्राह्मण वेदों का अध्ययन करता था और प्रत्येक आर्य, वैदिक साहित्य के किसी-न-किसी भाग का अध्ययन करता था। इन कार्यों से किसी को कोई व्यक्तिगत लाभ नहीं होता था, पर इनको करके वे न केवल पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपनी राष्ट्रीय संस्कृति को सुरक्षित रखते थे, वरन् उसका प्रसार भी करते थे।

हमने प्राचीन भारतीय शिक्षा के जिन उद्देश्यों और आदर्शों को अंकित किया है, उनसे विदित हो जाता है कि उनका निर्माण—व्यक्ति के लौकिक और पारलौकिक जीवन की सभी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया गया था।

शिक्षा की व्यवस्था
Organization of Education

डा० ए० एस० अल्तेकर के अनुसार :—"प्राचीन भारत में लगभग 400 ई० पू० से पहले प्राथमिक शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। उस समय तक बालक का परिवार ही उसकी शिक्षा का केन्द्र था। उसके पश्चात् कुछ ब्राह्मणों ने व्यक्तिगत रूप से शिक्षा देने का कार्य आरम्भ किया।" इसके फलस्वरूप, जिस शिक्षा-प्रणाली का विकास हुआ, उसमें प्राथमिक और उच्च शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी। प्राचीन भारत में शिक्षा के यही दो स्तर रहे हैं। हम इनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं।

1. प्राथमिक शिक्षा : Primary Education

1. सामान्य परिचय—प्राथमिक शिक्षा के विषय में सर्वप्रथम उल्लेखनीय बात यह है कि इस पर ब्राह्मणों का आधिपत्य नहीं था। यही कारण है कि उन्होंने धर्म-ग्रन्थों में इसका विवरण न देकर इसकी उपेक्षा की है। संतोष कुमार दास ने ठीक लिखा है :—' ब्राह्मणों के पास उस शिक्षा की उपेक्षा करने के कारण थे, जो उनके हाथ में नहीं थी।"

· The Brahmans may have had reasons for wishing to ignore any form of education which was not in their hands."—Santos Kumar Das : *The Educational System of the Ancient Hindus*, p. 38.

ब्राह्मणों की उपेक्षा के बावजूद 'ऋग्वेद' में यत्र-तत्र ऐसे संकेत मिलते हैं, जिनसे पाठशाला की भाँति किसी शिक्षा-संस्था की कल्पना की जा सकती है।

2. प्रवेश व अवधि—डा० वेद मित्र के अनुसार—प्राथमिक शिक्षा का आ 5 वर्ष की आयु में "विद्यारम्भ संस्कार" से होता था और सभी जातियों के बा के लिए अनिवार्य था। इसका अभिप्राय यह है कि सभी जातियों के बालक प्रा शिक्षा ग्रहण कर सकते थे। इस शिक्षा की अवधि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए स्रोत उपलब्ध नहीं है, पर डा० ए० एस० अल्तेकर का मत है कि इसकी अ वर्ष की थी।

3. पाठ्यक्रम—प्राथमिक शिक्षा के अन्तर्गत बालकों को पहले कुछ वैदिक मंत्रों का उच्चारण करना और बोलना सिखाया जाता था। जब वे उन मंत्रों को कंठस्थ कर लेते थे, तब उनको पढ़ने और लिखने की शिक्षा दी जाती थी। भाषा का वांछित ज्ञान हो जाने के पश्चात् उनको साहित्य और व्याकरण से परिचित कराया जाता था। इस प्रकार, शिक्षा का पाठ्यक्रम था :—वैदिक मंत्रों का स्मरण, पढ़ना और लिखना, भाषा, साहित्य एवं व्याकरण।

2. उच्च शिक्षा : Higher Education

1 सामान्य परिचय—प्राचीन काल में सर्वप्रथम केवल प्राथमिक शिक्षा की ही व्यवस्था थी। किन्तु, सामाजिक प्रगति के साथ-साथ शिक्षा के विषयों की संख्या में वृद्धि होती चली गई और उनके लिए पृथक् शिक्षा-संस्थाओं की आवश्यकता अनुभव की जाने लगी। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए विशिष्ट विद्यालयों की स्थापना की गई। लेखकों का अनुमान है कि इनकी स्थापना ईसा पूर्व 5वीं शताब्दी तक हो गई थी। यहीं से उच्च शिक्षा के इतिहास का सूत्रपात होता है।

2 प्रवेश व अवधि—उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार केवल ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों को था। इन जातियों के बालक सामान्य रूप से क्रमशः 8, 11 और 12 वर्ष की आयु में शिक्षा-संस्था में प्रवेश करते थे। साहित्य एवं धर्मशास्त्र के अध्ययन की अवधि 10 वर्ष और एक वेद के अध्ययन की अवधि 12 वर्ष की थी।

3. पाठ्यक्रम—पाठ्यक्रम में परा (आध्यात्मिक) विद्या और अपरा (लौकिक) विद्या—दोनों को स्थान दिया गया था। परा विद्या के अन्तर्गत वेद, वेदांग, पुराण, दर्शन, उपनिषद् आदि आध्यात्मिक विषय थे। अपरा विद्या के अन्तर्गत इतिहास, तर्कशास्त्र, भूगर्भशास्त्र, भौतिक शास्त्र आदि लौकिक विषय थे।

4 शिक्षण-विधि—मुद्रित पुस्तकों का अभाव होने के कारण शिक्षण-विधि प्रायः मौखिक थी। छात्र, गुरु के मुख से वेदादि ग्रन्थों को सुनते थे, उसके उच्चारण का अनुकरण करते थे और पाठ्य-विषय को दोहराते थे। तदुपरान्त, वे एकान्त में पाठ्य-विषय का मनन, चिन्तन, स्वाध्याय और पुनरावृत्ति करते थे। शिक्षण-विधि में प्रवचन, व्याख्यान, शास्त्रार्थ, प्रश्नोत्तर, वादविवाद आदि का भी प्रयोग किया जाता था।

5. परीक्षाएँ व उपाधियाँ—शिक्षा समाप्त होने पर छात्रों की मौखिक परीक्षा होती थी। इसके लिए उन्हें विद्वानों की सभा में उपस्थित होना पड़ता था, जहाँ उन्हें विद्वानों द्वारा पूछे जाने वाले प्रश्नों के उत्तर देने पड़ते थे। परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले छात्रों को उपाधियाँ नहीं दी जाती थीं।

6. शिक्षा-संस्थाएँ—प्राचीनकाल में अनेक प्रकार की शिक्षा-संस्थाएँ थीं; यथा :—

(i) टोल—टोल में संस्कृत की शिक्षा दी जाती थी। एक टोल में एक शिक्षक होता था।

(ii) चरण—चरण में वेद के एक अंग की शिक्षा दी जाती थी। एक चरण में एक शिक्षक होता था।

(iii) घटिका—घटिका में धर्म और दर्शन की उच्च शिक्षा दी जाती थी। एक घटिका में अनेक शिक्षक होते थे।

(iv) परिषद्—परिषद् में विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी। एक परिषद् में साधारणतः दस शिक्षक होते थे।

(v) गुरुकुल—गुरुकुल में वेदों, साहित्य, धर्मशास्त्र आदि की शिक्षा दी जाती थी। एक गुरुकुल में एक शिक्षक होता था।

(vi) विद्यापीठ—विद्यापीठ में व्याकरण और तर्कशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी। एक विद्यापीठ में अनेक शिक्षक होते थे।

(vii) विशिष्ट विद्यालय—विशिष्ट विद्यालय में एक विशिष्ट विषय की शिक्षा दी जाती थी; जैसे, वैदिक विद्यालय में वेदों की और सूत्र विद्यालय में यज्ञ, हवन आदि की। एक विशिष्ट विद्यालय में एक शिक्षक होता था।

(viii) मन्दिर-महाविद्यालय—किसी मन्दिर से सम्बद्ध मन्दिर-महाविद्यालय में धर्म, दर्शन, वेदों, व्याकरण आदि की शिक्षा दी जाती थी। एक मन्दिर-विद्यालय में अनेक शिक्षक होते थे।

(ix) ब्राह्मणीय महाविद्यालय—इस महाविद्यालय को 'चतुष्पथी' कहा जाता था, क्योंकि इसमें चारों शास्त्रों अर्थात् अधोलिखित चार विषयों की शिक्षा दी जाती थी—दर्शन, पुराण, क़ानून और व्याकरण। एक ब्राह्मणीय महाविद्यालय में एक शिक्षक होता था।

(x) विश्वविद्यालय—उच्च शिक्षा की कुछ संस्थाओं ने कालान्तर में विश्वविद्यालयों का रूप ग्रहण किया। इनमें धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त वाणिज्य, चित्रकला, चिकित्सा-शास्त्र आदि की भी शिक्षा विभिन्न शिक्षकों द्वारा दी जाती थी। बनारस, नालन्द और तक्षशिला के विश्वविद्यालय सबसे अधिक प्रसिद्ध थे।

शिक्षा के अन्य क्षेत्र
Other Spheres of Education

1. स्त्री-शिक्षा : Women's Education—वैदिक काल में पुरुषों के समान स्त्रियों को भी शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार प्राप्त था। स्त्रियों को वेदों का अध्ययन करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी और वे पुरुषों के साथ यज्ञ में भाग लेती थीं। प्राचीन काल में अनेक विदुषी स्त्रियाँ थीं; यथा—सीता, गार्गी, मैत्रेयी, अपाला, विश्ववरा, शकुन्तला और अनुसूया।

बालिकाओं को धर्म और साहित्य के अतिरिक्त नृत्य, संगीत, काव्य-रचना, वाद-विवाद आदि की शिक्षा दी जाती थी। उनको शिक्षा अधिकतर अपने परिवारों में अपने माता-पिता, भाई-बहिन या कुल-पुरोहित के द्वारा दी जाती थी। यद्यपि बालिकाओं के लिए पृथक् विद्यालयों की व्यवस्था नहीं थी, तथापि सहशिक्षा का कुछ सीमा तक प्रचलन था। उदाहरणार्थ, आत्रेयी ने लव और कुश के साथ वाल्मीकि के आश्रम में शिक्षा प्राप्त की थी।

बालिकाओं और स्त्रियों को 200 ई० पू० तक शिक्षा की सभी सुविधाएँ प्राप्त थीं, पर उसके बाद उनकी शिक्षा पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, जिससे उनकी शिक्षा अवरुद्ध हो गई। इस सम्बन्ध में डा० ए० एस० अल्तेकर के अग्रांकित शब्द उल्लेखनीय हैं —"**धर्मशास्त्र युग (200 ई० पू०—500 ई०) में बालिकाओं के विवाह की आयु को कम करके 12 वर्ष कर दिया गया और स्त्रियों के लिए वेदाध्ययन का निषेध कर दिया गया। इनसे उनकी शिक्षा को प्रबल आघात पहुँचा।**"

2. व्यावसायिक शिक्षा : Professional Education—प्राचीन भारत में धर्म का मानव-जीवन में विशेष स्थान था। अतः शिक्षा मुख्यतः धार्मिक और आध्यात्मिक थी। किन्तु, व्यावसायिक शिक्षा को आवश्यक समझ कर उसकी भी समुचित व्यवस्था की गई थी। इस संदर्भ में डा० आर० के० मुकर्जी ने लिखा है :— "**व्यावसायिक शिक्षा के आधार पर ही प्राचीन भारत अपने आर्थिक जीवन और वैभव का निर्माण करने में सफल हुआ।**"

"It was on the basis of professional education that India was able to build up her economic life and prosperity."—**Dr. R. K. Mookerji**, p 368.

हम प्राचीन भारत में व्यावसायिक शिक्षा के महत्त्वपूर्ण अंगों पर प्रकाश डाल रहे हैं, यथा —

1. सैनिक शिक्षा : Military Education—प्राचीन भारत में सैनिक शिक्षा व्यावसायिक आचार्यों द्वारा दी जाती थी। इन आचार्यों में द्रोणाचार्य का नाम आज भी प्रसिद्ध है। उत्तर भारत में तक्षशिला सैनिक शिक्षा का विख्यात केन्द्र था। यह शिक्षा विशेष रूप से क्षत्रियों और राजकुमारों के लिए थी। सैनिक शिक्षा आरम्भ करने से पूर्व *शिक्षार्थी के लिए उपनयन संस्कार आवश्यक था।* उसके पश्चात्, उसे युद्ध-कला का ज्ञान प्रदान किया जाता था और उस समय के प्रमुख अस्त्र-शस्त्रों के प्रयोग का प्रशिक्षण दिया जाता था।

2. चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा : Medical Education—प्राचीन काल में चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा व्यक्तिगत शिक्षकों द्वारा दी जाती थी, जो अपने विषय के विशेषज्ञ होते थे। इन शिक्षकों में अश्विनी कुमारों के नाम अपनी विलक्षण प्रतिभा के

लिए आज भी प्रसिद्ध है। चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा आरम्भ करने से पूर्व उपनयन संस्कार होता था। इस संस्कार के लिए उसी छात्र को योग्य समझा जाता था, जो पूर्णतया स्वस्थ होता था। चिकित्सा-शास्त्र के अध्ययन की अवधि साधारणतः 8 वर्ष की थी।

3. वाणिज्य-शिक्षा : Commercial Education—यह शिक्षा—वैश्यों के लिए थी। 'मनुस्मृति' और कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में इस शिक्षा का पूर्ण वर्णन मिलता है। इसमें अनेक विषय सम्मिलित थे; यथा :—क्रय-विक्रय के नियम, आर्थिक एवं व्यापारिक भूगोल, विभिन्न देशों की उपज एवं आवश्यकताएँ, उपज-क्षेत्रों और मंडियों को जाने के मार्ग, इत्यादि। वैश्य बालक को वाणिज्य की व्यावहारिक शिक्षा अपने पिता से और अपने घर की दुकान पर अनुभव तथा अभ्यास से प्राप्त होती थी। यह शिक्षा कुछ शिक्षकों द्वारा भी दी जाती थी।

शिक्षा की प्रमुख विशेषताएँ
Main Features or Characteristics of Education

प्राचीन भारतीय शिक्षा के आदर्शों और उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए, तत्कालीन ब्राह्मण शिक्षकों ने जिस विशिष्ट शिक्षा-प्रणाली का विकास किया, उसका गुणगान करते हुए डा० एफ० ई० केई ने लिखा है :—"ब्राह्मण शिक्षकों ने जिस शिक्षा-प्रणाली का विकास किया, वह न केवल साम्राज्यों के पतन और समाज के परिवर्तनों से अप्रभावित रही, वरन् उसने हजारों वर्षों तक उच्च शिक्षा की ज्योति को प्रज्वलित रखा।"

"Not only did the Brahman educators develop a system of education, which survived the crumbling of empires and the changes of society, but they also, through all these thousand years, kept aglow the torch of higher learning."—**Dr. F. E. Keay** : *Indian Education in Ancient and Later Times*, p. 18.

हम इस शिक्षा-प्रणाली की प्रमुख विशेषताओं की चर्चा कर रहे हैं; यथा :—

1. विद्यारम्भ संस्कार : Vidyarambha Ceremony—यह संस्कार उस समय होता था, जब बालक प्राथमिक शिक्षा आरम्भ करता था। कुछ विद्वानों ने इसके लिए "अक्षरस्वीकरणम्" शब्द का प्रयोग किया है। इस शब्द से स्पष्ट हो जाता है कि इस संस्कार के समय बालक को अक्षर-ज्ञान कराया जाता था। बालक पहले सरस्वती, विनायक और अपने परिवार के देवताओं की उपासना करता था। उसके बाद गुरु उसे वर्णमाला के अक्षरों को सिखाता था। डा० ए० एस० अल्तेकर के अनुसार—विद्यारम्भ संस्कार, उपनयन संस्कार के अनेक वर्षों बाद उस समय आरम्भ हुआ, जब वैदिक संस्कृत, जनसाधारण की बोलचाल की भाषा नहीं रह गई थी। इस संस्कार के विषय में डा० वेद मित्र ने लिखा है :—"यह संस्कार पाँच वर्ष की आयु में होता था और साधारणतः सब जातियों के बालकों के लिए था।"

2. उपनयन संस्कार : Upanayan Ceremony—यह संस्कार उस समय होता था, जब बालक—गुरु के संरक्षण मे वैदिक शिक्षा आरम्भ करता था। 'उपनयन' का शाब्दिक अर्थ है—"पास ले जाना" (Leading Near)। दूसरे शब्दों में, बालक को वैदिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए गुरु के पास ले जाया जाता था। गुरु—बालक को पहले "सावित्री मंत्र" अर्थात् "गायत्री मंत्र" का उपदेश देता था और उसके बाद उसे शिक्षा देना आरम्भ करता था।

डा० ए० एस० अल्तेकर के अनुसार :—"उपनयन संस्कार" का आरम्भ पूर्व-ऐतिहासिक युग से माना जाता है। यह संस्कार, ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—तीनों वर्णों के बालकों के लिए अनिवार्य था। जिस प्रकार कोई व्यक्ति बिना "कलमा" के मुसलमान या बिना "बपतिस्मा" के ईसाई नही कहा जा सकता है, उसी प्रकार प्राचीन भारत मे कोई बालक बिना "उपनयन" के वैदिक शिक्षा प्राप्त नही कर सकता था।

3. समावर्तन संस्कार . Samavartan Ceremony—यह संस्कार उस समय होता था, जब छात्र अपनी वैदिक शिक्षा (या सैनिक शिक्षा, औषधि शास्त्र की शिक्षा इत्यादि) समाप्त कर लेता था। "समावर्तन" का शाब्दिक अर्थ है—"घर लौटना" (Returning Home)। यह संस्कार लगभग 25 वर्ष की आयु मे होता था, जब छात्र गुरु-गृह से लौट कर अपने घर जाता था और ब्रह्मचर्य आश्रम का परित्याग करके, गृहस्थ आश्रम मे प्रवेश करता था।

जिस दिन यह संस्कार होता था, उस दिन दोपहर के समय छात्र, स्नान करके और नए वस्त्र धारण करके गुरु के समक्ष उपस्थित होता था। गुरु पहले उसे मधु-पर्क देता और फिर आधुनिक युग के दीक्षान्त भाषण (Convocation Address) के रूप मे उसे "समावर्तन उपदेश" देता था। इस उपदेश का कुछ अंश इस प्रकार है :—"हे शिष्य ! सर्वदा सत्य बोलना। अपने कर्त्तव्य का पालन करना। स्वाध्याय मे प्रमाद मत करना। जो अच्छे कार्य हमने किए हैं, तुम उनका अनुकरण करना। श्रद्धा से दान देना। तुम्हे हमारा यही आदेश है। यही उपदेश है।"

4 विद्यालय-भवन : Buildings of Institutions—प्राचीन काल मे छात्रों के लिए किस प्रकार के भवन थे, इस विषय मे किसी प्रकार की जानकारी उपलब्ध नहीं है। अतः डा० अल्तेकर का यह मत सामान्य रूप से स्वीकार किया जाता है :—"अच्छे मौसम मे कक्षाएँ वृक्षों की छाया मे होती होंगी, किन्तु वर्षा-ऋतु मे किसी प्रकार के साधारण आच्छादन की व्यवस्था अवश्य होगी। जहाँ तक देवालयों मे शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों का प्रश्न है, उनके लिए भव्य और विशाल भवन थे।"

5 प्रकृति से सम्पर्क : Contact with Nature—प्राचीन काल मे शिक्षा के अनेक विख्यात केन्द्र, तपोवनों मे थे, जहाँ ऋषियों और मुनियों के चरणों मे बैठकर छात्र, ज्ञान का सचय करते थे। सुरम्य दृश्यों से आवृत्त इन शिक्षा-केन्द्रों मे छात्र

अपने जीवन के अनेक वर्ष व्यतीत करते थे। अतः उनका प्रकृति से प्रत्यक्ष सम्पर्क रहता था, जिससे उनके शारीरिक और मानसिक विकास पर अत्यन्त स्वस्थ प्रभाव पड़ता था। उन्हीं छात्रों के माध्यम से तपोवनों में आविर्भूत और परिपल्लवित होने वाली भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का सम्पूर्ण देश में प्रसार हुआ। इसीलिए, रवीन्द्रनाथ टैगोर ने यह विचार व्यक्त किया है :—"भारत के वनों से सभ्यता की जो धारा प्रवाहित हुई, उसने सम्पूर्ण भारत को आप्लावित कर दिया।"

"The current of civilization that flowed from its forests inundated the whole of India."—Rabindranath Tagore : *Visva Bharati Quarterly*, April, 1924.

6. **गुरुकुल-प्रणाली : Gurukula System**—प्राचीन भारतीय शिक्षा की एक मुख्य विशेषता—गुरुकुल-प्रणाली थी। गुरुकुल किसी सुन्दर प्राकृतिक स्थान में, पर साधारणतः किसी ग्राम या नगर के निकट होते थे, ताकि छात्रों की दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके और उन्हें भिक्षाटन की सुविधा रहे। छात्र अपने गुरु के पास उसके कुल के सदस्य के रूप में रहकर ज्ञान का अर्जन करते थे और उनसे वास्तविक जीवन की शिक्षा प्राप्त करते थे। वे गुरु के उच्च विचारों और आदर्शों का अनुसरण करके, अपने श्रेष्ठ जीवन का निर्माण करते थे। गुरुकुल-प्रणाली की सराहना करते हुए, डा० एस० एन० मुकर्जी ने लिखा है :—"वैदिक कालीन भारत, शिक्षा की पारिवारिक प्रणाली में विश्वास करता था, न कि शिक्षा-संस्थाओं में यान्त्रिक विधियों द्वारा विशाल पैमाने पर छात्रों के उत्पादन में।"

7. **वैदिक शिक्षा आरम्भ करने की आयु : Age at the Commencement of Vedic Education**—डा० ए० एस० अल्तेकर ने लिखा है :—"वैदिक शिक्षा, उपनयन संस्कार के बाद, आरम्भ होती थी और अनेक बातों में आधुनिक माध्यमिक शिक्षा के समान थी। अतः उसे आरम्भ करने की आयु साधारणतः 8 और 12 वर्ष के बीच में मानी जाती थी।" मनु के अनुसार—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य छात्रों का उपनयन संस्कार क्रमशः 8, 11 और 12 वर्ष की आयु तक हो जाना चाहिए। (शूद्रों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार नहीं था।) मनु ने उपनयन की उच्चतम आयु भी निर्धारित कर दी थी, जिसके पश्चात् यह संस्कार नहीं हो सकता था। यह उच्चतम आयु ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य छात्रों के लिए क्रमशः 16, 22 और 24 थी।

यहाँ इस बात का उल्लेख कर देना असंगत न होगा कि जिस प्रकार वैदि[क] शिक्षा प्राप्त करने के लिए "उपनयन संस्कार" अनिवार्य था, उसी प्रकार सै[निक] शिक्षा, औषधि शास्त्र की शिक्षा आदि के लिए भी था।

8. **अध्ययन की अवधि : Period of Study**—प्राचीन काल में अध[्ययन] की अवधि साधारणतः 12 वर्ष की थी। इस अवधि में छात्र केवल एक वे[द का] अध्ययन कर सकते थे। यदि वे एक से अधिक वेदों का अध्ययन करना चाह[ते]

तो उनको प्रत्येक वेद के लिए 12 वर्ष व्यतीत करने पड़ते थे। 12, 24, 36 और 48 वर्ष की आयु तक अध्ययन करने वाले छात्र क्रमश. स्नातक, वसु, रुद्र और आदित्य कहलाते थे। साहित्य और धर्मशास्त्र के छात्रो की अध्ययन की अवधि 10 वर्ष की थी।

9. शिक्षा-सत्र व छुट्टियाँ Academic Session & Holidays—शिक्षा-सत्र, श्रावण मास की पूर्णिमा को 'उपाकर्म' या 'श्रावणी' समारोह से आरम्भ होता था और पौष मास की पूर्णिमा को 'उत्सर्जन' समारोह के साथ समाप्त होता था। इस प्रकार, शिक्षा-सत्र की अवधि पाँच माह की थी।

आधुनिक समय के समान प्राचीन समय मे भी शिक्षा-संस्थाओ में छुट्टियाँ होती थी। प्रत्येक मास में एक-एक सप्ताह के अन्तर मे चार छुट्टियाँ होती थी। अधिक आयु के छात्रों की अपेक्षा कम आयु के छात्रो को अधिक छुट्टियाँ मिलती थी। छुट्टियाँ लम्बी नही होती थी, क्योंकि आवागमन की कठिनाइयो के कारण छात्र साधारणत शिक्षा समाप्त करके ही घर लौटते थे।

10. शिक्षा का स्वरूप : Form of Education—प्राचीन समय में सम्पूर्ण शिक्षा—धर्म से अनुप्राणित थी। शिक्षा के आदर्श, उद्देश्य, व्यवस्था, विषय-सामग्री, यहाँ तक कि छात्रों का दैनिक जीवन भी धर्म पर अवलम्बित था। ज्ञान का अर्जन धर्म के द्वारा और धार्मिक कर्त्तव्य के रूप मे किया जाता था। इस प्रकार, शिक्षा का सम्पूर्ण कलेवर, धर्म के अभेद्य आवरण से आवृत्त था। इस प्रसग मे **गन्नार मिरडल** के अग्रांकित वाक्यों का अवलोकन कीजिए —**"शिक्षा पीढ़ी-दर-पीढ़ी होने वाले धार्मिक व्यक्तियो के निर्देशों का संकलन थी। मंत्रों, देवगीतों, धर्म-ग्रन्थों का उस समय तक पाठ किया जाता था, जिस समय तक वे कठस्थ नहीं हो जाते थे।"**

11 नि शुल्क व सार्वभौमिक शिक्षा : Free & Universal Education—प्राचीन भारत मे शिक्षा नि शुल्क थी, पर शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् प्रत्येक छात्र अपने गुरु को दक्षिणा अवश्य देता था। वह दक्षिणा के रूप में धन, भूमि, पशु, अन्न—कुछ भी दे सकता था। दक्षिणा इतनी कभी नही होती थी जो शिक्षक का पर्याप्त पारिश्रमिक कहा जा सके।

नि शुल्क होने के कारण शिक्षा सार्वभौमिक और सब के लिए थी। किन्तु, कुछ लेखको का विचार है कि शिक्षा अनिवार्य थी। डा० वेद मित्र के अनुसार, उनका यह विचार—मनु के इस कथन पर आधारित है :—*"मनु का कथन है कि* राज्य और समाज को 5 या 8 वर्ष की आयु के पश्चात् बालकों और बालिकाओं के लिए शिक्षा को अनिवार्य बना देना चाहिए, और जो व्यक्ति अपने बच्चे को इस आयु के पश्चात् घर पर रखे, उसको दण्ड दिया जाना चाहिए।"

12. शिक्षा की पद्धति . Method of Education—प्राचीन भारत मे शिक्षा की पद्धति को वैयक्तिक बताते हुए, **गन्नार मिरडल** ने लिखा है :—"हिन्दू धर्म की

हिन्दू धर्म के अन्तर्गत शिक्षा की पद्धति वैयक्तिक थी, क्योंकि प्रत्येक गुरु के अपने स्वयं के शिष्य होते थे।"

"The method of education within the bounds of Hinduism was individualistic, each guru had his personal disciples."—Gunnar Myrdal : *Asian Drama*, Vol, III, p. 1627.

13 शिक्षण का समय : *Time of Teaching*—शिक्षण के समय के विषय में 'स्मृतियों' में कोई निर्देश नहीं है। प्राचीन समय में मुद्रित पुस्तकें नहीं थीं। अतः पठन-पाठन का सब कार्य, गुरु की उपस्थिति में होता था। इससे हम शिक्षण के समय के विषय में कुछ अनुमान लगा सकते हैं। शिक्षण का कार्य प्रातःकाल से दोपहर तक और फिर भोजन तथा विश्राम के उपरान्त सायंकाल तक होता होगा। प्राचीन ढंग की कुछ संस्कृत पाठशालाओं में अब भी शिक्षण का यही कार्यक्रम है।

14. शिक्षण की विधि : Method of Teaching—प्राचीन काल में शिक्षण की विधि—प्रवचन और व्याख्यान के रूप में प्रायः मौखिक थी और उसके मुख्य अंग थे—श्रवण, मनन, चिन्तन, स्वाध्याय और पुनरावृत्ति। छात्र—गुरु के मुख से वेदादि शब्दों को सुनते थे और उनके उच्चारण को सुनकर तदनुसार उच्चारण करते थे। उसके पश्चात् वे एकान्त में पाठ्यविषय का मनन, चिन्तन, स्वाध्याय और पुनरावृत्ति करते थे। छात्रों की पाठ्यविषय-सम्बन्धी शंकाओं का समाधान करने के लिए प्रश्नोत्तर विधि, वाद-विवाद और शास्त्रार्थ का प्रयोग किया जाता था।

प्राचीन काल में कक्षाओं में कम छात्र होते थे। अतः आचार्य के लिए प्रत्येक छात्र की प्रगति पर पृथक्-पृथक् ध्यान देना सम्भव था। इस सम्बन्ध में डा० अल्तेकर का मत है :—"प्राचीन भारत में कक्षाएँ साधारणतः छोटी होती थीं और उनमें 15 या 20 छात्रों से अधिक नहीं होते थे। अतः शिक्षक द्वारा प्रत्येक छात्र के प्रति व्यक्तिगत ध्यान दिया जाना सम्भव था।"

15 कक्षा-नायकीय पद्धति : Monitorial System—प्राचीन भारतीय शिक्षा की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विशेषता—कक्षा-नायकीय पद्धति थी। इस पद्धति में उच्च कक्षाओं के बुद्धिमान छात्र, जिनको नायक (Monitors) कहा जाता था, निम्न कक्षाओं के छात्रों को पढ़ाते थे और इस प्रकार गुरु के शिक्षण-कार्य में सहायता देते थे। इस पद्धति के दो मुख्य लाभ थे। पहला, शिक्षक की अनुपस्थिति में शिक्षण का कार्य [illegible] [illegible] में [illegible] रहता था। दूसरा, कक्षा-नायक कुछ समय के बाद शिक्षण कार्य में प्रशिक्षित हो जाते थे।

[illegible] मिशनरियों, बेल और लैंकास्टर ने भारत की कक्षा-नायकीय पद्धति से प्रभावित होकर, इसका अपने देश में प्रचलन किया, पर वे इस पद्धति को आदर्श रूप न दे सके। डा० एफ० ई० केई के शब्दों में :—"बेल और लैंकास्टर की कक्षा-नायकीय पद्धति भारतीय आदर्श का केवल विकृत रूप है।"

"The monitorial system of Bell and Lancaster is but a [illegible] of the Indian ideal."—Dr. F. E. Keay : *op. cit.*, p. 192.

16. छात्र-जीवन सम्बन्धी नियम : Rules Regarding Student-Life—छात्रों के जीवन के सम्बन्ध मे अनेक नियम थे, जिनका उनको अनिवार्य रूप से पालन करना पड़ता था, यथा :—

(i) आदतें—धनी और निर्धन, उच्च और निम्न—सभी परिवारों के छात्रों को सादा और सरल जीवन व्यतीत करना पड़ता था। महाभारत और रामायण में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं, जिनसे यह पूर्ण रूप से विदित हो जाता है कि राज-परिवारों के छात्रों को भी उन्ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था, जिनका सामना उनके निर्धन सहपाठी करते थे।

(ii) दिनचर्या—छात्रों को ब्रह्म मुहूर्त मे उठकर शौच, स्नान आदि से निवृत्त होकर सध्या, हवन आदि विभिन्न कार्य करने पड़ते थे। उमके पश्चात्, वे अपने पुराने पाठों को दोहराते थे और नये पाठों की तैयारी करते थे। मध्याह्न में भोजन के लिए उनको अवकाश मिलता था। उमके उपरान्त वे फिर विद्याध्ययन मे संलग्न हो जाते थे। सूर्य अस्त होने के समय वे भजन-पूजा करने के पश्चात् भोजन ग्रहण करते थे।

(iii) खान-पान—मनु के अनुसार, छात्र दिन मे केवल दो बार भोजन कर सकते थे— मध्याह्न और सायकाल के समय। उनको कम खाने का आदेश था, ताकि उनकी आध्यात्मिक उन्नति मे बाधा न पड़े और वे रोग ग्रस्त न हों। वे किसी भी दशा मे मांस, मदिरा, मधु, मादक वस्तुओं और पान का प्रयोग नही कर सकते थे।

(iv) वेश-भूषा—मनु के अनुसार विभिन्न जातियों के छात्रों की वेश-भूषा विभिन्न थी। प्रत्येक छात्र को मेखला धारण करनी पड़ती थी। ब्राह्मण की मेखला मूंज की, क्षत्रिय की तान की और वैश्य की ऊन की होती थी। वे अपने शरीर के निम्न भाग को क्रमश सन, रेशम और ऊन के वस्त्र से एव ऊपरी भाग को क्रमशः काले मृग, चित्तीदार मृग और बकरे की खाल से ढकते थे। प्रत्येक छात्र के लिये यज्ञोपवीत धारण करना अनिवार्य था। कोई भी छात्र अजन, सुगन्धि, छाते, जूतो और फूलमालाओं का प्रयोग नहीं कर सकता था।

(v) आचार-व्यवहार—प्राचीन काल में इस बात पर विशेष बल दिया जाता था कि छात्रों का आचार और व्यवहार उत्कृष्ट हो। अत. उन्हें मर्यादा, शिष्टाचार और आत्म-सयम के नियमों का अनुसरण करने का आदेश दिया जाता था। वे काम-क्रोध, मद-लोभ और दूषित विचारों से मुक्त रहकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते थे। वे अपने जीवन को पवित्र रखने के लिए नियमित रूप से हवन और संध्या करते थे। वे गाली-गलौज और चुगलखोरी की बुरी आदतों से दूर रहते थे। वे जुआ, नृत्य, सगीत और स्त्री के पास नही जा सकते थे। वे गुरु और वृद्धजनों का सम्मान करते थे।

17 गुरु-शिष्य सम्बन्ध : Teacher-Pupil Relationship—प्राचीन भारतीय शिक्षा की सम्भवतः सर्वश्रेष्ठ विशेषता—गुरु-शिष्य के सम्बन्ध की थी। उनका

सम्बन्ध किसी संस्था के माध्यम से नहीं, वरन् सीधा उन्हीं के मध्य था। इस सम्बन्ध का मुख्य आधार उनके पारस्परिक कर्त्तव्य थे; यथा :—

(i) शिक्षक के प्रति छात्र के कर्त्तव्य—छात्र अपने शिक्षक का हृदय से सम्मान करते थे और उसकी प्रत्येक आज्ञा का पालन करते थे। वे अपने गुरु के स्थान को राजा, माता-पिता और देवता से किसी प्रकार भी निम्नतर नहीं मानते थे। वे अपने आचार्य की सेवा करना अपना प्रथम कर्त्तव्य समझते थे। वे उसके परिवार के सभी कार्यों को करने में आनन्द का अनुभव करते थे।

(ii) छात्र के प्रति शिक्षक के कर्त्तव्य—वैदिक ऋषियों द्वारा गुरु को छात्र का बौद्धिक एवं आध्यात्मिक पिता माना जाता था। अतः वह अपने छात्रों के प्रति अपने पुत्र का सा व्यवहार करता था। वह उनका शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक विकास करने का सदैव प्रयत्न करता था। वह उन्हें ज्ञान प्रदान करता था, उनके चरित्र का उत्थान करता था, उनमें अच्छी आदतों का निर्माण करता था, और उनके भोजन तथा वस्त्र का प्रबन्ध करता था। यदि कोई छात्र बीमार हो जाता था, तो वह उसकी सेवा करता था और औषधि की व्यवस्था करता था।

उपर्युक्त विवरण से विदित हो जाता है कि गुरु और शिष्य—पारस्परिक स्नेह, सम्मान, विश्वास और कर्त्तव्य की भावनाओं से संयुक्त थे। दोनों के जीवन का लक्ष्य एक ही था—ज्ञान का संरक्षण एवं संवर्धन करना और जीवन एवं आचरण में उसके महत्त्व को सिद्ध करना। निष्कर्ष रूप में, हम डा० ए० एस० अल्तेकर के शब्दों में कह सकते हैं :—"शिक्षक एवं छात्र के सम्बन्ध स्नेहपूर्ण तथा घनिष्ठ थे, और उनके भावी जीवन में भी बने रहते थे।"

"The relations between the teacher and the student were cordial and intimate; and continued also in their after life."—Dr. A. S. Altekar : *op. cit.*, p. 63.

18. दंड : Punishment—प्राचीन भारत में छात्रों को दंड देने की प्रथा थी। दंड के रूप—समझाना-बुझाना, उपदेश, उपवास आदि थे। शारीरिक दंड के विषय में शास्त्रकारों में मतभेद था। उदाहरणार्थ, आपस्तम्ब का मत था कि गुरु—छात्र से प्रताड़ित करना मानता है और उसे अपने पास से दूर भेज सकता है। इसके विपरीत, मनु का मत था कि गुरु, रज्जु या पतली छड़ी से छात्र को शारीरिक दंड दे सकता है। सामान्य रूप में, छात्रों को शारीरिक दंड दिया जाता था, पर वह कठोर नहीं होता था।

19. बाह्य नियन्त्रण से मुक्ति : Freedom from External Control—प्राचीन भारत में शिक्षा पर किसी प्रकार का बाह्य नियन्त्रण नहीं था। राज्य, सरकार या कोई राजनीतिक दल उसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकता था। डा० पी० एन० प्रभु के अनुसार :—"प्राचीन भारत में शिक्षा—राज्य या सरकार या किसी राजनीतिक दल के किसी भी प्रकार के बाह्य नियन्त्रण से मुक्त थी।"

"Education in ancient India was free from any external control like that of the State or the Government or any party politics."
—Dr. P. N. Prabhu : *Hindu Social Organization*, p. 134.

हमने प्राचीन भारतीय शिक्षा की जिन विशेषताओं का विवरण उपस्थित किया है, उनके आधार पर हम निःसंकोच रूप से कह सकते हैं कि सुदूर अतीत में भी हमारे देश में शिक्षा की व्यवस्था गौरवमय थी। इस व्यवस्था का गुणगान करते हुए डा० पी० एन० प्रभु ने लिखा है :—"इसने शक्तिशाली व्यक्तियों का निर्माण किया, जिनकी मानसिक शक्तियाँ सुविकसित थी और जिनकी ज्ञान-भावना पवित्र एवं क्रियाशील थी।"

"It created strong personalities, whose mental powers were well developed and whose intellectual impulse was kept pure and alive."—Dr. P. N Prabhu : *op. cit.*, p. 130.

शिक्षा के प्रमुख दोष
Chief Defects of Education

प्राचीन भारत में जिस शिक्षा-प्रणाली का संगठन किया गया, वह अनेक शताब्दियों तक अति अल्प परिवर्तनों के साथ चलती रही। यह इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि इस शिक्षा-प्रणाली में अनेक महत्वपूर्ण तत्त्व विद्यमान थे। इन तत्वों ने भारतीयों की सब आवश्यकताओं की पूर्ति की और अनेक महान् विचारकों तथा सत्य के अन्वेषकों को जन्म दिया, जिनका बौद्धिक योगदान प्रत्येक दृष्टि से सराहनीय है।

किन्तु, जैसा कि डा० अल्तेकर का मत है, लगभग 500 ई० से भारत की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली में दोष प्रकट होने आरम्भ हो गये। समय की गति के साथ-साथ इन दोषों में वृद्धि होती चली गई, जिनके फलस्वरूप यह प्रणाली भारतीयों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असमर्थ हो गई और इसका पतन आरम्भ हो गया। डा० एफ० ई० केई के शब्दों में —"ब्राह्मणीय शिक्षा-प्रणाली रूढ़िबद्ध एवं औपचारिक हो गई और प्रगतिशील सभ्यता की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असमर्थ हो गई।"

"The Brahmanic educational system became stereotyped and formal, and unable to meet the needs of a progressive civilization."
—Dr. F. E. Keay *op. cit.*, p. 181.

ब्राह्मणीय शिक्षा-प्रणाली अपने जिन दोषों के कारण भारतीयों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में विफल हुई और उसका पतन आरम्भ हुआ, उनका वर्णन द्रष्टव्य है :—

इस प्रवृत्ति का परिणाम यह हुआ कि लौकिक पक्ष की उपेक्षा करके आध्यात्मिक पक्ष को महत्त्व दिया गया। फलस्वरूप, प्राचीन युग के व्यक्ति ससार एव सासारिक जीवन को असार मानने लगे और उनके प्रति उदासीन हो गये। अतः इस युग मे व्यक्तियों की लौकिक प्रगति का मार्ग बहुत सीमा तक अवरुद्ध हो गया।

7. विचार-स्वातन्त्र्य का अभाव : Lack of Freedom of Thought—*प्राचीन भारतीय शिक्षा मे धर्म को अत्यधिक महत्त्व दिए जाने के कारण* व्यक्तियो मे यह प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई कि धर्मशास्त्रो मे लिखी हुई सब बातें पूर्णतया सत्य हैं और उन्होने जिन बातों को असत्य बताया है, वे कदापि सत्य नही हो सकती हैं। इस प्रवृत्ति के फलस्वरूप भारतीय समाज मे अनेक अधविश्वासों और रूढिवादिताओ का प्रवेश हुआ।

8. हस्तकार्य व शारीरिक श्रम के प्रति घृणा : Hatred for Handwork & Physical Labour—प्राचीन भारतीय शिक्षा मे धार्मिक शिक्षा की तुलना मे लौकिक शिक्षा का स्थान बहुत निम्न था। फलस्वरूप, अध्ययन-केन्द्रो में लौकिक शिक्षा से सम्बन्धित हस्तकार्यों की शिक्षा को कोई स्थान प्राप्त नही हुआ। अतः उच्च वर्गों के छात्रों का, जो इन अध्ययन-केन्द्रो मे शिक्षा ग्रहण करते थे, इन कार्यों से कोई सम्पर्क नहीं हुआ। ये कार्य निम्न वर्गों के व्यक्तियो तक ही सीमित रहे, जिनको इनकी शिक्षा अपने परिवारो मे प्राप्त होती थी। इन वर्गों के व्यक्तियो को हेय समझा जाता था। अतः उनके द्वारा किए जाने वाले हस्तकार्यों और शारीरिक श्रम को घृणा की दृष्टि से देखा जाने लगा।

9. धर्म को अत्यधिक महत्त्व : Immense Importance to Religion—प्राचीन भारतीय शिक्षा मे धर्म को अत्यधिक महत्त्व दिया जाता था। शिक्षा की *सम्पूर्ण सरचना धार्मिक आदर्शों से निमज्जित थी। इन्हीं आदर्शों के अनुसार, शिक्षा* के विषयों, उद्देश्यों और पाठ्यक्रम को निर्धारित किया गया था। छात्रो के समय का अधिकाश भाग धर्म-शास्त्रो के अध्ययन और कर्मकाडो के सम्पादन मे व्यतीत होता था। उनको निष्काम कर्म करने और अपनी इच्छाओ का दमन करने का उपदेश दिया जाता था। डा० एफ० ई० केई के अनुसार :—"इस प्रकार की शिक्षा ने छात्रों में उच्च आदर्शों का तो समावेश किया, किन्तु शिक्षा को प्रगति में योग नहीं दिया।"

10. नवीन धर्मों का आविर्भाव : Birth of New Religions—डा० एस० एन० मुकर्जी का विचार है :—लगभग पाँचवी शताब्दी के अन्त मे शिक्षा अधिकाश रूप मे ब्राह्मणो तक ही सीमित रह गई थी और शिक्षा के व्यवसाय पर उनका एकमात्र अधिकार था। इस अधिकार को बनाए रखने के लिए उन्होंने धर्म का सहारा लिया और उसमें जटिलता को कूट-कूट कर भर दिया। इस जटिलता के परिणामस्वरूप धार्मिक कृत्यो और ब्राह्मणो द्वारा उनमे प्रयोग की जाने वाली सस्कृत भाषा का जनसाधारण के लिए कोई महत्त्व नही रह गया। वैदिक धर्म के प्रति जनसाधारण के

इसी परिवर्तित दृष्टिकोण के कारण दो नवीन धर्मों का आविर्भाव हुआ—बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि प्राचीन भारतीय शिक्षा में अनेक गम्भीर दोष थे, जिनके कारण वह कालान्तर में समयानुकूल न रह गई और उसका ह्रास आरम्भ हो गया। इन दोषों और इनके कारण होने वाले ह्रास को रोकने के विषय में डा० एफ० ई० केई ने अग्रांकित विचार लेखबद्ध किये हैं :—
"प्राचीन भारतीय शिक्षा में अनेक दोष थे। इस शिक्षा को नवीन गति प्रदान करने और रूपान्तरित करने के लिए किसी प्रकार के नव जीवन की आवश्यकता थी।"

"The ancient Indian education had many defects, and needed some new breath of life to quicken it and transform it."—Dr. F. E. Keay : *op. cit.*, p. 189.

आधुनिक शिक्षा के लिए ग्रहणीय तत्त्व
Acceptable Features for Modern Education

प्राचीन भारतीय शिक्षा और आधुनिक भारतीय शिक्षा के मध्य अनेक शताब्दियों का अन्तर है। पर, फिर भी प्राचीन शिक्षा के ऐसे अनेक तत्त्व हैं, जिनको सिद्धान्त और व्यवहार—दोनों दृष्टियों से आधुनिक शिक्षा में स्थान दिया जा सकता है। इस प्रकार के मुख्य तत्त्व अधोलिखित हैं :—

1. आदर्शवादिता : Idealism—आज हम आधुनिक युग में निवास कर रहे हैं। किन्तु, हमें अपने पूर्वजों से जो सभ्यता और संस्कृति विरासत में मिली है, उस पर हमें आज भी गर्व है। हम आज भी धर्म, ईश्वर और निष्काम कर्म को महत्त्व देते हैं। हम आज भी धन की अपेक्षा चरित्र को, भौतिकता की अपेक्षा आध्यात्मिकता को, और विज्ञान की अपेक्षा दर्शन को श्रेष्ठतर समझते हैं। आज जब कि सम्पूर्ण विश्व—धन, शक्ति, हिंसा और कूटनीति में आस्था रखता है, हम प्रेम, सत्य, अहिंसा, त्याग और तपस्या के समक्ष श्रद्धा से नतमस्तक हो जाते हैं।

उपर्युक्त सभी बातों का अभिप्राय यह है कि हम आज भी उस आदर्शवादिता को नहीं भूले हैं, जिसका प्राचीन शिक्षा द्वारा छात्रों के मन और मस्तिष्क में समावेश किया जाता था। इससे स्वाभाविक निष्कर्ष यही निकलता है कि प्राचीन आदर्शवादिता को आधुनिक शिक्षा में स्थान दिया जा सकता है और दिया जाना चाहिए। डा० महेशचन्द्र सिंघल ने राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित "भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएँ" नामक अपनी पुस्तक में लिखा है :—"हम वैदिककालीन शिक्षा की आदर्शवादिता को आधुनिक शिक्षा के एक मूल सिद्धान्त के रूप में ग्रहण कर सकते हैं और जीवन-निर्माण, चरित्र-निर्माण तथा सादा भोजन और उच्च विचार को शिक्षा के महत्त्वपूर्ण उद्देश्यों में स्थान दे सकते हैं।"

2. अनुशासन व गुरु-शिष्य सम्बन्ध : Discipline & Teacher-Pupil Relationship—प्राचीन काल की छात्रों की अनुशासन की भावना और गुरु एवं

शिष्य का मधुर सम्बन्ध विश्व-विख्यात था। आज इन दोनों बातों पर विशेष ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है, क्योंकि शैक्षिक वातावरण अत्यन्त विषमय हो चुका है और अनुशासनहीनता का ताण्डव नृत्य सर्वत्र हो रहा है। छात्रों में अनुशासन की भावना का विकास और वैदिक कालीन गुरु-शिष्य सम्बन्ध की पुनर्स्थापना करके ही इन दोनों दूषणों से मुक्ति पाने की आशा की जा सकती है।

मानव-सम्बन्धों को घनिष्ठता प्रदान करने के लिए पारस्परिक स्नेह और सम्मान की भावनाओं का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान होता है। छात्र, शिक्षा तभी ग्रहण कर सकते हैं और शिक्षक, अध्ययन कार्य में तभी रुचि ले सकते हैं, जब दोनों सुन्दर सम्बन्ध के सूत्र से आबद्ध हों। यह सत्य है कि आज के छात्र और शिक्षक प्राचीन युग के आदर्श पर नहीं पहुँच सकते हैं, पर फिर भी दृढ़ निश्चय से उसकी ओर अग्रसर होकर बहुत कुछ सफलता प्राप्त की जा सकती है। अतः छात्रों और शिक्षकों का उस आदर्श की दिशा में अग्रसर होना केवल वांछनीय ही नहीं, वरन् अत्यन्त आवश्यक भी है। पर यह तभी सम्भव हो सकता है, जब छात्र—गुरु-शिष्य सम्बन्धी वैदिक आदर्शों के प्रति निष्ठावान् बनें और शिक्षक उस आदर्श के अनुसार सरस्वती-साधना में लीन होकर सरल जीवन व्यतीत करें।

3. शान्त वातावरण Peaceful Atmosphere—प्राचीन काल की सभी शिक्षा-शालायें नगर के कोलाहल और विषाक्त वातावरण से दूर किसी शान्त और रमणीक स्थान में स्थित थीं। आधुनिक युग में नगरीयकरण के प्रभाव के कारण सभी व्यक्तियों में नगरों में निवास करने की प्रवृत्ति सबल हो गई है। ऐसी दशा में आज की शिक्षा-संस्थाओं की नगरों से पृथकता सम्भव नहीं है। पर फिर भी, उनका निर्माण नगरों के कोलाहल और गन्दगी से दूर किसी शान्त, स्वच्छ, स्वास्थ्यकर और प्राकृतिक वातावरण में किया जा सकता है।

इस प्रकार की शिक्षा-संस्थाएँ न केवल छात्रों के शारीरिक और मानसिक विकास में योग देंगी, वरन् उनको नगरों के दिन-प्रति-दिन के झगड़ों, राजनीतिक कुचक्रों और अन्य अवांछनीय प्रवृत्तियों से रक्षा भी करेंगी।

4. अध्ययन के विषय : Subjects of Study—आधुनिक भारतीय शिक्षा में अनेक विषयों को स्थान दिया गया है, पर संस्कृत की प्रायः पूर्ण उपेक्षा की गई है। वस्तुत. संस्कृत भाषा और साहित्य में शान्ति, मानवता और विश्व-भ्रातृत्व की ऐसी अमूल्य निधियाँ हैं, जिनको न केवल भारत के पाठ्यक्रम में, वरन् सब देशों के पाठ्यक्रमों का अभिन्न अंग होना चाहिए। इनके अतिरिक्त, वैदिक पाठ्यक्रम से ऐसे अनेक तत्व ग्रहण किये जा सकते हैं, जो आधुनिक भारत के नैतिक, राष्ट्रीय और सांस्कृतिक उत्कर्ष में अद्वितीय योग दे सकते हैं। डा० महेशचन्द्र सिंघल का मत है :—"यदि इन बातों की उपेक्षा की जाती है, तो भारतीय शिक्षा पश्चिम का थोथा अनुकरण मात्र रह जायेगी, जिसमें मौलिकता की झलक नहीं मिल सकेगी।"

5. शिक्षण-विधि व शिक्षा-सिद्धान्त : Teaching Method & Principles

of Education—प्राचीन भारत की शिक्षण-विधि में श्रवण, मनन, चिन्तन, स्मरण, प्रश्नोत्तर, व्याख्यान, वाद-विवाद आदि का प्रयोग किया जाता था। अतः यह शिक्षण-विधि आज भी विभिन्न विषयों के पठन-पाठन में प्रयोग किये जाने योग्य है और उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

प्राचीन शिक्षा के अनेक सिद्धान्त आज भी उतने ही उपयोगी और महत्त्वपूर्ण हैं, जितने कि वे प्राचीन काल में थे। इस प्रकार के कुछ सिद्धान्त हैं—छोटी कक्षाएँ, सरल दिनचर्या, व्यक्तिगत ध्यान और अच्छी आदतों का निर्माण।

6. छात्रों का सरल जीवन : Simple Life of Students—वैदिक-कालीन भारत के छात्र सादा, सरल और संयमी जीवन व्यतीत करते थे। आधुनिक भारत में उनका जीवन भले ही अक्षरशः अनुकरणीय न हो, पर ग्रहणीय अवश्य है। आज के छात्रों के जीवन में आमूल परिवर्तन हो गया है। उनके जीवन का मुख्य लक्ष्य, शिक्षा प्राप्त करना नहीं है, अपितु सिनेमा देखना, हड़तालें करना, अश्लील साहित्य पढ़ना, नशीली वस्तुओं का प्रयोग करना और ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करना हो गया है।

ऐसी परिस्थिति में प्राचीन काल के छात्रों के उदाहरण को आज के छात्रों के समक्ष रखकर, उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन किया जाना अनिवार्य है। डा० महेशचन्द्र सिंघल के शब्दों में :—"सिद्धान्त रूप में हमें इतना तो मानना ही चाहिए कि आज भले ही सिर मुँडने, लगोटी बांधने तथा स्त्री-जाति के सदस्यों के दर्शन मात्र से बचकर रहने की तो आवश्यकता नहीं है, लेकिन सादा और संयमी जीवन, नियमित दिनचर्या तथा कुव्यसनों से बचकर रहना वांछनीय है।"

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Discuss the main defects of education prevalent in India in the Vedic Age. How far have these defects been removed from the modern education of India.
   भारत में वैदिक काल में प्रचलित शिक्षा के मुख्य दोषों की विवेचना कीजिए। भारत की आधुनिक शिक्षा में इन दोषों का निवारण कहाँ तक हुआ है ?
2. What were the chief characteristics of education in ancient India ? To what extent can they be utilized in evolving an effective national system of education in the country today ?
   प्राचीन भारत में शिक्षा की प्रमुख विशेषताएँ क्या थीं ? वर्तमान भारत में एक प्रभावशाली राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली विकसित करने के लिए किस सीमा तक इनका प्रयोग किया जा सकता है ?

3. What were the chief aims of education in ancient India? How far can they prove useful for modern education in our country?
प्राचीन भारत मे शिक्षा के मुख्य उद्देश्य क्या थे? वे हमारे देश की वर्तमान शिक्षा के लिए कहाँ तक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं?
4. Mention at least five important ideals of ancient Indian education and discuss their utility for Indian education today.
प्राचीन भारतीय शिक्षा के कम-से-कम पाँच महत्त्वपूर्ण आदर्शों का उल्लेख कीजिए और आधुनिक भारतीय शिक्षा के लिए उनकी उपयोगिता बताइए।
5. Write notes on —(a) Gurukula System, (b) Teacher-Pupil Relationship, (c) Organization of Education in the Vedic Age.
टिप्पणियाँ लिखिए :—(अ) गुरुकुल-पद्धति, (ब) गुरु-शिष्य सम्बन्ध, (स) वैदिक-कालीन शिक्षा-व्यवस्था।

2

बौद्ध-शिक्षा

BUDDHIST EDUCATION

(500 B.C.–1200 A.D.)

"Buddhist education rightly regarded is but a phase of the ancient Hindu or Brahmanical system of education."
—Dr. R. K. Mookerji.

विषय-प्रवेश

लगभग ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी से जन-जीवन की परिवर्तित आवश्यकताओं की पूर्ति न कर सकने के कारण वैदिक कालीन अथवा ब्राह्मणीय शिक्षा में विशृंखलता के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे थे। भारत के सौभाग्य से उसके एक शताब्दी पूर्व ही महात्मा गौतम बुद्ध ने इस देश की भूमि पर अवतरित होकर शिक्षा को समयानुकूल बनाने के विचार से उसके कलेवर में परिवर्तन करके बौद्ध-शिक्षा को जन्म दिया। इस शिक्षा के विषय में डा० एफ० ई० कई ने लिखा है :—"बौद्ध-शिक्षा 1,500 वर्ष से अधिक प्रचलित रही और उसने ऐसी शिक्षा-पद्धति का विकास किया, जो ब्राह्मणीय शिक्षा-पद्धति की प्रतिद्वन्द्वी थी, पर अनेक बातों में उसके सदृश थी।"

"For over fifteen hundred years Buddhist education was in vogue, and developed a system of education which was a rival of the Brahmanic system, though in many ways similar to it."—Dr. F. E. Keay : *Indian Education in Ancient and Later Time*, p. 85.

शिक्षा की व्यवस्था

Organization of Education

बौद्ध धर्म का विकास मठों में हुआ था। ये मठ न केवल धर्म के, वरन् शिक्षा के भी केन्द्र थे और शिक्षा देने का कार्य उनमें निवास करने वाले भिक्षुओं द्वारा

किया जाता था। इन तथ्यों पर प्रकाश डालते हुए डा० आर० के० मुकर्जी ने लिखा है :—"बौद्ध-मठ, बौद्ध-शिक्षा और ज्ञान के केन्द्र थे। बौद्ध-संसार अपने मठों से पृथक् या स्वतन्त्र रूप में शिक्षा प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं देता था। धार्मिक और लौकिक, सब प्रकार की शिक्षा भिक्षुओं के हाथ में थी।"

"Buddhist education and learning centred round monasteries. The Buddhist world did not offer any educational opportunities apart from or independently of its monasteries. All education, sacred as well as secular, was in the hands of the monks."—Dr. R. K. Mookerji : *Ancient Indian Education*, p. 394.

प्राचीन काल के समान बौद्ध काल में भी केवल प्राथमिक एवं उच्च शिक्षा की व्यवस्था थी और शिक्षा के यही दो स्तर थे। हम इनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं।

1. प्राथमिक शिक्षा : Primary Education

1 सामान्य परिचय—हमें "जातक कथाओं" से ज्ञात होता है कि प्राथमिक शिक्षा केवल बौद्ध धर्मावलम्बियों को ही नहीं, वरन् सब जातियों के बालकों को उपलब्ध थी। यह शिक्षा मठों में दी जाती थी और आरम्भ में पूर्णतया धार्मिक थी। किन्तु, जब कुछ समय के उपरान्त ब्राह्मणों ने प्रतिद्वन्द्वी शिक्षा-संस्थाएँ स्थापित करके, उनमें लौकिक शिक्षा देनी आरम्भ कर दी, तब मठों में भी इस शिक्षा की व्यवस्था कर दी गई। पाँचवीं शताब्दी में भारत आने वाले चीनी यात्री फाह्यान (Fa-Hien) के लेखों में इस बात का उल्लेख मिलता है।

2 प्रवेश व अवधि—सातवीं शताब्दी में भारत आने वाले चीनी यात्री, आइसिंग (I-Tsing) के अनुसार, प्राथमिक शिक्षा आरम्भ करने की आयु 6 वर्ष की थी। इस शिक्षा की अवधि साधारणतः 6 वर्ष की थी।

3 पाठ्यक्रम—सातवीं शताब्दी में भारत आने वाले चीनी यात्री ह्वेनसांग (Hiuen-Tsang) ने प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम का वर्णन इस प्रकार किया है :—बालकों को प्रथम 6 माह में 'सिद्धिरस्तु' (Siddhirastu) नामक बालपोथी पढ़नी पड़ती थी। इस पोथी में 12 अध्याय और वर्णमाला के 49 अक्षर थे, जिनको विभिन्न क्रम में रखकर 300 से अधिक श्लोकों की रचना की गई थी। 6 माह के बाद बालकों को अग्रांकित पाँच विद्याओं की शिक्षा दी जाती थी :—शब्द-विद्या, हेतु-विद्या, चिकित्सा-विद्या, आध्यात्म-विद्या और शिल्प-स्थान-विद्या (Grammar, Logic, Medicine, Metaphysics & Arts and Crafts)। इस प्रकार, पाठ्यक्रम में धार्मिक और लौकिक—दोनों विषयों को स्थान दिया गया था।

4. शिक्षण-विधि—एलबर्ट फिट्के (Albert Fytche) के अनुसार, सामान्य शिक्षण-विधि इस प्रकार थी :—शिक्षक, लकड़ी की तख्ती पर वर्णमाला के अक्षरों

को लिखता था और उसका उच्चारण करता था। बालक उसके उच्चारण का अनुकरण करते थे। इस प्रकार, जब कुछ समय के बाद उनको अक्षरों का ज्ञान हो जाता था, तब वे उनको लिखते थे। पाठ्य-विषय के शिक्षण में अध्यापक आगे-आगे बोलता था और बालक उसके कथन को उस समय तक दोहराते थे, जब तक उनको पाठ्य-विषय कंठस्थ नहीं हो जाता था। इस प्रकार, शिक्षण-विधि पूर्णतया मौखिक थी।

5. शिक्षा का माध्यम—मठ-विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम, जनसाधारण की भाषा—पाली थी, न कि ब्राह्मणीय शिक्षालयों की संस्कृत।

2. उच्च शिक्षा : Higher Education

1. सामान्य परिचय—उच्च शिक्षा के द्वार सभी धर्मों और जातियों के बालकों के लिए खुले हुए थे। इस शिक्षा के प्रमुख केन्द्र—बौद्ध-मठ थे, पर सब मठों में समान विषयों की शिक्षा नहीं दी जाती थी। इस शिक्षा की प्रशंसा में डा० ए० एस० अल्तेकर ने अग्रांकित शब्द लिपिबद्ध किए हैं:—"मठों ने उच्च शिक्षा में अपनी दक्षता से कोरिया, चीन, तिब्बत और जावा ऐसे सुदूर देशों के छात्रों को आकर्षित करके, भारत की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति में वृद्धि की।"

"The monasteries raised the international status of India by the efficiency of their higher education, which attracted students from distant countries like Korea, China, Tibet and Java."—Dr. A. S. Altekar : *Education in Ancient India*, p. 234.

2. प्रवेश व अवधि—उच्च शिक्षा का आरम्भ प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् होता था। अतः बालक इसका आरम्भ साधारणतया 12 वर्ष की आयु में करते थे। अध्ययन की अवधि 12 वर्ष की थी, ताकि छात्र प्राचीन परम्परा के अनुसार 25 वर्ष की आयु में किसी व्यवसाय को ग्रहण करके, गृहस्थ के रूप में अपना जीवन व्यतीत कर सकें।

3 पाठ्यक्रम—पाठ्यक्रम दो भागों में विभक्त था—धार्मिक और लौकिक। धार्मिक पाठ्यक्रम—भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए था। इसका मुख्य उद्देश्य—उनको निर्वाण प्राप्त करने और धर्म का प्रचार करने की योग्यता प्रदान करना था। उनको धार्मिक और जीवनोपयोगी—दोनों प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। मुख्य धार्मिक विषय थे—बौद्ध धर्म, साहित्य, त्रिपिटक, विनय, धम्म आदि। जीवनोपयोगी विषयों में मठों और विहारों के निर्माण का व्यावहारिक ज्ञान, मठ की सम्पत्ति का प्रबन्ध और हिसाब-किताब आदि सम्मिलित थे।

लौकिक पाठ्यक्रम साधारण नागरिकों के लिए था। इसका मुख्य उद्देश्य—उनको सुयोग्य नागरिक बनाना एवं आर्थिक और सामाजिक जीवन के लिए तैयार करना था। उसके पाठ्यक्रम में अग्रांकित विषय सम्मिलित थे—धर्म, दर्शन, साहित्य, अर्थशास्त्र, न्यायशास्त्र, चिकित्सा-शास्त्र आदि।

4. **शिक्षा का माध्यम**—शिक्षा का माध्यम सामान्य रूप से पाली भाषा थी, पर वैदिक साहित्य की शिक्षा, संस्कृत के माध्यम से दी जाती थी। इसके अतिरिक्त देश की अन्य प्रचलित भाषाओं का भी प्रयोग किया जाता था। इसका कारण महात्मा बुद्ध की भिक्षुओं को यह अनुमति थी :—"ओ भिक्षुओ ! मैं तुममें से प्रत्येक को अपनी भाषा में बुद्ध की शिक्षाओं को सीखने की अनुमति देता हूँ।"

5. **शिक्षा के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय**—बौद्ध-काल में शिक्षा के मुख्य केन्द्र—मठ और विहार थे। इनमें छात्रावास सम्बद्ध थे। छात्रों को निःशुल्क शिक्षा, भोजन, वस्त्र, चिकित्सा आदि की सुविधा प्राप्त थी। कुछ मठों और विहारों ने विश्वविद्यालयों के रूप में विकसित होकर पर्याप्त ख्याति अर्जित की; यथा :—

(i) **नदिया विश्वविद्यालय**—यह विश्वविद्यालय पूर्वी बंगाल में नदिया नामक स्थान में था। 11वीं शताब्दी में राजा लक्ष्मण सेन के संरक्षण में यह शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र हो गया।

(ii) **वल्लभी विश्वविद्यालय**—यह विश्वविद्यालय पूर्वी काठियावाड़ में वला नामक स्थान में था। यह 7वीं शताब्दी से 12वीं शताब्दी तक पश्चिमी भारत का प्रमुख शिक्षा-केन्द्र था।

(iii) **विक्रमशिला विश्वविद्यालय**—यह विश्वविद्यालय उत्तरी मगध में गंगा नदी के तट पर एक अत्यन्त सुन्दर पहाड़ी पर स्थित था। इसमें 108 भिक्षु-शिक्षक और 3,000 छात्र थे। इसे बख्तियार खिलजी ने सन् 1203 ई० में नष्ट कर दिया।

(iv) **तक्षशिला विश्वविद्यालय**—यह विश्वविद्यालय आधुनिक रावलपिंडी से लगभग 20 मील पश्चिम में था। यह अनेक शताब्दियों तक पहले वैदिक शिक्षा का और उसके बाद बौद्ध शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र था। यह 600 ई० पू० में अपनी प्रसिद्धि की पराकाष्ठा पर था। वैयाकरण पाणिनी, राजनीतिज्ञ चाणक्य, अर्थशास्त्री कौटिल्य, महात्मा बुद्ध के व्यक्तिगत चिकित्सक जीवक एवं सम्राट चन्द्रगुप्त और पुष्यमित्र इसी विश्वविद्यालय की उपज थे। पाँचवीं शताब्दी के मध्य में बर्बर हूणों ने इसका सदैव के लिए विनाश कर दिया।

(v) **नालन्द विश्वविद्यालय**—यह विश्वविद्यालय पटना से लगभग 50 मील दूर दक्षिण में था। यह लगभग एक मील लम्बा और आधा मील चौड़ा था एवं चहारदीवारी से घिरा हुआ था। इसमें 8 बड़े सभा-भवन और 3,000 अध्ययन-कक्ष थे। इसका विशाल पुस्तकालय 9 मंजिल का था। इसमें 10 से अधिक सरोवर थे, जिनमें छात्र, जल-क्रीड़ा करते थे। जब यह अपनी पराकाष्ठा पर था, तब इसमें लगभग 1,500 शिक्षक एवं 10,000 छात्र थे और प्रतिदिन 100 भाषण होते थे। इसमें चीन, जावा, ब्रह्मा आदि सुदूर देशों के छात्र अध्ययन करने आते थे। इस प्रकार, इसने अंतर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालय का रूप ग्रहण कर लिया था। 1203 में बख्तियार खिलजी ने प्राचीन भारत की सभ्यता के प्रतीक इस विश्वविद्यालय को धराशायी कर दिया।

शिक्षा के अन्य क्षेत्र
Other Spheres of Education

1. स्त्री-शिक्षा : Women's Education—वैदिक काल के अन्तिम चरण में लगभग 200 ई० पू० से स्त्री-शिक्षा की अवनति आरम्भ हो गई थी। महात्मा बुद्ध के कारण इस शिक्षा को नव जीवन प्राप्त हुआ। उन्होंने अपने प्रिय शिष्य, आनन्द की प्रार्थना स्वीकार करके, स्त्रियों को संघ में प्रवेश करने की आज्ञा दे दी। इसके फलस्वरूप, स्त्री-शिक्षा का पर्याप्त विकास हुआ। बौद्ध-काल की सुशिक्षित स्त्रियों में निम्नलिखित के नाम उल्लेखनीय हैं—बौद्ध धर्म की प्रसिद्ध प्रचारिकाएँ, सुभा, अनुपमा और सुमेधा; कवयित्री के रूप में कालिदास के बाद मानी जाने वाली विजयांका, और लंका में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए भेजी जाने वाली सम्राट अशोक की पुत्री, संघमित्रा।

उपरिलिखित उदाहरण इस बात का संकेत देते हैं कि स्त्रियों ने संघ में प्रवेश करके उच्च कोटि की शिक्षा प्राप्त की और कुछ क्षेत्रों में पुरुषों से प्रतिद्वन्द्विता करके उनसे समानता रखने का प्रमाण दिया। किन्तु, यह इस बात का प्रमाण नहीं है कि स्त्री-शिक्षा की सामान्य रूप से प्रगति हुई। इसकी पुष्टि में चार कारण दिए जा सकते हैं। पहला, बौद्ध धर्म में स्त्रियों का स्थान पुरुषों से निम्नतर है। अतः सामान्य स्त्रियों की शिक्षा के प्रति ध्यान नहीं दिया गया। दूसरा, संघों में स्त्रियों का प्रवेश भिक्षुओं की आज्ञा पर निर्भर था। क्योंकि भिक्षुओं को स्त्रियों से दूर रहने का उपदेश दिया जाता था, इसलिए उन्होंने बहुत ही कम स्त्रियों को संघ में प्रवेश करने की आज्ञा दी। तीसरा, संघों में प्रवेश करने का अधिकार विशेष रूप से समाज के कुलीन और व्यावसायिक वर्गों की स्त्रियों एवं बालिकाओं को प्राप्त हुआ। अतः इन्हीं की शिक्षा को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, सामान्य स्त्रियों की शिक्षा को नहीं। चौथा, बौद्ध मठ में प्रवेश करने वाली स्त्रियाँ—भिक्षुणियाँ कहलाती थीं और उनके लिए अलग मठों की स्थापना की गई थी। पर उन्होंने भिक्षुओं के समान अपने मठों में स्त्रियों और बालिकाओं को शिक्षा प्रदान करने का कार्य नहीं किया।

उपर्युक्त कारणों को ध्यान में रखते हुए, हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि बौद्ध धर्म ने कुलीन और व्यावसायिक स्त्रियों की शिक्षा को, जिनकी संख्या प्रायः नगण्य थी, प्रोत्साहन दिया, पर सामान्य स्त्रियों की शिक्षा के लिए कुछ भी नहीं किया। डा० ए० एस० अल्तेकर के अधोलिखित वाक्य में अमर सत्य है :—"स्त्री-शिक्षा को बौद्ध धर्म से किसी प्रकार की प्रेरणा प्राप्त न हो सकी।"

"Female education could not get any impetus from Buddhism."
—**Dr A. S. Altekar** : *op. cit.*, p. 223.

2. व्यावसायिक शिक्षा : *Professional Education*—बौद्ध-शिक्षा, धर्म-प्रधान थी। किन्तु, बौद्ध साहित्य में हमको इस बात के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं कि

भिक्षुओं और जनसाधारण को व्यावसायिक शिक्षा की अत्युत्तम सुविधाएं प्राप्त थी। हम इस शिक्षा के प्रमुख अंगो पर प्रकाश डाल रहे हैं, यथा :—

(i) हस्त-शिल्पों की शिक्षा : Education in Handicrafts—"महावग्ग" (Mahavagga) मे हमे एक स्थान पर इस बात का उल्लेख मिलता है कि बौद्ध-काल में भिक्षुओं को अपने मठो मे विभिन्न प्रकार के हस्तशिल्पों की शिक्षा प्रदान की जाती थी। उदाहरणार्थ, उनको सूत कातने, कपड़ा बुनने और वस्त्र सीने की शिक्षा दी जाती थी, ताकि वे वस्त्र-सम्बन्धी अपनी आवश्यकताओं की स्वय पूर्ति कर सकें।

(ii) लाभप्रद व्यवसायों की शिक्षा : Education in Useful Occupations—बौद्ध धर्म के अनुयायियो और जनसाधारण के लिए अनेक लाभप्रद व्यवसायों की शिक्षा की सुन्दर व्यवस्था थी, ताकि वे अपनी जीविका का सरलता से उपार्जन कर सकें। इस प्रकार के कुछ व्यवसाय थे—कृषि, वाणिज्य, लेखन-कला, पशु-पालन और हिसाब-किताब।

(iii) भवननिर्माण-कला, मूर्तिकला व चित्रकला की शिक्षा : Education in Architecture, Sculpture & Painting—बौद्ध-काल में भवननिर्माण-कला की विशिष्ट शिक्षा उपलब्ध होने के कारण इस कला का आश्चर्यजनक विकास हुआ। उस काल के बौद्ध विहार और स्तूप एवं नालन्द और विक्रमशिला की विशाल इमारतें—भवननिर्माण-कला की सजीव प्रमाण हैं। इस कला के साथ-साथ मूर्तिकला और चित्रकला की भी, शिक्षा की सुविधाओं के कारण, असाधारण प्रगति हुई। अजन्ता और अलोरा के भित्ति-चित्र, मूर्तिकला और चित्रकला इस प्रगति के आज भी साक्षी हैं।

(iv) प्राविधिक व वैज्ञानिक शिक्षा : Technical & Scientific Education—हमें 'मिलिन्द पन्हा' (Milinda Panha) मे बौद्ध-काल मे प्रचलित 19 'सिप्पाओं' अर्थात् 'शिल्पों' (Sippas or Shilps) का वर्णन मिलता है। इनका सम्बन्ध प्राविधिक और वैज्ञानिक शिक्षा से था। इनमे से अग्रांकित 10 की शिक्षा, तक्षशिला मे प्रदान की जाती थी —आखेट, चिकित्सा, धनुर्विद्या, इन्द्र-जाल (Magic Charm), हस्ति-ज्ञान (Elephant Lore), भविष्य कथन, शारीरिक लक्षणों का अर्थ, मृत व्यक्तियों को जीवित करने का मत्र, सब पशुओ की बोलियाँ समझने का ज्ञान, और इन्द्रिय-सम्बन्धी सब कार्यों पर नियत्रण करने की कला।

इस प्रकार, जैसा कि डा० आर० के० मुकर्जी ने लिखा है :—"सिप्पाओं के ज्ञान अर्थात् प्राविधिक और वैज्ञानिक शिक्षा की मांग, सामान्य शिक्षा या धार्मिक अध्ययन की मांग से कम नहीं थी।"

(v) चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा : Medical Education—बौद्ध-काल मे चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा का अभूतपूर्व विकास हुआ। इस शिक्षा का मुख्य केन्द्र—तक्षशिला विश्वविद्यालय था और इसकी अवधि 7 वर्ष की थी। जीवक, चरक, धन्वन्तरि आदि महान् आयुर्वेदाचार्य, बौद्ध युग की ही देन हैं।

शिक्षा की प्रमुख विशेषताएँ
Chief Features or Characteristics of Education

बौद्ध धर्म के आदर्श, उद्देश्य और सिद्धान्त—वैदिक धर्म से बहुत-कुछ भिन्न थे। अतः बौद्ध धर्म के प्रचार और प्रसार के लिए एक विशिष्ट शिक्षा-प्रणाली का सूत्रपात किया गया। हम इस प्रणाली की प्रमुख विशेषताओं का विवरण निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत उपस्थित कर रहे हैं; यथा :—

1. **पब्बज्जा संस्कार : Pabbajja Ceremony**—'पब्बज्जा' का शाब्दिक अर्थ है 'बाहर जाना' (Going Out)। इस संस्कार का अभिप्राय यह था कि बालक अपने परिवार और पूर्व स्थिति का परित्याग करके, संघ में प्रवेश करता था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस संस्कार का सम्बन्ध केवल उन व्यक्तियों से था, जिनके जीवन का उद्देश्य—बौद्ध-भिक्षु बनना था। यह संस्कार 8 वर्ष की आयु से पहले सम्पन्न नहीं हो सकता था।

'विनय पिटक' (Vinaya Pitaka) में 'पब्बज्जा संस्कार' का वर्णन इस प्रकार किया गया है :—"बालक अपने सिर के बाल मुँड़ाता था, पीले वस्त्र धारण करता था, प्रवेश करने वाले मठ के भिक्षुओं के चरणों को अपने मस्तक से स्पर्श करता था और उनके सामने पालथी मार कर भूमि पर बैठ जाता था। तदुपरान्त, मठ का सबसे बड़ा भिक्षु उससे तीन बार यह शपथ लेने को कहता था :—"बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि"।

जब बालक यह शपथ ले लेता था, तब भिक्षु उसको अग्रांकित 10 आदेश देता था :—1. चोरी मत करना, 2. जीव हत्या मत करना, 3. असत्य भाषण मत करना, 4. अशुद्ध आचरण मत करना, 5. वर्जित समय पर आहार मत करना, 6. मादक वस्तुओं का प्रयोग मत करना, 7. शृंगार की वस्तुओं का प्रयोग मत करना, 8. बिना दिए हुए किसी वस्तु को ग्रहण मत करना, 9. सोना, चाँदी और बहुमूल्य वस्तुओं का दान मत लेना, 10. नृत्य, संगीत, तमाशे आदि के पास जाने का प्रयास मत करना।

इन आदेशों के पश्चात् बालक "नवशिष्य", "श्रमण" या "सामनेर" (Novice or Samanera) कहा जाता था और अपने द्वारा चुने जाने वाले भिक्षु से 12 वर्ष तक शिक्षा ग्रहण करता था।

2. **उपसम्पदा संस्कार : Upasampada Ceremony**—नवशिष्य के रूप में 12 वर्ष की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् छात्र के लिए मठ को छोड़ना अनिवार्य था। पर वह "उपसम्पदा संस्कार" सम्पादित करके पूर्ण भिक्षु की स्थिति प्राप्त कर सकता था और वह संघ का स्थायी सदस्य बन सकता था।

"उपसम्पदा संस्कार"—[illegible] के [illegible] में कम से कम 10 भिक्षुओं की उपस्थिति में होता था। इसमें नवशिष्य का आचार्य भी होता था। वह अन्य भिक्षुओं से नव-

शिष्य का परिचय देता था। तत्पश्चात्, भिक्षु—नवशिष्य से अनेक प्रकार के प्रश्न पूछते थे। उसके उत्तरों को सुनने के बाद वे बहुमत से यह निर्णय करते थे कि नव-शिष्य को "उपसम्पदा" ग्रहण करने का अधिकार है या नहीं। इस प्रकार का निर्णय यह सिद्ध करता है कि "उपसम्पदा संस्कार" में जनतन्त्रीय प्रणाली का प्रयोग किया जाता था।

यदि निर्णय—नवशिष्य के पक्ष में होता था, तो उसे भिक्षु के रूप में संघ में प्रवेश करने की अनुमति दे दी जाती थी। उस अवसर पर उसे संघ के अग्रांकित 8 नियमों का पालन करने का आदेश दिया जाता था :—1. वृक्ष के नीचे वास करना। 2. साधारण वस्त्र धारण करना। 3. सात्विक भोजन का प्रयोग करना। 4. भोजन के लिए भिक्षा मांगना। 5. औषधि के रूप में गौ-मूत्र का सेवन करना। 6. चोरी और जीव-हत्या मत करना। 7. अलौकिक शक्तियों का दावा मत करना। 8. स्त्री से यौन-सम्बन्ध स्थापित मत करना।

टिप्पणी —बालकों और पुरुषों के समान बालिकाओं और स्त्रियों को भी "पब्बज्जा" और "उपसम्पदा" का अधिकार प्राप्त था।

3. **विद्यार्थित्व : Studentship**—बौद्ध-शिक्षा के द्वार सभी धर्मों, वर्गों और जातियों के व्यक्तियों के लिए खुले हुए थे। केवल चाण्डालों को इस शिक्षा से वंचित रखा गया था। छात्रों में राजाओं, व्यापारियों, दर्जियों और मछली पकड़ने वालों के पुत्र थे। इनमें अधिकांश संख्या—ब्राह्मण और क्षत्रिय जातियों के छात्रों की थी।

4. **विद्यार्थियों का चुनाव Selection of Students**—सिद्धान्त रूप में, शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार समाज के सभी व्यक्तियों को प्राप्त था। किन्तु, अग्रांकित 10 वर्गों के किसी व्यक्ति का विद्यार्थित्व के लिए चुनाव नहीं किया जाता था :— 1. जो नपुंसक हो। 2. जो दास या ऋणी हो। 3. जो राजा की नौकरी में हो। 4. जो डाकू घोषित किया गया हो। 5. जो कारावास से भाग आया हो। 6. जिसका कोई अंग भंग हो। 7. जिसके शरीर का कोई भाग विकृत हो। 8. जिसको राज्य से कोई दंड मिला हो। 9. जिसने अपने माता-पिता की आज्ञा प्राप्त न की हो। 10. जिसको क्षय, कोढ़, खुजली आदि कोई छूत का रोग हो।

5. **शिक्षा आरम्भ करने की आयु Age at the Commencement of Education**—डा० ए० एस० अल्तेकर के अनुसार—शिक्षा आरम्भ करने की न्यूनतम आयु 8 वर्ष की थी। यह आयु उन्हीं बालकों के लिए निर्धारित की गई थी, जो संघ में प्रवेश करने का निश्चय कर लेते थे। संघ में प्रवेश करने वाला बालक उसके किसी भिक्षु को अपने शिक्षक के रूप में चुनता था।

6. **अध्ययन की अवधि Period of Study**—"पब्बज्जा" की अध्ययन की अवधि 12 वर्ष की और "उपसम्पदा" की 10 वर्ष की थी। "पब्बज्जा संस्कार" 8 वर्ष की आयु में होता था। इस प्रकार, शिक्षा की पूर्ण अवधि 30 वर्ष की थी।

शिक्षा की प्रमुख विशेषताएँ

Chief Features or Characteristics of Education

बौद्ध धर्म के आदर्श, उद्देश्य और सिद्धान्त—वैदिक धर्म से बहुत-कुछ भिन्न थे। अतः बौद्ध धर्म के प्रचार और प्रसार के लिए एक विशिष्ट शिक्षा-प्रणाली का संगठन किया गया। हम इस प्रणाली की प्रमुख विशेषताओं का विवरण निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत उपस्थित कर रहे हैं, यथा :—

1. पब्बज्जा संस्कार : Pabbajja Ceremony—'पब्बज्जा' का शाब्दिक अर्थ है 'बाहर जाना' (Going Out)। इस संस्कार का अभिप्राय यह था कि बालक अपने परिवार और पूर्व स्थिति का परित्याग करके, संघ में प्रवेश करता था। इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस संस्कार का सम्बन्ध केवल उन व्यक्तियों से था, जिनके जीवन का उद्देश्य—बौद्ध-भिक्षु बनना था। यह संस्कार 8 वर्ष की आयु से पहले सम्पन्न नहीं हो सकता था।

'विनय पिटक' (Vinaya Pitaka) में 'पब्बज्जा संस्कार' का वर्णन इस प्रकार किया गया है :—"बालक अपने सिर के बाल मुँड़ाता था, पीले वस्त्र धारण करता था, प्रवेश करने वाले मठ के भिक्षुओं के चरणों को अपने मस्तक से स्पर्श करता था और उनके सामने पालथी मार कर भूमि पर बैठ जाता था। तदुपरान्त, मठ का सबसे प्रधान भिक्षु उससे तीन बार यह शपथ लेने को कहता था :—"बुद्धं शरणं गच्छामि, धम्मं शरणं गच्छामि, संघं शरणं गच्छामि"।

जब बालक यह शपथ ले लेता था, तब भिक्षु उसको अग्रांकित 10 आदेश देता था :—1. चोरी मत करना, 2. जीव हत्या मत करना, 3. असत्य भाषण मत करना, 4. अशुद्ध आचरण मत करना, 5. वर्जित समय पर आहार मत करना, 6. मादक वस्तुओं का प्रयोग मत करना, 7. शृंगार की वस्तुओं का प्रयोग मत करना, 8. बिना दिए हुए किसी वस्तु को ग्रहण मत करना, 9. सोना, चाँदी और बहुमूल्य वस्तुओं का दान मत लेना, 10. नृत्य, संगीत, तमाशे आदि के पास जाने का प्रयास मत करना।

इन आदेशों के पश्चात् बालक "नवशिष्य", "श्रमण" या "सामनेर" (Novice or Samanera) कहा जाता था और अपने द्वारा चुने जाने वाले भिक्षु से 12 वर्ष तक शिक्षा प्राप्त करता था।

2. उपसम्पदा संस्कार : Upasampada Ceremony—नवशिष्य के रूप में 12 वर्ष की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् छात्र के लिए मठ को छोड़ना अनिवार्य था। तब वह "उपसम्पदा संस्कार" सम्पादित करके पूर्ण भिक्षु की स्थिति प्राप्त कर जाता था और भिक्षुसंघ का स्थायी सदस्य बन सकता था।

"उपसम्पदा संस्कार"—भिक्षु-संघ के कम से कम 10 भिक्षुओं की उपस्थिति में किया जाता था। इसमें नवशिष्य का आचार्य भी होता था। वह अन्य भिक्षुओं को नव-

(iv) भिक्षाटन—छात्रों को प्रातःकाल भिक्षाटन के लिए जाना पड़ता था। वे वैदिक युग के ब्रह्मचारियों के समान बोलकर नहीं, वरन् मौन रूप में ही भिक्षा की याचना कर सकते थे। वे उतनी ही भिक्षा माँग सकते थे, जितनी उनके लिए आवश्यक थी।

(v) अनुशासन—छात्र-अनुशासन पर अत्यधिक बल दिया जाता था। छात्रों को फूल-पत्तियाँ तोड़ने, सम्पत्ति रखने, सार्वजनिक स्थानों में तमाशे देखने, हानिप्रद खेलों में भाग लेने, शरीर को अलंकृत करने, गाली-गलौज और झगड़ा करने का पूर्ण निषेध था। जो छात्र निषिद्ध कार्यों को करते थे, उनको दण्ड दिया जाता था। डा० आर० के मुकर्जी ने लिखा है कि एक बार एक संघ के सब सदस्यों को अनुशासनहीनता के अपराध के कारण संघ से निकाल दिया गया।

(11) गुरु-शिष्य सम्बन्ध : Teacher-Pupil Relationship—बौद्ध काल में गुरु-शिष्य का सम्बन्ध वैदिक काल की ही भाँति पवित्र और स्नेहपूर्ण था। इस सम्बन्ध का मुख्य आधार उनके पारस्परिक कर्त्तव्य थे।

छात्र अपने शिक्षक से पहले उठकर उसके लिए दाँतौन और मुँह धोने के लिए जल लाकर रख देता था। वह अपने शिक्षक के बैठने के स्थान को साफ़ करता था। जब शिक्षक आता था, तब वह उसे कोई पेय पदार्थ देता था। वह शिक्षक के बर्तनों को साफ करता था और उसके साथ भिक्षाटन के लिए जाता था। वह शिक्षक से पहले लौटकर, उसके भोजन की व्यवस्था करता था। यदि शिक्षक बीमार हो जाता था, तो वह उसकी सेवा में उपस्थित रहता था।

केवल छात्र के ही शिक्षक के प्रति कर्त्तव्य नहीं थे, वरन् शिक्षक के भी छात्र के प्रति थे। शिक्षक का सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य यह था कि वह प्रत्येक सम्भव विधि का प्रयोग करके, छात्र का मानसिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक विकास करे। इसके अतिरिक्त, वह छात्र के भोजन, वस्त्र, भिक्षा-पात्र, रहन-सहन आदि की व्यवस्था करता था। छात्र के अस्वस्थ हो जाने पर, वह उसकी सेवा करता था और उसके लिए औषधि का प्रबन्ध करता था।

इस प्रकार, छात्र और शिक्षक में एक-दूसरे के प्रति प्रेम, आदर और विश्वास की भावनाएँ निहित थीं। डा० ए० एस० अल्तेकर के शब्दों में :—"छात्र और उसके शिक्षक के सम्बन्ध पुत्र और पिता के समान थे। वे पारस्परिक सम्मान, विश्वास और प्रेम के द्वारा एक-दूसरे से आबद्ध थे।"

"The relations between the novice and his teacher were filial in character; they were united together by mutual reverence, confidence, and affection."—Dr. A S Altekar : *op. cit.*, pp. 61-62.

(12) खेल-कूद व शारीरिक व्यायाम : Games, Sports & Physical Exercise—बौद्ध काल में केवल छात्रों के मानसिक और नैतिक विकास को ही

7. अध्ययन के विषय : Subjects of Study—अध्ययन के विषयों में डा० ए० एस० अल्तेकर ने लिखा है :—यद्यपि मठों में प्रदान की जाने वाली शिक्षा बौद्धों द्वारा आयोजित और संगठित की गई थी, तथापि अध्ययन के विषयों का स्वरूप न तो पूर्णतया धार्मिक था और न पूर्णतया लौकिक। शिक्षा में बौद्ध दर्शन की प्रधानता अवश्य थी, पर हिन्दू और जैन धर्मों के अध्ययन के प्रति भी समुचित ध्यान दिया जाता था। शिक्षा केवल धर्म, दर्शन और तर्कशास्त्र तक ही सीमित नहीं थी, वरन् संस्कृत साहित्य, ज्योतिष-शास्त्र, चिकित्सा-शास्त्र आदि विषयों की भी शिक्षा दी जाती थी, ताकि छात्र—नागरिकों के रूप में राज्य और समाज के लिए उपयोगी बनकर उनकी सेवा कर सकें।

8. शिक्षा की पद्धति : Method of Education—बौद्धों ने ब्राह्मणों की वैयक्तिक शिक्षा-पद्धति का अनुकरण न करके, सामूहिक शिक्षा-पद्धति का प्रयोग किया। शिक्षा-केन्द्रों में विभिन्न भिक्षुओं द्वारा छात्रों को सामूहिक रूप में विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी।

9. शिक्षण की विधि : Method of Teaching—शिक्षण-विधि प्रायः मौखिक थी। इसके सामान्य अंग थे—भाषण, प्रवचन और प्रश्नोत्तर। शिक्षण-विधि की एक विशेषता यह थी कि उसमें देशाटन, प्रकृति-निरीक्षण और विशेषज्ञों के व्याख्यानों को महत्त्व दिया जाता था। एक अनोखी विशेषता को गन्नार मिरडल ने इन शब्दों में अंकित किया है :—"शास्त्रीय विवादों को प्रोत्साहित किया जाता था। इस प्रकार की विद्वत्-सभाएँ—बौद्ध उच्च शिक्षा की एक अनोखी विशेषता थी।"

"Scholastic debates were encouraged. Such learned assemblies were a novel feature of Buddhist higher education."—Gunnar Myrdal : *Asian Drama*, Volume III, p. 1629.

10. छात्र-जीवन सम्बन्धी नियम : Rules Governing Student Life—छात्रों के जीवन के सम्बन्ध में अनेक नियम थे, जिनका उनको अनिवार्य रूप से पालन करना पड़ता था; यथा—

(i) भोजन—छात्रों का भोजन अत्यन्त साधारण था। वे दिन में केवल तीन बार भोजन कर सकते थे। वे और उनके शिक्षक अपने रात्रि-भोजन के लिए प्रायः गृहस्थों द्वारा निमन्त्रित रहते थे।

(ii) वस्त्र—छात्रों को धन और सामान्य जनता से भिन्न प्रकार के वस्त्र धारण करने का आदेश था। वे साधारणतः तीन वस्त्र धारण करते थे, जिनको समग्र रूप में "तिचिवर" (Ticivara) कहा जाता था।

(iii) स्नान—छात्रों को सरोवरों में स्नान करते समय कुछ निश्चित नियमों का पालन करना पड़ता था, जैसे—जल में शोर न करना, एक-दूसरे पर पानी न फेंकना और अपने शरीर को किसी वस्तु या सरोवर में स्नान करने वाले किसी छात्र के शरीर से न रगड़ना।

(iv) भिक्षाटन—छात्रों को प्रातःकाल भिक्षाटन के लिए जाना पड़ता था। वे वैदिक युग के ब्रह्मचारियों के समान बोलकर नहीं, वरन् मौन रूप में ही भिक्षा की याचना कर सकते थे। वे उतनी ही भिक्षा माँग सकते थे, जितनी उनके लिए आवश्यक थी।

(v) अनुशासन—छात्र-अनुशासन पर अत्यधिक बल दिया जाता था। छात्रों को फूल-पत्तियाँ तोड़ने, सम्पत्ति रखने, सार्वजनिक स्थानों में तमाशे देखने, हानिप्रद खेलों में भाग लेने, शरीर को अलंकृत करने, गाली-गलौज और झगड़ा करने का पूर्ण निषेध था। जो छात्र निषिद्ध कार्यों को करते थे, उनको दण्ड दिया जाता था। **डा० आर० के मुकर्जी** ने लिखा है कि एक बार एक संघ के सब सदस्यों को अनुशासनहीनता के अपराध के कारण संघ से निकाल दिया गया।

(11) गुरु-शिष्य सम्बन्ध : Teacher-Pupil Relationship—बौद्ध काल में गुरु-शिष्य का सम्बन्ध वैदिक काल की ही भाँति पवित्र और स्नेहपूर्ण था। इस सम्बन्ध का मुख्य आधार उनके पारस्परिक कर्त्तव्य थे।

छात्र अपने शिक्षक से पहले उठकर उसके लिए दाँतौन और मुँह धोने के लिए जल लाकर रख देता था। वह अपने शिक्षक के बैठने के स्थान को साफ करता था। जब शिक्षक आता था, तब वह उसे कोई पेय पदार्थ देता था। वह शिक्षक के बर्तनों को साफ करता था और उसके साथ भिक्षाटन के लिए जाता था। वह शिक्षक से पहले लौटकर, उसके भोजन की व्यवस्था करता था। यदि शिक्षक बीमार हो जाता था, तो वह उसकी सेवा में उपस्थित रहता था।

केवल छात्र के ही शिक्षक के प्रति कर्त्तव्य नहीं थे, वरन् शिक्षक के भी छात्र के प्रति थे। शिक्षक का सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य यह था कि वह प्रत्येक सम्भव विधि का प्रयोग करके, छात्र का मानसिक, चारित्रिक और आध्यात्मिक विकास करे। इसके अतिरिक्त, वह छात्र के भोजन, वस्त्र, भिक्षा-पात्र, रहन-सहन आदि की व्यवस्था करता था। छात्र के अस्वस्थ हो जाने पर, वह उसकी सेवा करता था और उसके लिए औषधि का प्रबन्ध करता था।

इस प्रकार, छात्र और शिक्षक में एक-दूसरे के प्रति प्रेम, आदर और विश्वास की भावनाएँ निहित थी। **डा० ए० एस० अल्तेकर** के शब्दों में :—**"छात्र और उसके शिक्षक के सम्बन्ध पुत्र और पिता के समान थे। वे पारस्परिक सम्मान, विश्वास और प्रेम के द्वारा एक-दूसरे से आबद्ध थे।"**

"The relations between the novice and his teacher were filial in character, they were united together by mutual reverence, confidence, and affection."—**Dr. A. S Altekar** : *op. cit.*, pp. 61-62.

(12) खेल-कूद व शारीरिक व्यायाम : Games, Sports & Physical Exercise—बौद्ध काल में केवल छात्रों के मानसिक और नैतिक विकास को ही

…ही, परन्तु उनके शारीरिक विकास को भी महत्त्व दिया जाता था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, अनेक प्रकार के खेल-कूद और शारीरिक व्यायाम निर्धारित थे। "चुल्लवग्ग" (Chullavagga) में हमें इनकी एक विस्तृत सूची मिलती है; यथा :—कूद कर पकड़ना, कुश्ती लड़ना, मुट्ठी बाँधना, तीर चलाना, कुल्ही चलाना, रथों का दौड़ लगना, इत्यादि। आई सिंग (I-Tsing) ने नियमित रूप से टहलने जाने का उल्लेख किया है।

(13) सामान्य विद्यालय : Ordinary Schools—भारत में सामान्य विद्यालयों को सर्वप्रथम स्थापित करने का श्रेय बौद्ध धर्म को प्राप्त है। इसका कारण यह है कि बौद्ध मठ, धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त सामान्य शिक्षा के भी केन्द्र थे। बालक घर पर अपने माता-पिता के साथ रह कर इस शिक्षा को प्राप्त कर सकते थे। इस प्रकार, ये मठ बहुत कुछ सामान्य विद्यालयों की भाँति थे। इस सन्दर्भ में मजूमदार ने लिखा है :—"मठ-विद्यालय अधिकतर सामान्य विद्यालयों की भाँति कार्य करने लगे, क्योंकि बालक अपने परिवारों के साथ रह कर शिक्षा ग्रहण कर सकते थे।"

(14) लोकभाषाओं को प्रोत्साहन : Impetus to Vernaculars—महात्मा बुद्ध के आदेशानुसार, भिक्षुओं को उनकी स्वयं की भाषाओं में शिक्षा दी जाती थी। इसका परिणाम बताते हुए, डा० आर० के० मुकर्जी ने लिखा है :—"बौद्ध धर्म ने देश की लोकभाषाओं को प्रोत्साहन प्रदान किया और बौद्ध शिक्षा-संस्थाओं में संस्कृत के स्थान लोकभाषाओं ने शिक्षा के माध्यम का स्थान ग्रहण किया।"

(15) सार्वजनिक प्रारम्भिक शिक्षा : Popular Elementary Education—बौद्ध शिक्षा आरम्भ में धार्मिक थी और उन्हीं व्यक्तियों तक सीमित थी, जो बौद्ध धर्म को अंगीकार करके, भिक्षु बनते थे। किन्तु, जैसा कि डा० ए० एस० अल्तेकर का विचार है, बौद्ध धर्म को लोकप्रिय बनाने के लिए बौद्धों ने मठों में सार्वजनिक प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान करने का कार्य लगभग पहली शताब्दी के आरम्भ से शुरू कर दिया। इस विचार के समर्थन में डा० एफ० ई० के ने लिखा है :—"बौद्ध मठों ने पर्याप्त सार्वजनिक प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान की।"

"The Buddhist monasteries came to supply a good deal of popular elementary education."—Dr. F. E. Keay : *op. cit.*, p. 106.

(16) शिक्षा का जनतन्त्रीय आधार : Democratic Basis of Education—बौद्धों ने शिक्षा को जनतन्त्रीय आधार प्रदान करके, ब्राह्मणों के अतिरि… सभी व्यक्तियों के बालकों और बालिकाओं को शिक्षा के समान अवसर प्रदान कि… करके इस प्रकार कार्य की व्याख्या करते हुए, डा० आर० के० मुकर्जी ने लिखा है :—"बौद्ध शिक्षा-केन्द्रों में विभिन्न वर्गों, विभिन्न जातियों और विभिन्न परिस्थिति… के सब बालक बिना किसी भेदभाव के पारस्परिक सम्पर्क स्थापित करते थे और … का आनन्द लेते थे।"

(17) शिक्षा-संस्थाओं का जनतंत्रीय संगठन : Democratic Organization of Educational Institutions—बौद्ध शिक्षा-केन्द्रों का संगठन जनतंत्रीय आधार पर किया गया था। डा० महेश चन्द्र सिंघल ने इसके स्वरूप का वर्णन अग्रांकित वाक्यों में किया है :—"शिक्षा-केन्द्रों का संचालन जनतन्त्र के सिद्धान्तों पर होता था। एक विद्वान् भिक्षु—शिक्षा-केन्द्र का प्रधान संचालक नियुक्त किया जाता था। प्रधान की अधीनता में विभिन्न विषयों के महोपाध्याय होते थे। इन शिक्षा-केन्द्रों को तत्कालीन राजाओं तथा धनिकों से सहायता मिलती थी, किन्तु उनके प्रबंध में किसी प्रकार का बाह्य हस्तक्षेप नहीं था।"

(18) संगठित शिक्षा-संस्थाओं का उदय : Rise of Organized Educational Institutions—वैदिक काल में संगठित शिक्षा-संस्थाओं का अभाव था, क्योंकि शिक्षा प्रदान करने का कार्य व्यक्तिगत शिक्षकों द्वारा किया जाता था। इसके विपरीत, बौद्ध काल में शिक्षा प्रदान करने का कार्य संगठित शिक्षा-संस्थाओं द्वारा किया जाना आरम्भ हुआ। डा० ए० एस० अल्तेकर का मत है कि ऐसा होना स्वाभाविक था, क्योंकि बौद्ध मठ जिन्होंने इस कार्य का भार सम्हाला, वे पहले से ही एक धार्मिक सम्प्रदाय के रूप में संगठित थे। अपने इस मत के आधार पर डा० अल्तेकर ने लिखा है :—"यह कहना उचित है कि संगठित सार्वजनिक शिक्षा-संस्थाओं का उदय, बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण हुआ।"

"The rise of organised public educational institutions may be justly attributed to the influence of Buddhism."—Dr. A. S. Altekar : *op. cit.*, p 231.

शिक्षा के प्रमुख दोष
Chief Defects of Education

डा० एफ० ई० केई के अनुसार —"बौद्ध शिक्षा के आदर्शों और प्रयोग का ब्राह्मणीय शिक्षा के आदर्शों और प्रयोग से घनिष्ठ सम्बन्ध था।"

"The Buddhist educational ideals and practice were closely connected with those of Brahmanism."—Dr. F. E. Keay : *op. cit.*, p. 109.

डा० केई के उक्त कथन को ध्यान में रखते हुए हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार ब्राह्मणीय शिक्षा में कतिपय दोष थे, उसी प्रकार बौद्ध शिक्षा में भी थे। हम इन दोषों का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत कर रहे हैं; यथा :—

(1) बौद्ध धर्म का पतन : Decline of Buddhism—शिक्षा के केन्द्रों के रूप में मठों और विहारों का जनतंत्रीय आधार पर संगठन किया गया था। पर उनके संगठन में कुछ समय के उपरान्त शिथिलता आ गई। फलस्वरूप, पृथक् मठों में रहते हुए भी भिक्षुओं और भिक्षुणियों का सम्पर्क आरम्भ हो गया। इस सम्पर्क

(6) कट्टर धार्मिक विचारों का समावेश : Infusion of Puritanical Ideas—बौद्ध-शिक्षा पर धर्म की इतनी गहरी छाप थी कि इस शिक्षा को प्राप्त करने वाले व्यक्ति-धर्म की सीमा से बाहर किसी बात की कल्पना नहीं कर सकते थे। इस प्रकार, बौद्धों ने अपनी शिक्षा द्वारा जनसाधारण के मस्तिष्क में धार्मिक कट्टरता का समावेश कर दिया। डा० ए० एस० अल्तेकर ने ठीक ही लिखा है :—"जन-साधारण के मस्तिष्क में शनैः-शनैः कट्टर धार्मिक विचारों का समावेश करने के लिए बौद्ध लोग उत्तरदायी हैं।"

"Buddhists are to be attributed to the hold of the progressively puritanical notions over the popular mind."—Dr. A. S. Altekar : *op. cit*, p. 247.

आधुनिक भारतीय शिक्षा को देन
Contribution to Modern Indian Education

आधुनिक भारतीय शिक्षा को बौद्ध-शिक्षा का योगदान अत्यन्त व्यापक और अभिनन्दनीय है। शिक्षा के क्षेत्र में ऐसे अनेक कार्य आयोजित किए गए हैं, जो बौद्ध-शिक्षा के अभिन्न अंग थे, यथा :—

1. सामान्य विद्यालयों का आयोजन।
2. सार्वजनिक प्राथमिक शिक्षा का आयोजन।
3. स्त्रियों के लिए उच्च शिक्षा का आयोजन।
4. खेल-कूद और शारीरिक व्यायाम का आयोजन।
5. प्राविधिक और वैज्ञानिक शिक्षा का आयोजन।
6. व्यावसायिक और लाभप्रद विषयों की शिक्षा का आयोजन।
7. लौकिक और सामान्य विषयों की शिक्षा प्रदान करने का आयोजन।
8. बहु-शिक्षक और सामूहिक शिक्षा की प्रणालियों का आयोजन।
9. उच्च स्तर पर सैद्धान्तिक और प्रयोगात्मक शिक्षा का आयोजन।
10. लोकभाषाओं को प्रोत्साहन और उनको शिक्षा का माध्यम बनाने का आयोजन।
11. शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर अध्ययन की निश्चित अवधि का आयोजन।
12. शिक्षा-संस्थाओं में प्रवेश सम्बन्धी न्यूनतम आयु, नियमों और परीक्षा का आयोजन।
13. माता-पिता और अभिभावकों के साथ रहने वाले बालकों के लिए शिक्षा की सुविधाओं का आयोजन।
14. सभी धर्मों, वर्गों और जातियों के बालकों को शिक्षा के समान अवसर प्रदान करने का आयोजन।

बौद्ध व वैदिक शिक्षा : समानता व असमानता

Buddhist & Vedic Education : Similarity & Dissimilarity

समानता : Similarity—डा० ए० एस० अल्तेकर के शब्दों में :—"जहाँ तक सामान्य शैक्षिक सिद्धान्त या प्रयोग का प्रश्न है, हिन्दुओं और बौद्धों में कोई मूल अन्तर नहीं था। दोनों प्रणालियों के समान आदर्श थे और दोनों समान विधियों का अनुसरण करती थीं।"

"There was no fundamental difference between Hindus and Buddhists as far as the general educational theory or practice was concerned. Both systems had similar ideals and followed similar methods."—**Dr. A. S. Altekar** : *op. cit.*, p. 228.

वस्तुतः वैदिक शिक्षा का अनुसरण करके ही बौद्ध-शिक्षा का संगठन किया गया था। अतः दोनों प्रणालियों में समानताएँ होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। कुछ समानताओं का विवरण दृष्टव्य है :—

1. दोनों प्रणालियों में शिक्षा बाह्य नियन्त्रण से मुक्त थी।
2. दोनों प्रणालियों में शिक्षा-ध्येय मूलतः धार्मिक था।
3. दोनों प्रणालियों में छात्रों के लिये नियमों में एकरूपता थी।
4. दोनों प्रणालियों में शारीरिक दण्ड का प्रयोग वर्जित था।
5. दोनों प्रणालियों में धार्मिक और नैतिक जीवन को प्रमुखता दी जाती थी।
6. दोनों प्रणालियों में शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्धों को महत्त्व दिया जाता था।
7. दोनों प्रणालियों में शिक्षा, भोजन और निवास की निःशुल्क व्यवस्था थी।
8. दोनों प्रणालियों में गुरु-शिष्य सम्बन्ध पवित्र, मधुर और आध्यात्मिक थे।
9. दोनों प्रणालियों में छात्रों को भावी जीवन के लिए शिक्षा प्रदान की जाती थी।
10. दोनों प्रणालियों में शिक्षा आरम्भ करने की आयु और अध्ययन की अवधि निश्चित थी।
11. दोनों प्रणालियों में वाद-विवाद, प्रश्न उत्तर और तर्क विधियों पर बल दिया जाता था।
12. दोनों प्रणालियों में शिक्षा [illegible]

असमानता : Dissimilarity—बौद्ध धर्म का उदय, वैदिक धर्म के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में हुआ था। अतः वैदिक धर्म और बौद्ध धर्म की शिक्षा में

कुछ असमानताओं का होना स्वाभाविक था। मुख्य असमानताओं का विवरण दृष्टव्य है :—

1. वैदिक काल में सार्वजनिक शिक्षा की व्यवस्था नहीं थी। इसके विपरीत, बौद्ध काल में इस शिक्षा की व्यवस्था थी।
2. वैदिक काल में शिक्षा का माध्यम, संस्कृत थी। इसके विपरीत, बौद्ध काल में शिक्षा का माध्यम लोकभाषाएँ थीं।
3. वैदिक काल में सामान्य विद्यालयों का प्रचलन नहीं था। इसके विपरीत, बौद्ध काल में इन विद्यालयों का प्रचलन था।
4. वैदिक काल में शिक्षक केवल ब्राह्मण थे। इसके विपरीत, बौद्ध काल में विभिन्न जातियों के भिक्षु, शिक्षक थे।
5 वैदिक काल में शिक्षा का स्वरूप, व्यक्तिगत और पारिवारिक था। इसके विपरीत, बौद्ध काल में शिक्षा का स्वरूप संस्थागत और सामूहिक था।
6 वैदिक काल में शिक्षा-संस्थाएँ, एकतन्त्रवाद के सिद्धान्त पर आधारित थीं। इसके विपरीत, बौद्ध काल में शिक्षा-संस्थाएँ जनतन्त्रवाद के सिद्धान्त पर आधारित थीं।
7. वैदिक काल में शिक्षा के केन्द्र, आश्रम और गुरुकुल थे। इसके विपरीत, बौद्ध काल में शिक्षा के केन्द्र, मठ, विहार और सुसंगठित शिक्षा-संस्थाएँ थीं।
8 वैदिक काल में केवल ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। इसके विपरीत, बौद्ध काल में शिक्षा के द्वार सभी धर्मों, वर्गों और जातियों के लिए खुले हुए थे।
9. वैदिक काल में छात्रों का जीवन सादा और तपोमय था। इसके विपरीत, बौद्ध काल में छात्रों का जीवन सादा पर सुविधापूर्ण था, क्योंकि उनको जीवन-सम्बन्धी सब सुख और सुविधाएँ उपलब्ध थीं।
10. वैदिक काल में गुरु की श्रेष्ठता और प्रधानता थी। इसके विपरीत, बौद्ध काल में गुरु का महत्त्व कम हो गया था, क्योंकि भिक्षु के रूप में मठ में प्रवेश करने के बाद छात्र पूर्ण स्वतंत्रता और जीवन-सम्बन्धी सब अधिकारों का उपभोग करता था।

आधुनिक शिक्षा के लिए ग्रहणीय तत्त्व
Acceptable Features for Modern Education

यद्यपि बौद्ध कालीन शिक्षा का भारत से लोप हो चुका है, तथापि इसके कुछ तत्त्व आधुनिक भारतीय शिक्षा के लिए ग्रहणीय हैं; यथा :—

(1) छात्रों का जीवन : Student's Life—बौद्ध काल में छात्रों के जीवन के दो मुख्य आदर्श थे—सादगी और श्रेष्ठ विचार। इन आदर्शों के बावजूद उनके लिए तपस्यापूर्ण जीवन के बजाय सुख-सुविधापूर्ण जीवन को अच्छा माना जाता था। इसीलिए, उनको भोजन, वस्त्र, निवास, चिकित्सा आदि की सुविधाएँ प्रदान की गई थीं।

आधुनिक भारत में इस मध्य मार्ग का अनुसरण सर्वथा उचित प्रतीत होता है। छात्रों को आधुनिक आविष्कारों से प्राप्त होने वाली सुख-सुविधाओं से वंचित न करके, सादगी और श्रेष्ठ विचारों के आदर्शों को प्राप्त करने के लिए अनुप्राणित किया जा सकता है।

(2) छात्रों के अधिकार : Student's Rights—बौद्ध काल में जब छात्र को भिक्षु के रूप में मठ में प्रवेश करने की आज्ञा मिल जाती थी, तब उसे पूर्ण स्वतंत्रता और जीवन-सम्बन्धी सभी अधिकार प्राप्त हो जाते थे।

आधुनिक भारतीय शिक्षा में इस तत्व का अत्यन्त महत्त्व है। छात्रों को अपनी शिक्षा-संस्थाओं से सम्बन्धित सभी कार्यों में भाग लेने की स्वतंत्रता और अधिकार होना चाहिए। आधुनिक शिक्षा में इस तत्व को समाविष्ट करके अनेक समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। डा० महेश चन्द्र सिंघल के शब्दों में :—"आज भारतीय विश्वविद्यालयों के समस्त उपकुलपतियों ने इस तथ्य को स्वीकार किया है कि शिक्षा के विभिन्न पक्षों में, जिनमें प्रशासन भी शामिल है, किसी सीमा तक छात्रों को सम्मिलित किया जाय और उन्हें अधिकार प्रदान किए जायें।"

(3) अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा का केन्द्र : Centre of International Education—बौद्ध काल में भारत अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा का केन्द्र था। सुदूर देशों से आने वाले छात्र, अध्ययन समाप्त करके अपने देशों को लौटते थे और वहाँ दया, प्रेम, हिंसा, बौद्ध धर्म, विश्व-बंधुत्व और भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का संदेश फैलाते थे।

हमारा देश आज भी प्रेम, शान्ति और अहिंसा के सिद्धान्तों का उपासक माना जाता है। अतः भारत को एक बार फिर अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा का केन्द्र बनाकर, इन सिद्धान्तों का विश्व में व्यापक प्रचार किया जा सकता है। डा० महेश चन्द्र सिंघल के अनुसार :—"शान्ति, अहिंसा, प्रेम और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का सिद्धान्त विश्व में फैलाने का कार्य भारतीय शिक्षा और विश्वविद्यालयों के द्वारा आज भी किया जा सकता है।"

(4) शिक्षा-संस्थाओं का जनतंत्रीय संगठन : Democratic Organization of Educational Institutions—बौद्ध काल में शिक्षा-संस्थाएँ बाह्य नियंत्रण से मुक्त थीं और उनका संगठन जनतंत्रीय आधार पर किया गया था। आज हमारे देश में ऐसी सहस्रों शिक्षा-संस्थाएँ हैं, जो न तो बाह्य नियंत्रण से मुक्त हैं और न

जिनका संगठन ही जनतन्त्रीय है। इन संस्थाओं का स्वरूप बौद्ध काल की शिक्षा-संस्थाओं के अनुरूप बनाया जाना वाञ्छनीय है।

इस स्वरूप को अंकित करते हुए, डा० आर० के० मुकर्जी ने लिखा है :—"बौद्ध-प्रणाली में शिक्षा, विहार या मठ में दी जाती थी, जिसमें सामूहिक जीवन, भ्रातृत्व-भावना और जनतन्त्र के लिए अवसर प्रदान होता था।"

"In the Buddhist system, education was imparted in the Vihara or monastery, giving scope to a collective life, spirit of brotherhood and democracy."—Dr. R. K. Mookerji : *op. cit.*, p. 396.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Describe the main characteristics of Buddhist education and trace out the chief contribution of Buddhist system of education to modern education.
   बौद्ध शिक्षा की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए और आधुनिक शिक्षा को बौद्ध शिक्षा-प्रणाली की मुख्य देनों का उल्लेख कीजिए।
2. "Buddhist education shows several radical departures from Brahmanic." Discuss and point out the similarities between the two systems of education.
   "बौद्ध शिक्षा अनेक महत्त्वपूर्ण बातों में ब्राह्मणीय शिक्षा से भिन्न है।" विवेचन कीजिए और शिक्षा की दोनों प्रणालियों में समानताएँ बताइए।
3. Write short notes on :—(a) Organization of Education, (b) Popular Elementary Education, (c) Features acceptable for modern Indian education.
   टिप्पणियाँ लिखिए :—(अ) शिक्षा का संगठन, (ब) सार्वजनिक प्राथमिक शिक्षा, (स) आधुनिक शिक्षा के लिए ग्रहणीय तत्व।



मुस्लिम-शिक्षा
MUSLIM EDUCATION
(1200–1700)

"There cannot be said to have been any systematic and consistent educational policy among the Muslim kings before the Mughals."—T. N. Siqueira.

विषय-प्रवेश

भारत की अतुलित सम्पत्ति से आकृष्ट होकर, मुसलमानों ने इस देश पर आठवीं शताब्दी में अपने आक्रमण आरम्भ कर दिए थे। किन्तु, उनके आक्रमणों का असली तूफ़ान महमूद ग़ज़नी के समय में आरम्भ हुआ, जिसने सन् 1,000 ई० से 1026 ई० तक भारत पर लगभग 17 आक्रमण किए। उसके आक्रमणों का मुख्य ध्येय—इस देश की सम्पत्ति को लूट कर ग़ज़नी को वैभवशाली बनाना था, न कि यहाँ मुस्लिम शासन की स्थापना करना। अतः वह प्रत्येक आक्रमण के बाद लूट का माल लेकर स्वदेश को लौट जाता था।

महमूद ग़ज़नी के बहुत समय पश्चात्, सन् 1192 ई० में मुहम्मद ग़ोरी ने दिल्ली के अन्तिम राजपूत राजा, पृथ्वीराज चौहान को पराजित करके, भारत में मुस्लिम शासन का शिलान्यास किया। उसकी मृत्यु के उपरान्त, भारत पर क्रमशः ग़ुलाम, ख़िलजी, तुग़लक़, सैयद, लोदी और मुग़ल वंश ने सन् 1757 ई० तक शासन किया। उस वर्ष क्लाइव ने प्लासी के युद्ध में विजयी होकर, भारत में अंग्रेज़ी शासन का इतिहास आरम्भ किया।

इस प्रकार, लगभग 550 वर्ष तक भारत पर मुसलमानों का आधिपत्य रहा। उन्होंने यहाँ एक नवीन शिक्षा-प्रणाली का सूत्रपात किया, जिसे "मध्यकालीन

मुस्लिम-शिक्षा-प्रणाली" कहा जा सकता है। इस प्रणाली के विषय में अपना मत व्यक्त करते हुए, डा० एफ० ई० केई ने लिखा है :—"मुस्लिम शिक्षा एक विदेशी प्रणाली थी, जिसका भारत में प्रतिरोपण किया गया, और जो ब्राह्मणीय शिक्षा से अति अल्प सम्बन्ध रखकर, अपनी नवीन भूमि में विकसित हुई।"

"Mohammedan education was a foreign system which was transplated to India, and grew up in its new soil with very little connection with the Brahmanic education."—**Dr. F. F. Keay :** *Indian Education in Ancient & Later Times*, p. 182.

शिक्षा के उद्देश्य व आदर्श
Aims & Ideals of Education

मुसलमानों ने भारत पर अनेक शताब्दियों तक शासन किया, पर इस सम्पूर्ण अवधि में उनकी स्थिति अपनी और अपने राज्य की सुरक्षा के लिए सशस्त्र सैनिकों की-सी थी। ऐसी स्थिति में उनका ध्यान, शिक्षा पर पूर्ण रूप से केन्द्रित न होना, कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। फिर, जिन मुस्लिम शासकों का भारत पर आधिपत्य रहा, उनमें से कुछ उदार एवं सहिष्णु और कुछ अनुदार एवं असहिष्णु थे। उदाहरणार्थ, बख्तियार, अलाउद्दीन, फिरोज तुगलक और औरंगजेब इतने कट्टर और अनुदार थे कि उनका एकमात्र ध्येय—हिन्दुओं की शिक्षा और संस्कृति के केन्द्रों का विनाश करके, मुस्लिम शिक्षा और संस्कृति का प्रसार करना था। उनके विपरीत, अल्तमश, मुहम्मद तुगलक, अकबर और शाहजहाँ के समान कुछ ऐसे मुस्लिम शासक भी थे, जिन्होंने शिक्षा के प्रति अगाध रुचि प्रकट की और उसे अपना संरक्षण प्रदान करके, उसके विस्तार में प्रशंसनीय योग दिया।

शिक्षा के प्रति मुस्लिम शासकों के इन विरोधी दृष्टिकोणों के कारण सम्पूर्ण मुस्लिम युग में शिक्षा के उद्देश्यों और आदर्शों में समरूपता नहीं मिलती है। परन्तु फिर भी, इस्लाम धर्म के सच्चे बन्दे होने के कारण सभी मुसलमान शासकों ने शिक्षा के कुछ ऐसे उद्देश्य और आदर्श निर्धारित किए, जिनमें निश्चित एकरूपता थी। हम इन उद्देश्यों और आदर्शों का संक्षिप्त विवरण लेखबद्ध कर रहे हैं; यथा :—

1. ज्ञान का प्रसार : Spread of Learning—मुस्लिम-शिक्षा का पहला उद्देश्य—इस्लाम धर्म के अनुयायियों में ज्ञान का प्रसार करना था। मुहम्मद साहब ने ज्ञान को अमृत बताया था और कहा था कि ज्ञान ही निजात अर्थात् मुक्ति का साधन है। ज्ञान के प्रकाश से आलोकित होकर ही व्यक्ति—धर्म और अधर्म, कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य में अन्तर कर सकता है। अतः अपने अनुयायियों को मुहम्मद साहब का उपदेश था :—"दान में धन देने की अपेक्षा अपने बच्चों को शिक्षा देना कहीं अधिक अच्छा है। छात्रों के क़लम की स्याही शहीदों के [illegible] पवित्र है।"

मुहम्मद साहब के इस उपदेश को कार्य रूप में परिणत करना, मुस्लिम शासकों ने अपना सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य माना। अतः उन्होंने मुसलमानों के मस्तिष्क को ज्ञान के आलोक से प्रकाशित करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया।

2. इस्लाम का प्रसार : Spread of Islam—मुस्लिम-शिक्षा का दूसरा उद्देश्य—इस्लाम का प्रसार करना था। मुसलमान अपने धर्म का विस्तार करना अपना पवित्र कर्त्तव्य मानते हैं। उनका विश्वास है कि काफ़िरों से इस्लाम धर्म को अंगीकार करवाने वाला मुसलमान, गाज़ी होता है। इस विश्वास से प्रेरित होकर, मुसलमान शासकों ने विभिन्न विधियों का प्रयोग करके, भारत के कोने-कोने में इस्लाम धर्म को फैलाने का प्रयत्न किया।

इन विधियों में से एक विधि थी—शिक्षा के द्वारा व्यक्तियों को इस्लाम के सिद्धान्तों से अवगत कराना। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए देश के विभिन्न स्थानों में मकतबों और मदरसों की स्थापना की गई, जिनमें धार्मिक शिक्षा का स्थान सर्वोपरि था। मकतबों में क़ुरान की आयतों को कण्ठस्थ करना अनिवार्य था। मदरसों में दर्शन, साहित्य और इतिहास की शिक्षा, धार्मिक सिद्धान्तों के आधार पर दी जाती थी। अतः जैसा कि डा० यूसुफ़ हुसैन ने लिखा है :—"मुस्लिम शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति—धर्म की पृष्ठभूमि में बोलते और विचार करते थे।"

3. मुस्लिम संस्कृति का प्रसार : Spread of Muslim Culture—मुस्लिम-शिक्षा का तीसरा उद्देश्य—मुस्लिम संस्कृति का प्रसार करना था। मुसलमान, भारत में दूसरे देशों से आए थे। अतः उनकी और हिन्दुओं की संस्कृति में प्रत्येक दृष्टि से विषमता थी। इस विषमता का अन्त करने के लिए मुसलमानों ने शिक्षा को माध्यम बनाया। उनकी धारणा थी कि वे शिक्षा के द्वारा भारतवासियों को अपनी भाषा, प्रथाओं, आचार-विचार और सामाजिक नियमों से प्रभावित करके, अपने धर्म का अवलम्बी बना लेंगे।

4. धार्मिकता का समावेश : Infusion of Religiousness—मुस्लिम-शिक्षा का चौथा उद्देश्य—मुसलमानों में धार्मिकता का समावेश करना था। मजूमदार, रायचौधरी व दत्त के शब्दों में :—"भारत में मुस्लिम राज्य, धर्म-राज्य था, जिसका अस्तित्व सिद्धान्त रूप में धर्म की आवश्यकताओं के कारण उचित था।"

"The Muslim State in India was a theocracy, the existence of which was theoretically justified by the needs of religion."—Majumdar, Raychaudhuri & Datta : *An Advanced History of India*, p. 391.

धर्म की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए मुसलमानों में धार्मिकता की भावना को समाविष्ट करना अनिवार्य था। यही कारण था कि मकतबों और मदरसों को साधारणतया मसजिदों से सम्बद्ध किया गया, जहाँ प्रतिदिन सामूहिक नमाज़ एक

सामान्य बात थी। मकतबों और मदरसों में शिक्षा-ग्रहण करने वाले छात्रों में इस धार्मिक वातावरण द्वारा धार्मिकता का समावेश किया जाता था। साथ ही, उनको अपने जीवन में धर्म के महत्त्व और गौरव से परिचित कराया जाता था।

5. विशिष्ट नैतिकता का समावेश : Infusion of Distinct Morality—मुस्लिम-शिक्षा का पाँचवाँ उद्देश्य—व्यक्तियों में इस्लाम के सिद्धान्तों के अनुसार विशिष्ट नैतिकता का समावेश करना था। इस उद्देश्य की प्राप्ति में शिक्षा से पर्याप्त सहायता मिली। मुस्लिम शिक्षा-संस्थाओं के द्वार मुसलमानों और हिन्दुओं—दोनों के लिए समान रूप से खुले हुए थे। अतः शिक्षा के द्वारा उनमें मुस्लिम नैतिकता के उन आदर्शों का समावेश किया जाता था, जो हिन्दुओं के आदर्शों से पूर्णतया भिन्न थे। अनेक हिन्दुओं ने मुस्लिम शिक्षा-संस्थाओं में ज्ञान का अर्जन करके, मुस्लिम संस्कृति और जीवन-विधि में अपना विश्वास प्रकट किया।

6. चरित्र का निर्माण : Formation of Character—मुस्लिम-शिक्षा का छठवाँ उद्देश्य—व्यक्ति के चरित्र का निर्माण करना था। मुहम्मद साहब ने चरित्र के निर्माण पर अतिशय बल दिया था। उनका कहना था कि इस्लाम के सिन्द्धातों के अनुसार उत्तम चरित्र का निर्माण करके ही व्यक्ति—जीवन में सफलता हस्तगत कर सकता है। अतः मकतबों और मदरसों में छात्रों में अच्छी आदतों और उत्तम चरित्र का निर्माण करने के लिए शिक्षकों द्वारा निरन्तर प्रयास किया जाता था।

7. सांसारिक ऐश्वर्य की प्राप्ति : Achievement of Worldly Prosperity—मुस्लिम-शिक्षा का सातवाँ उद्देश्य—व्यक्तियों को सांसारिक ऐश्वर्य प्राप्त करने के योग्य बनाना था। इस्लाम धर्म में कर्मों के अनुसार व्यक्ति के पुनर्जन्म का कोई स्थान नहीं है। अतः यह धर्म पारलौकिक जीवन की चर्चा न करके, केवल इहलौकिक जीवन का ही उल्लेख करता है। इसलिए मुसलमानों का विश्वास है कि उनका जीवन केवल सांसारिक ही है और इसमें सभी प्रकार के सुखों एवं ऐश्वर्यों का उपभोग करना चाहिए।

मुसलमानों की इस आकांक्षा को पूर्ण करने के लिये मुस्लिम शासकों ने राज्य के निम्नतम पदों से लेकर उच्चतम पदों पर केवल सुशिक्षित व्यक्तियों को ही नियुक्त किया। इसकी पुष्टि करते हुए जाफ़र ने लिखा है —"ज्ञान का अत्यधिक सम्मान किया जाता था और विद्वान् मनुष्यों के लिए सम्पूर्ण देश में प्रेम और सम्मान था। राज्य ने भी उनको प्रत्येक सम्भव विधि से प्रोत्साहित किया। न्यायाधीशों, कानून वेत्ताओं और धर्माधिकारियों का इसी वर्ग के मनुष्यों में से चुनाव किया जाता था।" अतः यह स्वाभाविक था कि इन पदों को प्राप्त करने के लिए न केवल मुसलमान, वरन हिन्दू भी मुस्लिम शिक्षा ग्रहण करने के लिए उत्कंठित हो गए।

8. मुस्लिम श्रेष्ठता की स्थापना : Establishment of Muslim Supremacy—मुस्लिम-शिक्षा का आठवाँ और अन्तिम उद्देश्य—हिन्दुओं को मुस्लिम

सभ्यता और संस्कृति से प्रभावित करके, भारत में मुस्लिम श्रेष्ठता को सुदृढ़ आधार पर स्थापित करना था। मुस्लिम शासक इस तथ्य से भलीभाँति अवगत थे। शिक्षा ही वह साधन था, जिसके द्वारा हिन्दुओं के विचारों और दृष्टिकोणों में आमूल परिवर्तन करके, उनको भारत में मुस्लिम शासन का दृढ़ स्तम्भ बनाया जा सकता था। अतः शिक्षा के द्वारा हिन्दुओं के मस्तिष्क में मुस्लिम आदर्शों और सिद्धान्तों को समाविष्ट करने का पूरा-पूरा उद्योग किया गया। अकबर ने अपनी शिक्षा-नीति का निर्माण मुख्यतः इसी लक्ष्य तक पहुँचने के लिए किया था।

मुगल सम्राटों से पूर्व मुस्लिम शासकों की शिक्षा की कोई निश्चित नीति नहीं थी। वे अपनी व्यक्तिगत रुचियों और आवश्यकताओं के अनुसार शिक्षा के उद्देश्यों में समय-समय पर थोड़ा-बहुत परिवर्तन करते रहे, पर अधिकांश मुस्लिम युग में शिक्षा के उद्देश्य उपरिअंकित ही थे।

शिक्षा की व्यवस्था
Organization of Education

सामान्य परिचय—भारत के मुस्लिम शासकों ने केन्द्रीय या प्रान्तीय स्तर पर शिक्षा के किसी विभाग की स्थापना नहीं की, पर उन्होंने साधारणतः शिक्षा में रुचि अवश्य ली। फलस्वरूप, लगभग सम्पूर्ण मुस्लिम काल में प्राथमिक और उच्च शिक्षा की व्यवस्था थी। उस काल में शिक्षा के केवल यही दो स्तर थे। इन दोनों स्तरों पर शिक्षा प्रदान करने के लिये मुस्लिम शासकों और विद्या-प्रेमी, धनी व्यक्तियों द्वारा मकतबों और मदरसों की स्थापना की गई थी। इन संस्थाओं में शिक्षा का आयोजन मुख्यतः मुसलमानों के लिए ही था। डा० एफ़० ई० केई के शब्दों में :—"कुछ अपवादों के अलावा मुस्लिम-शिक्षा जनता के उन अल्पसंख्यकों के लिये थी, जो मुस्लिम-धर्म को अंगीकार कर लेते थे।"

"Mohammedan education, with a few exceptions, was open to that minority of the population, which embraced the Mohammedan faith."—Dr. F. E. Keay : *op. cit.*, p. 182.

केई के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि मुस्लिम-शिक्षा-संस्थाओं में हिन्दुओं का प्रवेश वर्जित नहीं था। परन्तु, इन संस्थाओं का धार्मिक कट्टरता का वातावरण, हिन्दू छात्रों के लिए इतना विषाक्त था कि वे इनमें प्रदान की जाने वाली शिक्षा से पूर्णरूपेण लाभान्वित नहीं हो पाते थे। इस सामान्य परिचय के पश्चात्, हम उपरिवर्णित शिक्षा के दोनों स्तरों का परिचय उपस्थित कर रहे हैं।

1. प्राथमिक शिक्षा : Primary Education

1. शिक्षा-संस्थाएँ—प्राथमिक शिक्षा के मुख्य केन्द्र—मकतब थे। इनके अतिरिक्त, खानकाहों और दरगाहों (Khanqahas & Dargahas) में भी प्राथमिक शिक्षा प्रदान की जाती थी। इन शिक्षा-संस्थाओं में केवल मुसलमान बच्चे ही शिक्षा

प्राप्त कर सकते थे। कुछ व्यक्तिगत शिक्षक अपने घरों पर प्रायमिक शिक्षा प्रदान करने का कार्य करते थे।

2. प्रवेश—जिस प्रकार वैदिक युग में "उपनयन संस्कार" के पश्चात् और बौद्ध-युग मे "पब्बज्जा संस्कार" के उपरान्त बालक की शिक्षा आरम्भ होती थी, उसी प्रकार मुस्लिम युग में "बिस्मिल्लाह्-खानी" (Bismillah-Khani) की रस्म के बाद बालक अपनी शिक्षा आरम्भ करता था। यह रस्म उस समय होती थी, जब बालक 4 वर्ष, 4 माह और 4 दिन का होता था। इस रस्म के समय बालक के लगभग सभी सम्बन्धी उपस्थित रहते थे और वह नए वस्त्र धारण करके मौलवी साहब के समक्ष उपस्थित होता था। मौलवी साहब कुरान शरीफ़ की आयतें पढ़ते थे और बालक से उनको दोहरवाते थे। यदि बालक उनको दोहराने मे असमर्थ होता था, तो उसके द्वारा केवल "बिस्मिल्लाह" कहा जाना ही पर्याप्त समझा जाता था।

इस प्रकार, बालक की प्रायमिक शिक्षा का श्रीगणेश होता था। डा० एफ़० ई० केई के अनुसार :—"सभी मुसलमान बालकों से प्रायमिक शिक्षा ग्रहण करने की आशा की जाती थी, ताकि वे अपने प्रतिदिन के धार्मिक कार्यों में सम्बन्धित क़ुरान की आयतों को स्मरण कर लें। किन्तु, इस बात को निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि सभी बालक इस शिक्षा को प्राप्त करते थे।"

3 पाठ्यक्रम—मकतबों का पाठ्यक्रम विभिन्न स्थानों मे विभिन्न था। साधारणत बालकों को पढ़ने, लिखने और साधारण अकगणित की शिक्षा दी जाती थी। उनको सबसे पहले वर्णमाला के अक्षरों का ज्ञान कराया जाता था और उसके पश्चात् कुरान की कुछ आयतें कठस्थ कराई जाती थी। बालक के लिए उनका अर्थ समझना आवश्यक नही था, पर उनका शुद्ध उच्चारण करना अनिवार्य था। उसके पश्चात् बालक को लिखना सिखाया जाता था। जब बालक को पढ़ने और लिखने का पर्याप्त ज्ञान हो जाता था, तब उसे व्याकरण और फ़ारसी भाषा की शिक्षा दी जाती थी। व्यावहारिक शिक्षा के अन्तर्गत बातचीत करने के ढग, सुन्दर लेख, पत्र-लेखन और अर्जीनवीसी का प्रमुख स्थान था।

बालक का नैतिक और चारित्रिक विकास करने के लिये उसे शेख़ सादी की प्रसिद्ध पुस्तकें, "बोस्ताँ" एव "गुलिस्ताँ" पढ़ाई जाती थी और पैग़म्बरों की कथाएँ एव मुस्लिम फ़कीरों की कहानियाँ सुनाई जाती थी। इनके अतिरिक्त, उसको "लैला-मजनू", "यूसुफ़-जुलेखा", "सिकन्दरनामा" आदि काव्यों का ज्ञान प्रदान किया जाता था।

यहाँ यह लिख देना अनुपयुक्त न होगा कि शाहज़ादों और सम्पन्न परिवारों के बालकों को उनके निवास-स्थानों पर व्यक्तिगत अध्यापकों द्वारा शिक्षा दी जाती थी और उनका पाठ्यक्रम उनकी आवश्यकताओं के अनुसार विशेष प्रकार का होता था।

4. शिक्षण विधि—मकतबों मे शिक्षण-विधि मौखिक और प्रत्यक्ष थी। बालक को शुद्ध उच्चारण का ज्ञान हो जाने के बाद कलमा और कुरान की कुछ

आयतें कंठस्थ करनी पड़ती थीं। कक्षा के सब बालक उच्च स्वर में एक साथ बोल कर पढ़ाई करते थे। मौलवी साहब नया पाठ तभी पढ़ाते थे, जब बालकों को पिछला पाठ कण्ठस्थ हो जाता था। इस प्रकार, कण्ठस्थ करना, शिक्षण-विधि का मुख्य तत्त्व था।

बालक द्वारा लिखने के लिये लकड़ी की तख्ती का प्रयोग किया जाता था। वह उस पर मोटे सरकण्डे की क़लम से लिखने का अभ्यास करता था। जब उसे लिखने का कुछ अभ्यास हो जाता था, तब वह पतली क़लम से कागज़ पर लिखता था।

2. उच्च शिक्षा : Higher Education

1. शिक्षा-संस्थाएँ—उच्च शिक्षा की संस्थाएँ—मदरसे थे। बालक अपनी प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए मदरसे में प्रवेश करता था। इस प्रवेश के समय कोई संस्कार सम्पन्न नहीं करना पड़ता था। उच्च शिक्षा के केन्द्र सम्पूर्ण देश में बिखरे हुए थे। इनमें आगरा, दिल्ली, लाहौर, मुल्तान, अजमेर, लखनऊ, स्यालकोट और मुर्शिदाबाद के मदरसों ने शिक्षा के क्षेत्र में विशेष ख्याति अर्जित की थी। इसीलिए, बुखारा, अफ़ग़ानिस्तान और अन्य मुस्लिम देशों के छात्र उनमें ज्ञान का अर्जन करने के लिए आते थे।

2. पाठ्यक्रम—उच्च शिक्षा की अवधि 10 से 12 वर्ष की थी। उसका पाठ्यक्रम बहुत विस्तृत था और निम्नलिखित दो भागों में विभाजित था :—

(i) धार्मिक शिक्षा—धार्मिक शिक्षा के अन्तर्गत छात्र को क़ुरान की आयतें कण्ठस्थ करनी पड़ती थीं और उनका सूक्ष्म एवं आलोचनात्मक अध्ययन करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त, उसे सूफ़ी सिद्धान्तों एवं इस्लामी इतिहास, क़ानूनों, सिद्धान्तों और परम्पराओं का अध्ययन करना पड़ता था।

(ii) लौकिक शिक्षा—लौकिक शिक्षा के अन्तर्गत छात्र को अग्रांकित विषयों की शिक्षा दी जाती थी :—अरबी और फ़ारसी भाषाओं का साहित्य एवं व्याकरण, कृषि, गणित, भूगोल, कानून, ज्योतिष, अर्थशास्त्र, नीति-शास्त्र, दर्शन-शास्त्र, यूनानी चिकित्सा आदि।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त सब विषयों की शिक्षा सब मदरसों में नहीं दी जाती थी। इसके विपरीत, प्रत्येक मदरसे में साधारणतः दो विषयों की शिक्षा दी जाती थी; जैसे—दिल्ली के मदरसे में कविता और संगीत की, स्यालकोट के मदरसे में गणित और ज्योतिष की एवं रामपुर के मदरसे में ज्योतिष और अर्थशास्त्र की।

3. शिक्षण विधि—मदरसों में शिक्षण-विधि मौखिक थी और छात्रों को शिक्षा देने के लिए अध्यापक, भाषण-विधि का प्रयोग करते थे। कक्षा-नायकीय पद्धति (Monitorial System) का पर्याप्त प्रचलन था। धर्म, दर्शन, तर्कशास्त्र और

राजनीतिशास्त्र के शिक्षण में तर्क-विधि का मुख्य स्थान था। संगीत, हस्तकला, चित्र-कला और चिकित्साशास्त्र आदि विषयों की शिक्षा में व्यावहारिक कार्य की समुचित व्यवस्था थी। छात्रों को स्वाध्याय के लिए प्रोत्साहित किया जाता था और उनकी कठिनाइयों का अध्यापकों के द्वारा निराकरण किया जाता था।

इस प्रकार, यद्यपि मदरसों में शिक्षण-विधि मुख्यतः मौखिक थी, तथापि पढ़ने और लिखने को उससे श्रेष्ठतर स्थान प्रदान किया जाता था। गन्नार मिरडल के शब्दों में :—"उच्च-शिक्षा की संस्थाओं में पढ़ने और लिखने को मौखिक शिक्षण-विधियों से श्रेष्ठतर स्थान प्रदान किया जाता था।"

"Reading and writing took precedence over oral methods of instruction in institutions of higher education."—Gunnar Myrdal : *Asian Drama*, Vol. III, p. 1631.

4. शिक्षा का माध्यम—मुस्लिम शासन-काल में राज्य की भाषा, फ़ारसी थी। इस भाषा का ज्ञान प्राप्त करके ही मनुष्यों को राजपद प्राप्त हो सकते थे। इस कार्य में सहायता देने के लिए फ़ारसी को शिक्षा के माध्यम के पद पर प्रतिष्ठित किया गया था। गन्नार मिरडल के अनुसार :—"उच्च स्तर पर शिक्षा का माध्यम फ़ारसी भाषा थी।"

5. परीक्षाएँ—आधुनिक युग के समान मुस्लिम युग में छात्रों की परीक्षा की कोई निश्चित प्रणाली नहीं थी। शिक्षक प्रत्येक छात्र के ज्ञान का स्वयं मूल्यांकन करके, उसे उच्च कक्षा में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार दे देता था।

6. उपाधियाँ—सामान्य रूप से, शिक्षा समाप्त करने वाले छात्रों को प्रमाण-पत्र या उपाधियाँ नहीं दी जाती थीं। किन्तु, जो छात्र अपने अध्ययन के विषय में असाधारण योग्यता का प्रमाण देते थे, उनको उपाधियों से विभूषित किया जाता था। उदाहरणार्थ—साहित्य के छात्रों को "काबिल" की, धर्मशास्त्र के छात्रों को "आलिम" की और तर्कशास्त्र एवं दर्शनशास्त्र के छात्रों को "फाज़िल" की उपाधि से अलंकृत किया जाता था। छात्रों को उपाधियाँ प्रदान करने के समय नियमित रूप से समारोह का आयोजन किया जाता था।

शिक्षा-संस्थाओं के प्रकार
Types of Educational Institutions

मुस्लिम युग में अनेक प्रकार की शिक्षा-संस्थाएँ थीं, यथा :—

1. मकतब Maktabs—"मकतब" शब्द की उत्पत्ति, अरबी के "कुतुब" (Kutub) शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है—"उसने लिखा" (He wrote)। उर्दू भाषा में 'कुतुब' शब्द—"किताब" का बहुवचन है। इस प्रकार, "मकतब" वह स्थान है, जहाँ बालकों को पढ़ना और लिखना सिखाया जाता है। मकतब, प्राथमिक

शिक्षा के केन्द्र थे और साधारणत: किसी मसजिद से सम्बद्ध होते थे। कहीं-कहीं मौलवी लोग व्यक्तिगत रूप में अपने घरों पर या अन्य सुविधाजनक स्थानों पर मकतब चलाते थे। मकतबों में मुसलमान बालकों के साथ हिन्दू बालक भी शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। परन्तु, मकतबों की संख्या इतनी कम थी कि सब बालकों की प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता पूर्ण नहीं हो पाती थी।

डा० यूसुफ़ हुसेन के अनुसार :—"मकतब—एक शिक्षक वाली संस्थाएँ थीं। इनमें शिक्षण-कार्य प्रात:काल से मध्याह्न तक और फिर अपराह्न में होता था। छात्रों से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता था। शिक्षकों के भरण-पोषण की व्यवस्था, धनी व्यक्तियों द्वारा की जाती थी। राज्य को मकतबों से विशेष प्रयोजन नहीं था। जिन स्थानों में मदरसे नहीं थे, वहाँ के कुछ मकतबों में उच्च शिक्षा का भी प्रबन्ध था।"

2. ख़ानक़ाह : Khanqahs—"ख़ानक़ाह", प्राथमिक शिक्षा के केन्द्र थे। इनमें केवल मुसलमान बालक ही शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। इनका व्यय—दान में प्राप्त होने वाले धन से चलता था।

3. दरगाहें : Dargahas—"ख़ानक़ाहों" की भाँति "दरगाह" भी प्राथमिक शिक्षा के केन्द्र थे। इनकी स्थिति बहुत-कुछ ख़ानक़ाहों के समान थी। इनमें भी केवल मुसलमान बालक ही शिक्षा प्राप्त कर सकते थे।

4. क़ुरान-स्कूल : Koran Schools—इन स्कूलों में केवल क़ुरान की शिक्षा दी जाती थी। इनका वर्णन करते हुए डी ला फ़ॉस (De La Fosse) ने "Quinqunnial Review of India, 1907-1912" में लिखा है :—"क़ुरान-स्कूल साधारणत: किसी मसजिद से संलग्न होते थे। इनमें छात्रों को पहले अरबी लिपि का ज्ञान कराया जाता था और फिर क़ुरान की आयतें कण्ठस्थ कराई जाती थीं। उनको लिखने की और गणित की शिक्षा नहीं दी जाती थी।"

5. फ़ारसी के स्कूल : Persian Schools—मुस्लिम शासन-काल में फ़ारसी, राजभाषा थी। अत: राजपद प्राप्त करने के इच्छुक हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए फ़ारसी भाषा का ज्ञान होना अनिवार्य था। इस माँग की पूर्ति करने के लिए फ़ारसी के स्कूलों की स्थापना की गई थी। इनमें छात्रों को सादी और हाफ़िज़ के काव्यों एवं मुस्लिम संस्कृति की शिक्षा दी जाती थी। इन स्कूलों में शिक्षा का स्तर काफ़ी ऊँचा था।

6. फ़ारसी व क़ुरान के स्कूल : Persian-Koran Schools—जैसा कि नाम से विदित है, ये स्कूल—फ़ारसी और क़ुरान स्कूलों के मिश्रित रूप थे। दूसरे शब्दों में, इन स्कूलों में फ़ारसी और क़ुरान—दोनों की शिक्षा दी जाती थी।

7. अरबी के स्कूल : Arabic Schools—इन स्कूलों का मुख्य उद्देश्य—अरबी भाषा और साहित्य के विद्वानों का निर्माण करना था। अत: इनमें शिक्षा का स्तर अत्यन्त उच्च होना स्वाभाविक था।

8. मदरसे : Madrasahs—"मदरसा" शब्द की उत्पत्ति, अरबी भाषा के "दरस" (Dars) शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है—"भाषण" (A Lecture)। इस प्रकार, "मदरसा" वह स्थान है, जहाँ शिक्षण के लिए भाषण या व्याख्यान-विधि का प्रयोग किया जाता है। मदरसे, उच्च शिक्षा के केन्द्र थे और सामान्यतया किसी मसजिद से संलग्न होते थे। इनकी स्थापना—राज्य और धनी विद्याप्रेमियों द्वारा की जाती थी। इनमें विभिन्न शिक्षकों द्वारा विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती थी। शिक्षा का माध्यम, फ़ारसी थी।

मदरसे, आवास शिक्षा-केन्द्र थे, पर अपने परिवारों के साथ रहने वाले छात्र भी वहाँ जाकर शिक्षा प्राप्त कर सकते थे। इतिहासकार इलियट (Elliot) ने एक छात्र के विषय में लिखा है, जो दो मील दूर से प्रतिदिन दिल्ली के मदरसे में अध्ययन करने जाया करता था। मदरसों के साथ छात्रावास संलग्न थे, जिनमें छात्रों के दैनिक भोजन की सुन्दर व्यवस्था थी। प्रत्येक छात्र को आर्थिक सहायता के रूप में कुछ धन मिलता था। योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जाती थीं। शिक्षकों के लिए मदरसों में निवास और भोजन का प्रबन्ध था। इस प्रकार, छात्र और शिक्षक निरन्तर घनिष्ठ सम्पर्क में रहते थे।

शिक्षा के अन्य क्षेत्र
Other Spheres of Education

1. स्त्री-शिक्षा : Women's Education—डा० एफ़० ई० केई के शब्दों में :—"पर्दा-प्रथा ने, जिसने छोटी बालिकाओं के अलावा सब मुसलमान स्त्रियों को एकान्त में बन्द रखा, उनकी शिक्षा को महान् कठिनाई का कारण बना दिया।"

"The purdah system, which shut up all Mohammedan women, except young girls, in seclusion, made their education a matter of great difficulty."—Dr F E. Keay : *op cit.*, p. 80.

पर्दा-प्रथा के कारण केवल छोटी आयु की बालिकाएँ मकतबों में जाकर बालकों के साथ विद्या का अर्जन करती थीं, पर उन्हें कुछ ही समय के बाद यह कार्य स्थगित करना पड़ता था। उनको उच्च शिक्षा की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं थीं, क्योंकि राज्य या समाज की ओर से उनके लिए पृथक् शिक्षा-संस्थाओं की कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। फलस्वरूप निम्न और निर्धन वर्गों की बालिकाएँ या तो ज्ञान-प्राप्ति के लाभ से वंचित रह जाती थीं या उनका ज्ञान अत्यन्त अल्प पढ़ने और लिखने तक सीमित रह जाता था।

मध्य वर्ग की बालिकाओं को शिक्षा के अधिक अवसर प्राप्त थे। वे विद्याध्ययन के लिए सामान्य मकतबों में न जाकर, व्यक्तिगत रूप से स्त्रियों द्वारा अपने घरों पर चलाए जाने वाले मकतबों में जाकर विभिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त कर लेती थीं। इस सम्बन्ध में डा० युसुफ़ हुसेन ने लिखा है :—"निजी घरों में बालि-काओं

को धार्मिक शिक्षा प्रदान करने के लिए मकतब थे, जहाँ अधिक आयु की महिलाएँ उनको क़ुरान, गुलिस्तां, बोस्ताँ और सदाचार की पुस्तकें पढ़ाती थीं।"

मालवा के शासक, ग़ियासुद्दीन तुग़लक ने, जिसने 1469 से 1500 तक शासन किया, सारंगपुर में सभी वर्गों की बालिकाओं के लिए, एक मदरसे की स्थापना की। फ़रिश्ता (Ferishta) के अनुसार :—इस मदरसे में बालिकाओं को नृत्य, संगीत, सिलाई, बुनाई, बढ़ईगीरी, सुनारगीरी, लुहारगीरी, जूते बनाने, मखमल बनाने, युद्ध-कला, रणक्षेत्र-कला आदि की शिक्षा दी जाती थी। उनकी शिक्षा का भार उनके अभिभावकों को वहन करना पड़ता था। अतः केवल धन-सम्पन्न व्यक्ति ही अपनी बालिकाओं को इस विद्यालय में अध्ययन के लिए भेज पाते थे।

राजघरानों और कुलीन परिवारों की बालिकाओं और स्त्रियों को उनके निवास-स्थानों पर ही व्यक्तिगत रूप में शिक्षा दी जाती थी। उनको धर्म एवं साहित्य के अतिरिक्त, नृत्य, संगीत एवं अन्य ललित कलाओं की भी शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार शिक्षा प्राप्त करने वाली अनेक मुस्लिम राजकुमारियों के नाम आज भी गर्व से स्मरण किये जाते हैं; जैसे—अलतमश की पुत्री, रजिया सुल्ताना अपनी विद्वता के लिए विख्यात थी। दक्षिण की वीरांगना, चाँद सुल्ताना को तुर्की, अरबी, फ़ारसी और मराठी भाषाओं पर समान अधिकार था। बाबर की पुत्री, गुलबदन बेगम की कृति, "हुमायूँ-नामा" इतिहास की अमूल्य निधि मानी जाती है। हुमायूँ की भतीजी, सलीमा सुल्ताना; जहाँगीर की पत्नी, नूरजहाँ और औरंगज़ेब की पुत्री, ज़ेबुन्निसा बेगम—सभी विदुषी महिलाएँ थीं।

उक्त महिलाओं के अतिरिक्त और भी अनेक सुशिक्षित स्त्रियाँ थीं। किन्तु, इनकी तुलना में उन सामान्य स्त्रियों की संख्या कहीं अधिक थी, जो अशिक्षित थीं। वस्तुस्थिति यह थी कि जबकि राजघरानों और कुलीन परिवारों की स्त्रियों में शिक्षा का प्रचलन था, सामान्य स्त्रियों में शिक्षा का प्रसार नहीं हुआ। अतः वे शिक्षा से रंचमात्र भी लाभान्वित नहीं हुईं। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए, डा० एफ़० ई० केई ने लिखा है :—"मुस्लिम स्त्रियों के विशाल सामान्य समूह को पारिवारिक कर्त्तव्यों को करने के लिए घरेलू प्रशिक्षण के अलावा किसी भी प्रकार की कोई शिक्षा प्राप्त नहीं हुई।"

"The great mass of Mohammedan women received no education at all, except a domestic training in the performance of the duties of the household."—Dr. F. E. Keay : *op., cit.* p. 81.

2. व्यावसायिक शिक्षा : Professional Education—दिल्ली के सुल्तानों और मुग़ल सम्राटों को व्यावसायिक शिक्षा के प्रति किसी-न-किसी रूप में कम या अधिक रुचि अवश्य थी। ऐसी परिस्थिति में व्यावसायिक शिक्षा का विकास होना स्वाभाविक था। हम इसके महत्त्वपूर्ण अंगों पर प्रकाश डाल रहे हैं; यथा :—

(i) सैनिक शिक्षा : Military Education—भारत के सब मुस्लिम शासकों का लक्ष्य अपने राज्य को स्थायी और सुदृढ़ बनाना था। विदेशी और विधर्मी होने के कारण, वे भारतीयों को सदैव शंका की दृष्टि से देखते थे। उन पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने और बनाए रखने के लिए मुस्लिम शासकों को समय-समय पर हिन्दू राजाओं से युद्ध करने पड़ते थे।

ऐसी परिस्थिति में मुस्लिम शासकों द्वारा सैनिक शिक्षा पर बल दिया जाना आवश्यक था। यह शिक्षा साधारण सैनिकों और राजकुमारों के लिए भिन्न प्रकार की थी। सैनिकों को तीर, भाला एवं तलवार चलाने, दुर्ग का घेरा डालने और घोड़े एवं हाथी पर बैठकर युद्ध करने की शिक्षा दी जाती थी। मुगल काल में उनको गोली चलाने का भी प्रशिक्षण दिया जाता था। राजकुमारों को इन सभी बातों के अतिरिक्त, सेना के संचालन, संगठन और नेतृत्व का विशेष प्रशिक्षण दिया जाता था। यहाँ यह बता देना असंगत न होगा कि सैनिक शिक्षा के लिए प्रशिक्षण-संस्थाएँ नहीं थीं। यह शिक्षा, राज्य के अनुभवी सैनिकों द्वारा दी जाती थी।

(ii) चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा : Medical Education—चिकित्सा-शास्त्र की उपयुक्त शिक्षा देने के लिए संस्कृत के ग्रन्थों का फ़ारसी में अनुवाद किया गया, या इन ग्रन्थों के आधार पर फारसी में पुस्तकों की रचना की गई। इस प्रकार की कुछ उल्लेखनीय पुस्तकें थीं :—"मदानुश-शिफाए-सिकन्दरी", "दस्तूर-उल-अतिब्बा" और "तुहफ़त-अल-मोमिन"।

चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा, मदरसों में या विशिष्ट शिक्षा-संस्थाओं में दी जाती थी। आगरा में अकबर द्वारा स्थापित किए गए मदरसे और रामपुर की विशिष्ट शिक्षा-संस्था—चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा के लिए प्रसिद्ध थी।

(iii) हस्तकलाओं की शिक्षा : Education in Handicrafts—अधिकांश मुस्लिम शासक—ऐश्वर्य और विलासिता का जीवन व्यतीत करते थे। अतः इस जीवन की आवश्यकताओं से सम्बन्धित सभी हस्तकलाओं की आश्चर्यजनक उन्नति हुई। इस प्रकार की मुख्य कलाएँ थीं :—कशीदाकारी; जरी, लकड़ी एवं हाथीदाँत का काम, दरी, पर्दे, जूते, रेशम, मलमल एवं आभूषण बनाना, आदि।

इन हस्तकलाओं की शिक्षा—कारखानों में दी जाती थी। मुहम्मद तुगलक और फिरोज तुगलक के शासन-काल में इन कारखानों का उल्लेख मिलता है। अकबर के समय में सब कारखाने—"दिवाने-बुयुतात" नामक सरकारी विभाग की अधीनता में थे। इन कारखानों के विषय में जाफर ने लिखा है :—"भारत में हजारों कारखाने थे, जिनमें लड़कों को बहुधा विशिष्ट कलाओं और दस्तकारियों में शिक्षा प्राप्त करने के लिए किसी व्यवसाय के शिल्पकार का शिष्य बना दिया जाता था।"

"There were thousands of *Karkhanas* or workshops, wherein boys were often apprenticed with the artisan to the trade

ving instructions in particular arts and crafts."—S. M. Jaffar : *Education in Muslim India*, pp. 12-13.

(iv) ललित कलाओं की शिक्षा : Education in Fine Arts—लगभग सभी मुस्लिम शासक, सौन्दर्य के उपासक थे और अपने महलों एवं दरबारों की शोभा में वृद्धि करने के लिए उत्कंठित रहते थे। फलस्वरूप, ललित कलाओं का अभूतपूर्व विकास हुआ। इन कलाओं में अग्रांकित को उच्चतम स्थान प्राप्त था :—संगीत, चित्रकला और नृत्यकला। इन कलाओं का प्रशिक्षण—कारखानों में, वंशानुगत रूप में और व्यक्तिगत रूप में उस्तादों द्वारा दिया जाता था।

शिक्षा की प्रमुख विशेषताएँ
Chief Features or Characteristics of Education

भारत पर मुसलमानों के आक्रमणों और तदुपरान्त इस देश में मुस्लिम-शासन की स्थापना के कारण, यहाँ की प्राचीन शिक्षा-प्रणाली जर्जर होकर अतीत के गर्त में विलीन होने लगी और उसके स्थान पर एक नवीन शिक्षा-प्रणाली का उद्भव हुआ। मुसलमानों की यह नवीन शिक्षा-प्रणाली इस देश में लगभग 600 वर्ष तक प्रचलित रही और मकतबों के रूप में इसके अवशेष आज भी यत्र-तत्र दिखाई देते हैं। इस शिक्षा-प्रणाली में कुछ ऐसी विशेषताएँ थीं, जिन्होंने भयंकर विप्लवों और राजनीतिक संघर्षों के मध्य भी इसको जीवित रखा। हम इन विशेषताओं का निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत वर्णन कर रहे हैं; यथा :—

1. व्यावहारिक शिक्षा : Practical Education—मुस्लिम-शिक्षा केवल शिक्षा के लिए ही नहीं, अपितु व्यावहारिक जीवन के लिए भी थी। परलोक और पुनर्जन्म में विश्वास न करने के कारण मुसलमान—शिक्षा को आध्यात्मिक विकास और मोक्ष-प्राप्ति का साधन नहीं मानते हैं। उनका विश्वास है कि जीवन केवल इसी संसार में है और इसलिए शिक्षा द्वारा व्यक्ति को इस जीवन के लिए तैयार किया जाना चाहिए। अपने इस विचार से प्रेरित होकर, उन्होंने शिक्षा को व्यावहारिक रूप प्रदान किया।

इस दिशा में औरंगजेब के प्रयास प्रशंसनीय हैं। उसने अपने व्यक्तिगत शिक्षक, मुल्ला शाह सलेह की सार्वजनिक रूप में इसलिए निन्दा की, क्योंकि उसने उसको व्यावहारिक शिक्षा नहीं दी थी। औरंगजेब ने राजकुमारों के लिए शाब्दिक और शास्त्रीय शिक्षा की अपेक्षा भूगोल, इतिहास, राजतन्त्र, सैन्य-संचालन और समीपवर्ती राज्यों की भाषाओं की शिक्षा को अधिक उपयोगी बताया। अपनी इसी धारणा के कारण, उसने सामान्य बालकों के पाठ्यक्रमों में भी परिवर्तन करने की आज्ञा दी।

2. निःशुल्क शिक्षा : Free Education—मकतबों और मदरसों में निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था थी। उनमें शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों से किसी भी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता था। इन शिक्षा-संस्थाओं के व्यय का सम्पूर्ण भार

"Teachers occupied a high position in society, and though their emoluments were small, they commanded universal respect and confidence."—S. M. Jaffar : *op. cit.*, p. 4.

6. गुरु-शिष्य सम्बन्ध : **Teacher-Pupil Relationship**—यद्यपि औरंगज़ेब ने भरे दरबार में अपने गुरु, मुल्ला शाह सलेह का अपमान और अनादर किया, तथापि इसका अभिप्राय यह नहीं है कि गुरु-भक्ति के प्राचीन आदर्श का पूर्ण लोप हो गया था। अपने पिता को बन्दी बनाने वाले, अपने भाइयों की हत्या करने वाले, राज-सिंहासन पर अपना अवैध अधिकार स्थापित करने वाले और अपनी शक्ति एवं श्रेष्ठता के मद से उन्मत्त होने वाले औरंगज़ेब का अपने गुरु के प्रति दुर्व्यवहार कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। उसके अभद्र व्यवहार को केवल अपवाद कहा जा सकता है, क्योंकि सामान्य रूप से समाज में शिक्षक का सम्मान होता था और छात्र उसके प्रति विनम्र एवं भक्तिपूर्ण थे। वे गुरु की सेवा करना और उसकी आज्ञाओं को शिरोधार्य करना अपना परम पुनीत कर्त्तव्य समझते थे। उनका विश्वास था कि गुरु की कृपा से ही उनको सच्चा ज्ञान प्राप्त हो सकता है।

शिक्षक भी छात्रों के प्रति स्नेहपूर्ण और पुत्रवत् व्यवहार करता था। जिन मदरसों से छात्रावास संलग्न थे, उनमें शिक्षक और छात्रों का निकट और निरन्तर सम्पर्क रहता था। शिक्षक पग-पग पर उनका पथ-प्रदर्शन करता था, उनके मस्तिष्क को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित करता था और प्रशंसा एवं निन्दा का प्रयोग करके उनमें अच्छी आदतों और अच्छे चरित्र का निर्माण करता था।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि गुरु-शिष्य के आदर्श सम्बन्ध की जो श्रेष्ठ परम्परा वैदिक काल में आरम्भ हुई थी, वह मुस्लिम काल में यथावत् बनी रही। डा० एफ़ ई० केई के शब्दों में :—**"शिक्षक और छात्र का सम्बन्ध वैसा ही था, जैसा कि ब्राह्मणीय शिक्षा में था।"**

"The relation between teacher and pupil was similar to that which existed in the case of Brahmanic education."—**Dr. F. E. Keay** : *op. cit.*, p. 110.

7. शिक्षा का संरक्षण : **Patronage of Education**—यह तथ्य निर्विवाद है कि सम्पूर्ण मुस्लिम-काल में शिक्षा को राज्य का संरक्षण प्राप्त हुआ। साथ ही, यह कथन भी विवादरहित है कि लगभग सभी मुस्लिम शासकों ने मकतबों और मदरसों की स्थापना करके, शिक्षा के प्रति अपने प्रेम और उदारता का परिचय दिया।

उपर्युक्त दोनों धारणाओं की पुष्टि में डा० एफ़० ई० केई का अग्रांकित मत उद्धृत करना असंगत न होगा :—"भारत के मुस्लिम शासकों ने शिक्षा के प्रति सामान्यतः अत्यधिक रुचि प्रदर्शित की और उनमें से अनेक ने अपने राज्य में विभिन्न स्थानों पर मकतबों, मदरसों और पुस्तकालयों का शिलान्यास किया। शासकों के

उदाहरण का उनके अनेक प्रभावशाली प्रजाजनों द्वारा अनुकरण किया गया। विद्वानों, कवियों और अन्य साहित्यिक मनुष्यों को राज्य या अमीरों के संरक्षण के कारण बहुधा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ। छात्रों को बहुधा शिष्यवृत्तियाँ और छात्रवृत्तियाँ दी जाती थीं।"

8. शिक्षा की अनिवार्यता : **Indispensability of Education**—मुसलमानों द्वारा शिक्षा को व्यक्ति के जीवन के लिए तीन मुख्य कारणों से अनिवार्य माना जाता है। पहला, क़ुरान शरीफ में ज्ञान प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य बताया गया है। दूसरा, मुसलमानों द्वारा मुहम्मद साहब के इस कथन में विश्वास किया जाता है :—"जो छात्र, ज्ञान की खोज करता है, उसे ईश्वर स्वर्ग में उच्च स्थान प्रदान करता है।" तीसरा, इस्लाम धर्म में कहा गया है :—"जो मनुष्य, ज्ञान प्राप्त करता है, वह धार्मिक कार्य करता है, जो ज्ञान की बात करता है, वह ईश्वर की प्रशंसा करता है, जो ज्ञान की खोज करता है, वह ईश्वर की उपासना करता है।"

"He, who acquires knowledge, performs an act of piety; who speaks of it, praises the Lord; who seeks it, adores God."—Amir Ali : *Spirit of Islam*, p. 360.

इस प्रकार की धार्मिक पृष्ठभूमि में शिक्षा को व्यक्ति के लिए अनिवार्य समझा गया। यही कारण था कि सभी मुस्लिम शासकों और ज्ञान-प्रेमी व्यक्तियों ने मकतबों और मदरसों की स्थापना करके और उनमें नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था करके, जन-साधारण के लिए शिक्षा को अधिक-से-अधिक सुलभ बनाने का प्रयत्न किया।

9. सांस्कृतिक एकता की अभिवृद्धि : **Promotion of Cultural Unity**—मुस्लिम शासन के आरम्भ में मकतबों और मदरसों में प्रदान की जाने वाली शिक्षा केवल मुसलमानों तक ही सीमित थी और उनमें हिन्दुओं के प्रवेश पर प्रतिबन्ध था। सिकन्दर लोदी के समय से यह प्रतिबन्ध हटा दिया गया था। फलस्वरूप, सभी जातियों के हिन्दू—मकतबों और मदरसों में प्रवेश करके, मुसलमानों के साथ शिक्षा ग्रहण करने लगे थे।

इस प्रकार, मुस्लिम शिक्षा-संस्थाओं ने सभी जातियों के हिन्दुओं और मुसलमानों में पारस्परिक सम्पर्क स्थापित किया, जिसके दो सुन्दर परिणाम दृष्टिगोचर हुए—जातीय बन्धनों की समाप्ति और सांस्कृतिक एकता की अभिवृद्धि। डा० एफ़० ई० केई के अनुसार :—"*मुस्लिम-शिक्षा ने जाति के बन्धनों को तोड़ने में सहायता दी और भारत की सांस्कृतिक एकता की अभिवृद्धि की।*"

"Mohammedan education helped to break down caste barriers and promoted the cultural unity of India."—Dr F. E Keay : *op. cit.*, p. 140.

10. भाषा व विज्ञानों को प्रोत्साहन : **Encouragement to Language & Sciences**—मुस्लिम युग में फारसी भाषा और विज्ञानों को अत्यधिक प्रोत्साहन प्राप्त

हुआ। इसका कारण यह था कि फ़ारसी सभी मुस्लिम शासकों की राजभाषा थी। अतः इस भाषा के विद्वानों की राजपदों के लिए बहुत माँग थी। इसी प्रकार, विज्ञान-वेत्ताओं की भी माँग थी।

उक्त दोनों माँगों को पूर्ण करने के लिए, मुस्लिम युग में फ़ारसी भाषा और विज्ञानों को शिक्षा का प्रधान लक्ष्य निर्धारित किया गया। गन्नार मिरडल का कथन है :—"क्योंकि पदाधिकारियों, प्रशासकों, शिल्पियों और इसी प्रकार के अन्य व्यक्तियों की बहुत माँग थी, इसलिए भाषा और विज्ञानों को शिक्षा का लक्ष्य निर्धारित किया गया।"

11. साहित्य व इतिहास का विकास : Development of Literature & History—मुस्लिम युग में साहित्य और इतिहास का पर्याप्त विकास हुआ। अनेक मुस्लिम शासक, विद्या के प्रेमी और विद्वानों के संरक्षक थे। संरक्षण-प्राप्त विद्वानों का आर्थिक चिन्ता से मुक्त होना और इसके फलस्वरूप उनके द्वारा साहित्य-सृजन के प्रति ध्यान दिया जाना स्वाभाविक था। यही कारण था कि मुस्लिम युग में नीति, दर्शन आदि विषयों पर साहित्य का निर्माण हुआ और रामायण, महाभारत आदि हिन्दू ग्रन्थों का फ़ारसी में अनुवाद किया गया।

भारत में क्रमबद्ध इतिहास का लेखन सर्वप्रथम मुस्लिम-काल में ही आरम्भ हुआ। इस काल से पूर्व हमें ऐतिहासिक घटनाओं का क्रमिक वर्णन बहुत कम मिलता है। कल्हण की "राज-तरंगिनी" को अवश्य इतिहास की कोटि में स्थान दिया जाता है, पर इस प्रकार की किसी अन्य पुस्तक की रचना, मुसलमान शासकों के समय से पूर्व नहीं हुई। इन शासकों में से कुछ ने अपने संस्मरणों और आत्मकथाओं के रूप में इतिहास लिखे एवं अपने दरबारों में इतिहासकारों को संरक्षण प्रदान किया। इन इतिहासकारों में ज़ियाउद्दीन बर्नी का "तारीखे फ़िरोज़शाही", अबुल फ़ज़ल का "अकबरनामा" और बदायूँनी का "मुन्तखब-उत-तवारीख़" इतिहास के बेजोड़ ग्रन्थ हैं।

12. धार्मिक व लौकिक शिक्षा का समन्वय : Synthesis of Religious & Secular Education—मुस्लिम शिक्षा की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता थी—धार्मिक और लौकिक शिक्षा का समन्वय। मकतबों में बालकों को क़ुरान की आयतें कंठस्थ कराई जाती थीं। साथ ही, उनको अंकगणित, बातचीत करने का ढंग, पत्र-लेखन-कला और अर्ज़ीनवीसी आदि जीवनोपयोगी विषयों का अध्ययन कराया जाता था। मदरसों में छात्रों को नियमित रूप से क़ुरान का अध्ययन करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त, उनको भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र आदि विषयों की शिक्षा दी जाती थी। इस प्रकार, शिक्षा के दोनों स्तरों पर धार्मिक और लौकिक विषयों का समावेश था।

शिक्षा के मुख्य दोष
Chief Defects of Education

टी० एन० सिक्वेरा का कथन है :—"भारत पर मुसलमानों की विजय इसलामी शिक्षा के उस अंधकारपूर्ण युग की समकालीन थी, जबकि विद्यालयों ने अपने व्यापक सांस्कृतिक आदर्शों को खो दिया था।"

"The Muslim conquest of India coincided with a dark age in Islamic education when the schools had lost their wider ideals of culture."—T. N. Siqueira : *op cit.*, p. 9.

सिक्वेरा के इस कथन को ध्यान में रखते हुए, हम कह सकते हैं कि मुस्लिम-शिक्षा दोषमुक्त नहीं थी। हम उसके मुख्य दोषों की चर्चा निम्नांकित पंक्तियों में यथास्थान कर रहे हैं :—

1. शिक्षा के लौकिक पक्ष पर बल : Stress on Secular Aspect of Education—मुस्लिम-शिक्षा में धर्म का मूर्धन्य स्थान था। किन्तु, इसलाम धर्म पारलौकिक जीवन की अपेक्षा इहलौकिक जीवन को महत्त्व देता है। अतः मुस्लिम युग में शिक्षा के लौकिक पक्ष को प्रधानता प्रदान की गई और शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य यह स्वीकार किया गया—छात्रों को ज्ञान से सम्पन्न करके, समाज में सुयश और राज्य में श्रेष्ठ पद प्राप्त करने की योग्यता प्रदान करना, ताकि वे सभी सांसारिक सुखों और ऐश्वर्यों का उपभोग कर सकें। छात्र भी अपने समक्ष इसी उद्देश्य को रख कर, कठोर परिश्रम द्वारा ज्ञान का अर्जन करते थे और अपनी योग्यता में अधिक-से-अधिक वृद्धि करने के लिए प्रति-क्षण प्रयत्नशील रहते थे।

2. स्त्री-शिक्षा की उपेक्षा : Neglect of Women's Education—मुस्लिम-युग में पर्दे की प्रथा के कारण, स्त्री-शिक्षा का प्रसार नहीं हुआ। जनसाधारण की बालिकाएँ अपने मुहल्लों की मकतबों में बालकों के साथ थोड़ा-सा पढ़ना और लिखना सीख लेती थीं। इसके अतिरिक्त, उनकी शिक्षा के लिए राज्य या समाज की ओर से कोई प्रबन्ध नहीं था। राजकुलों और धनी परिवारों की बालिकाओं और स्त्रियों को उनके घरों पर शिक्षा दी जाती थी। पर इनकी संख्या अत्यन्त अल्प थी।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि मुस्लिम काल में सामान्य रूप से स्त्रियों की शिक्षा की पूर्ण उपेक्षा की गई। इसका परिणाम बताते हुए, टी० एन० सिक्वेरा ने लिखा है :—"स्त्रियों की शिक्षा पढ़ने और लिखने के न्यूनतम तत्त्वों की संकुचित स्थिति में पहुँच गई थी।"

"Education of women was reduced to the barest elements of reading and writing."—T. N. Siqueira *op. cit.*, p 139.

3. प्रान्तीय भाषाओं की उपेक्षा Neglect of Vernaculars—मुस्लिम-शिक्षा-पद्धति में फारसी और अरबी का शीर्षस्थ स्थान था। मकतबों में बालकों को

फ़ारसी की वर्णमाला सिखायी जाती थी और क़ुरान की आयतें रटाई जाती थीं। मदरसों में उच्च शिक्षा का माध्यम—फ़ारसी थी। फ़ारसी सम्पूर्ण मुस्लिम काल में राजभाषा थी। राजपदों पर उन्हीं व्यक्तियों को आसीन किया जाता था, जिनको फ़ारसी का पूर्ण ज्ञान और अरबी का पर्याप्त ज्ञान होता था। अतः इन पदों के लिए इच्छुक न केवल मुसलमानों को, वरन् हिन्दुओं को भी फ़ारसी और अरबी का अनिवार्य रूप से अध्ययन करना पड़ता था। इन सब बातों का परिणाम यह हुआ कि प्रान्तीय भाषाओं के प्रति रंचमात्र भी ध्यान नहीं दिया गया। फलस्वरूप, उनका विकास अवरुद्ध हो गया।

अकबर ने अपनी हिन्दू-नीति के कारण इस बात की चेष्टा की कि विद्यालयों में फ़ारसी के अतिरिक्त हिन्दी की भी शिक्षा दी जाय। उसकी चेष्टा के परिणामस्वरूप हिन्दी को प्रोत्साहन तो अवश्य प्राप्त हुआ, पर उसकी प्रगति को संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है। औरंगज़ेब ने प्रान्तीय भाषाओं, मुख्यतः उर्दू में शिक्षण और रचना को प्रोत्साहित किया, पर उसे अपने कार्य में विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। वस्तुतः इन दोनों मुगल सम्राटों के प्रयासों का फ़ारसी और अरबी की स्थिति पर केवल अस्थायी प्रभाव पड़ा। इन दोनों भाषाओं की प्रधानता पूर्ववत् बनी रही और प्रान्तीय भाषाओं की पहले के समान उपेक्षा की गई।

4. हिन्दुओं की शिक्षा की उपेक्षा : Neglect of Education of Hindus—आरम्भ में मुस्लिम-शिक्षा केवल उन अल्पसंख्यकों को ही उपलब्ध थी, जो इस्लाम धर्म के अनुगामी थे। सिकन्दर लोदी के शासन-काल में मकतबों और मदरसों के द्वार हिन्दुओं के लिए भी खोल दिए गए थे, पर वहाँ उनके साथ समानता का व्यवहार नहीं किया जाता था। केवल अकबर के शासन-काल में हिन्दू बालकों को मुस्लिम शिक्षा-संस्थाओं में स्वतन्त्रतापूर्वक शिक्षा ग्रहण करने का अवसर प्राप्त हुआ। जहाँ तक हिन्दू शिक्षा-पद्धति का सम्बन्ध था, उसको अनेक मुसलमान शासकों ने नष्ट करने का भरसक प्रयत्न किया।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि लगभग सम्पूर्ण मुस्लिम-युग में हिन्दुओं को शिक्षा प्राप्त करने का अवसर उपलब्ध नहीं हुआ और मुस्लिम शासकों द्वारा उनकी शिक्षा की उपेक्षा की गई। हिन्दुओं की शिक्षा से सम्बन्धित उनकी नीति का वर्णन करते हुए, डॉ० एन० सिक्वेरा ने लिखा है :—"मुसलमान शासकों को अपनी हिन्दू प्रजा की शिक्षा के विषय में दो बातों में से एक का निश्चय करना पड़ा—हिन्दुओं की शिक्षा की उपेक्षा करना या उनके लिए पृथक् विद्यालयों की स्थापना करना। अधिकांश मुस्लिम शासकों ने उनकी शिक्षा की उपेक्षा की, उनकी शिक्षा-संस्थाओं को आर्थिक सहायता नहीं दी और उनके लिए नवीन विद्यालयों का निर्माण नहीं किया। अकबर के समान बहुत ही कम शासकों ने हिन्दुओं की शिक्षा को प्रोत्साहित किया।"

5. शिक्षा के आध्यात्मिक पक्ष की उपेक्षा : Neglect of Spiritual Aspect of Education—मुस्लिम-शिक्षा, धर्म-प्रधान थी। छात्रों को अपने सम्पूर्ण अध्ययन-काल

मे क़ुरान शरीफ की नियमित रूप से शिक्षा दी जाती थी। किन्तु, इस शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य—उनमे धार्मिकता की भावना का समावेश करना था, न कि उनका आध्यात्मिक विकास करना।

इस प्रकार, मुस्लिम युग मे शिक्षा के आध्यात्मिक पक्ष की प्रायः पूर्ण उपेक्षा की गई। परिणामतः *मुस्लिम-शिक्षा आध्यात्मिक उन्नति के उस शिखर से बहुत नीचे रह गई, जिस पर प्राचीन भारतीय शिक्षा पहुँच गई थी और जिसके कारण भारत को विश्व का आध्यात्मिक गुरु माना जाता था।*

6. शिक्षा में स्थिरता का अभाव : Lack of Stability in Education—इस्लाम-धर्म में अडिग आस्था रखने के कारण मुसलमान माता-पिता अपने बच्चों के लिए शिक्षा को अनिवार्य मानते थे। परन्तु, जैसा कि टी॰ एन॰ सिक्वेरा ने लिखा है :—**"न तो माता-पिता ने और न शासकों ने अपने कर्त्तव्य का विधिपूर्वक पालन किया। एक शासक या राजकुमार, विद्यालयों की स्थापना करता था, और दूसरा यदि उनको नष्ट नहीं करता था, तो बन्द अवश्य कर देता था।"**

सिक्वेरा के कथन से सिद्ध हो जाता है कि मुस्लिम शासकों की शिक्षा-सम्बन्धी नीति मे स्थिरता और क्रमबद्धता का नितान्त अभाव था। यही कारण था कि यदि एक शासक के समय मे शिक्षा पुष्पित होती थी, तो दूसरे शासक के समय मे कुम्हला जाती थी। शिक्षा के इस अस्थिर स्वरूप का कारण बताते हुए, डा॰ एफ़॰ ई॰ केई ने लिखा है :—*"शिक्षा का अस्थिर और अनिश्चित स्वरूप मुख्यत निरंकुश शासन का परिणाम था।"*

"The fluctuating and uncertain character of education was very largely the result of despotic rule"—**Dr. F. E. Keay** : *op. cit.*, p. 140.

7. शिक्षा में व्यापकता का अभाव : Lack of Universality in Education—मुस्लिम-युग मे शिक्षा को इस्लाम धर्म के सिद्धान्तो के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के लिए अनिवार्य माना जाता था और उसे राज्य का सरक्षण भी प्राप्त था। फिर भी, वह व्यापक रूप धारण न कर सकी। इसके आधारभूत कारण पाँच थे; यथा —

पहला, मुस्लिम-शिक्षा की व्यवस्था केवल नगरों और बड़े कस्बो मे की गई थी, जहाँ मुसलमानों की अधिकाश जनसंख्या निवास करती थी। दूसरा, मुस्लिम शासको को जनसाधारण की शिक्षा मे लेशमात्र भी रुचि नही थी। अतः नगरो और कस्बो से दूर के स्थानो मे न तो मुस्लिम-शिक्षा का आविर्भाव हुआ और न विकास। तीसरा, दान, धर्म और उदारता से प्रेरित होकर मुस्लिम शासकों और उनके अमीर-उमरावो ने केवल महत्त्वपूर्ण स्थानो पर ही मकतबो और मदरसो का निर्माण किया। चौथा, मुस्लिम शिक्षा-सस्थाओं मे प्रदान की जाने वाली शिक्षा पर धार्मिक कट्टरता की इतनी गहरी और व्यापक छाप थी कि हिन्दू बालक उनमे सम्मिलित न हो सके। पाँचवाँ, मुस्लिम-युग मे शिक्षा-सस्थाओ की सख्या बहुत कम थी। अतः केवल थोड़े

और प्रभावशाली व्यक्तियों के बालकों को ही उनमें प्रवेश मिलता था। फलस्वरूप, सामान्य व्यक्तियों के बालकों के लिए शिक्षा प्राप्त करने का कोई साधन नहीं था। ऐसी स्थिति में शिक्षा में व्यापकता का अभाव होना स्वाभाविक था।

8. कठोर शारीरिक दण्ड : Severe Corporal Punishment—मुस्लिम शिक्षा-व्यवस्था में कठोर शारीरिक दण्ड की प्रथा प्रचलित थी। छात्रों को पाठ याद न होने पर या अन्य अपराध करने पर बेंत, कोड़े, घूँसे, लात, थप्पड़ आदि से शारीरिक दण्ड दिया जाता था। यदि वे कोई भीषण अपराध करते थे, तो उनको विभिन्न प्रकार की शारीरिक यातनाएँ दी जाती थीं।

एडम (Adam) ने अपनी "Reports" में कुछ शारीरिक यातनाओं का वर्णन इस प्रकार किया है :—छात्र को मुर्गा बनाना, उसकी पीठ या गर्दन या दोनों पर निश्चित समय के लिए ईंट या लकड़ी का भारी टुकड़ा रखना, उसे पैरों के बल वृक्ष की शाखा से लटकाना, उसे बिल्ली या किसी अन्य कष्टदायक पशु के साथ बोरे में बन्द करना, उसे भूमि पर पेट के बल लेट कर अपने शरीर को निश्चित दूरी तक घसीटना।

ये सभी दण्ड निष्ठुर एवं अमानवीय होने के साथ-साथ अमनोवैज्ञानिक और शिक्षा-सिद्धान्तों के प्रतिकूल थे। इस प्रकार के दण्ड दिए जाने का कारण यह था कि राज्य की ओर से कोई दण्ड-विधान निर्धारित नहीं था। अतः शिक्षक अपनी व्यक्तिगत इच्छा के अनुसार छात्रों को कोई भी दण्ड देने के लिए पूर्णतया स्वतन्त्र थे।

9 छात्रों की विलासप्रियता : Students' Love of Luxury—प्राचीन काल की भाँति मुस्लिम काल में छात्रों को कठोर और तपस्वी-जीवन व्यतीत नहीं करना पड़ता था। उन्हें छात्रावासों में अनेक प्रकार के सुख-साधन और सौन्दर्य-प्रसाधन की सुविधाएँ उपलब्ध थीं। फलस्वरूप, वे कुछ ही समय में इतने विलासी बन जाते थे कि वे सुखभोग के वास्तविक जीवन से पृथक् किसी अन्य जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते थे। यही कारण था कि उनमें आत्म-त्याग, आत्म-निर्भरता और आत्म-अनुशासन आदि सद्गुणों के एक भी चिह्न की झलक दुर्लभ थी।

1. अन्य दोष : Other Defects—उपर्युक्त के अतिरिक्त मुस्लिम शिक्षा-पद्धति में कुछ अन्य दोष और थे; यथा :—

पहला, बालकों को मकतबों में क़ुरान की आयतें कंठस्थ कराई जाती थीं, जिनका अर्थ जानना उनके लिए आवश्यक नहीं समझा जाता था। इससे उनकी स्मरण-शक्ति तो निश्चित रूप से तीव्र हो जाती थी, पर उनकी मनन, चिन्तन आदि अन्य मानसिक शक्तियों का विकास नहीं होता था।

दूसरा, बालकों को पहले पढ़ने का अभ्यास कराया जाता था और उसकी समाप्ति के पश्चात् लिखने का। इससे उनका पर्याप्त समय नष्ट होता था और उनका सन्तुलित विकास भी नहीं होता था।

तीसरा, मौखिक शिक्षण पर इतना अधिक बल दिया जाता था कि बालकों को निरीक्षण, परीक्षण आदि व्यावहारिक क्रियाओं के लिए कोई अवसर प्राप्त नहीं होता था।

चौथा, डा० यूसुफ हुसेन के अनुसार :—"मध्यकालीन शिक्षा-पद्धति में लचीलेपन का अभाव था। परिणामतः वह अत्यधिक अनम्य (Rigid) और अनिर्माणकारी (Non-Creative) बन गई थी।"

पाँचवाँ, डा० यूसुफ हुसेन के शब्दों में :—"मध्यकालीन शिक्षा-पद्धति में छात्रों को व्यावहारिक निर्णय प्रदान करने की क्षमता नहीं थी। वह अत्यधिक निष्प्राण और पुस्तकीय थी।"

अन्तिम, डा० यूसुफ हुसेन के विचारानुसार :—"यह कहना ऐतिहासिक दृष्टि से सत्य होगा कि मध्यकालीन शिक्षा-पद्धति, नेतृत्व के गुणों का विकास करने में विफल हुई। अतः वह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के लिए असाधारण व्यक्तियों की माँग की पूर्ति नहीं कर सकी।"

"It would be historically true to assert that the medieval system of education failed to impart the qualities of leadership and thus ensure the supply of outstanding personalities in the different walks of life"—**Dr Yusuf Husain** : *Glimpses of Medieval Indian Culture*, p 97

आधुनिक शिक्षा के लिए ग्रहणीय तत्त्व
Acceptable Features for Modern Education

मुस्लिम-शिक्षा में हमें ऐसे अनेक उपयोगी तत्त्व मिलते हैं, जो आधुनिक भारतीय शिक्षा के लिए ग्रहणीय हैं, यथा .—

1 व्यावहारिक शिक्षा Practical Education—आज के वैज्ञानिक युग में शिक्षा को आध्यात्मिक विकास और मोक्ष-प्राप्ति का साधन बनाना सर्वथा अनुचित है। अत यह आवश्यक है कि जिस प्रकार मुस्लिम शिक्षा में व्यावहारिक विषयों को महत्त्व दिया जाता था, उसी प्रकार भारत की आधुनिक शिक्षा में भी दिया जाय। व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करके छात्र—समाज के उपयोगी सदस्य बन सकते हैं और साथ ही अपनी जीविका का सरलता से उपार्जन भी कर सकते हैं।

2. निःशुल्क शिक्षा Free Education—मुस्लिम शिक्षा, प्राथमिक और उच्च—दोनों स्तरों पर निःशुल्क थी। आधुनिक भारतीय शिक्षा प्राथमिक स्तर पर तो निःशुल्क है, पर माध्यमिक और उच्च स्तरों पर नहीं है। अत. इन स्तरों पर शिक्षा को निःशुल्क बनाया जाना चाहिए। इसका मुख्य कारण यह है कि आज की शिक्षा इतनी मँहगी हो गई है कि अनेक छात्र माध्यमिक और विशेष रूप से उच्च शिक्षा के लिए लालायित होने पर भी उसे प्राप्त करने से वंचित रह जाते हैं।

यह तथ्य निर्धन परिवारों के बालकों के विषय में विशेष रूप से सत्य है। उच्च शिक्षा को निःशुल्क बनाने से राज्य-सरकारों का व्यय अवश्य बढ़ जायगा, पर इससे हित भी अवश्य अधिक होगा। इसकी पुष्टि में यह कारण प्रस्तुत किया जा सकता है कि देश को प्रतिभाशाली व्यक्ति उपलब्ध हो सकते हैं, जो प्रखर बुद्धि वाले होते हुए भी उच्च शिक्षा ग्रहण करने के लिए अपने को असमर्थ पाते हैं।

3. व्यक्तिगत सम्पर्क : **Individual Contact**—मुस्लिम युग के अधिकांश मदरसों में शिक्षक और छात्र साथ-साथ रहते थे। फलस्वरूप, उनमें व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित हो जाता था। इस सम्पर्क के माध्यम से शिक्षक, छात्रों में विशिष्ट गुणों का समावेश करते थे।

आधुनिक भारतीय शिक्षा में व्यक्तिगत सम्पर्क नाम की कोई चीज नहीं है। यही कारण है कि छात्रों में उच्छृङ्खलता और अनुशासनहीनता की निरन्तर वृद्धि होती चली जा रही है। इसको समाप्त करने और छात्रों का चारित्रिक उन्नयन करने के लिए, शिक्षकों से उनका निकट और व्यक्तिगत सम्पर्क होना परम आवश्यक है। अतः मुस्लिम शिक्षा में पाए जाने वाले शिक्षकों और छात्रों के व्यक्तिगत सम्पर्क को आधुनिक भारतीय शिक्षा में समाविष्ट किया जाना अनिवार्य है।

4. शिक्षक की स्थिति में उन्नति : **Elevation of Teacher's Status**—आधुनिक भारत में शिक्षक की स्थिति निम्न से निम्नतर होती चली जा रही है। इसके लिए आंशिक रूप में शिक्षक, पर मुख्य रूप में समाज और राज्य उत्तरदायी हैं। इसका कारण यह है कि न तो शिक्षक को समाज का सम्मान प्राप्त है और न राज्य का संरक्षण। अतः यह आवश्यक है कि समाज और राज्य—दोनों ही उसके प्रति अपने दृष्टिकोण को परिवर्तन करें और उसकी स्थिति को समुन्नत बनाने का उद्योग करें। मुस्लिम युग में शिक्षक को छात्रों की भक्ति, समाज का सम्मान और राज्य का संरक्षण प्राप्त था। आधुनिक भारत में मुस्लिम शिक्षा के इस तत्त्व को एकमत से स्वीकार किया जाना चाहिए।

5. धार्मिक व लौकिक शिक्षा का समन्वय : **Synthesis of Religious & Secular Education**—आज के भौतिकवादी युग में लौकिक शिक्षा की असीम आवश्यकता है। किन्तु, इस शाश्वत सत्य को विस्मृत नहीं किया जाना चाहिए कि धर्म—व्यक्ति के जीवन और चरित्र का प्रधान आधार-स्तम्भ है। आधुनिक भारतीय शिक्षा की परिधि में से धर्म को बाहर निकाल कर इस आधार-स्तम्भ को हटा दिया गया है।

इसके कुत्सित परिणाम, भारत के प्रत्येक स्थान में देखने को मिल रहे हैं। अकारण झूठ बोलना, स्वार्थवश धोखा देना, निजहित के लिए लूटमार करना, काम-वासना की तृप्ति के लिए अबलाओं का अपहरण करना—ये सभी बातें धर्मविहीन शिक्षा की द्योतक हैं। इनके कारण आज के भारतीय अपने आदि पूर्वजों की बर्बर

अवस्था की ओर अत्यन्त त्वरित गति से बढ़ रहे हैं। इससे उनकी रक्षा तभी की जा सकती है, जब मुस्लिम-शिक्षा का अनुकरण करके, आधुनिक भारतीय शिक्षा में भी धार्मिक और लौकिक शिक्षा का समन्वय किया जाय।

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Give a brief account of the organization of education in medieval India.
   मध्यकालीन भारत में शिक्षा की व्यवस्था का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. What were the aims and ideals of Muslim education? How far were they formulated keeping in view the interests of Muslim rulers of India?
   मुस्लिम शिक्षा के उद्देश्य और आदर्श क्या थे? उनका निर्माण भारत के मुस्लिम शासकों के हितों को कहाँ तक ध्यान में रखकर किया गया था?
3. Describe briefly the essential features of Muslim education. Which of these would you to like to revive in modern India and why?
   मुस्लिम शिक्षा की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए। आप आधुनिक भारत में इनमें से किन को पुनर्जीवित करना चाहेंगे और क्यों?
4. Describe briefly the main defects of education prevalent in the medieval period. How far have these defects been removed in the modern education of India.
   मध्यकाल में प्रचलित शिक्षा के मुख्य दोषों का विवेचन कीजिए। भारत की आधुनिक शिक्षा में इन दोषों का निवारण कहाँ तक हुआ है?

4

यूरोपीय मिशनरियों के प्रारम्भिक शिक्षा-कार्य

EARLY EDUCATIONAL ACTIVITIES OF EUROPEAN MISSIONARIES (1600-1833)

"The beginnings of the present system of education in India can be traced to the efforts of the Christian missionaries."—A. N. Basu.

विषय-प्रवेश

सुदूर अतीत से ही भारत के पश्चिमी देशों से व्यापारिक सम्बन्ध थे। हिन्दू राजाओं के समय में उन देशों में भारतीय वस्त्र, रत्न आदि की बहुत माँग थी। इन राजाओं की अपेक्षा अधिक ऐशो-आराम का जीवन व्यतीत करने वाले मुसलमान शासकों ने विलास की सामग्री और कला की कृतियों के उत्पादन को उदारतापूर्वक प्रोत्साहन दिया। ये वस्तुएँ शीघ्र ही पश्चिमी देशों में विख्यात हो गईं और वहाँ पहुँचने लगीं। उस समय वहाँ भारत से व्यापार करने के तीन मुख्य केन्द्र थे—टायर, सिकन्दरिया और कुस्तुनतुनिया। इन केन्द्रों को भारतीय वस्तुएँ उत्तरी-पश्चिमी सीमा-प्रदेश से होती हुई, प्राचीन स्थल-मार्गों से जाती थीं। इनके बदले में वहाँ से चाँदी, मूँगा, मदिरा आदि वस्तुएँ आती थीं। आयात और निर्यात के इन पदार्थों का क्रय-विक्रय करके यूरोप के व्यापारी धनवान बन गए थे।

पन्द्रहवीं शताब्दी में तुर्कों की दक्षिणी-पश्चिमी एशिया और दक्षिणी-पूर्वी यूरोप की विजय के कारण भारत और यूरोप के मध्य प्राचीन स्थल मार्ग अवरुद्ध हो गए। इससे यूरोप के व्यापारियों को चिन्तित देखकर, वहाँ के नाविकों ने भारत के लिए जल-मार्ग खोजने का बीड़ा उठाया। इस कार्य का श्रेय—पुर्तगाल के नाविक वास्को-

ड-गामा (Vosco-da-Gama) को प्राप्त हुआ। उसने 27 मई, 1498 को भारत के पूर्वी तट पर पहुँच कर, कालीकट के प्रसिद्ध बन्दरगाह में अपने जहाज को लंगर डाल कर खड़ा किया।

इस नवीन जल-मार्ग की खोज के फलस्वरूप यूरोप के व्यापारियों का भारत में आगमन हुआ। आरम्भ में उनकी रुचि केवल व्यापार में थी। किन्तु, जैसा कि टी० एन० सिक्वेरा ने लिखा है :—**"व्यापार के बाद इस देश में उनका झण्डा लहराया और उसके साथ उनकी शिक्षा का आरम्भ हुआ।"**

"The flag followed trade. And with the trade came education."—**T. N Siqueira** : *The Education of India*, p. 19.

भारत में यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियाँ
European Trading Companies in India

वास्को-ड-गामा द्वारा भारत तक पहुँचने के नवीन जलमार्ग की खोज किए जाने का सर्वप्रथम और सर्वाधिक लाभ उसके देश के पुर्तगालियों ने उठाया। उन्होंने सन् 1500 ई० से इस देश से व्यापार करना आरम्भ कर दिया और 100 वर्ष तक अपने एकाधिकार का निर्विघ्नता और स्वच्छन्दता से प्रयोग किया। उनके व्यापारिक लाभ से प्रलोभित होकर, 17वीं शताब्दी में यूरोप के अनेक देशों में भारत से व्यापार करने के उद्देश्य से व्यापारिक कम्पनियों का निर्माण हुआ। इन कम्पनियों में उल्लेखनीय थीं—इंगलिश ईस्ट इंडिया कम्पनी (1600), डच ईस्ट इंडिया कम्पनी (1602) और फ्रेंच ईस्ट इंडिया कम्पनी (1664)। हालैंड के डेन लोगों ने भी भारत से व्यापार करना आरम्भ किया।

आरम्भ में इन कम्पनियों ने भारत के विभिन्न भागों को अपने केन्द्र-स्थल बनाकर व्यापार किया। परन्तु, समान कार्य में संलग्न होने के कारण उनमें कुछ ही समय उपरान्त पारस्परिक प्रतिद्वन्द्विता का उदय हुआ। इस प्रतिद्वन्द्विता ने शीघ्र ही शक्ति-परीक्षा के लिए पारस्परिक युद्धों का रूप धारण किया। इन युद्धों के विषय में केवल इतना कह देना पर्याप्त जान पड़ता है कि अन्त में इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने सभी प्रतिद्वन्द्वियों को परास्त करके, भारतीय साम्राज्य की स्थापना की दिशा में अपना अभियान आरम्भ किया।

मिशनरियों द्वारा आधुनिक शिक्षा का आरम्भ
Introduction of Modern Education by Missionaries

यूरोप के व्यापारियों के भारत-आगमन के कुछ समय उपरान्त, वहाँ के ईसाई मिशनरियों ने इस देश में प्रवेश किया। मिशनरियों का मुख्य उद्देश्य भारतवासियों को अपने धर्म का अनुगामी बनाना था, न कि यूरोपीय ढंग की शिक्षा संस्थाओं का शिलान्यास करना। फिर भी, उन्होंने इस कार्य को प्राथमिकता प्रदान की। इसका कारण बताते हुए, प्रसिद्ध मिशनरी डा० डी० ओ० ऐलेन (Dr D O Allen)

ने लिखा है :—"शिक्षा-संस्थाओं ने मिशनरियों को भारतीयों से सम्पर्क स्थापित करने और उन्हें अपने धार्मिक सिद्धान्तों से अवगत करने का अवसर प्रदान किया।"

इस अवसर से पूर्ण लाभ उठाने के लिए, मिशनरियों ने भारत के विभिन्न स्थानों में शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना की और उनमें पाश्चात्य ढंग पर शिक्षा प्रदान करने का कार्य आरम्भ किया। यही कारण है कि मिशनरियों को भारत में आधुनिक शिक्षा का प्रवर्त्तक माना जाता है। इस संदर्भ में नूरुल्ला व नायक के अग्रांकित शब्द उल्लेखनीय हैं :—"मिशनरियों को भारत में आधुनिक शिक्षा के प्रवर्त्तक होने का सम्मान प्राप्त है।"

"To the missionaries belongs the honour of being pioneers in the modern educational system of India."—Nurullah & Naik : *A History of Education in India*, p. XIV.

मिशनरियों के शिक्षा-कार्य
Educational Activities of Missionaries

यूरोप के मिशनरियों ने शिक्षा के क्षेत्र में जो कार्य किए, उनका संक्षिप्त विवरण दृष्टव्य है :—

1. डच मिशनरी : Dutch Missionaries—डच मिशनरियों ने चिनसुरा, नागापट्टम और विमलीपट्टम में कुछ स्कूलों का निर्माण किया। इन स्कूलों में डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों और अन्य भारतीयों के बालकों को शिक्षा प्रदान की जाती थी। डच मिशनरियों ने धर्म-प्रचार के कार्य को वरीयता नहीं दी। अतः उन्होंने अपने स्कूलों को धर्म-प्रचार का केन्द्र नहीं बनाया।

2. डेन मिशनरी : Dane Missionaries—डेन मिशनरियों ने तंजौर, सीरामपुर, त्रिचनापली और फ़ोर्ट सेन्ट डेविड में प्राथमिक विद्यालयों का निर्माण किया। इन विद्यालयों में शिक्षा का माध्यम मातृभाषाएँ थीं। डेन मिशनरियों ने अपने धर्म-प्रचार के कार्य में मुसलमानों से सहयोग प्राप्त करने की चेष्टा की। अतः उन्होंने मुसलमान बालकों की प्राथमिक शिक्षा के प्रति विशेष ध्यान दिया। उन्होंने ट्रानक्यूबर में एक प्रशिक्षण-विद्यालय का भी नव-निर्माण किया, जिसमें प्राथमिक विद्यालयों के लिए अध्यापकों को प्रशिक्षित किया जाता था।

3. फ्रांसीसी मिशनरी : French Missionaries—फ्रांसीसी मिशनरियों ने माही, यनाम, कारीकल, पांडिचेरि और चन्द्रनगर में प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की। इन विद्यालयों की विशेषता यह थी कि इनमें बालकों को उनकी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। इन विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य थी। इनमें अध्ययन करने वाले बालकों को कभी-कभी मुफ्त भोजन, वस्त्र और पुस्तकें दी जाती थीं।

4. पुर्तगाली मिशनरी : Portuguese Missionaries—पुर्तगाली मिशनरियों

ने गोआ, डामन, ड्यू, वेसीन, लंका, हुगली, कोचीन और चटगाँव में प्रायमिक विद्... स्थापित किए। इन विद्यालयों में पुर्तगाली और स्थानीय भाषाओं के अति... कृषि, गणित, ईसाई-धर्म और थोड़ी-सी दस्तकारी की शिक्षा दी जाती थी।

पुर्तगाली मिशनरियों ने प्रायमिक शिक्षा के साथ-साथ उच्च शिक्षा की ... व्यवस्था की। उन्होंने गोआ, वेसीन, चॉल और बन्दोरा में कॉलेजों का निर्मा... किया। इन कॉलेजो में लेटिन, व्याकरण, संगीत, तर्कशास्त्र, ईसाई-धर्म और पुर्तगाली भाषा की शिक्षा दी जाती थी। इन कॉलेजो में चॉल का Jesuit College और बन्दोरा का St Anne College विशेष रूप से प्रसिद्ध थे।

5 अंग्रेज मिशनरी English Missionaries—अन्य मिशनरियों की अपेक्षा अंग्रेज मिशनरियों का कार्य-क्षेत्र अधिक व्यापक था। उन्होंने मद्रास, बम्बई और बंगाल में धर्मार्थ विद्यालयों (Charity Schools) की स्थापना की। इनमें कम्पनी के कर्मचारियों के बच्चों को नि शुल्क शिक्षा दी जाती थी।

अंग्रेज मिशनरियों ने बंगाल को अपने धर्म-प्रचार का मुख्य केन्द्र बनाया। वहाँ सीरामपुर नामक स्थान के तीन मिशनरी, ईसाई-धर्म को व्यापक रूप प्रदान करने के लिए अत्यधिक प्रयत्नशील थे। इन मिशनरियों के नाम थे—कैरे, वार्ड और मार्शमैन (Carey, Ward & Marshman)। ये तीनों मिशनरी—"सीरामपुर त्रिमूर्ति" (Serampore Trio) के नाम से प्रसिद्ध थे। उन्होंने सन् 1808 ई० में "हिन्दुओं और मुसलमानों के नाम निवेदन' ("Addresses to Hindus & Muslims") नामक पुस्तिका प्रकाशित की। उसमें उन्होंने मुहम्मद साहब को झूठा पैगम्बर और हिन्दू-धर्म को अज्ञान, आडम्बर और मिथ्या विश्वास से परिपूर्ण बताया। इस ...रोप के कारण हिन्दुओं और मुसलमानों की क्रोधाग्नि भड़क उठी। उसको शान्त ...रने के लिए तत्कालीन अंग्रेज गवर्नर-जनरल, लार्ड मिन्टो (Lord Minto) ने तीनों ...नरियों को बन्दी करवा दिया और मिशनरियों के धर्म-प्रचार के कार्य पर प्रतिबन्ध ...ा दिया।

इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की धर्म-विरोधी नीति से मिशनरियों को ...धिक असंतोष हुआ। किन्तु, उन्होंने अपने को भारत में इस नीति के प्रतिकूल ... करने में असमर्थ पाया। अत जैसा कि नुरुल्ला व नायक ने लिखा है — "...नरियों और उनके मित्रों ने धर्म-प्रचार-कार्य में स्वतंत्रता प्राप्त करने के उद्देश्य ...लैंड में आन्दोलन प्रारम्भ किया। आन्दोलन करने वालों में मुख्य स्थान— ...ग्राट का था।"

चार्ल्स ग्रांट : Charles Grant

चार्ल्स ग्राट अनेक वर्षों तक इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी के ...रत में कार्य कर चुका था। अपने पद से अवकाश प्राप्त करके, वह इंगलैंड ... था। वहाँ उसने सन् 1792 ई० में एक पुस्तिका प्रकाशित की, ...—

शीर्षक था—"ग्रेट ब्रिटेन के एशियाई प्रजाजनों की सामाजिक स्थिति पर विचार" ("Observations on the State of Society Among the Asiatic Subjects of Great Britain")

ग्रांट ने अपनी पुस्तिका में हिन्दुओं का विशेष रूप से उल्लेख करते हुए, लिखा :—"हिन्दू इसलिए गलती करते हैं, क्योंकि उनमें अज्ञानता है और उनको उनकी गलतियाँ उचित प्रकार से कभी बताई नहीं गई हैं।"

"The Hindoos err, because they are ignorant, and their errors have never been fairly laid before them."—Charles Grant.

ग्रांट ने अपनी पुस्तिका में हिन्दुओं के अतिरिक्त मुसलमानों की अज्ञानता का भी चित्र अंकित किया। उसने इन दोनों जातियों की अज्ञानता का निवारण करने के लिए अग्रांकित पंचमुखी योजना प्रस्तुत की :—(1) भारत में विद्यालयों की स्थापना, (2) विद्यालयों में अंग्रेजी के माध्यम द्वारा शिक्षा, (3) विद्यालयों में अंग्रेजी भाषा और साहित्य की निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था, (4) पाश्चात्य ज्ञान एवं विज्ञान का प्रसार, और (5) ईसाई-धर्म का व्यापक प्रचार। इस योजना को प्रस्तुत करने के पश्चात्, ग्रांट ने लिखा :—"इस योजना की सफलता के लिए केवल सरकार के हार्दिक संरक्षण की आवश्यकता है। यदि सरकार इसकी सफलता चाहती है, तो यह अवश्य सफल हो सकती है।"

"There is nothing wanting to the success of this plan, but the hearty patronage of Government. If they wish it to succeed, it can and must succeed."—Charles Grant.

ग्रांट की धारणा थी कि अंग्रेजी भाषा और साहित्य की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात्, भारतीयों की विचारधारा में परिवर्तन हो जायगा और वे ईसाई-धर्म के अनुयायी बन जायेंगे। यद्यपि उसकी यह धारणा निराधार थी, तथापि भारतीयों की शिक्षा के सम्बन्ध में उसके प्रस्ताव उसकी दूरदर्शिता के प्रमाण हैं। उसने 1792 में ही भारतीयों के लिए अंग्रेजी शिक्षा के महत्त्व को भली-भाँति समझ लिया था। अपने प्रस्तावों द्वारा उसने भारतीयों की शिक्षा के लिए, जिस अग्रिम रूपरेखा का निर्माण किया, उसे भविष्य में मान्यता प्रदान की गई। इसीलिए, ग्रांट को आधुनिक भारतीय शिक्षा का जन्मदाता माना जाता है। नूरुल्ला व नायक ने ठीक ही लिखा है :—"ग्रांट को कभी-कभी भारत में आधुनिक शिक्षा का जन्मदाता कहा जाता है।"

"Grant is sometimes described as the father of modern education in India."—Nurullah & Naik : *op. cit.*, p. 77.

मिशनरी कार्यों का पुनरारम्भ
Revival of Missionary Activities

ग्रांट के विचारों का ब्रिटिश लोकसभा के सदस्य, रॉबर्ट विल्बरफ़ोर्स (Robert Wilberforce) पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। अतः जब 1793

इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का "आज्ञा-पत्र" (Charter) पुनरावर्तन (Renewal) के लिए लोकसभा के समक्ष आया, तब विल्बरफोर्स ने यह प्रस्ताव रखा कि "आज्ञा-पत्र" में एक ऐसी धारा जोड़ दी जाय, जिससे मिशनरियों को पर्याप्त संख्या में भारत भेजा जा सके। किन्तु, कम्पनी के संचालक—"सीरामपुर त्रिमूर्ति" के कार्यों के कारण भारतीयों में उत्पन्न होने वाले रोष को भूले नहीं थे। वे भारत में अपने नव-निर्मित राज्य को मिशनरियों को धर्म-प्रचार की स्वतन्त्रता देकर, खोना नहीं चाहते थे। अतः कम्पनी के संचालकों ने विल्बरफोर्स के प्रस्ताव का प्रबल विरोध करते हुए कहा :—"हिन्दुओं की धार्मिक तथा नैतिक पद्धति अन्य किसी राष्ट्र से कम महत्त्व-पूर्ण नहीं है। अतएव न उनके धर्म-परिवर्तन की ही कोशिश की जाय और न उन्हें उनकी संस्कृति की शिक्षा के सिवा अन्य प्रकार के ज्ञान-प्रदान की चेष्टा ही की जाय।"

संचालकों के विरोध का समर्थन करते हुए, रैंडल जेकसन नामक लोकसभा के एक सदस्य ने कहा :—"हमने अपनी शिक्षा का प्रसार करके अमरीका में अपने उपनिवेशों को खो दिया। अतः हमें भारत में अपनी शिक्षा का प्रसार नहीं करना चाहिए।"

"We lost our colonies in America by imparting our education there; we need not do so in India too."—Randle Jackson.

उक्त विरोधों के कारण, विल्बरफोर्स का प्रस्ताव उखाड़ कर फेंक दिया गया। किन्तु, इस असफलता ने ग्रान्ट को निरुत्साहित नहीं किया और वह अपने आन्दोलन को निरन्तर नव जीवन प्रदान करता रहा। अन्ततोगत्वा, जब 1813 में कम्पनी का "आज्ञा-पत्र" पुनरावर्तन के लिए लोकसभा में फिर आया, तो उसमें एक नवीन धारा जोड़कर अंग्रेज मिशनरियों को भारत में बेरोक-टोक प्रवेश करने का अधिकार दे दिया गया। इसका परिणाम बताते हुए, नूरुल्ला व नायक ने लिखा है :—"मिशनरियों ने अति विशाल संख्या में भारत आना और अंग्रेज़ी स्कूलों की स्थापना करना आरम्भ किया। इस प्रकार, उन्होंने आधुनिक शिक्षा-पद्धति का शिलान्यास किया।"

"Missionaries began to land in India in large numbers and establish English schools, thereby laying the foundation of the modern educational system."—Nurullah & Naik op. cit., p 82.

उपसंहार

भारत आने वाले यूरोपीय मिशनरियों का मुख्य उद्देश्य—यहाँ के निवासियों को ईसाई-धर्म में दीक्षित करना था। उनके इस उद्देश्य की चाहे जितनी भी निन्दा की जाय, पर इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए शिक्षा को साधन बना कर, उन्होंने इस क्षेत्र में जो कार्य किए, वे भारतीय शिक्षा के इतिहास में सदैव स्वर्ण अक्षरों में

रहेंगे। उन्होंने इस देश में न केवल आधुनिक शिक्षा-पद्धति को प्रचलित किया, वरन् स्वयं शिक्षा-संस्थाओं का संचालन करके, भारतीयों के समक्ष एक अनुकरणीय उदाहरण उपस्थित किया।

उन्होंने यह कार्य उस समय किया, जब प्राचीन भारतीय शिक्षा, यवनों द्वारा पदाक्रान्त की जा चुकी थी और मुस्लिम शिक्षा अपने संरक्षकों के अभाव में डगमगा रही थी। ऐसे समय में मिशनरियों ने एक नवीन शिक्षा-प्रणाली का सूत्रपात करके, इस देश की जनता का अकथनीय हित किया। ए० एन० बसु का यह कथन अक्षरशः सत्य है :—"यह मुख्यतः मिशनरियों के प्रयत्नों का ही परिणाम था कि 19वीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों ने इस देश में शिक्षा की एक नवीन पद्धति का आविर्भाव देखा।"

"It was mainly due to the efforts of the missionaries that the early years of the nineteenth century witnessed the emergence of a new system of education in this country."—A. N. Basu : *Education in Modern India*, p. 17.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Give a brief account of the early educational activities of European missionaries.
   यूरोपीय मिशनरियों के प्रारम्भिक शिक्षा-कार्य का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. "The beginnings of the present system of education in India can be traced to the efforts of the Christian missionaries." Discuss.
   "भारत में शिक्षा की वर्तमान प्रणाली का आरम्भ ईसाई-मिशनरियों के प्रयासों में खोजा जा सकता है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।
3. "Charles Grant is often described as the father of modern education in India." Elucidate.
   "चार्ल्स ग्रांट को बहुधा भारत में आधुनिक शिक्षा का जन्मदाता कहा जाता है।" इस कथन का स्पष्टीकरण कीजिए।

5

इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रारम्भिक शिक्षा-कार्य
EARLY EDUCATIONAL ACTIVITIES OF ENGLISH EAST INDIA COMPANY
(1600–1833)

"The Company was empowered to perform all the State functions—executive, judicial, legislative, and economic"—Dr Balkrishna.

विषय-प्रवेश

इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी को रानी एलिजाबेथ प्रथम (Queen Elizabeth I) से 31 दिसम्बर, 1600 ई० को पूर्वी देशों से व्यापार करने के लिए "आज्ञा-पत्र" (Charter) प्राप्त हुआ था। उस समय से लेकर लगभग 150 वर्ष तक कम्पनी का मुख्य उद्देश्य—व्यापार करना था। किन्तु, यूरोप की अन्य व्यापारिक कम्पनियों के समान उसे थोड़ा-बहुत धर्म-प्रचार का कार्य भी करना पड़ा।

1757 में प्लासी की विजय और 1765 में शाह आलम से बंगाल, बिहार और उड़ीसा की "दीवानी" प्राप्त करने के पश्चात्, इस देश के पर्याप्त भूभाग के शासन की बागडोर कम्पनी के हाथ में आ गई और उसकी सत्ता ने राजनीतिक रूप धारण किया। अपनी इस सत्ता को चिरस्थायी बनाने के लिए, कम्पनी द्वारा भारतीयों की शिक्षा के प्रति ध्यान दिया जाना अनिवार्य हो गया। यहीं से इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी की भारतीय शिक्षा-नीति का आरम्भ होता है। इस नीति के अन्तर्गत कम्पनी ने 1833 तक उच्च शिक्षा की कुछ संस्थाओं की स्थापना की। हम क्रमबद्धता की दृष्टि से इनका वर्णन करने से पूर्व, कम्पनी द्वारा संचालित किए जाने वाले प्राथमिक विद्यालयों का उल्लेख कर रहे हैं।

स्कूलों व कॉलिजों की स्थापना

Establishment of Schools & Colleges

1 प्राथमिक विद्यालय : Primary Schools—सन् 1765 ई० से पूर्व कम्पनी का ध्यान मुख्य रूप से व्यापार पर और आंशिक रूप में धर्म-प्रचार पर केन्द्रित था। अतः उसने जनसाधारण की शिक्षा में कोई रुचि व्यक्त नहीं की। उसने केवल अपने कर्मचारियों के बच्चों को निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा देने के लिए कुछ धर्मार्थ विद्यालयों (Charity Schools) की स्थापना की। इन विद्यालयों में बच्चों को पढ़ने, लिखने, साधारण गणित और ईसाई-धर्म की शिक्षा दी जाती थी।

1765 तक कम्पनी की शिक्षा-नीति उक्त बच्चों को प्राथमिक शिक्षा देने तक ही सीमित रही। किन्तु, उसके उपरान्त कम्पनी की शिक्षा-नीति में परिवर्तन हुआ और उसने उच्च शिक्षा की संस्थाएँ स्थापित कीं। हम उनमें से चार महत्त्वपूर्ण संस्थाओं का विवरण क्रमबद्ध कर रहे हैं।

2 कलकत्ता मदरसा : Calcutta Madarassah—इस संस्था की स्थापना, भारत के प्रथम गवर्नर-जनरल और बँगला एवं फारसी के प्रकाण्ड विद्वान्, वारेन हेस्टिंग्स (Warren Hastings) के व्यक्तिगत प्रयास के फलस्वरूप सन् 1781 में हुई। इसकी स्थापना का तात्कालिक कारण हेस्टिंग्स को कलकत्ता नगर के कुछ संभ्रान्त मुसलमानों से प्राप्त होने वाला आवेदन-पत्र था।

"कलकत्ता मदरसा" में शिक्षा की अवधि 7 वर्ष की थी, और शिक्षा का माध्यम, अरबी भाषा थी। इस संस्था के पाठ्यक्रम में अग्रांकित विषयों को स्थान दिया गया था :—दर्शन, व्याकरण, अंकगणित, रेखागणित, तर्कशास्त्र, नक्षत्र-विद्या; मुस्लिम क़ानून और धार्मिक सिद्धान्त। कुछ ही समय में इस संस्था की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई। अतः सुदूर गुजरात, कर्नाटक और कश्मीर तक के विद्यार्थीगण इसमें शिक्षा ग्रहण करने के लिए आने लगे।

"कलकत्ता मदरसा" स्थापित करने में हेस्टिंग्स का प्रत्यक्ष उद्देश्य—कम्पनी की नौकरी के लिए मुसलमानों को उचित प्रकार की शिक्षा प्रदान करना था। किन्तु, इतिहासकार हेस्टिंग्स के वास्तविक उद्देश्य के दर्शन, हॉवेल के अग्रांकित वाक्य में होते हैं :—"कलकत्ता के मुसलमानों की सद्भावना प्राप्त करने के लिए वारेन हेस्टिंग्स द्वारा 'कलकत्ता मदरसा' स्थापित किया गया।"

"The *Calcutta Madarassah* was founded by *Warren Hastings* in order to conciliate the Mohammedans of Calcutta."—A. Howell : *Education in India*, p. 1.

3. बनारस संस्कृत कॉलिज : Benares Sanskrit College—इस संस्था की स्थापना, बनारस राज्य के रेजीडेन्ट, जोनाथन डंकन (Jonathan Duncan) के व्यक्तिगत प्रयत्न के परिणामस्वरूप 1791 में हुई। इस संस्था में "मनुस्मृति" के

अनुसार हिन्दू-धर्म-सिद्धान्त, न्याय, क़ानून, गणित, इतिहास, तर्कशास्त्र और दर्शनशास्त्र की शिक्षा दी जाती थी।

जिस दृष्टि से मुसलमान नवयुवकों के लिए "कलकत्ता मदरसा" की स्थापना की गई थी, उसी दृष्टि से हिन्दू नवयुवकों के लिए "बनारस संस्कृत कॉलेज" की सृष्टि की गई थी। दूसरे शब्दों में, मुसलमान नवयुवकों को मुस्लिम क़ानूनों और हिन्दू नवयुवकों को हिन्दू कानूनों में विशेष योग्यता प्रदान करके, अंग्रेज न्यायाधीशों को सहायता देने के लिए तैयार किया जाता था।

किन्तु, वास्तव में जिस प्रकार "कलकत्ता मदरसा" की स्थापना, मुसलमानों को प्रसन्न करने के लिए की गई थी, उसी प्रकार "बनारस संस्कृत कॉलेज" का शिलान्यास, हिन्दुओं को संतुष्ट करने के लिए किया गया था। नूरुल्ला व नायक के शब्दों में —"बनारस संस्कृत कॉलेज की स्थापना, कम्पनी के नवविजित प्रदेशों की हिन्दू जनता की सद्भावना प्राप्त करने के प्रयास के परिणामस्वरूप की गई थी।"

"The *Benares Sanskrit College* was an attempt to conciliate the Hindu population of the newly acquired territories of the Company "—Nurullah & Naik : *op cit.*, p. 58

4. फ़ोर्ट विलियम कॉलेज : Fort William College—इस संस्था की सृष्टि भारत के तत्कालीन गवर्नर-जनरल, लार्ड वेलेज़ली (Lord Wellesley) द्वारा 1800 में कलकत्ता नगर में की गई। इस संस्था की सृष्टि का मुख्य उद्देश्य बताते हुए, **टी० एन० सिक्वेरा ने लिखा है :—"यह कॉलेज कम्पनी के असैनिक कर्मचारियों के लिए था और उनको भारतीय भाषाओं, हिन्दी, मुस्लिम क़ानून एवं भारतीय इतिहास की शिक्षा प्रदान करना था।"**

इस कॉलेज में डा० केरे (Carey), कोलब्रुक (Colebrooke) और पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर जैसे सुविख्यात मनीषी, शिक्षा देने का कार्य करते थे। डा० गिलक्राइस्ट (Gilchrist) ने, जिनको आधुनिक उर्दू का जन्मदाता कहा जाता है, *इस कॉलेज के प्रिंसिपल के रूप में सन् 1804 से 1820 तक कार्य किया।*

5. पूना संस्कृत कॉलेज Poona Sanskrit College—सन् 1818 में अंग्रेज़ों ने अन्तिम पेशवा के राज्य का अन्त करके, बम्बई प्रेसीडेन्सी का निर्माण किया। इस घटना के एक वर्ष बाद पूना का रेज़ीडेन्ट, एल्फ़िन्स्टन (Elphinstone) इस नव-निर्मित प्रेसीडेन्सी का गवर्नर नियुक्त हुआ। पूना में कुछ समय तक निवास करने के कारण, वह इस तथ्य से अवगत था कि पेशवागण अपने दक्षिणा-कोष से लगभग 5 लाख रुपया प्रति वर्ष ब्राह्मणों को दक्षिणा के रूप में देते थे।

एल्फ़िन्स्टन ने दक्षिणा-कोष के कुछ अंश की सहायता से सन् 1821 में "पूना संस्कृत कॉलेज" की स्थापना की। राजनीति-निपुण एल्फ़िन्स्टन का इस संस्था को स्थापित करने का मुख्य उद्देश्य—*दक्षिण के प्रभावशाली ब्राह्मणों को संतुष्ट*

करना था। डा० श्रीधरनाथ मुखोपाध्याय के अनुसार :—"इस संस्था को खोलने का मुख्य उद्देश्य एल्फ़िन्स्टन का यह था कि पेशवा राज्य का अन्त हो जाने के कारण ब्राह्मणों में असंतोष न फैले।"

1813 का आज्ञा-पत्र
Charter of 1813

इंगलिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के "आज्ञा-पत्र" का प्रत्येक 10 वर्ष के पश्चात् ब्रिटिश लोकसभा द्वारा पुनरावर्तन किया जाता था। इस उद्देश्य से सन् 1813 में "आज्ञा-पत्र" को लोक-सभा के समक्ष प्रस्तुत किया गया। उस अवसर पर घोर विरोध होते हुए भी ग्रांट और विल्बरफ़ोर्स के दल को विजय प्राप्त हुई। 1813 के "आज्ञा-पत्र" में अग्रांकित धारा को जोड़कर, भारत में शिक्षा-प्रसार का उत्तरदायित्व कम्पनी के ऊपर रखा गया :—"साहित्य के पुनरुद्धार और समुन्नति के लिए, भारतीय विद्वानों को प्रोत्साहित करने के लिए और भारत के ब्रिटिश प्रदेशों के निवासियों में विज्ञानों के ज्ञान का प्रसार एवं विकास करने के लिए प्रति वर्ष कम-से-कम एक लाख रुपए की धनराशि पृथक् रखी जायगी और व्यय की जायगी।"

"A sum of not less than one lac of rupees in each year shall be set apart and applied to the revival and improvement of literature and encouragement of the learned natives of India and for the introduction and promotion of knowledge of sciences among the inhabitants of the British territories in India."—Charter of **1813**, Section 43.

इस धारा का भारतीय शिक्षा के इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसके कारण ग्रांट और विल्बरफ़ोर्स द्वारा लगभग बीस वर्ष तक चलाए जाने वाले आन्दोलन की इतिश्री हुई। इसने भारतीयों की शिक्षा को कम्पनी का उत्तरदायित्व बताया। इसने भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा-प्रणाली का सूत्रपात करके, भारतीय शिक्षा को एक नई दिशा में मोड़ा। नूरुल्ला व नायक के अनुसार :—"**1813** के आज्ञा-पत्र भारतीय शिक्षा के इतिहास को एक नई दिशा में मोड़ा।"

"The Charter Act of 1813 forms a turning point in the history of Indian education."—Nurullah & Naik : *op. cit.*, p. 82.

उपसंहार

भारत के निवासियों को आशा थी कि 1813 के "आज्ञा-पत्र" में जोड़ी जाने वाली नवीन धारा से उन्हें शिक्षा की अधिक उत्तम सुविधाएँ उपलब्ध हो जायेंगी। परन्तु, उनकी आशा पर तुषारापात हो गया। इसका कारण यह था कि "धारा" में एक लाख रुपए की धनराशि को व्यय करने की विधि का और "साहित्य" शब्द के अर्थ का स्पष्टीकरण नहीं किया गया था।

इन दोनों प्रश्नों को लेकर, कम्पनी के कर्मचारियों में विवाद आरम्भ हो गया। फलस्वरूप, 1813 से 1833 तक कम्पनी ने किसी निश्चित शिक्षा-नीति का अनुसरण नहीं किया। तथापि, इस अवधि के अन्तिम दस वर्षों की एक विशेषता अंकित करने के योग्य है। टी० एन० सिक्वेरा के शब्दों में यह विशेषता अग्रांकित है :—"1823 और 1833 के बीच में शिक्षा की एकाकी महत्वपूर्ण विशेषता—अरबी या संस्कृत की अपेक्षा उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी की बढ़ती हुई लोकप्रियता है।"

"The only important feature of education between *1823* and 1833 is the increasing popularity of English as a medium of higher education in preference to Arabic or Sanskrit."—T. N. Siqueira : *op. cit.*, pp 30-31.

UNIVERSITY QUESTIONS

1 Discuss briefly the educational policy of the English East India Company between *1765* and 1833.
1765 से 1833 तक इंगलिश ईस्ट इंडिया कम्पनी की शिक्षा-नीति का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

2 Write short notes on :—(a) Charity Schools, (*b*) Calcutta Madarassah, (c) Benares Sanskrit College, and (d) Charter of *1813*.
संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :—(अ) धर्मार्थ विद्यालय, (ब) कलकत्ता मदरसा, (स) बनारस संस्कृत कॉलेज, और (द) 1813 का आज्ञा-पत्र।

3. "The Charter Act of 1813 forms a turning point in the history of Indian education." Discuss
"1813 के आज्ञा-पत्र ने भारतीय शिक्षा के इतिहास को एक नई दिशा में मोड़ा।" समीक्षा कीजिए।



प्राच्य-पाश्चात्य-विवाद, मैकॉले का विवरण-पत्र व निस्यन्दन-सिद्धान्त

ORIENTAL-OCCIDENTAL CONTROVERSY, MACAULAY'S MINUTE & FILTRATION THEORY

"All the funds appropriated for the purposes of Education would be best employed on English education alone."—*Government Proclamation of 1835.*

विषय-प्रवेश

1813 के "आज्ञा-पत्र" की 43वीं धारा ने भारतीयों की शिक्षा का उत्तरदायित्व कम्पनी पर रखा और उसे उनकी शिक्षा पर प्रति वर्ष कम-से-कम एक लाख रुपये की धनराशि व्यय करने का आदेश दिया। किन्तु "धारा" में इस बात का स्पष्टीकरण नहीं किया गया था कि वह धनराशि किस प्रकार की शिक्षा पर व्यय की जाय—प्राच्य शिक्षा पर या पाश्चात्य शिक्षा पर? फलतः इस प्रश्न को लेकर, कम्पनी के कर्मचारियों में शिक्षा के स्वरूप के विषय में विवाद उठ खड़ा हुआ। इस विवाद को "प्राच्य-पाश्चात्य-विवाद" की संज्ञा दी गई है। इस विवाद में भाग लेने वाले दो मुख्य दल थे—प्राच्यवादी और पाश्चात्यवादी (Orientalists & Occidentalists)।

विवाद का मुख्य कारण
Main Cause of Controversy

विवाद का मुख्य कारण—1813 के "आज्ञा-पत्र" की 43वीं धारा में प्रयोग किये गये दो शब्द थे—"साहित्य" और "भारतीय विद्वान्।" प्राच्यवादियों और

पाश्चात्यवादियों ने इन दोनों शब्दों की व्याख्या दो विभिन्न प्रकार से की। इस व्याख्या पर प्रकाश डालते हुए, डा० श्रीधरनाथ मुखोपाध्याय ने लिखा है :—"प्राच्यवादियों का कहना था कि इस धारा के 'साहित्य' शब्द के अन्तर्गत आते हैं—केवल 'अरबी और संस्कृत साहित्य', एवं 'भारतीय विद्वान्' का अर्थ है—इन दोनों भाषाओं में से किसी भी एक भाषा का भारतीय विद्वान्। पाश्चात्यवादियों का मत था कि इन दोनों शब्दों का अर्थ इतना संकीर्ण नहीं है। 'साहित्य' में अंग्रेजी का भी विशेष स्थान है।"

प्राच्यवादी : Orientalists

प्राच्यवादी दल में कम्पनी के पुराने और अनुभवी कर्मचारी थे। इनमें सर्वप्रथम स्थान, वारेन हेस्टिंग्ज और जोनेथन डंकन का था, जिन्होंने "कलकत्ता मदरसा" और "बनारस संस्कृत कॉलेज" की सृष्टि करके, प्राच्यवादी नीति के पक्ष में अपना मत प्रकट किया था। लार्ड मिन्टो भी इसी नीति का पोषक था। इस नीति को बंगाल की "लोक-शिक्षा-समिति" (General Council of Public Instruction) के अधिकांश सदस्यों का समर्थन प्राप्त था। इन सदस्यों में दो मुख्य थे—"समिति" का मन्त्री, विल्सन (H. H. Wilson) और बंगाल का शिक्षा-सचिव, प्रिन्सेप (H. T. Prinsep)। प्रिन्सेप—प्राच्यवादी दल का नेता भी था।

कम्पनी के उपरिलिखित सभी कर्मचारी और प्राच्यवादी-नीति के अन्य पोषक, उच्च कोटि के कूटनीतिज्ञ थे। उनकी धारणा थी कि भारतवासियों को विभाजित रख कर ही उन पर शासन किया जा सकता था। अतः वे इस देश के निवासियों को अरबी, फारसी और संस्कृत पर आधारित शिक्षा प्रदान करके, विभिन्न धर्मों और जातियों में विभाजित रखना चाहते थे। विल्सन इस बात का घोर विरोधी था कि भारतीय, अंग्रेजी की शिक्षा प्राप्त करके, उसके देशवासियों से समानता करने का दावा करें। प्रिन्सेप का दृढ़ विचार था कि भारतीयों में अंग्रेजी पर अधिकार प्राप्त करने की क्षमता नहीं है।

अन्य प्राच्यवादियों ने भारतीयों को अंग्रेजी की शिक्षा दिए जाने के विपक्ष में तीन तर्क प्रस्तुत किये। पहला, भारत में पाश्चात्य ज्ञान और विज्ञानों का प्रसार करने से इस देश की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का लोप हो जायगा। दूसरा, भारत में अंग्रेजी शिक्षा को प्रोत्साहन देने से उस भारतीय साहित्य का विनाश हो जायगा, जिसमें अनेक युगों का ज्ञान संचित है। तीसरा, टी० एन० सिरवेरा के अनुसार —"जब भारतीयों की अपनी स्वयं की एक प्राचीन और भव्य संस्कृति है, तब उनको अन्य देश की भाषा और साहित्य का ज्ञान प्राप्त करने के लिए बाध्य करना दोषपूर्ण नीति है।"

प्राच्यवादियों ने उपर्युक्त तर्क उपस्थित करके, इस बात ... कर दिया कि भारतीयों की प्राचीन शिक्षा, साहित्य और संस्कृति को [illegible] ... स्यक है।

अत: उनकी शिक्षा-प्रणाली को प्रोत्साहित किया जाय और उनमें पाश्चात्य ज्ञान का कदापि प्रसार न किया जाय।

पाश्चात्यवादी : Occidentalists

पाश्चात्यवादी दल में कम्पनी के नवयुवक कर्मचारी और मिशनरी थे। वे सम्पूर्ण देश में यत्र-तत्र बिखरे हुए थे। इसलिए उनके दल का न तो कोई संगठित स्वरूप था और न उनका कोई नेता ही था। फिर भी, उन्होंने प्राच्यवादियों की नीति का जम कर विरोध किया। उन्होंने यह विचार प्रकट किया कि प्राच्य-शिक्षा-प्रणाली मरणासन्न अवस्था को प्राप्त कर चुकी है और उसे पुनर्जीवन प्रदान करना मानव-प्रयास से बाहर की बात है। इसके अतिरिक्त, उन्होंने यह घोषित किया कि अरबी, फ़ारसी और संस्कृत के साहित्यों में पुरातन और निरर्थक विचारों के सिवा किसी प्रकार का उपयोगी ज्ञान नहीं मिलता है। अत: भारतीयों का मानसिक विकास करने के लिए, उनको अंग्रेज़ी के माध्यम से पाश्चात्य ज्ञान और विज्ञानों से अवगत कराया जाना परम आवश्यक है।

यहाँ इस बात का उल्लेख करना असंगत न होगा कि पाश्चात्यवादियों ने भारतीयों में यूरोपीय ज्ञान और विज्ञानों के प्रसार का समर्थन किसी निस्स्वार्थ भावना से नहीं, वरन् निज हित की भावना से प्रेरित होकर किया। उन्हें अपने व्यापारिक और प्रशासकीय कार्यालयों के लिए अंग्रेज़ी शिक्षित "बाबू-वर्ग" की आवश्यकता थी। उन्हें यह बात असह्य थी कि उनके देशवासी, इंगलैंड से आकर इस निम्न वर्ग में सम्मिलित हों। अत: उन्होंने यही अधिक विवेकपूर्ण समझा कि भारत में अंग्रेज़ी शिक्षा का प्रसार करके "बाबू-वर्ग" का निर्माण किया जाय।

इस प्रकार, प्राच्यवादियों और पाश्चात्यवादियों का विवाद 1834 तक चलता रहा। अन्त में, जनवरी, 1835 में "लोक-शिक्षा-समिति" के मन्त्री ने दोनों दलों के वक्तव्यों को भारत के तत्कालीन गवर्नर-जनरल, लार्ड विलियम बैंटिक (Bentinck) के सम्मुख निर्णयार्थ प्रस्तुत किया।

मैकॉले का विवरण-पत्र, 1835
Macaulay's Minute, 1835

10 जून, 1834 को लार्ड मैकॉले (Macaulay) ने गवर्नर-जनरल की कौंसिल के "कानून-सदस्य" के रूप में भारत में पदार्पण किया। उस समय तक "प्राच्य-पाश्चात्य-विवाद" उग्रतम रूप धारण कर चुका था। बैंटिक का विश्वास था कि मैकाले जैसा प्रकाण्ड विद्वान् ही इस विवाद को समाप्त कर सकता था। इस विचार से उसने मैकाले को बंगाल की 'लोक-शिक्षा-समिति" का सभापति नियुक्त किया। फिर, उसने मैकाले से 1813 के "आज्ञा-पत्र' की 43वीं धारा में अंकित एक लाख रुपये की धनराशि को व्यय करने की विधि और अन्य विवादग्रस्त विषयों के सम्बन्ध में क़ानूनी सलाह देने का अनुरोध किया। साथ ही, उसने "समिति" के

मन्त्री को प्राच्यवादी और पाश्चात्यवादी दलों के वक्तव्यों को मैकॉले के समक्ष उपस्थित करने का आदेश दिया।

मैकॉले ने सर्वप्रथम "आज्ञा-पत्र" की उक्त धारा और दोनों दलों के वक्तव्यों का सूक्ष्म अध्ययन किया। तदुपरान्त, उसने तर्कपूर्ण और बलवती भाषा में अपनी सलाह को अपने प्रसिद्ध "विवरण-पत्र" में लेखबद्ध करके, 2 फ़रवरी, 1835 को बैंटिंक के पास भेज दिया। हम मैकॉले के 'विवरण-पत्र" के दो प्रमुख अंशों का वर्णन कर रहे हैं; यथा :—

(1) 43वीं धारा की व्याख्या
Interpretation of 43rd Section

मैकॉले ने अपने "विवरण-पत्र" में 1813 के "आज्ञा-पत्र" की 43वीं धारा की निम्नलिखित प्रकार से व्याख्या की :—

1. एक लाख रुपए की धनराशि व्यय करने के लिए सरकार पर कोई प्रतिबन्ध नहीं है। वह इस धनराशि को अपनी इच्छानुसार किसी प्रकार भी व्यय कर सकती है।
2. "साहित्य" शब्द के अन्तर्गत केवल अरबी और संस्कृत साहित्य ही नहीं, अपितु अंग्रेज़ी साहित्य भी सम्मिलित किया जा सकता है।
3. "भारतीय विद्वान्"—मुसलमान मौलवी एवं संस्कृत के पण्डित के अलावा अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य का विद्वान् भी हो सकता है।

(2) अंग्रेज़ी के पक्ष में तर्क
Arguments in Favour of English

"आज्ञा-पत्र" की 43वीं धारा की व्याख्या करने के बाद, मैकॉले ने प्राच्य-शिक्षा एवं साहित्य का प्रबल खण्डन और अंग्रेज़ी के माध्यम से पाश्चात्य ज्ञान और विज्ञानों की शिक्षा का शक्तिशाली समर्थन किया। सर्वप्रथम मैकॉले ने भारतीय भाषाओं को अध्ययन के लिए, पूर्णतया निरर्थक बताते हुए लिखा —"भारत के निवासियों में प्रचलित देशी भाषाओं में साहित्यिक तथा वैज्ञानिक ज्ञान-कोष का अभाव है, और वे इतनी अविकसित तथा गंवारू हैं कि जब तक उनको बाह्य-भण्डार से सम्पन्न नहीं किया जायगा, तब तक उनमें किसी भी महत्वपूर्ण पुस्तक का सरलता से अनुवाद न हो सकेगा।"

भारतीय भाषाओं की [illegible] करने के पश्चात्, मैकॉले ने अरबी, फारसी और संस्कृत की अपेक्षा [illegible] उच्च स्थान देते हुए लिखा :— "एक अच्छे यूरोपीय पुस्तकालय की एक अल्मारी का भारत और अरब के सम्पूर्ण साहित्य से कम महत्त्व नहीं है।

"A single shelf of a good European library was worth the whole native literature of India and Arabia."—Macaulay's *Minute*.

इस प्रकार, अरबी, फ़ारसी और संस्कृत को अध्ययन-क्षेत्र से बाहर निकाल कर, मैकाले ने अंग्रेजी को उनकी अपेक्षा अधिक समृद्ध बताया और उसके अध्ययन के पक्ष में निम्नलिखित तर्क दिए :—

1. अरबी और संस्कृत की तुलना में अंग्रेजी अधिक उपयोगी है, क्योंकि यह नवीन ज्ञान की कुंजी है।
2. अंग्रेजी इस देश के शासकों की भाषा है, भारत के उच्च वर्गों द्वारा बोली जाती है और पूर्वी समुद्रों में व्यापार की भाषा बन सकती है।
3. जिस प्रकार लैटिन एवं यूनानी भाषाओं से इंगलैंड में, और पश्चिमी यूरोप की भाषाओं से रूस में पुनरुत्थान हुआ, उसी प्रकार अंग्रेजी से भारत में होगा।
4. भारतवासी—अरबी और संस्कृत की शिक्षा की अपेक्षा अंग्रेजी की शिक्षा के लिए अधिक उत्कंठित हैं।
5. भारतवासियों को अंग्रेजी का अच्छा विद्वान् बनाया जा सकता है और हमारे प्रयास इसी दिशा में होने चाहिए।
6. अंग्रेजी की शिक्षा द्वारा इस देश में एक ऐसे वर्ग का निर्माण किया जा सकता है, जो रक्त और रंग में भले ही भारतीय हो, पर रुचियों विचारों, नैतिकता और विद्वता में अंग्रेज होगा।

   "It is possible through English education to bring about a class of persons, Indian in blood and colour, but English in tastes, in opinions, in morals and in intellect."—Macaulay. H. Sharp, ed. 'Macaulay's Minute's, *Selection from Educational Records*, Part I, p. 117.

उपर्युक्त तर्कों के आधार पर मैकाले ने यह मत व्यक्त किया कि प्राच्य-शिक्षा की संस्थाओं पर धन व्यय करना मूर्खता है और उनको बन्द कर दिया जाय। इसके स्थान पर अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करने के लिए संस्थाओं की सृष्टि की जाय। अंग्रेजी भाषा का गुणगान और समर्थन करते हुए, मैकाले ने कहा :—"अंग्रेजी पश्चिम की भाषाओं में भी सर्वोपरि है। जो व्यक्ति अंग्रेजी भाषा जानता है, वह उस विशाल ज्ञान-भण्डार को सुगमता से प्राप्त कर लेता है, जिसकी विश्व की सबसे बुद्धिमान जातियों ने रचना की है।"

"English stands pre-eminent even among the languages of the West. Whoever knows the English language has ready access to all the vast intellectual wealth, which all the wisest nations of the earth have created."—Macaulay's *Minute*.

धनराशि देने की घोषणा की। इस घोषणा ने प्राच्यवादियों को प्रसन्न कर दिया। फलस्वरूप, लम्बे काल से चले आने वाले विवाद का अन्त हो गया। डा० एस० एन० मुकर्जी के शब्दों में :—"लार्ड ऑकलैंड को इस बात का अभिमान था कि उसने 31,000 रुपए प्रति वर्ष की मामूली रकम अधिक व्यय करके, उत्तेजित विवाद का अन्त कर दिया।"

"Lord Auckland could boast that with an additional expenditure of a meagre sum of Rs. 31,000 per year, he could close a heated controversy."—Dr. S. N. Mukerji : *History of Education in India*, p. 96.

निस्यन्दन-सिद्धान्त : Filtration Theory

1. सिद्धान्त का अर्थ—अंग्रेजी के "Filtration" शब्द का अर्थ है—"निस्यन्दन" अर्थात् "छानने की क्रिया"। व्यापारियों की कम्पनी होने के कारण, वह भारतीयों की शिक्षा पर कम-से-कम धन व्यय करना चाहती थी। अतः उसने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि शिक्षा का नियोजन केवल उच्च वर्गों के व्यक्तियों के लिए किया जाय, क्योंकि शिक्षा इन वर्गों के व्यक्तियों से छन-छन कर स्वयं ही निम्न वर्गों के व्यक्तियों तक पहुँच जायगी। इस सिद्धान्त के अर्थ का स्पष्टीकरण करते हुए, आर्थर मेह्यू ने लिखा है :—"शिक्षा ऊपर से प्रवेश करके, जनसाधारण तक पहुँचनी थी। लाभप्रद ज्ञान, भारत के सर्वोच्च वर्गों से बूँद-बूँद करके नीचे टपकना था।"

"Education was to permeate the masses from above Drop by drop from the Himalayas of the Indian life useful information was to trickle downwards."—Arthur Mayhew : *The Education of India*, p. 92.

2. सिद्धान्त के समर्थक—"निस्यन्दन-सिद्धान्त" के समर्थकों में थे—ईसाई मिशनरी, बम्बई के गवर्नर की कौंसिल का सदस्य, फ्रांसिस वार्डन (Francis Warden), कम्पनी के संचालक और मैकाले।

(i) ईसाई-मिशनरियों का आग्रह था कि यदि भारत के उच्च वर्गों के हिन्दुओं को अंग्रेजी की शिक्षा देकर, ईसाई-धर्म का अवलम्बी बना लिया जायगा, तो निम्न वर्ग के व्यक्ति उनके उदाहरण से प्रभावित होकर स्वयं ही ईसाई-धर्म में दीक्षित हो जायेंगे।

(ii) फ्रांसिस वार्डन ने 23 दिसम्बर, 1823 के अपने "विवरण-पत्र" में यह विचार व्यक्त किया :—"बहुत-से व्यक्तियों को थोड़ा-सा ज्ञान देने के बजाय थोड़े-से व्यक्तियों को बहुत-सा ज्ञान देना अधिक उत्तम और निरापद है।"

(iii) कम्पनी के संचालकों ने 29 सितम्बर, 1830 के अपने "आदेश-पत्र" में मद्रास के गवर्नर को यह परामर्श दिया :—"शिक्षा की प्रगति उसी समय हो सकती है, जब उच्च वर्ग के उन व्यक्तियों को शिक्षा दी जाय, जिनके पास अवकाश है और जिनका अपने देश के निवासियों पर प्रभाव है।"

(iv) मैकाले ने अपने 1835 के "विवरण-पत्र" में "निस्यन्दन-सिद्धान्त" का समर्थन करते हुए लिखा :—"हमें इस समय एक ऐसे वर्ग का निर्माण करने का पूरा पूरा प्रयत्न करना चाहिए, जो हमारे और उन लोगों के बीच में दुभाषिए का काम करे, जिन पर हम शासन करते हैं।"

3. ऑकलैंड द्वारा सिद्धान्त को स्वीकृति—भारत के तत्कालीन गवर्नर जनरल, लार्ड ऑकलैंड ने "निस्यन्दन-सिद्धान्त" को शिक्षा की सरकारी नीति के रूप में स्वीकार किया और 24 नवम्बर, 1839 के अपने "विवरण-पत्र" द्वारा अप्रासित घोषणा की :—"सरकार के प्रयास समाज के उन उच्च वर्गों में उच्च शिक्षा का प्रसार करने तक सीमित रहने चाहिए, जिनके पास अध्ययन के लिए अवकाश है और जिनकी संस्कृति छन-छन कर जनसाधारण तक पहुँचेगी।"

"Attempts of Government should be restricted to the extension of higher education to the upper classes of society who have leisure for study and whose culture would filter down to the masses"—Auckland's *Minute*, 1839.

4. परिणाम व असफलता—सरकारी नीति के रूप में "निस्यन्दन-सिद्धान्त" ने भारतीय शिक्षा के स्वरूप को 1854 तक के लिए निश्चित कर दिया। इस नीति का कम्पनी के कर्मचारियों ने हार्दिक स्वागत किया। फलस्वरूप, देश में अंग्रेजी की उच्च शिक्षा के प्रसार में तीव्रता आ गई।

किन्तु, ऑकलैंड ने जिस उद्देश्य से "निस्यन्दन-सिद्धान्त" को शिक्षा की सरकारी नीति के रूप में घोषित किया था, उसकी प्राप्ति में सफलता नहीं मिली। शिक्षा, उच्च वर्गों से छन-छन कर निम्न वर्गों तक नहीं पहुँच सकी। इसका मुख्य कारण यह था कि जिन व्यक्तियों को अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त करने के बाद सरकारी नौकरियाँ मिल जाती थीं, उनके विचारों, आदर्शों और मान्यताओं में आमूल परिवर्तन हो जाता था। साथ ही, उनमें श्रेष्ठता की एक ऐसी भावना का उदय हो जाता था, जिसके कारण वे निम्न वर्गों से सम्पर्क स्थापित करने में अपनी मान-हानि समझते थे।

कुछ समय के पश्चात् अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के एक पृथक् वर्ग का निर्माण हो गया, जिसका अपने निर्धन देशवासियों से पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद था। भारत के दुर्भाग्य से, सरकार के टुकड़ों पर पलने वाले इसी वर्ग के व्यक्तियों ने राष्ट्रीय आन्दोलन के समय अपने देशवासियों पर अकथनीय अत्याचार करके अपनी स्वामी-भक्ति का प्रमाण दिया। उनके इसी कार्य से क्षुब्ध होकर जवाहरलाल नेहरू ने पराधीन भारत में लिखा था :—"अंग्रेजों ने भारत में एक नवीन वर्ग का निर्माण किया था। यह अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त वर्ग था, जो जनसाधारण से पृथक् अपने स्वयं के संसार में रहता था और अपने शासकों की कृपा प्राप्त करने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहता था।"

"The British had formed a new class in India, the English educated class, which lived in a world of its own, cut off from the mass of the population, and looked always towards its rulers"—Jawaharlal Nehru : *Discovery of India*, pp. 413-414.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. What were the main causes of the Oriental-Occidental Controversy ? How was it brought to a close ?
   प्राच्य-पाश्चात्य-विवाद के मुख्य कारण क्या थे ? इसका अन्त किस प्रकार किया गया ?
2. "Macaulay's *Minute* gave a new direction to the History of Education in India." Comment.
   मैकॉले के विवरण-पत्र ने भारत में शिक्षा के इतिहास को एक नई दिशा प्रदान की।" आलोचना कीजिए।
3. Write short notes on :—(a) Filtration Theory, (b) Orientalists and Occidentalists, and (c) Government Proclamation of 1835.
   अधोंकित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :—(अ) निस्यन्दन-सिद्धान्त, (ब) प्राच्यवादी और पाश्चात्यवादी, और (स) 1835 की सरकारी घोषणा।



वुड का आदेश-पत्र, 1854
WOOD'S DESPATCH, 1854

"Wood's Despatch is the Magna Charta of Education in India."—H. R James.

विषय-प्रवेश

भारतीय शिक्षा के इतिहास में 1833 से 1853 की अवधि को शिक्षा के अंग्रेजीकरण की अवधि कहा जाता है। बैंटिक की 1835 को "विज्ञप्ति" ने अंग्रेजी के माध्यम से पाश्चात्य शिक्षा के प्रसार को सरकार की शिक्षा-नीति बनाया। इस नीति को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए "लोक-शिक्षा-समिति" ने अंग्रेजी की शिक्षा देने के लिए, संस्थाओं का नव-निर्माण किया। 1833 के "आज्ञा-पत्र" ने भारत के सिंहद्वार सब देशों के मिशनरियों के लिए खोल दिए। अतः अंग्रेज मिशनरियों के अलावा अन्य देशों के मिशनरियों ने भी भारत में अंग्रेजी की शिक्षा के लिए मिशन स्कूलों और कॉलिजों की स्थापना की।

इन सब कार्यों के फलस्वरूप 1853 के अन्त तक भारत में अंग्रेजी के माध्यम से अंग्रेजी शिक्षा का आधिपत्य स्थापित हो गया। इस अवधि की इन दो विशेषताओं के साथ-साथ कुछ अन्य विशेषताओं का उल्लेख करते हुए, डा० श्रीधरनाथ मुखोपाध्याय ने लिखा है :—"शिक्षा-छनाई सिद्धान्त का बोलबाला रहा, जन-शिक्षा असम्भव मानी गई एवं देशी शिक्षा कुचल दी गई, पाश्चात्य शिक्षा का आदर बढ़ा, प्राच्य विद्या निरर्थक मानी गई, शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी हुआ, सांस्कृतिक एवं लोकभाषाएँ निकम्मी ठहराई गई।"

वुड के आदेश-पत्र का मूल कारण
Origin of Wood's Despatch

1853 में इंग्लिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के 'आज्ञा-पत्र" के पुनरावर्तन का

अवसर आया। उस अवसर पर ब्रिटिश लोकसभा ने यह निश्चय किया कि भारतीय शिक्षा की प्रमुख समस्याओं का समाधान किया जाना अनिवार्य था। इस विचार से प्रेरित होकर, लोकसभा ने एक "जाँच-समिति" की नियुक्ति की और उसे भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में अपने सुझाव देने का आदेश दिया। इस "समिति" के सुझावों के आधार पर कम्पनी के संचालकों ने 19 जुलाई, 1854 को एक आदेश-पत्र में अपनी भारतीय शिक्षा की नीति का प्रकाशन किया। उस समय सर चार्ल्स वुड (Sir Charles Wood) कम्पनी के "बोर्ड ऑफ़ कन्ट्रोल" (Board of Control) का सभापति था। अतः आदेश-पत्र को उसी के नाम पर वुड का आदेश-पत्र" (Wood's Despatch) कहा गया। यह सौ अनुच्छेदों का लम्बा लेख-पत्र है, जिसमें भारतीय शिक्षा के अंग-प्रत्यंग पर विचार किया गया है और उनके सम्बन्ध में विस्तृत एवं महत्त्वपूर्ण सिफ़ारिशें की गई हैं।

आदेश-पत्र के सुझाव व सिफ़ारिशें

Suggestions & Recommendations of the Despatch

हम "वुड के आदेश-पत्र" में लिखित महत्त्वपूर्ण सिफ़ारिशों का निम्नांकित स्तम्भों में क्रमबद्ध वर्णन कर रहे हैं :—

1. शिक्षा का उत्तरदायित्व : Responsibility of Education—"आदेश-पत्र" में यह स्वीकार किया गया कि भारत में शिक्षा का प्रसार करने का उत्तर-दायित्व कम्पनी पर है। इस उत्तरदायित्व को पुनीत कर्त्तव्य बताते हुए, "आदेश-पत्र" में कहा गया :—"अनेक महत्त्वपूर्ण विषयों में से कोई भी विषय हमारे ध्यान को इतना आकृष्ट नहीं करता है, जितना कि शिक्षा। यह हमारे सबसे अधिक पुनीत कर्त्तव्यों में से एक है।"

2. शिक्षा के उद्देश्य : Aims of Education—"आदेश-पत्र" ने भारतीयों की शिक्षा के अग्रांकित चार उद्देश्य घोषित किए :—(1) भारतीयों में शिक्षा का प्रसार करके, उनकी मानसिक और चारित्रिक उन्नति करना; (2) भारतीयों को पाश्चात्य ज्ञान से अवगत कराके, उनकी भौतिक समृद्धि करना; (3) भारतीयों को राजपदों के लिए सुयोग्य व्यक्ति बनाना; और (4) भारतीयों को अपने देश को समृद्धशाली बनाने में सहायता देना।

3. पाठ्यक्रम : Curriculum—"आदेश-पत्र" ने अरबी, फ़ारसी और संस्कृत को उपयोगी बताते हुए, उनको पाठ्यक्रम में स्थान दिया। किन्तु, भारतीयों के लिए यूरोप के समुन्नत कला-कौशल, विज्ञान, दर्शन और साहित्य को अधिक उप-योगी बताकर, पाठ्यक्रम में विशेष स्थान प्रदान किया गया। इन विषयों को यूरोपीय ज्ञान की संज्ञा देते हुए, "आदेश-पत्र" में घोषित किया गया :—"हम बलपूर्वक घोषित करते हैं कि हम भारत में जिस शिक्षा का प्रसार देखना चाहते हैं, वह है—यूरोपीय ज्ञान।"

4. शिक्षा का माध्यम : Medium of Instruction—"आदेश-पत्र" ने अंग्रेजी का समुचित ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों के लिए अंग्रेजी को और अन्य व्यक्तियों के लिए देशी भाषाओं को शिक्षा का माध्यम निश्चित किया। इस प्रकार, अंग्रेजी और देशी भाषाओं—दोनों को शिक्षा का माध्यम निश्चित करते हुए, "आदेश-पत्र" ने यह आशा प्रकट की :—"हम यूरोपीय ज्ञान के प्रसार के लिए अंग्रेजी भाषा और भारत की देशी भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के रूप में साथ-साथ देखने की आशा करते हैं।"

"We look to the English language and to the Vernacular languages of India together as the media for the diffusion of European knowledge."—Wood's *Despatch*.

5. शिक्षा-विभागों की स्थापना : Establishment of Education Departments—"आदेश-पत्र" ने सुझाव दिया कि प्रान्तीय बोर्डों और शिक्षा-समितियों (Provincial Boards & Councils of Education) को भंग करके भारत के पाँचों प्रान्तों (पंजाब, बंगाल, मद्रास, बम्बई और उत्तरी-पश्चिमी प्रदेश) में एक-एक लोक-शिक्षा-विभाग (Department of Public Instruction) की स्थापना की जाय। इस विभाग के संचालन का सम्पूर्ण भार लोक-शिक्षा-संचालक (Director of Public Instruction) पर रखा जाय। उसे अपने कार्य में सहायता देने के लिए उपशिक्षा-संचालकों, विद्यालय-निरीक्षकों और सहायक विद्यालय-निरीक्षकों की पर्याप्त संख्या में नियुक्ति की जाय।

6. विश्वविद्यालयों की स्थापना : Establishment of Universities—"आदेश-पत्र" में भारतीयों को उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए मद्रास, बम्बई और कलकत्ता में विश्वविद्यालय स्थापित करने की आज्ञा दी गई। "आदेश-पत्र" में कहा गया कि इन विश्वविद्यालयों का संगठन, लन्दन-विश्वविद्यालय को आदर्श मान कर किया जाय, जो उस समय केवल परीक्षण-संस्था थी।

7. क्रमबद्ध संस्थाओं की स्थापना : Establishment of Graded Institutions—"आदेश-पत्र" में यह मत प्रकट किया गया कि सम्पूर्ण भारत में क्रमबद्ध शिक्षा-संस्थाओं की योजना को क्रियान्वित किया जाय। "आदेश-पत्र" ने इन संस्थाओं के स्वरूप को इस प्रकार निश्चित किया :-

विश्वविद्यालय

कालेज

हाईस्कूल

मिडिल स्कूल

देशी प्राथमिक विद्यालय

8. जन-शिक्षा का विस्तार : Expansion of Mass Education—"आदेश-पत्र" में यह निस्संकोच रूप से स्वीकार किया गया कि कम्पनी ने "निस्यन्दन सिद्धान्त" का अनुसरण करके जन-साधारण की शिक्षा की पूर्ण उपे

"आदेश-पत्र" ने यह सिफ़ारिश की कि सरकार—प्राथमिक शिक्षा पर अधिक धन व्यय करे, प्रत्येक जिले में स्कूलों की स्थापना करे, देशी विद्यालयों का सुधार करे और मेधावी, पर निर्धन छात्रों के लिए छात्रवृत्तियों की व्यवस्था करे, ताकि उनको निम्नतम स्तर से उच्चतम स्तर तक शिक्षा प्राप्त करने में सुविधा मिले।

9. सहायता-अनुदान-प्रणाली : Grants-in-Aid System—"आदेश-पत्र" ने भारत में जन-शिक्षा-कार्य को सफल बनाने के उद्देश्य से शिक्षा-संस्थाओं को आर्थिक सहायता देने के लिए "सहायता-अनुदान-प्रणाली" को प्रचलित करने का सुझाव दिया। उसने यह भी सुझाव दिया कि भवन-निर्माण, छात्रवृत्तियों, पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं, अध्यापकों के वेतन आदि के लिए भी अलग-अलग अनुदान दिए जायँ। "सहायता-अनुदान-प्रणाली" की रूपरेखा का संकेत देते हुए, "आदेश-पत्र" में यह वाक्य अंकित किया गया :—"हमने भारत में उसी सहायता-अनुदान-प्रणाली को अपनाने का निश्चय किया है, जो इस देश में अत्यधिक सफलता से सम्पादित की गई है।"

"We have resolved to adopt in India the system of grants-in-aid which has been carried out in this country (England) with very great success."—Wood's *Despatch*.

10. अध्यापकों का प्रशिक्षण : Training of Teachers—"आदेश-पत्र" ने इस बात पर बल दिया कि अध्यापकों के प्रशिक्षण के लिए विभिन्न प्रकार की प्रशिक्षण-संस्थाओं का शिलान्यास किया जाय। "आदेश-पत्र" ने यह इच्छा व्यक्त की कि छात्रों को प्रशिक्षण-काल में छात्रवृत्तियाँ एवं शिक्षकों को उत्तम वेतन देकर, शिक्षा के व्यवसाय को आकर्षक बनाने की चेष्टा की जाय।

11. व्यावसायिक शिक्षा : Vocational Education—"आदेश-पत्र" में व्यावसायिक शिक्षा की चर्चा करते हुए कहा गया कि भारत में ऐसे स्कूलों और कालिजों की सृष्टि की जाय, जिनमें छात्रों को विभिन्न व्यवसायों की शिक्षा ग्रहण करने की सुविधा मिल सके।

12. स्त्री-शिक्षा : Female Education—"आदेश-पत्र" में यह सिफ़ारिश की गई कि स्त्री-शिक्षा को उदारतापूर्वक सहायता-अनुदान देकर प्रोत्साहित किया जाय। "आदेश-पत्र" में उन व्यक्तियों की सराहना की गई, जिन्होंने स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए धन दिया था।

13. मुसलमानों की शिक्षा : Education of Muslims—"आदेश-पत्र" में यह स्वीकार किया गया कि मुसलमानों की शिक्षा पिछड़ी हुई दशा में थी। अतः उसने दृढ़तापूर्वक कहा कि कम्पनी के अधिकारियों को मुसलमानों की शिक्षा का विस्तार करने के विशेष प्रयत्न करने चाहिए।

14. प्राच्य-साहित्य व देशी भाषाओं को प्रोत्साहन—Encouragement to Oriental Literature & Vernacular Languages—"आदेश-पत्र" में यह

अभिलाषा अक्षरबद्ध की गई कि प्राच्य-साहित्य और देशी भाषाओं को प्रोत्साहि किया जाय। इसके अतिरिक्त, उनमें यह अभिलाषा भी लिपिबद्ध की गई कि देश भाषाओं में पुस्तकों की रचना करवाई जाय, उनके लेखकों को उत्तम पारिश्रमि दिया जाय और पाश्चात्य विज्ञान एवं साहित्य की पुस्तकों का भारतीय भाषाओं मे अनुवाद करवाया जाय।

15 शिक्षा व रोज़गार : *Education & Employment*—"आदेश-पत्र" ने इस बात पर बल दिया कि अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों को सरकारी नौकरियाँ दी जायें। इस सम्बन्ध में कम्पनी के संचालकों की इच्छा को "आदेश-पत्र" में अधोंकित शब्दों में व्यक्त किया गया —"जो बात हम चाहते हैं, वह यह है कि यदि सरकारी नौकरियों के लिए उम्मीदवारों की अन्य योग्यताएँ समान हों, तो उस व्यक्ति की तुलना में जिसने अंग्रेजी की अच्छी शिक्षा प्राप्त नहीं की है, उस व्यक्ति को वरीयता दी जाय, जिसने अच्छी शिक्षा प्राप्त की है।"

"What we desire is that, when other qualifications of the candidates for appointments under government are equal, a person who has received a good education should be preferred to one who has not."—Wood's *Despatch*.

आदेश-पत्र का मूल्यांकन
Estimate of the Despatch

"वुड के आदेश-पत्र" का निष्पक्ष मूल्यांकन करने के लिए उसके गुणों और षों का अवलोकन करना वांछनीय है। अतः हम संक्षेप में उनका उल्लेख कर रहे यथा :—

1 गुण Merits—"आदेश-पत्र" के प्रमुख गुण अधोलिखित हैं —

1 "आदेश-पत्र" ने भारतीय शिक्षा के उद्देश्य का स्पष्टीकरण किया, शिक्षा की नीति का निर्धारण किया और शिक्षा को निश्चित दिशा प्रदान की।

2 "आदेश-पत्र" ने प्राथमिक स्तर से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक की शिक्षा के प्रति ध्यान देकर, क्रमबद्ध शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना का सुझाव दिया।

3 "आदेश-पत्र" ने "निस्यन्दन-सिद्धान्त" को सर्वथा अनुपयुक्त बताकर, जन-शिक्षा को प्रोत्साहन देने वाले सिद्धान्त को मान्यता प्रदान की।

4 "आदेश-पत्र" ने भारतीय भाषाओं के महत्त्व को स्वीकार करके, उनको माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा के माध्यम के पद पर प्रतिष्ठित किया।

5 "आदेश-पत्र" ने भारतीय साहित्य की उपयोगिता को स्वीकार करके, उसको पाठ्यक्रम में उचित स्थान प्रदान किया।

6. "आदेश-पत्र" ने लोक-शिक्षा-विभागों, प्रशिक्षण-संस्थाओं और विश्व-विद्यालयों के नव-निर्माण का सुझाव देकर, भारतीय शिक्षा को विकसित और संगठित करने का उद्योग किया।
7. "आदेश-पत्र" ने व्यावसायिक शिक्षा के लिए स्कूलों और कालिजों की स्थापना का प्रस्ताव प्रस्तुत करके, देश में बढ़ती हुई बेकारी की समस्या का समाधान करने की चेष्टा की।
8. "आदेश-पत्र" ने स्त्रियों और मुसलमानों की शिक्षा का विस्तार करना सरकार का कर्त्तव्य बना कर, उनकी शिक्षा का मार्ग प्रशस्त करने में योग दिया।
9. "आदेश-पत्र" ने सब प्रकार की शिक्षा-संस्थाओं के लिए सहायता अनुदान-प्रणाली का अनुमोदन करके भारतीय शिक्षा के प्रसार में सहायता की।

2. दोष : Defects—उपरिवर्णित गुणों से हमें इस भ्रम में नहीं पड़ना चाहिए कि "आदेश-पत्र" दोषमुक्त था। वस्तुतः उसमें अनेक स्पष्ट दोष थे; यथा :—

1. "आदेश-पत्र" ने शिक्षा पर राज्य का पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर दिया। फलस्वरूप, चिरकाल से चले आने वाले स्वतंत्र शिक्षण-कार्य का अन्त हो गया।
2. "आदेश-पत्र" ने अंग्रेजी शिक्षित व्यक्तियों को सरकारी नौकरियों में प्राथमिकता दिए जाने का आदेश अंकित किया। फलतः प्राच्य-शिक्षा, साहित्य और विद्यालयों का अस्तित्व संकट में पड़ गया।
3. "आदेश-पत्र" ने अंग्रेजी की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य—सरकारी नौकरियाँ प्राप्त करना निर्धारित किया। इस उद्देश्य को निर्धारित करके, "आदेश-पत्र" ने शिक्षा के व्यापक उद्देश्य को नष्ट कर दिया।
4. "आदेश-पत्र" ने भारतीय शिक्षा को पूर्णतया विदेशी रंग में रंग दिया और भारतीयों को उसे ग्रहण करने के लिए राजपदों का प्रलोभन दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीयों का अपने देश की शिक्षा-प्रणाली से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया।
5. "आदेश-पत्र" ने अंग्रेजी को उच्च एवं माध्यमिक शिक्षा का माध्यम बना दिया। अतः शिक्षा-संस्थाओं में प्राच्य-भाषाओं का गौण स्थान हो गया।
6. "आदेश-पत्र" ने जिस शिक्षा-प्रणाली का अनुमोदन किया, उसमें परीक्षाओं का स्थान सर्वोपरि था। अतः छात्रों का एकमात्र उद्देश्य—ज्ञान का अर्जन करना न होकर, परीक्षा में उत्तीर्ण होना हो गया।

7. "आदेश-पत्र" ने भारतीय विश्वविद्यालयों को लन्दन-विश्वविद्यालय के आदर्श पर संगठित किये जाने का निर्देश दिया। इस निर्देश के फलस्वरूप भारत में प्राचीन विश्वविद्यालयों की परम्पराओं की पूर्ण उपेक्षा की गई।
8. "आदेश-पत्र" ने अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बना कर भारतीय छात्रों का महान् अहित किया। इसका कारण यह था कि इन छात्रों के लिए अंग्रेजी के माध्यम से सब विषयों की गहराई तक पहुँचकर, उनका पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना असम्भव था।
9. "आदेश-पत्र" ने शिक्षा की परिधि में से धर्म को निकाल कर उसे पूर्णतया लौकिक बना दिया। परिणामतः भारतीयों के लिए आध्यात्मिक विकास केवल कल्पना की वस्तु हो गई।
10. "आदेश-पत्र" ने अरबी, फारसी और संस्कृत की उपयोगिता को स्वीकार करके, उनको पाठ्यक्रम में समाविष्ट किया। परन्तु, पाश्चात्य ज्ञान की प्राप्ति को शिक्षा का लक्ष्य बनाकर, उनकी उपयोगिता को अनुपयोगिता में परिणत कर दिया।

आलोचकों की सम्मतियाँ
Views of Critics

1854 के "आदेश-पत्र" के उल्लिखित गुणों से मुग्ध होकर, कुछ आलोचकों ने उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। उसके विपरीत, "आदेश-पत्र" के दोषों से क्षुब्ध होकर, कुछ आलोचकों ने उसकी कड़ी निन्दा की है। हम कतिपय अनुकूल और प्रतिकूल सम्मतियों का दिग्दर्शन करा रहे हैं, यथा —

1 हैम्पटन :—"1854 का आदेश-पत्र एक युग का, शिक्षा के महान् अग्रदूतों के युग का, अन्त करता है।"

"The Despatch of 1854 marks the end of an era, the age of the great educational pioneers."—H V. Hampton · *Biographical Studies in Modern Indian Education*, p. 115

2 जेम्स —"1854 का आदेश-पत्र भारतीय शिक्षा के इतिहास में चरम बिन्दु है। जो-कुछ उससे पहले हुआ, वह उसकी ओर संकेत करता है; और जो-कुछ उसके बाद हुआ, वह उससे निकला है।"

"The Despatch of 1854 is the climax in the history of education; what goes before leads up to it what follows flows from it." —H. R. James *Education & Statesmanship in India*, p 42.

3. मनु —"इस आदेश पत्र को भारतीय शिक्षा का शिलाधार कहा जाता है। यह कहा जाता है कि इसने हमारी आधुनिक शिक्षा-प्रणाली का शिलान्यास किया।"

"This Despatch is said to be the corner-stone of Indian education. It is said to have laid the *foundation of our present system of* education."—A. N. Basu : *Education in Modern India*, pp. 37-38.

4. डलहौजी :—"आदेश-पत्र में सम्पूर्ण भारत के लिए शिक्षा की योजना थी। यह योजना उस योजना से अधिक विस्तृत और अधिक व्यापक थी, जिसे स्थानीय या केन्द्रीय सरकार प्रस्तुत करने का साहस भी नहीं कर सकती थी।"

"The Despatch contained a scheme of Education for all India, far wider and *more* comprehensive than the Local or the Supreme Government could have even ventured to suggest."—Dalhousie's *Minute* of 1854.

5. डा० मुकर्जी :—"आदेश-पत्र ने देश की प्राचीन परम्पराओं का पता नहीं लगाया और इस बात पर लेशमात्र भी विचार नहीं किया कि भारत में शिक्षा—धार्मिक संस्कार था।"

"The Despatch did not enquire into the past traditions of the country and did not at all consider that education was a religious sacrament in India."—Dr. S. N. Mukerji : *History of Education in India*, p. 130.

6. भगवान दयाल :—"वुड के आदेश-पत्र का मुख्य दोष—शिक्षा का गलत उद्देश्य था। यह उद्देश्य—पूर्व और पश्चिम की सर्वोत्तम बातों का समन्वय न होकर, केवल यूरोपीय ज्ञान की प्राप्ति का था।"

"The fundamental defect in Wood's Despatch was the wrong aim of education. It was not to be a synthesis of the best things that both the East and the West had to offer; but only European knowledge."—Bhagwan Dayal : *The Development of Modern Indian Education*, p. 233.

7 परांजपे :—"1854 में आदेश-पत्र का चाहे जो भी महत्त्व हो, पर इस समय उसको शिक्षा का अधिकार-पत्र कहना हास्यास्पद होगा।"

"*Whatever were its value in 1854*, it would be ridiculous to describe the Despatch as an Educational Charter now."—M R. Paranjpe : *Progress of Education*, Poona, July 1941, p. 52.

8. परांजपे :—"आदेश-पत्र के रचयिताओं का उद्देश्य यह नहीं था कि शिक्षा, नेतृत्व के लिए हो; शिक्षा, भारत के औद्योगिक पुनरुत्थान के लिए हो; शिक्षा, मातृ-भूमि की रक्षा के लिए हो; संक्षेप में शिक्षा ऐसी हो, जो स्वतन्त्र राष्ट्र के व्यक्तियों के लिए आवश्यक होती है।"

"The authors of the Despatch did not aim at educati
leadership, education for the industrial regeneration of India
cation for the defence of the motherland; in short, education
red by the people of a self-governing nation."—Paranjpe : *op.*
p. 52.

निष्कर्ष

आलोचकों की उपरिअंकित सम्मतियों के आधार पर हम निस्संकोच रू
कह सकते हैं कि "वुड का आदेश-पत्र" भारतीय शिक्षा के इतिहास में बेनज़ीर
उसने भारतीय शिक्षा के सभी पक्षों के सम्बन्ध में इतनी व्यापक और महत्त्वपू
सिफारिशें की, जिनको आज भी पूरा करना असम्भव है। उसने भारतीय शिक्षा
अनेकरूपता को समाप्त करके एकरूपता प्रदान करने की चेष्टा की। उसी के सुझाव
के फलस्वरूप मद्रास, बम्बई और कलकत्ता में विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई
सम्पूर्ण देश में क्रमबद्ध शिक्षा-संस्थाओं की योजना कार्यान्वित की गई, सहायता-प्रणाली
का सूत्रपात किया गया, प्रान्तों में लोक-शिक्षा-विभागों का निर्माण हुआ और छात्र-
वृत्तियाँ देने की परम्परा आरम्भ हुई।

किन्तु, "आदेश-पत्र" का दूसरा पहलू भी है। उपरिअंकित कार्यों के कारण
उसका चाहे जितना भी यशगान क्यों न किया जाय, पर उसको शिक्षा का महाधि-
कार कहलाने का अधिकार प्राप्त नहीं है। इङ्गलैंड के 1215 के "महाधिकार पत्र"
ने उस देश के जन-जन को स्वतन्त्रता का अधिकार प्रदान किया। परन्तु, 1854 के
"आदेश-पत्र" ने सार्वभौमिक शिक्षा के सम्बन्ध में मौन धारण करके, भारतीय जनता
को शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार से वंचित रखा। इसके अतिरिक्त, "आदेश-पत्र"
ने भारतीय शिक्षा को सरकार के अधीन करके, उसे जंजीरों से जकड़ दिया, उस
पर विदेशी ढाँचे को थोप कर प्राचीन शिक्षा-पद्धतियों का नामोनिशान मिटा दिया
और धर्म को शिक्षा में सदैव के लिए निश्चित करके, शिक्षा के प्राचीन आदर्श की बुनियाद
को हिला दिया।

इस प्रकार, वुड के 'आदेश-पत्र" ने भारतीयों और उनकी परम्परागत शिक्षा
का जो अहित किया, उसको ध्यान में रखकर हम निर्भयता से कह सकते हैं कि इस
आदेश-पत्र" को शिक्षा का महाधिकार पत्र कहे जाने का कोई अधिकार प्राप्त नहीं
। इसी विचार से उत्प्रेरित होकर नुरुल्ला व नायक ने लिखा है —"हमें उन
अतिशयोक्तिपूर्ण शब्दों में, जिनमें कुछ इतिहासकारों ने आदेश-पत्र का वर्णन किया है
इसे 'भारतीय शिक्षा का महाधिकार-पत्र' बताया है, कोई औचित्य नहीं
ता है।"

"We cannot find any justification for the superlative terms
hich some historians have described the Despatch and even

called it, 'The Magna Charta of Indian Education." —Nurullah & Naik : *op. cit.*, pp. 215-216.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. What were the main recommendations of Wood's Despatch of 1854 ? Give a critical estimate of the place of this Despatch in the history of modern Indian education.
   1854 के वुड के आदेश-पत्र की प्रमुख सिफ़ारिशें क्या थीं ? आधुनिक भारतीय शिक्षा के इतिहास में इस आदेश-पत्र के स्थान का समीक्षात्मक मूल्यांकन कीजिए।
2. "Wood's Despatch is called the Magna Charta of Indian education." Discuss.
   "वुड का आदेश-पत्र, भारतीय शिक्षा का महाधिकार-पत्र कहा जाता है।" समीक्षा कीजिए।
3. Point out some of the important recommendations of Wood's Despatch which can prove useful for education in modern India.
   वुड के आदेश-पत्र की कुछ महत्त्वपूर्ण सिफ़ारिशें बताइए, जो आधुनिक भारत में शिक्षा के लिए लाभप्रद सिद्ध हो सकती हैं।



भारतीय शिक्षा-आयोग
(हण्टर कमीशन)
INDIAN EDUCATION COMMISSION
(Hunter Commission)
(1882-1883)

"Institutions under private managers cannot be successful unless they are frankly accepted as an essential part of the general scheme of education."—*Indian Education Commission Report*

विषय-प्रवेश

1854 के वुड के 'आदेश-पत्र' के फलस्वरूप भारतीय शिक्षा के अनेक क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन परिलक्षित हुए। 1855 के अन्त तक प्रत्येक प्रान्त में 'लोक-शिक्षा-विभाग' की स्थापना हो गई, सहायता-अनुदान-प्रणाली प्रचलित की गई और विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ देने की योजना क्रियान्वित की गई। 1857 में मद्रास, बम्बई और कलकत्ता में विश्वविद्यालयों का शिलान्यास किया गया। किन्तु, उसी वर्ष 1857 की क्रान्ति के विस्फोट ने भारतीय शिक्षा की प्रगति का मार्ग कुछ समय के लिए अवरुद्ध कर दिया। यह क्रान्ति—कम्पनी के शासन के विरुद्ध भारत-वासियों के प्रबल असन्तोष की प्रतीक थी। अतः 1858 में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने कम्पनी के शासन को समाप्त करके, इंगलैंड की रानी विक्टोरिया (Victoria) को भारत की साम्राज्ञी घोषित किया।

इस प्रकार, भारत के शासकों में तो परिवर्तन हो गया, किन्तु कम्पनी के कर्मचारियों में परिवर्तन नहीं हुआ, क्योंकि वे भारत की साम्राज्ञी के सेवकों के रूप

...आनन् कार्य करते रहे। कम्पनी के अधिकारी रह चुकने के कारण उनके मान-दृष्टिकोण में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। अतः उन्होंने "आदेश-पत्र" के इस देश के प्रति रंचमात्र भी ध्यान नहीं दिया कि सरकार द्वारा "निस्यन्दन-सिद्धान्त" का परित्याग करके, जनसाधारण की शिक्षा का प्रसार करने के लिए सक्रिय पग उठाए जाने चाहिए। उनकी इस हठधर्मी से न केवल भारत में, वरन् इंगलैंड में भी व्यापक असंतोष की लहर फैल गई।

भारत से सहानुभूति रखने वाले इंगलैंड के कुछ व्यक्तियों ने इस असन्तोष को "भारत में शिक्षा की सामान्य समिति" (General Council of Education in India) का संगठन करके प्रदर्शित किया। उनको अपने आन्दोलन-कार्य में मिशनरियों से पर्याप्त सहायता मिली।

"समिति" और भारत के सौभाग्य से ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने सन् 1880 में लार्ड रिपन (Ripon) को इस देश के नए गवर्नर-जनरल के रूप में मनोनीत किया। इस अवसर पर "समिति" के कुछ सदस्यों ने लार्ड रिपन से भेंट करके, उसे भारत-स्थित अंग्रेज अधिकारियों की अनुदार शिक्षा-नीति से अवगत कराया और यह अनुरोध किया कि भारतीय शिक्षा की गतिविधियों की जांच करके, उसके विकास का मार्ग प्रशस्त किया जाय।

लार्ड रिपन ने उनकी इच्छा को पूर्ण करने का वचन दिया। अपने इसी वचन का पालन करने के लिए, उसने भारत पहुंचने के कुछ समय पश्चात्, 1882 में "भारतीय-शिक्षा-आयोग" (Indian Education Commission) की नियुक्ति की। इस "आयोग" का अध्यक्ष गवर्नर-जनरल की कार्यकारिणी सभा का सुयोग्य सदस्य — सर विलियम हंटर (Sir William Hunter) था। अतः उसी के नाम से इस "आयोग" को "हंटर-कमीशन" (Hunter Commission) कह कर भी पुकारा जाता है।

आयोग के जाँच के विषय
Terms of Reference of the Commission

"आयोग" को निम्नांकित विषयों की जांच करके, उनके सम्बन्ध में अ... सुझावों और सिफारिशों को प्रस्तुत करने का आदेश दिया गया :—

1. क्या सरकार ने उच्च एवं माध्यमिक शिक्षा के प्रति अधिक ध्यान ... प्राथमिक शिक्षा की अवहेलना की है?
2. प्राथमिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति क्या है और उसके सु... विकास के लिए क्या उपाय अपनाए जाने चाहिए?
3. माध्यमिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति क्या है और उसका प्र... भारतीयों के द्वारा किया जाना चाहिए?
4. देश की शिक्षा-प्रणाली में राजकीय विद्यालयों की क्या स्थि... भारतीय शिक्षा प्रणाली में उनकी आवश्यकता है या नहीं ...

3. सरकार को प्राथमिक विद्यालयों का स्वयं संचालन न करके, उनका उत्तरदायित्व स्थानीय निकायों पर छोड़ देना चाहिए।
4. सरकार को माध्यमिक स्कूलों और कालिजों का प्रबन्ध क्रमशः कुशलता-पूर्वक कार्य करने वाली व्यक्तिगत संस्थाओं को सौंप देना चाहिए।
5. सरकार को भविष्य में केवल सहायता-अनुदान के आधार पर स्थापित किए जाने वाले माध्यमिक स्कूलों और कालिजों की स्थापना को प्रोत्साहन देना चाहिए।

सारांश में, "आयोग" ने शिक्षा-नीति के सम्बन्ध में सरकार को 1854 के "आदेश-पत्र" के अग्रांकित सुझाव का अनुसरण करने का परामर्श दिया :—"राजकीय शिक्षा-संस्थाओं को उन स्थानों में चलने दिया जाय, जहाँ उनकी आवश्यकता है। किन्तु, सरकार का मुख्य कर्त्तव्य—व्यक्तिगत शिक्षा-संस्थाओं की उन्नति और प्रसार करना होना चाहिए।"

2. प्राथमिक शिक्षा : *Primary Education*

"आयोग" ने प्राथमिक शिक्षा के उद्देश्य, प्रसार, प्रशासन, वित्त-व्यवस्था, पाठ्यक्रम, शिक्षा-स्तर के उन्नयन और सरकार की नीति के सम्बन्ध में सारगर्भित सुझाव दिए; यथा :—

1. उद्देश्य व प्रसार—प्राथमिक शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य—जनसाधारण में शिक्षा का विस्तार करना होना चाहिए। इस शिक्षा का आदिवासियों और पिछड़ी हुई जातियों में प्रसार करने के लिए सरकार को ठोस क़दम उठाने चाहिए।

2. प्रशासन—प्राथमिक शिक्षा के प्रशासन और संचालन का पूर्ण उत्तर-दायित्व, सरकार को जिला-परिषदों, नगरपालिकाओं आदि स्थानीय निकायों को हस्तान्तरित कर देना चाहिए।

3. वित्त-व्यवस्था—प्राथमिक शिक्षा के व्यय के लिए स्थानीय निकायों द्वारा स्थायी और पृथक् कोष का निर्माण किया जाना चाहिए। प्रान्तीय सरकारों को इस कोष का 1/3, या सम्पूर्ण व्यय का 1/2 भाग आर्थिक सहायता के रूप में स्थानीय निकायों को देना चाहिए।

4. पाठ्यक्रम—प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में सुधार करने के उद्देश्य से इसमें पहले से समाविष्ट विषयों के अतिरिक्त अग्रांकित जीवनोपयोगी विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिए — कृषि, पदार्थपाठ, क्षेत्र-मिति, भौतिक विज्ञान, आरोग्य विज्ञान, महाजनी गणित और औद्योगिक कलाएँ। सम्पूर्ण देश में एक ही पाठ्यक्रम होना चाहिए और उसे स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर निर्धारित किया जाना चाहिए।

5. शिक्षा-स्तर का उन्नयन—प्राथमिक शिक्षा के स्तर का उन्नयन करने के लिए प्रत्येक विद्यालय-निरीक्षक के अधिकार-क्षेत्र में कम-से-कम एक नार्मल स्कूल स्थापित किया जाना चाहिए।

6. सरकार की नीति—प्राथमिक शिक्षा की नीति के विषय में
ने सरकार को अग्रांकित मंत्रणा दी :—"देश की वर्तमान परिस्थितियों में यह
है कि जनसाधारण की प्राथमिक शिक्षा और उसकी व्यवस्था, प्रसार एवं उ
शिक्षा प्रणाली का यह अंग घोषित किया जाय, जिसके प्रति अब राज्य
चेष्टाएँ पहले से अधिक मात्रा में केन्द्रित की जानी चाहिए।"

"It is desirable, in the present circumstances of the co
to declare the elementary education of the masses, its prov
extension, and improvement, to be that part of the educational
tem to which the strenuous efforts of the State should now be
cted in a still larger measure than heretofore "—*Indian Educa*
Commission Report

3 माध्यमिक शिक्षा : Secondary Education

"आयोग" ने माध्यमिक शिक्षा के प्रसार, पाठ्यक्रम, शिक्षा-स्तर के उन्नय
शिक्षा के माध्यम और सरकार की नीति के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए, यथा :—

1 प्रसार- माध्यमिक शिक्षा का प्रसार करने के लिए सहायता-अनुदान
प्रणाली का प्रयोग किया जाना चाहिए। इस प्रणाली के प्रयोग में सरकार को अपनी
उदारता का परिचय देना चाहिए।

2 पाठ्यक्रम—माध्यमिक शिक्षा के दोषों का निवारण करने के लिए,
"आयोग" ने उच्च कक्षाओं में दो प्रकार के पाठ्यक्रमों का सुझाव दिया :—"अ"
कोर्स और "ब" कोर्स ('A' Course & "B' Course)। "आयोग" का मत था
कि "अ" कोर्स साहित्यिक होना चाहिए और उन छात्रों के लिए होना चाहिए, जो
उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने के इच्छुक हों। "ब"
कोर्स में व्यापारिक, व्यावसायिक और असाहित्यिक विषयों का समावेश होना
चाहिए। यह कोर्स उन छात्रों के लिए होना चाहिए, जो शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात्
व्यावसायिक या असाहित्यिक कार्यों में संलग्न होने के इच्छुक हों।

3 शिक्षा-स्तर का उन्नयन- माध्यमिक शिक्षा के स्तर का उन्नयन करने के
लिए, लाहौर और मद्रास में पहले से स्थापित प्रशिक्षण-कालेजों के अलावा अन्य स्थानों
पर प्रशिक्षण-कालेजों की स्थापना की जानी चाहिए। इन कालेजों में छात्राध्यापकों
को शिक्षा-सिद्धान्त और कक्षा-शिक्षण से भलीभाँति परिचित कराया जाना चाहिए।

4 शिक्षा का माध्यम —"आयोग" ने शिक्षा के माध्यम के विषय में कोई
स्पष्ट सुझाव नहीं दिया। उसने केवल यह कहा कि मिडिल स्कूलों में मातृभाषा को
शिक्षा का माध्यम बनाना अधिक वाछनीय है, पर छात्रों को अंग्रेजी का भी कुछ ज्ञान
देना आवश्यक है। यह विचार व्यक्त करके "आयोग" ने हाई-स्कूलों के अतिरिक्त
मिडिल स्कूलों में भी शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी का पक्ष लिया।

5. सरकार की नीति—माध्यमिक शिक्षा के विषय में "आयोग" ने यह नीति निर्धारित की कि सरकार को इस शिक्षा का भार कुशल भारतीयों को सौंप कर, इससे मुक्त हो जाना चाहिए। सरकार को केवल सहायता-अनुदान द्वारा माध्यमिक शिक्षा को प्रोत्साहित करना चाहिए। "आयोग" ने यह सुझाव भी दिया कि सरकार को अपने स्कूलों को क्रमशः व्यक्तिगत संस्थाओं को हस्तान्तरित कर देना चाहिए। सरकार को राजकीय विद्यालयों का निर्माण और संचालन केवल उन स्थानों में करना चाहिए, जहाँ की जनता अनुदान-प्रथा के आधार पर विद्यालयों को चलाने में असमर्थ हो। परन्तु, इस सम्बन्ध में भी "आयोग" ने सरकार की शिक्षा-नीति को अग्रांकित शब्दों में स्पष्ट कर दिया :—"सरकार का कर्त्तव्य प्रत्येक जिले में केवल एक हाई स्कूल की स्थापना करना है। उसके पश्चात्, उसे उस जिले में माध्यमिक शिक्षा का प्रसार व्यक्तिगत प्रयासों पर छोड़ देना चाहिए।"

"The duty of the Government was only to establish one high school in every district and after that the expansion of secondary education in that district should be left to private enterprise."—*Indian Education Commission Report.*

4. कॉलेज-शिक्षा : College Education

यद्यपि कॉलेज-शिक्षा "आयोग" की जाँच का विषय नहीं था, तथापि उसने सार्वजनिक कॉलेजों और उनकी शिक्षा के सम्बन्ध में अनेक लाभप्रद सुझाव दिए; यथा :—

1. कॉलेजों को सहायता-अनुदान के रूप में दी जाने वाली धनराशि को उनके व्यय, शिक्षकों की संख्या, कार्य-कुशलता और स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर निश्चित किया जाना चाहिए।
2. कॉलेजों को समय-समय पर फर्नीचर, पुस्तकालय, भवन-निर्माण और शिक्षण-सम्बन्धी अन्य कार्यों के लिए आवश्यकतानुसार आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए।
3. कॉलेजों में शिक्षकों को नियुक्त करते समय यूरोप के विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने वाले भारतीयों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।
4. कॉलेजों के पाठ्यक्रमों का विस्तार करके, छात्रों को उनकी रुचियों के अनुसार विषयों का चयन करने का अवसर दिया जाना चाहिए।
5. कॉलेजों के छात्रों के नैतिक स्तर का उत्थान करने के लिए उनको प्राकृतिक धर्म (Natural Religion) और मानव-धर्म के सिद्धान्तों से परिचित कराया जाना चाहिए।
6. कॉलेजों के छात्रों को मानव और नागरिक कर्त्तव्यों से अवगत कराने के लिए व्याख्यानमालाओं का आयोजन किया जाना चाहिए।

5. धार्मिक शिक्षा : Religious Education—धार्मिक शिक्षा के विषय में "आयोग" के सुझाव ये थे :—"धर्म-निरपेक्ष राज्य की शिक्षा-संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा का दिया जाना सम्भव नहीं है। राजकीय विद्यालयों में धार्मिक शिक्षा का कदापि समावेश नहीं हो सकता है, पर व्यक्तिगत विद्यालयों में प्रबन्धकों की इच्छा से धार्मिक शिक्षा दी जा सकती है।"

6. मिशनरी प्रयास : Missionary Efforts

"आयोग" को भारत की शिक्षा-व्यवस्था में मिशन स्कूलों के स्थान के सम्बन्ध में अपने विचारों को सरकार के समक्ष प्रस्तुत करने का आदेश दिया गया था। भारत-सरकार की शिक्षा-नीति के विरुद्ध आन्दोलन करने वालों में मिशनरी भी थे। अतः जब "आयोग" की नियुक्ति हुई, तब मिशनरी इस देश के शिक्षा-क्षेत्र में अपने सौभाग्य-सूर्य के उदय होने का स्वप्न देखने लगे। किन्तु, उनके स्वप्न ने साकार रूप धारण नहीं किया। इसका कारण यह था कि "आयोग" ने शिक्षा के सभी स्तरों के विषय में ऐसे सुझाव दिए, जिनके कारण मिशनरियों ने अपने को निराशा की काली घटाओं से आवृत्त पाया।

"आयोग" ने प्राथमिक शिक्षा को स्थानीय निकायों को हस्तान्तरित करने का सुझाव दिया। इस शिक्षा में मिशनरियों को कोई विशेष प्रयोजन नहीं था, क्योंकि उनके प्राथमिक विद्यालयों की संख्या अति अल्प थी। अतः उन्होंने "आयोग" के सुझाव की ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया।

"आयोग" ने उच्च और माध्यमिक शिक्षा के विषय में यह प्रस्ताव रखा कि सरकार को इन दोनों स्तरों की शिक्षा के उत्तरदायित्व से मुक्त होकर, इनका भार व्यक्तिगत प्रयासों के ऊपर छोड़ देना चाहिए। इसका निष्कर्ष सामान्यतः यह निकाला गया कि इन दोनों स्तरों की शिक्षा पर मिशनरियों का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित हो जायगा। पर, वास्तविकता कुछ और ही थी। "आयोग" ने अपने विचार का स्पष्टीकरण करते हुए, कहा :—"भारत के समान विभिन्न आवश्यकताओं वाले देश में शिक्षा के उत्तरदायित्व को किसी एक दल को नहीं सौंपा जा सकता है, चाहे वह कितना ही उदार क्यों न हो। हम अपने इस विचार को स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि सरकार को न तो ईसाई-मंडलियों को माध्यमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व देकर इस क्षेत्र से पृथक् होना चाहिए और न उच्च शिक्षा की संस्थाओं को इन मंडलियों को हस्तान्तरित करना चाहिए। इससे भारतवासियों में सार्वजनिक कार्यों के लिए संगठित होने की आदत का निर्माण नहीं होगा। भारत में शिक्षा का प्रसार तभी हो सकता है, जब भारत के निवासी इस कार्य को सफल बनाने का प्रयास करें।"

"आयोग" के उक्त वक्तव्य से मिशनरियों को घोर निराशा हुई, पर भारतीयों के नेत्र खुल गए। उनको इस बात का पूर्ण आभास हो गया कि अपने देश की शिक्षा का भार उनको ही अपने ऊपर लेना है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि

"आयोग ने लगभग उन्हीं सिद्धान्तों की पुनरावृत्ति की, जिनको वर्षों पूर्व वुड के आदेश-पत्र में स्वीकार किया गया था। उसने उन सिद्धान्तों में से कुछ को केवल विस्तृत कर दिया और कुछ पर यत्र-तत्र थोड़ा-सा बल दे दिया।"

"The Commission practically reiterated the principles which had already been accepted years ago in Wood's Despatch. It only elaborated some of the points and added some emphasis here and there."— A. N. Basu : *Education in Modern India*, p. 51.

बसु के कथन में सत्य अवश्य है, क्योंकि "आयोग" ने 1854 के "आदेश-पत्र" की सिफारिशों की पुनरावृत्ति की। किन्तु, इस पुनरावृत्ति के द्वारा उसने "आदेश-पत्र" की उन सिफारिशों में जान डाल दी, जिनमें दुर्बलता और शिथिलता थी। अपने इस कार्य द्वारा 'आयोग" ने एक ऐसी शिक्षा-नीति का प्रतिपादन किया, जिसको सरकार ने सहर्ष स्वीकार किया। यही कारण था कि भारत में लगभग अगले बीस वर्षों (1882-1902) में "आयोग" के सुझावों ने भारतीय शिक्षा के प्रत्येक अंग को प्रभावित किया। इसीलिए, भारतीय शिक्षा के इतिहास में "भारतीय शिक्षा-आयोग" को विशेष स्थान दिया जाता है। अतः हम निष्कर्ष रूप में टी० एन० सिक्वेरा के शब्दों में कह सकते हैं :—"अपने सब सुझावों के लिए "आयोग" हार्दिक सराहना का पात्र है। यदि आज भारतीय शिक्षा-प्रणाली के विषय में इतने अधिक असंतोष का अनुभव किया जा रहा है, तो इसका कारण यह है कि 1882 में निर्धारित की जाने वाली शिक्षा-नीति के मुख्य अभिप्राय का अनुसरण नहीं किया गया है।"

"For all this the Commission deserves hearty approval. If so much dissatisfaction is felt with the educational system today, it is because it has not followed the spirit of the policy laid down in 1882."—T. N. Siqueira : *The Education of India*, p. 73.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. What were the main recommendations of the Indian Education Commission of 1882 and how did they influence education in India ?

   1882 के भारतीय शिक्षा-आयोग की मुख्य सिफारिशें कौन-सी थीं और उन्होंने भारत में शिक्षा को किस प्रकार प्रभावित किया ?

2. State and discuss the recommendations of the Indian Education Commission of 1882 regarding either Primary Education or Higher Education.

प्राथमिक शिक्षा या उच्च शिक्षा के विषय में 1882 के "भारतीय शिक्षा-आयोग" की सिफारिशों का वर्णन कीजिए और उनकी विवेचना कीजिए।

3. Mention the chief recommendations of the Hunter Commission of 1882 on Secondary Education and trace their influence on the subsequent development of Secondary Education in India.

माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में 1882 के हंटर कमीशन की मुख्य सिफारिशों का उल्लेख कीजिए और भारत में माध्यमिक शिक्षा की भावी उन्नति में उनके प्रभाव का वर्णन कीजिए।



शिक्षा की प्रगति

PROGRESS OF EDUCATION

(1882-1902)

"The local bodies did substantial service to the cause of primary education."—Nurullah & Naik.

विषय-प्रवेश

हम इस संक्षिप्त अध्याय को केवल एक संयोजक कड़ी के रूप में स्थान दे रहे हैं। इसे स्थान देने का हमारा मुख्य प्रयोजन—"भारतीय-शिक्षा-आयोग" की सिफ़ारिशों के परिणामों और उन सिफ़ारिशों के आधार पर शिक्षा की प्रगति का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करना है।

आयोग की सिफ़ारिशों के परिणाम

Results of the Commission's Recommendations

भारत-सरकार ने धार्मिक शिक्षा के अतिरिक्त, "भारतीय शिक्षा-आयोग" की सभी सिफ़ारिशों को स्वीकृति प्रदान की। डा० एस० एन० मुकर्जी के अनुसार, इस स्वीकृति के 3 मुख्य परिणाम दृष्टिगोचर हुए :—

1. सरकार ने प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व—नगरपालिकाओं और स्थानीय निकायों को हस्तान्तरित कर दिया।
2. सरकार ने उच्च और माध्यमिक शिक्षा की संस्थाओं की स्थापना का कार्य स्थगित कर दिया, किन्तु उसने इन संस्थाओं के प्रबन्ध को किसी दल को हस्तान्तरित न करके, स्वयं अपने हाथ में रखा।

3. सरकार ने मिशनरियों के शिक्षा-सम्बन्धी प्रयासों को मर्यादित करके, भारतवासियों के प्रयासों को विशेष प्रोत्साहन दिया।

एक अन्य परिणाम की ओर संकेत करते हुए, हॉवेल ने लिखा है :—"भारत में ब्रिटिश शासन-काल में सर्वप्रथम शिक्षा की अवहेलना की गई, फिर उग्रता एवं सफलता से उसका विरोध किया गया, तदुपरान्त एक ऐसी प्रणाली का सूत्रपात किया गया, जो सार्वजनिक रूप में हानिकारक थी और अन्त में उसे अपनी वर्तमान स्थिति प्रदान की गई।"

"Education in India under the British Government was first ignored, then violently and successfully opposed, then conducted on a system now universally admitted to be erroneous and finally placed on its present footing."—Howell. Quoted by W. H. Sharp: *Selections from Educational Records*, Vol. I, p. 2.

शिक्षा की प्रगति
Progress of Education

सरकार की नवीन नीति के फलस्वरूप शिक्षा के सभी क्षेत्रों में न्यूनाधिक प्रगति हुई। हम शिक्षा के तीन प्रमुख क्षेत्रों का निम्नांकित पंक्तियों में वर्णन कर रहे हैं :—

1. प्राथमिक शिक्षा—"भारतीय शिक्षा-आयोग" की सिफ़ारिश के अनुसार, सरकार ने प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व नगरपालिकाओं, जिला-परिषदों आदि स्थानीय निकायों को हस्तान्तरित कर दिया। इस नवीन व्यवस्था में प्राथमिक शिक्षा की उन्नति तो हुई, पर उसको संतोषजनक नहीं कहा जा सकता था। इसका मुख्य कारण था—धनाभाव। इसके लिए सरकार को उत्तरदायी ठहराते हुए, नुरुल्ला व नायक (p. 362) ने लिखा है :—"1881-82 से 1901-02 तक स्थानीय निकायों ने प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किए जाने वाले अपने धन को 24.9 लाख रुपए से बढ़ा कर 46.1 लाख रुपए कर दिया, पर इसी अवधि में सरकार ने अपने व्यय को 16.77 लाख रुपए से बढ़ा कर केवल 16.92 लाख रुपए किया।"

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि 1882 से 1902 तक प्राथमिक शिक्षा की जो भी प्रगति हुई, उसका एकमात्र कारण स्थानीय निकायों की उदारता थी। यदि सरकार उसकी उपेक्षा न करती और उसके प्रसार के लिए आर्थिक सहायता देने में उदारता का परिचय देती, तो प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित आँकड़े निम्नांकित से भिन्न होते (Nurullah & Naik, p. 488) :—

	1881–82	1901–02
1. प्राथमिक विद्यालयों की संख्या	82,916	93,604
2. छात्रों की संख्या	20,61,541	30,76,671

2. माध्यमिक शिक्षा—माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में "भारतीय शिक्षा-आयोग" की सिफारिश यह थी कि सरकार को इसकी व्यवस्था को क्रमशः व्यक्तिगत प्रयासों पर छोड़कर स्वयं इससे पृथक् हो जाना चाहिए। किन्तु, सरकार ने इस सिफारिश के विपरीत कार्य किया और पूर्व की भाँति माध्यमिक शिक्षा के प्रसार में संलग्न रही। फलस्वरूप, इस अवधि में माध्यमिक शिक्षा का प्रसार अति तीव्र गति से हुआ। इस प्रसार की पुष्टि में निम्नांकित आँकड़े प्रस्तुत कर रहे हैं (Nurullah & Naik, p. 300) :—

	1881–82	1901–02
1. माध्यमिक विद्यालयों की संख्या	3,916	5,124
2. छात्रों की संख्या	2,14,077	5,90,129

3. उच्च शिक्षा—"भारतीय शिक्षा-आयोग" ने कॉलेजों को सहायता-अनुदान दिये जाने का विचार प्रकट करके, अप्रत्यक्ष रूप में उच्च शिक्षा के प्रसार में योग दिया था। इस प्रसार का एक कारण यह भी था कि माध्यमिक शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही थी और इसलिए उच्च शिक्षा की संस्थाओं की स्थापना आवश्यक हो गई थी। "आयोग" ने यह विचार स्पष्ट रूप से व्यक्त किया था कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में मिशनरी प्रयासों की अपेक्षा भारतीयों के प्रयासों को प्रोत्साहित किया जाय। "आयोग" के इस विचार से प्रेरणा प्राप्त करके, भारतीयों ने अनेक कॉलेजों की स्थापना की। सन् 1902 में इनकी संख्या 42 थी, जब कि मिशन कॉलेजों की संख्या 36 थी।

19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारतवासियों में राष्ट्रीय चेतना का उदय हो गया था। अतः, उन्होंने अनेक राष्ट्रीय कॉलेजों का शिलान्यास किया; उदाहरणार्थ, 1880 में बाल गंगाधर तिलक ने चिपलूणकर और आगरकर के सहयोग से पूना में "फर्ग्युसन कॉलेज" का, 1886 में आर्य समाज ने लाहौर में "दयानन्द एंग्लो वैदिक कॉलेज" का और 1898 में श्रीमती एनी बेसेन्ट ने बनारस में "सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज" का निर्माण किया।

1882 से 1902 तक की अवधि में कॉलेजों और उनमें अध्ययन करने वाले छात्रों की संख्या को निम्नांकित तालिका में स्पष्ट किया गया है (Nurullah & Naik, pp. 233–267) :—

	1881-82	1901-02
1. कॉलेजों की संख्या	68	179
2. छात्रों की संख्या	5,399	23,009

समग्र रूप में, हम कह सकते हैं कि यद्यपि 1882 से 1902 तक की अवधि में प्राथमिक शिक्षा के विकास में शिथिलता रही, तथापि माध्यमिक और उच्च शिक्षा का अभूतपूर्व विस्तार हुआ। हम अपने इस मत की पुष्टि में नुरुल्ला व नायक के निम्नांकित शब्दों को उद्धृत कर रहे हैं :—'इस अवधि की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि — माध्यमिक और कॉलेज-शिक्षा का अभूतपूर्व विस्तार था।"

"The most significant achievement of the period was an unprecedented expansion of secondary and collegiate education."—Nurullah & Naik : *A History of Education in India*, p. 272.

UNIVERSITY QUESTION

1. Describe briefly the results of the recommendations of the Indian Education Commission. How did these recommendations influence the progress of education in India ?

   "भारतीय शिक्षा-आयोग" की सिफ़ारिशों के परिणामों का संक्षेप में वर्णन कीजिए। इन सिफ़ारिशों ने भारत में शिक्षा की प्रगति को किस प्रकार प्रभावित किया ?

10

लॉर्ड कर्ज़न के शिक्षा-सम्बन्धी सुधार

EDUCATIONAL REFORMS OF LORD CURZON (1898-1905)

"Lord Curzon was not only the ablest, but also the most-hated Viceroy that ever came to India."—Nurullah & Naik.

विषय-प्रवेश

19वीं शताब्दी के अन्तिम दशक में भारत-सरकार अपनी नीति के अनुसार, अंग्रेजी के माध्यम से पाश्चात्य ज्ञान के प्रसार में दत्तचित्त होकर संलग्न थी। भगवान दयाल का कथन है :—"इस नीति के विरुद्ध आम जनता की शिकायत यह थी कि अंग्रेजी के माध्यम से केवल कुछ ही व्यक्ति, पाश्चात्य ज्ञान का अर्जन कर सकते थे। इसके अतिरिक्त, अंग्रेजी के माध्यम के कारण भारतीय संस्कृति का लोप होता जा रहा था।"

सरकार की इस निकृष्ट नीति की ओर राष्ट्रीय आन्दोलन के कतिपय कर्णधारों का ध्यान आकृष्ट हुआ। अतः उन्होंने इसके विरुद्ध आन्दोलन करना आरम्भ कर दिया। 1898 में जब यह आन्दोलन अपने चरम बिन्दु की ओर द्रुत गति से बढ़ रहा था, तब लार्ड कर्ज़न ने भारत के नए गवर्नर-जनरल के रूप में कार्य-भार सम्भाला। वह प्रतिभाशाली व्यक्ति, कुशल राजनीतिज्ञ और कर्तव्यपरायण शासक था। उसके बारे में, जैसा कि ए० एन० बसु ने लिखा है :—'कर्ज़न स्वभाव से उदार एवं निरंकुश शासक और प्रशिक्षण के कारण कठोर शासन में अविचल विश्वास रखने वाला कठोर साम्राज्यवादी था।'

"By temperament Curzon was a benevolent autocrat and by training a diehard imperialist with implicit faith in a strong rule." —A. N. Basu : *Education in Modern India*, p. 60.

कर्जन के शिक्षा-सम्बन्धी सुधार
Educational Reforms of Curzon

कठोर और निरंकुश शासक होने के कारण, कर्जन का राष्ट्रीय आन्दोलन का विरोधी होना नितान्त स्वाभाविक था और इसलिए भारतीयों द्वारा उससे घृणा किया जाना भी स्वाभाविक था। परन्तु, हमें उसके चरित्र के इस पक्ष से कोई प्रयोजन न होकर उस पक्ष से है, जिसका भारतीय शिक्षा पर व्यापक प्रभाव पड़ा। इस पक्ष के अन्तर्गत आती है—कर्जन की असाधारण विद्वता और इस विद्वता के फलस्वरूप शिक्षा में उसकी अभिरुचि। वह अंग्रेजी का उतना ही धुरंधर विद्वान् था, जितना कि मैकॉले। इसीलिए, नुरुल्ला व नायक ने यह घोषित किया है :—"कर्जन से श्रेष्ठतर मानसिक योग्यता का कोई वाइसराय भारत में उस समय तक कभी नहीं आया था।"

"No Viceroy of greater intellectual capacity had ever come to India so far."—Nurullah & Naik *A History of Education in India*, p. 450.

इस प्रकार, कर्जन में प्रशासकीय क्षमता और मानसिक योग्यता का सजीव सम्मिश्रण था। इस सम्मिश्रण के कारण उसकी यह धारणा थी कि शिक्षा में सुधार करके ही, प्रशासन में सुधार किया जा सकता है। अपनी इस धारणा के कारण उसने भारतीय शिक्षा के विभिन्न अंगों में सुधार करने के विचार से पहले "शिमला-शिक्षा-सम्मेलन" का स्वयं सभापतित्व किया। उसके पश्चात् उसने "भारतीय विश्वविद्यालय आयोग" की नियुक्ति की, "भारतीय विश्वविद्यालय-अधिनियम" पारित करवाया, और "शिक्षा-नीति-सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव" प्रकाशित किया। हम इसी क्रम में इनका वर्णन कर रहे हैं; यथा :—

1. शिमला-शिक्षा-सम्मेलन, 1901
Simla Educational Conference, 1901

जिस समय लार्ड कर्जन ने भारत के वाइसराय के रूप में इस देश की भूमि पर पैर रखा, उस समय यहाँ की शिक्षा अत्यन्त शोचनीय दशा में थी। इस दशा का चित्र "Progress of Education in India, 1902-07" में अग्रांकित शब्दों में प्रस्तुत किया गया था :—"1897 से 1902 तक का समय प्रगतिशील शिक्षा के इतिहास में सबसे अधिक अप्रगतिशील था। विद्यार्थियों की संख्या बहुत कम थी और विद्यालयों की संख्या भी कम हो गई थी।"

विद्या और शिक्षा का प्रेमी होने के कारण, कर्ज़न को भारत आते ही यहाँ की शिक्षा की अप्रगतिशील स्थिति का पूर्ण ज्ञान हो गया। कर्ज़न ने स्वयं इस सम्बन्ध में अपने विचारों को उद्घोषित करते हुए कहा :—"जब मैं भारत आया, तब शिक्षा-सम्बन्धी सुधार उन कार्यों में से मेरे समक्ष उपस्थित हुआ, जिसका प्रशासनीय पुनर्संगठन के किसी भी कार्यक्रम में प्रमुख स्थान होना उचित प्रतीत हुआ।"

"When I came to India, Educational Reform loomed before me as one of those objects, which appeared to deserve a prominent place in any programme of administrative reconstruction."—Lord Curzon. Quoted in *Lord Curzon in India,* Vol. II, p. 65.

शिक्षा-सुधार के कार्य को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के विचार से, लार्ड कर्ज़न ने सन् 1901 में "शिमला-शिक्षा-सम्मेलन" का आयोजन किया। कर्ज़न ने प्रान्तों के शिक्षा-संचालकों और मिशनरियों के प्रतिनिधियों को इस सम्मेलन में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। किन्तु, उसने भारतीयों के एक भी प्रतिनिधि को इसमें स्थान नहीं दिया। अतः भारतीयों का कर्ज़न के कार्य को शंका की दृष्टि से देखना स्वाभाविक था।

"शिमला-शिक्षा-सम्मेलन"—कर्ज़न के सभापतित्व में 15 दिन हुआ और उसमें शिक्षा-सम्बन्धी 150 प्रस्तावों को सर्वसम्मति से निश्चित किया गया। कर्ज़न ने अपनी शिक्षा-नीति को इन्हीं प्रस्तावों पर आधारित किया। सम्मेलन के विषय में एक उल्लेखनीय बात यह थी कि उसकी कार्यवाही को आरम्भ से अन्त तक गोपनीय रखा गया था और उसको समाचार-पत्रों में भी प्रकाशित नहीं होने दिया गया था। सम्मेलन के प्रति भारतीय पहले से ही सशंकित थे। उसकी गुप्त कार्यवाही से उनको इस बात का पूर्ण विश्वास हो गया था कि उनके विरुद्ध किसी-न-किसी षड्यन्त्र की रचना अवश्य की गई थी। अतः वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे :—"सम्मेलन, भारतीयों को यातना देने वाली सभा थी, जिसने उनके विरुद्ध किसी भयंकर षड्यंत्र की रचना की थी।"

"The Conference was a Star Chamber conclave, that was engaged in some dark and sininster conspiracy."—*Lord Curzon in India*, Vol. II, p. 67.

"शिमला-शिक्षा-सम्मेलन" में भारतीय शिक्षा से सम्बन्धित सभी महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार-विनिमय किया गया और उसी के आधार पर कर्ज़न ने अपनी सुधार योजना का निर्माण किया। पर, क्योंकि भारतीय "सम्मेलन" की गुप्त कार्यवाही से अत्यधिक क्षुब्ध थे, इसलिए उन्होंने कर्ज़न के सुधारों को उपयोगिता की कसौटी पर परखने का प्रयास नहीं किया।

2. भारतीय विश्वविद्यालय आयोग, 1902
Indian Universities Commission, 1902

1. नियुक्ति के कारण—"आयोग" की नियुक्ति के 4 मुख्य कारण थे; यथा:—

1. पंजाब विश्वविद्यालय के अतिरिक्त भारत के सभी विश्वविद्यालयों का संगठन, लंदन-विश्वविद्यालय को आदर्श मान कर किया गया था। लन्दन-विश्वविद्यालय का 1898 में पुनर्संगठन हो गया था। अतः भारतीय विश्वविद्यालयों को उसके अनुरूप परिवर्तित किया जाना आवश्यक था।
2. विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध कालिजों की संख्या में अति तीव्र वृद्धि होने के कारण विश्वविद्यालयों पर इतना कार्य-भार हो गया था कि वे अपने कर्त्तव्यों का कुशलता से पालन नहीं कर सकते थे। फलस्वरूप, कॉलिजों का शिक्षण-स्तर निम्न हो गया था।
3. सीनेट के सदस्यों की संख्या आवश्यकता से अधिक थी और उसमें विश्वविद्यालय के शिक्षकों का उचित प्रतिनिधित्व नहीं था।
4. विश्वविद्यालय केवल परीक्षा लेने और मान्यता देने का कार्य करते थे। उनमें शिक्षण की, जो उनका मुख्य कार्य था, कोई व्यवस्था नहीं थी। इस विषय में कर्ज़न का मत था —"आदर्श विश्वविद्यालय, ज्ञान के प्रसार और विद्या के प्रोत्साहन का स्थान होना चाहिए।"
   "The ideal university should be a place for the dissemination of knowledge and the encouragement of learning"—**Lord Curzon Quoted in** *Lord Curzon in India*, **Vol II, p 62.**

उपर्युक्त आदर्श को प्राप्त करने और कालेजों एवं विश्वविद्यालयों में आवश्यक सुधार करने के लिए, लार्ड कर्ज़न ने 27 [illegible] 1902 को "भारतीय विश्वविद्यालय-आयोग" की नियुक्ति की।

2. जाँच के विषय—"आयोग [illegible] लिए 3 विषय दिए गए; यथा :—

1. ब्रिटिश भारत के विश्वविद्यालयों [illegible] और उनकी भावी उन्नति की जाँच करना।
2. विश्वविद्यालयों [illegible] प्रणाली में सुधार करने के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत करना।
3. विश्वविद्यालयों [illegible] उठाने और विद्या की उन्नति करने के लिए [illegible] देना।

3. सुझाव व सिफारिशें—[illegible] ब्रिटिश भारत के सब विश्वविद्यालयों की सूक्ष्म छानबीन करके [illegible] सरकार के समक्ष

वेदन प्रस्तुत किया। इस प्रतिवेदन में "आयोग" ने विश्वविद्यालयों और कालिजों में सुधार करने के निमित्त जिन सुझावों और सिफ़ारिशों को लेखबद्ध किया, उनमें से निम्नांकित महत्त्वपूर्ण हैं :—

1. नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना नहीं की जानी चाहिए।
2. वर्तमान विश्वविद्यालयों द्वारा शिक्षण-कार्य किया जाना चाहिए।
3. स्नातक-पूर्व शिक्षण का कार्य, सम्बद्ध कॉलेजों में और स्नातकोत्तर-शिक्षण का कार्य, विश्वविद्यालयों में किया जाना चाहिए।
4. प्रत्येक विश्वविद्यालय की प्रादेशिक सीमा स्पष्ट रूप से निश्चित कर दी जानी चाहिए।
5. सीनेट के सदस्यों की संख्या कम कर दी जानी चाहिए और उनकी सदस्यता की अवधि पांच वर्ष की होनी चाहिए।
6. सिंडीकेट (Syndicate) के सदस्यों की संख्या 9 से 15 तक होनी चाहिए, और उनका निर्वाचन सीनेट (Senate) के द्वारा किया जाना चाहिए।
7. प्रत्येक सम्बद्ध कॉलेज का प्रबन्ध, एक संगठित समिति के द्वारा किया जाना चाहिए।
8. कॉलेजों को मान्यता देने के नियमों में कड़ाई की जानी चाहिए और द्वितीय श्रेणी के कॉलेजों को मान्यता नहीं दी जानी चाहिए।
9. कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के योग्य अध्यापकों को सीनेटों में प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिए।
10. इण्टरमीडिएट की कक्षाओं को तोड़ देना चाहिए और स्नातकों का पाठ्यक्रम 3 वर्ष का कर देना चाहिए।

4. आयोग का मूल्यांकन — "आयोग" के लगभग सभी सुझावों का एकमात्र उद्देश्य यह था कि भारतीय विश्वविद्यालयों को लन्दन-विश्वविद्यालय के आदर्श पर संगठित किया जाय। अतः उसने भारतीय विश्वविद्यालय-व्यवस्था के आधारभूत पुनर्संगठन के सम्बन्ध में एक भी सुझाव नहीं दिया। उसने केवल भारत में प्रचलित विश्वविद्यालय-व्यवस्था को इस देश के लिए हितकर समझकर, उसको समुन्नत और शक्तिशाली बनाने के लिए ही सुझाव दिए। इस प्रसंग में डा० एस० एन० मुकर्जी का यह कथन अक्षरशः सत्य है :—"विश्वविद्यालय-शिक्षा के सम्बन्ध में 'आयोग' की सिफ़ारिशों का उद्देश्य —विश्वविद्यालय-प्रणाली में किसी प्रकार का मौलिक पुनर्संगठन करना नहीं था, वरन् प्रचलित प्रणाली को केवल पुनः प्रतिष्ठित करना और शक्तिशाली बनाना था।"

"The Commission's recommendations on university education did not aim at any fundamental reconstruction of the system, but

और उनकी सीनेटों के सदस्य, योग्य व्यक्ति होने लगे। अधिकांश विश्वविद्यालयों ने शिक्षण-कार्य भी आरम्भ कर दिया। विश्वविद्यालयों को सहायता-अनुदान मिलने लगा। अब उन्होंने भवनों, पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं की सुन्दर व्यवस्था की। विश्वविद्यालयों द्वारा अपने सम्बद्ध कॉलेजों का निरीक्षण किया जाने लगा। फल-स्वरूप, कॉलेजों के शिक्षण-स्तर का उत्थान हुआ, जिससे विद्यार्थियों के ज्ञान में पर्याप्त वृद्धि हुई।

इस प्रकार, "विश्वविद्यालय-अधिनियम" ने उच्च शिक्षा की संस्थाओं में सराहनीय सुधार किए। किन्तु, उसने शिक्षा की प्रणाली में किसी प्रकार का परिवर्तन नहीं किया। इस प्रणाली में पूर्व के समान पुस्तकीय ज्ञान और साहित्यिक विषयों की प्रधानता बनी रही, क्योंकि इसमें औद्योगिक विषयों का समावेश नहीं किया गया। 'अधिनियम' से भारतीयों को तीन मुख्य आशाएँ थीं—विश्वविद्यालयों में अनुसंधान-कार्य का आरम्भ, सीनेटों से सरकारी प्रभाव की कमी और कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों की आर्थिक समस्याओं का समाधान। पर इन आशाओं में से एक भी पूर्ण नहीं हुई। इसके अतिरिक्त, "अधिनियम" ने विश्वविद्यालयों के आन्तरिक प्रबन्ध पर सरकार का इतना कठोर नियंत्रण स्थापित कर दिया कि उनकी सब स्वतंत्रता का प्रायः अन्त हो गया।

"विश्वविद्यालय-अधिनियम" के उपर्युक्त गुणों और दोषों को ध्यान में रखकर, हम निष्कर्ष रूप में नुरूल्ला व नायक के शब्दों में कह सकते हैं :—"यह सत्य है कि 1904 के 'अधिनियम' से कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। किन्तु, कर्जन को विश्वविद्यालय-सुधार में एक नवीन आन्दोलन आरम्भ करने का श्रेय प्राप्त रहेगा। यह आन्दोलन धीरे-धीरे पर निरन्तर अपने निश्चित लक्ष्य की ओर बढ़ रहा है।"

"It is true that the Act of 1904, by itself did not achieve much. But Curzon will have the credit of having been the *pioneer* to start a new movement in university reform, which slowly but steadily, has ever been progressing to its destined goal."—Nurullah & Naik : *op. cit.* pp. 474-475.

4. शिक्षा-नीति-सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव, 1904

Government Resolution on Educational Policy, 1904

लार्ड कर्जन ने 11 मार्च, 1904 को अपनी शिक्षा-नीति को एक सरकारी प्रस्ताव के रूप में प्रकाशित किया। इस प्रस्ताव में उसने तत्कालीन शिक्षा के दोषों को भारतीय जनता के सम्मुख रखकर, अपनी शिक्षा-नीति की उद्घोषणा की गयी।

1. संख्यात्मक दोष—संख्यात्मक दृष्टि से तत्कालीन भारतीय शिक्षा-प्रणाली के दोषों के विषय में प्रस्ताव में लिखा गया :—"संख्यात्मक दृष्टि से वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के दोष सर्वविदित हैं। पाँच में से चार ग्रामों में कोई विद्यालय नहीं है। चार में से तीन बालकों को शिक्षा प्राप्त नहीं होती है, और चालीस में से केवल एक बालिका किसी प्रकार के विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करती है।"

2. गुणात्मक दोष—गुणात्मक दृष्टि से तत्कालीन भारतीय शिक्षा-प्रणाली में "प्रस्ताव" द्वारा निम्नांकित दोषों की ओर संकेत किया गया :—

1. पाठ्यक्रम पूर्ण रूप से साहित्यिक है।
2. परीक्षाओं को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया जाता है।
3. अंग्रेजी की शिक्षा को प्रमुख स्थान देकर, भारतीय भाषाओं की अवहेलना की जाती है।
4. स्कूलों और कॉलिजों में छात्रों की बुद्धि का कम और स्मृति का अधिक विकास किया जाता है।
5. उच्च शिक्षा का लक्ष्य केवल राजपद प्राप्त करना है। इस लक्ष्य ने उच्च शिक्षा के क्षेत्र को अत्यधिक संकीर्ण बना दिया है। इसका कारण यह है कि जिन व्यक्तियों को राजपद प्राप्त नहीं हो पाते हैं, वे अन्य कार्यों के लिए अयोग्य हो जाते हैं।

3. शिक्षा की नीति—शिक्षा के उपरिलिखित दोषों का विश्लेषण करने के उपरान्त "सरकारी प्रस्ताव" में शिक्षा की नीति निर्धारित की गई। इस नीति की उल्लेखनीय बातें निम्नलिखित थीं :—

1. प्राथमिक शिक्षा के प्रति बहुत कम ध्यान दिया गया है और उसके प्रसार के लिए अपर्याप्त प्रयास किए गए हैं। उसका प्रसार करना—सरकार का मुख्य कर्त्तव्य होना चाहिए।
2. प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में [illegible] स्थान नहीं दिया जाना चाहिए।
3. प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में [illegible] भाषाओं का प्रमुख स्थान होना चाहिए।
4. माध्यमिक विद्यालयों [illegible] उन्नयन करने के लिए मान्यता और सहायता [illegible] में अधिक कड़ाई की जानी चाहिए।
5. कॉलिजों और [illegible] शिक्षा के स्तर को ऊँचा [illegible] किए जाने चाहिए।

4. मूल्यांकन—"सरकारी प्रस्ताव" में, लार्ड कर्जन ने तत्कालीन भारतीय शिक्षा के दोषों का यथोचित चित्र अंकित किया था और शिक्षा के प्रसार और समुन्नति के लिए प्रशंसनीय सुझाव दिए थे। किन्तु, वह जिस नीति का अनुगमन करके अपने कार्यों को सम्पादित करना चाहता था, उसके प्रति भारतीय सशंकित थे। एस० एन० मुकर्जी का कथन है:—"यद्यपि रोग का निदान ठीक था, तथापि प्रस्तावित औषधि न तो उपयुक्त थी और न सामयिक। लार्ड कर्जन ने जो बातें कहीं, उनमें से अनेक सत्य थीं। किन्तु, जिस विधि से वह सुधार करना चाहता था, उससे शिक्षित भारतीयों के मस्तिष्क में गम्भीर सन्देह की उत्पत्ति हो गई। वे यह समझे कि इस सुधार-कार्य में कोई गहरी राजनीतिक चाल छिपी हुई थी।"

कर्ज़न के शिक्षा-सम्बन्धी कार्यों का मूल्यांकन
Estimate of Curzon's Educational Reforms

भारत के श्रेष्ठ गवर्नर-जनरलों में लार्ड कर्जन का नाम सर्वोच्च कोटि में रखा जाता है। किन्तु, पाश्चात्य सभ्यता का अनन्य उपासक और भारतीय संस्कृति का कट्टर विरोधी होने के कारण, वह इस देश के निवासियों की श्रद्धा का भाजन न बन सका। फिर भी, जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध है, उसके कार्यों का तिरस्कार करना—अदूरदर्शिता का प्रमाण देना है।

लार्ड कर्जन ने शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में जो सुधार किए, उनके लिए भारतवासी सदैव उसके अनुगृहीत रहेंगे। उसने "भारतीय विश्वविद्यालय-आयोग" की नियुक्ति करके और "भारतीय विश्वविद्यालय-अधिनियम" को पारित करवा के उच्च शिक्षा के स्तर को उन्नत किया। उसने माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में भारतीय भाषाओं को सम्मानित स्थान देकर, उनको नवजीवन प्रदान किया। उसने प्राथमिक शिक्षा के विस्तार को सरकार का स्पष्ट उत्तरदायित्व बनाकर, उसकी गुणात्मक और संख्यात्मक उन्नति के लिए अथक प्रयास किए।

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि लार्ड कर्जन ने अपने अल्प कार्य-काल में भारतीय शिक्षा के सभी अंगों में सुधार करके, उनको सफल बनाया। उसके इस कार्य का मूल्यांकन करते हुए, नुरुल्ला व नायक ने लिखा है:—"जो कार्य, कर्जन ने सात वर्ष में किए, उनको करने में किसी अन्य मनुष्य को निश्चित रूप से दुगुने या तिगुने समय की आवश्यकता पड़ती।"[1]

[1] "What Curzon achieved in seven years would certainly have required twice or thrice as much time for any other man."—Nurullah & Naik: op. cit., p. 451.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Discuss briefly the educational reforms of Lord Curzon.
लार्ड कर्जन के शिक्षा-सम्बन्धी सुधारों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

2. *Write short notes on :—(a) Indian Universities Commission* of 1902 and (b) Government Resolution on Educational Policy of 1904.

   निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :—(अ) 1902 का भारतीय विश्वविद्यालय-आयोग, और (ब) 1904 का शिक्षा-नीति-सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव।

3. What was the effect of the Indian Universities Act of 1904 on the universities and affiliated colleges of India ?

   1904 के "भारतीय विश्वविद्यालय-अधिनियम" का भारत के विश्वविद्यालयों और कॉलेजों पर क्या प्रभाव पड़ा ?

11

राष्ट्रीय आन्दोलन का शिक्षा पर प्रभाव

INFLUENCE OF NATIONAL MOVEMENT ON EDUCATION (1905—1921)

"Indian education must be controlled by Indians, shaped by Indians, carried on by Indians."—Mrs. Annie Besant.

विषय-प्रवेश

1857 के प्रथम स्वतन्त्रता-संग्राम से पूर्व ही भारतवासियों के हृदय में स्वतन्त्रता का अंकुर प्रस्फुटित हो गया था। 1885 में "भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस" की स्थापना ने उस राष्ट्रीयता के अंकुर को सींच कर पल्लवित करना आरम्भ किया। 1905 में "बंगाल के विभाजन" (Partition of Bengal) ने उसके वास्तविक रूप को प्रकट किया। उसी वर्ष कलकत्ता में होने वाले "कांग्रेस-अधिवेशन" में भारत की विदेशी सरकार के विरुद्ध स्वतन्त्रता-आन्दोलन आरम्भ करने का सर्वसम्मति से निश्चय किया गया। इस आन्दोलन के चार मुख्य अंग थे—(1) स्वराज्य की प्राप्ति, (2) स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग, (3) विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, और (4) राष्ट्रीय शिक्षा की मांग।

राष्ट्रीय शिक्षा की मांग
Demand of National Education

बंगाल के विभाजन ने राष्ट्रीय आन्दोलन और राष्ट्रीय शिक्षा की मांग को गति प्रदान की। जैसे-जैसे राष्ट्रीय आन्दोलन की गति तीव्र होती गई, वैसे-वैसे शिक्षा के राष्ट्रीयकरण अथवा स्वदेशीकरण की मांग बढ़ती गई और भारतीय शिक्षा के

अंग्रेजीकरण के विरुद्ध देशप्रेमियों की आवाज भारत के कोने-कोने में गूँजने लगी। इस शिक्षा के जबर्दस्त निन्दक थे—महात्मा गांधी और श्रीमती एनी बेसेंट।

महात्मा गांधी ने "यंग इण्डिया" (Young India) में अपने लेख प्रकाशित करके, भारतीय शिक्षा के विदेशी स्वरूप पर प्रचण्ड प्रहार किए। उन्होंने इस शिक्षा के निम्नलिखित 4 गम्भीर दोष बताकर, भारतीयों के लिए इसका अनौचित्य सिद्ध किया :—

1. यह शिक्षा, अन्यायपूर्ण शासन से सम्बन्धित है।
2. यह शिक्षा, विदेशी संस्कृति पर आधारित है और इसमें भारतीय संस्कृति का कोई स्थान नहीं है।
3. इस शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य—मस्तिष्क का विकास करना है। इसमें हस्तकार्यों के लिए कोई स्थान नहीं है और यह हृदय को प्रभावित नहीं करती है।
4. इस शिक्षा का माध्यम—अंग्रेजी है। अंग्रेजी, विदेशी भाषा होने के कारण वास्तविक ज्ञान प्रदान नहीं कर सकती है।

श्रीमती एनी बेसेंट ने भारतीय शिक्षा के अंग्रेजीकरण की निन्दा और राष्ट्रीय शिक्षा की माँग करते हुए कहा :—"राष्ट्रीय जीवन और राष्ट्रीय चरित्र को अधिक शीघ्रता और अधिक निश्चित रूप में निर्बल बनाने के लिए इससे अधिक उत्तम उपाय और कोई नहीं हो सकता है कि बालकों की शिक्षा पर विदेशी प्रभावों और विदेशी आदर्शों का प्रभुत्व हो।"

"Nothing can more swiftly emasculate national life, nothing can more surely weaken national character, than allowing the education of the young to be controlled by foreign influences, to be dominated by foreign ideals"—Mrs. Annie Besant. Quoted by Lala Lajpat Rai in *The Problem of National Education in India*, p 28

राष्ट्रीय शिक्षा के सिद्धान्त या विशेषताएँ
Principles or Characteristics of National Education

भारत के नेताओं और शिक्षाविदों ने अपने देश के लिए जिस राष्ट्रीय शिक्षा की माँग की, उसके प्रमुख सिद्धान्त अथवा विशेषताएँ दृष्टव्य हैं :—

1. भारतीय नियन्त्रण : Indian Control—राष्ट्रीय नेताओं ने भारतीय शिक्षा पर विदेशियों के नियन्त्रण को सर्वथा अनुचित बताया और कहा कि इस शिक्षा पर भारतीयों का पूर्ण नियन्त्रण होना चाहिए। इस सम्बन्ध में भारतीयों के विचारों का प्रकाशन करते हुए, श्रीमती एनी बेसेंट ने कहा —"भारतीय शिक्षा—भारतवासियों द्वारा नियन्त्रित, भारतवासियों द्वारा निर्मित और भारतवासियों द्वारा संचालित की जानी चाहिए।"

"Indian education must be controlled by Indians, shaped by Indians, carried on by Indians."—Mrs. Annie Besant. Quoted by Lala Lajpat Rai : *op. cit.*, p. 28.

2. शिक्षा के आदर्श : Ideals of Education—राष्ट्रीय शिक्षा के आदर्शों को स्पष्ट करते हुए, श्रीमती एनी बेसेंट ने कहा :—"भारतीय शिक्षा को भक्ति, ज्ञान एवं नैतिकता के भारतीय आदर्श प्रस्तुत करने चाहिए और उसमें भारतीय धार्मिक भावना का समावेश होना चाहिए।"

3. मातृभूमि के लिए प्रेम : Love for Motherland—भारत की तत्कालीन शिक्षा-प्रणाली में राजभक्ति की शिक्षा दी जाती थी। श्रीमती एनी बेसेंट ने इस शिक्षा को पूर्णतया अनुपयुक्त बताया। उन्होंने यह विचार व्यक्त किया कि छात्रों को ऐसी शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए, जिससे उनमें अपनी मातृभूमि के लिए प्रेम और आदर की भावनाओं का आविर्भाव हो।

4. राष्ट्रीय चरित्र का विकास : Development of National Character—तत्कालीन शिक्षा, भारतीयों के राष्ट्रीय चरित्र का विकास करने में असमर्थ थी। अतः श्रीमती एनी बेसेंट ने राष्ट्रीय शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया और उसके उद्देश्य को राष्ट्रीय चरित्र का विकास बताते हुए कहा :—"राष्ट्रीय शिक्षा को राष्ट्रीय चरित्र का विकास करना चाहिए।"

5. ब्रिटिश आदर्शों की समाप्ति : End of British Ideals—अंग्रेजी शिक्षा-भारतवासियों के सम्मुख अंग्रेजी आदर्शों को प्रस्तुत करती थी। ये आदर्श उनके लिए अत्यधिक अहितकर थे। अतः इनका विरोध करते हुए, और भारतीयों के लिए भारतीय आदर्शों को ही उपयुक्त बताते हुए, श्रीमती एनी बेसेंट ने कहा :—"ब्रिटिश आदर्श, ब्रिटेन के लिए अच्छे हैं, किन्तु भारत के लिए भारत के आदर्श ही अच्छे हैं।"

"British ideals are good for Britain, but it is India's ideals that are good for India."—Mrs. Annie Besant. Quoted by Lala Lajpat Rai : *op. cit.*, p. 30.

6. भारतीय भाषाओं पर बल : Stress on Indian Languages—देश के नेताओं ने घोषित किया कि राष्ट्रीय शिक्षा में भारतीय भाषाओं के अध्ययन पर बल दिया जाना चाहिए और इन्हीं भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया जाना चाहिए। अतः उन्होंने दृढ़तापूर्वक कहा कि पाठ्यक्रम में अंग्रेजी के महत्व का अन्त कर देना चाहिए।

7. व्यावसायिक शिक्षा पर बल : Stress on Vocational Education—राष्ट्रीय आन्दोलन की एक मुख्य विशेषता थी—स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग। यह तभी सम्भव हो सकता था, जब व्यावसायिक शिक्षा की उचित व्यवस्था करके, भारतीय उद्योगों को उन्नतिशील बनाया जाता। इसके अतिरिक्त, व्यावसायिक शिक्षा

से देश की आर्थिक समस्या का और भारतीयों की निर्धनता का समाधान हो सकता था। इन्हीं विचारों से प्रेरित होकर राष्ट्रीय नेताओं ने राष्ट्रीय शिक्षा में औद्योगिक और व्यावसायिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था पर बल दिया।

8. पाश्चात्य ज्ञान पर बल : Stress on Western Knowledge—राष्ट्रीय शिक्षा के समर्थकों का विश्वास था कि आज के वैज्ञानिक युग में भारत का अन्य देशों से सम्पर्क होना अत्यन्त आवश्यक था। अतः उन्होंने इस बात पर बल दिया कि भारतीय छात्रों के लिए पाश्चात्य ज्ञान और विज्ञानों का अध्ययन करना अनिवार्य था। लाला लाजपत राय का विचार था :—'मेरे विचार से भारत में यूरोपीय भाषाओं, साहित्यों और विज्ञानों के अध्ययन को प्रोत्साहित न करने का प्रयास—मूर्खता और पागलपन होगा।"

"In my judgment, it will be a folly and madness to try to discourage the study of European languages, literatures, and sciences in India."—**Lala Lajpat Rai** : *op. cit.*, p. 85.

राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं की स्थापना
Establishment of National Educational Institutions

1905 में कर्ज़न की नौकरशाही ने बंग-भंग की घोषणा करके, सम्पूर्ण देश में असन्तोष का साम्राज्य स्थापित कर दिया। भारतीयों और विद्यार्थियों ने अपने असंतोष को अभिव्यक्त करने के लिए, सभाएँ कीं और जलूस निकाले। कठोर शासन में विश्वास करने वाले कर्ज़न के लिए उनके ये कार्य असह्य हो गए। अतः उसने अपना दमन-चक्र आरम्भ किया और छात्रों को राजनीति से पृथक् रहने की आज्ञा दी। उसने यह स्पष्ट कर दिया कि उसकी आज्ञा का उल्लंघन करने वाले विद्यार्थियों को शिक्षा-संस्थाओं से निकाल दिया जायगा। विद्यार्थियों ने इसका उत्तर स्वयं शिक्षा-संस्थाओं का बहिष्कार करके दिया।

इन उत्साही और देश-प्रेमी विद्यार्थियों की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध करना—राष्ट्रीय कर्त्तव्य माना गया। अतः भारत के विभिन्न भागों में राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना की गई। इस कार्य में पहला क़दम बंगाल में उठाया गया। यहाँ गुरुदास बनर्जी की अध्यक्षता में "राष्ट्रीय शिक्षा-प्रसार समिति" (Society for the Promotion of National Education) की सृष्टि की गई। इस "समिति" ने सम्पूर्ण बंगाल में 51 हाई स्कूलों का नव-निर्माण किया। रवीन्द्रनाथ टैगोर, रास-बिहारी घोष और अरविन्द घोष के संयुक्त प्रयासों के परिणामस्वरूप 'नेशनल कॉलिज" की स्थापना हुई।

राष्ट्रीय शिक्षा-आन्दोलन का एक अन्य रूप भी परिलक्षित हुआ। 1901 में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने शान्तिनिकेतन नामक स्थान में एक 'ब्रह्मचर्य आश्रम' की स्थापना की, जो आज 'विश्वभारती" के नाम से प्रसिद्ध है। इसी समय के आसपास "आर्य-प्रतिनिधि-सभा" ने हरिद्वार और वृन्दावन में गुरुकुलों का शिलान्यास किया।

12

शिक्षा की प्रगति
PROGRESS OF EDUCATION
(1905-1921)

"It is my wish that there may be spread over the land a network of schools and colleges."—King-Emperor George V

विषय-प्रवेश

1904 के "शिक्षा-नीति-सम्बन्धी प्रस्ताव" में लार्ड कर्ज़न ने प्राथमिक शिक्षा का प्रसार करना—सरकार का प्रमुख कर्तव्य बताया था। अतः सरकार ने उसके प्रति अधिक ध्यान देना और उस पर अधिक धन व्यय करना आरम्भ कर दिया था। फलस्वरूप, 1905 के बाद प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में तीव्रता दृष्टिगोचर हुई। किन्तु, इसको समृद्धशाली बनाने का श्रेय प्राप्त हुआ, दिसम्बर, 1911 में भ्रमण के लिए भारत पधारने वाले सम्राट जार्ज पंचम थे। उनके सम्मानार्थ आयोजित किये जाने वाले दिल्ली दरबार में सम्राट ने प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए 50 लाख रुपए की अतिरिक्त धनराशि व्यय किए जाने का आदेश देकर, इस देश की जन-साधारण की शिक्षा में अपनी रुचि व्यक्त की।

इससे भी अधिक रुचि, सम्राट जार्ज पंचम ने 6 फ़रवरी, 1912 को कलकत्ता विश्वविद्यालय के प्रांगण में भारत की जनता को अपना यह सन्देश देकर व्यक्त की :—"मेरी इच्छा है कि सम्पूर्ण देश में स्कूलों और कॉलिजों का जाल बिछ जाय, जहाँ से उद्योगों, कृषि और जीवन के समस्त व्यवसायों में कुछ करके दिखाने वाले राजभक्त, निर्भीक और उपयोगी नागरिक, शिक्षा प्राप्त करके निकलें।"

"It is my wish that there may be spread over the land a network of schools and colleges, from which will go forth loyal and

कलकत्ता-विश्वविद्यालय-आयोग, 1917–1919
Calcutta University Commission, 1917–1919

सन् 1913 के "शिक्षा-सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव" में प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा की उन्नति एवं विस्तार के लिए अनेक बहुमूल्य विचार व्यक्त किए गए थे। किन्तु इन विचारों को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए शिक्षाविदों के परामर्श की आवश्यकता थी। अतएव, एक शिक्षा-आयोग की नियुक्ति का प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। परन्तु, 1914 में आरम्भ होने वाले विश्वयुद्ध ने आयोग की नियुक्ति का असम्भव बना दिया और शिक्षा-सम्बन्धी सब सुधार कागज पर लिखे रह गए। विश्वयुद्ध की समाप्ति से कुछ पहले भारत-सरकार ने "कलकत्ता-विश्वविद्यालय-आयोग" की नियुक्ति की।

1. नियुक्ति का कारण—सन् 1916 में कलकत्ता-विश्वविद्यालय के उप-कुलपति सर आशुतोष मुकर्जी ने विश्वविद्यालय में "स्नातकोत्तर विभाग (Post-Graduate Department) की स्थापना की। इस विभाग की स्थापना करके, सर आशुतोष मुकर्जी एक नवीन प्रयोग का उद्घाटन करने के लिए अत्यधिक उत्सुक थे। उनकी हार्दिक इच्छा थी कि स्नातकोत्तर-शिक्षण का कार्य विश्वविद्यालय में ही किया जाय। उनकी इस इच्छा की ओर सरकार का ध्यान आकृष्ट हुआ। अतः उसने स्नातकोत्तर-शिक्षण के लिए कलकत्ता-विश्वविद्यालय की क्षमता की जाँच करने के लिए 14 सितम्बर, 1917 को "कलकत्ता विश्वविद्यालय-आयोग" की नियुक्ति की। इस आयोग का अध्यक्ष लीड्स विश्वविद्यालय (Leeds University) का उप-कुलपति डा० माइकल सैडलर (Michael Sadler) था। अतः उसके नाम पर इस आयोग को "सैडलर आयोग" (Sadler Commission) भी कहा जाता है।

2. जाँच का विषय—"आयोग" की जाँच का विषय था :—"कलकत्ता-विश्वविद्यालय की स्थिति एवं आशाओं की जाँच करना, और उससे सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करने के लिए रचनात्मक नीति पर विचार करना।"

"To enquire into the condition and prospects of University of Calcutta and to consider the question of a constructive policy in relation to the question it presents." *Resolution Appointing the Commission*

"आयोग" को मुख्यतः कलकत्ता-विश्वविद्यालय की स्थिति की जाँच करने के लिए नियुक्त किया गया था। किन्तु, उसे तुलनात्मक दृष्टि से अन्य विश्वविद्यालयों की भी जाँच करने का अधिकार प्रदान कर दिया गया था। उसने इस अधिकार के फलस्वरूप भारत के अन्य भागों की जाँच करने के अधिकार का भी प्रयोग किया। उसने 17 माह के अथक परिश्रम करके, मार्च 1919 में सरकार को अपना प्रतिवेदन पेश किया।

आयोग के सुझाव व सिफ़ारिशें
Suggestions & Recommendations of the Commission

"आयोग" ने शिक्षा के लगभग सभी अंगों के विषय में अपने विचार लेखबद्ध किए। हम कुछ महत्त्वपूर्ण अंगों पर उसके सुझावों और सिफ़ारिशों पर प्रकाश डाल रहे हैं; यथा :—

1. माध्यमिक शिक्षा—"आयोग" ने माध्यमिक शिक्षा को उच्च शिक्षा का मुख्य आधार मानकर, उसके सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव दिए :—

1. विश्वविद्यालय में केवल इण्टरमीडिएट परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाना चाहिए।
2. स्नातकों (Graduates) का पाठ्यक्रम 3 वर्ष का कर दिया जाना चाहिए।
3. इण्टरमीडिएट कक्षाओं को विश्वविद्यालयों से पृथक् कर दिया जाना चाहिए।
4. इण्टरमीडिएट की शिक्षा के लिए पृथक् इण्टरमीडिएट कॉलिजों की स्थापना की जानी चाहिए।
5. इण्टरमीडिएट कॉलिजों में शिक्षा का माध्यम—भारतीय भाषाएँ होनी चाहिए।
6. प्रत्येक प्रान्त में "माध्यमिक और इण्टरमीडिएट शिक्षा-बोर्ड" (Board of Secondary & Intermediate Education) का निर्माण किया जाना चाहिए।
7. माध्यमिक स्कूलों और इण्टरमीडिएट कॉलिजों के नियन्त्रण और निरीक्षण का कार्य उक्त बोर्डों को सौंप दिया जाना चाहिए।

2. कलकत्ता-विश्वविद्यालय—"आयोग" ने कलकत्ता-विश्वविद्यालय की विशाल छात्र-संख्या को ध्यान में रखकर, अधोलिखित सिफ़ारिशें कीं :—

1. ढाका में "आवास और शिक्षण" (Residential and Teaching) विश्वविद्यालय की शीघ्रातिशीघ्र स्थापना की जानी चाहिए।
2. कलकत्ता नगर के सब कॉलिजों को इस प्रकार संगठित किया जाना चाहिए कि एक शिक्षण-विश्वविद्यालय का निर्माण हो जाय।
3. कलकत्ता नगर के आस-पास के कॉलिजों को इस प्रकार संगठित किया जाना चाहिए कि उपयुक्त स्थानों पर क्रमशः नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना हो जाय।

3. भारतीय विश्वविद्यालय—"आयोग" ने भारतीय विश्वविद्यालयों के संगठन, शासन आदि के सम्बन्ध में अधोलिखित सुझाव दिए :—

1. विश्वविद्यालयों को सरकार के नियन्त्रण से मुक्त होकर, अधिक स्वतंत्रता का उपभोग करना चाहिए।
2. विश्वविद्यालयों में "पास कोर्स" (Pass Course) के अलावा "आनर्स कोर्स" (Honours Course) का भी प्रचलन किया जाना चाहिए।
3. स्नातक का पाठ्यक्रम 3 वर्ष का कर दिया जाना चाहिए।
4. विश्वविद्यालयों में कृषि, कानून, डाक्टरी, अध्यापन, इन्जीनियरिंग आदि की शिक्षा की उचित व्यवस्था की जानी चाहिए।
5. विश्वविद्यालयों में अरबी, फारसी और संस्कृत के अध्ययन की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए।
6. छात्रों के स्वास्थ्य की देखभाल करने के लिए प्रत्येक विश्वविद्यालय में "शारीरिक प्रशिक्षण-संचालक" (Director of Physical Training) की नियुक्ति की जानी चाहिए।

4. स्त्री-शिक्षा—"आयोग" ने स्त्री-शिक्षा का विस्तार करने के उद्देश्य से दो मुख्य सुझाव दिए, यथा :—

1. जो बालिकाएँ 15-16 वर्ष की अवस्था तक बालकों से पृथक् शिक्षा प्राप्त करना चाहती हैं, उनके लिए "पर्दा-स्कूलों" (Purdah Schools) का प्रबन्ध किया जाना चाहिए।
2. कलकत्ता-विश्वविद्यालय में "स्त्री-शिक्षा की विशिष्ट परिषद्" (Special Board of Women's Education) की स्थापना की जानी चाहिए। इस "परिषद्" के द्वारा स्त्रियों को चिकित्सा-शिक्षा और शिक्षक-प्रशिक्षण की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए।

5. मूल्यांकन—"कलकत्ता-विश्वविद्यालय-आयोग" ने उच्च शिक्षा के विस्तार और संगठन के लिए अभिनन्दनीय कार्य किया। "आयोग" को केवल कलकत्ता-विश्वविद्यालय की स्थिति की जाँच करने के लिए नियुक्त किया गया था, किन्तु उसने और भी अनेक विश्वविद्यालयों की जाँच करके, भारत के सब विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में अमूल्य सुझाव देकर, उनका महान् उपकार किया। उपकार इसलिए, क्योंकि भारत-सरकार ने "आयोग" के सभी सुझावों को सहर्ष स्वीकार करके, विश्वविद्यालयों में सुधार करने के लिए रचनात्मक कदम उठाए। इन सुधारों में सर्वश्रेष्ठ सुधार यह था कि भारतीय विश्वविद्यालय केवल परीक्षा-संस्थाएँ न रहकर, शिक्षण और अनुसंधान के भी केन्द्र बन गए।

"आयोग" के सुधार-सम्बन्धी सुझावों के कुछ दोषों की चर्चा कर देना भी
आवश्यक प्रतीत होता है। भारत जैसे निर्धन देश के लिए आवास विश्वविद्यालयों
की स्थापना के सुझाव में कोई औचित्य नहीं था। "आयोग" का दूसरा त्रुटि
सुझाव यह था कि माध्यमिक शिक्षा के निरीक्षण और नियंत्रण का भार नव-निर्मि

"शिक्षा-बोर्डों" को सौंप दिया जाय। "आयोग" के सदस्य डा० जियाउद्दीन अहमद के विचारानुसार इस सुझाव को क्रियान्वित करने का अच्छा परिणाम नहीं हुआ। इण्टरमीडिएट कॉलिजों के परीक्षण में सफलता प्राप्त नहीं हुई।

इस प्रकार, यद्यपि "आयोग" के सुझावों में यत्र-तत्र कुछ दोष वर्तमान थे, तथापि उसने अपने सुझावों के द्वारा विश्वविद्यालय-शिक्षा में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन किए, वे चिरस्मरणीय रहेंगे। उसके सुझाव इतने बहुमूल्य थे कि आगामी 30 वर्षों में उसके प्रतिवेदन के पृष्ठों को उलट कर शिक्षा-सम्बन्धी सुधारों की समय-समय पर सूचना प्राप्त की गई। "आयोग" के प्रतिवेदन के इसी महत्व पर प्रकाश डालते हुए, आर्थर मेह्यू ने लिखा है :—"कलकत्ता-विश्वविद्यालय-आयोग का प्रतिवेदन—सुझाव और सूचना का अनन्त स्रोत रहा है। भारतीय शिक्षा के इतिहास में इसका महत्व असीम है।"

'The Report of the Calcutta University Commission has been a constant source of suggestion and information. Its significance in the History of Indian education has been incalculable."—Arthur Mayhew *The Education of India*, pp 5-6

शिक्षा की प्रगति
Progress of Education

"शिक्षा-सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव' और 'कलकत्ता-विश्वविद्यालय-आयोग" के उपर्युक्त विवरण के पश्चात् हम 1905 से 1921 तक की अवधि में भारतीय शिक्षा की प्रगति पर दृष्टिपात कर रहे हैं :-

1 प्राथमिक शिक्षा—सन् 1904 के "सरकारी प्रस्ताव" में प्राथमिक शिक्षा का प्रसार करना सरकार का प्रमुख कर्तव्य बताया गया था। उसी समय से सरकार ने प्राथमिक शिक्षा के प्रति अधिक ध्यान देना आरम्भ किया था। 1905 में सरकार ने प्राथमिक शिक्षा पर व्यय की जाने वाली धनराशि को बढ़ाकर 75 लाख रुपए कर दिया। 1910 में स्थापित होने वाले "केन्द्रीय शिक्षा-विभाग" को प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए योजना तैयार करने का आदेश दिया गया।

सन् 1911 में गोखले ने केन्द्रीय सभा में प्राथमिक शिक्षा को क्रमशः अनिवार्य बनाने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। उसी वर्ष भारत में सम्राट जार्ज पंचम का शुभागमन हुआ और उन्होंने प्राथमिक शिक्षा के लिए 50 लाख रुपए की अतिरिक्त रकम की स्वीकृति दी। 1913 के "सरकारी प्रस्ताव" के सुझावों के अनुसार प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में वृद्धि की गई। किन्तु इन सब प्रयासों के बावजूद 1905 से 1921 तक की अवधि में प्राथमिक शिक्षा की प्रगति संतोषजनक नहीं थी। इसका प्रमाण देते हुए, डा० श्रीधरनाथ मुखोपाध्याय ने लिखा है :—

UNIVERSITY QUESTIONS

1. "In spite of some defects, it is universally admitted that the 'Calcutta University Commission' wielded the greatest influence on university education in this country." Comment.

   'कुछ दोषों के बावजूद यह बात सामान्य रूप से स्वीकार की जाती है कि 'कलकत्ता-विश्वविद्यालय-आयोग' ने इस देश की विश्वविद्यालय-शिक्षा पर सबसे अधिक प्रभाव डाला।" समीक्षा कीजिए।

2. Write a critical note on : "Government Resolution on Educational Policy" of 1913.

   1913 के "शिक्षा-नीति-सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव" पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।



हर्टाग-समिति, 1929

HARTOG COMMITTEE, 1929

"Throughout the whole educational system, there is waste and ineffectiveness."—*Hartog Committee Report.*

विषय-प्रवेश

सन् 1919 में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने भारत के शासन-स्वरूप को रूपान्तरित करने के विचार से "भारत-सरकार अधिनियम" (Government of India Act) के अनुसार "द्वैध शासन-पद्धति" (Dyarchy) का सूत्रपात किया। भारतवासियों ने शासन की इस नवीन पद्धति से असन्तुष्ट होकर, इसका घोर विरोध किया। इस विरोध के कारणों की जाँच करने के लिए ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने 8 नवम्बर, 1927 को "साइमन कमीशन" (Simon Commission) की नियुक्ति की।

इस कमीशन की नियुक्ति के समय भारत में राष्ट्रीय शिक्षा का आन्दोलन चल रहा था और इस देश पर अंग्रेजों द्वारा थोपी जाने वाली विदेशी शिक्षा पद्धति की तीव्र आलोचना की जा रही थी। इस आलोचना के औचित्य की जाँच करने के लिए "कमीशन" ने सर फिलिप हर्टाग (Sir Philip Hartog) की अध्यक्षता में एक "सहायक समिति" (Auxiliary Committee) की नियुक्ति की। यही "समिति" भारतीय शिक्षा के इतिहास में "हर्टाग समिति" के नाम से प्रसिद्ध है।

समिति के सुझाव व सिफ़ारिशें

Suggestions & Recommendations of the Committee

"हर्टाग-समिति" ने तत्कालीन भारतीय शिक्षा के लगभग सभी पहलुओं का समीक्षापूर्ण अध्ययन करके, सितम्बर, 1929 में अपने प्रतिवेदन को "कमीशन"

के समक्ष प्रस्तुत किया। "समिति" ने अपने प्रतिवेदन में 1917 से 1927 तक की अवधि में शिक्षा के अनेक अंगों के विषय में अपने विचारों को अंकित किया। उसने शिक्षा के प्रति भारतीयों की जागरूकता और उसकी समस्याओं को समझने एवं सुलझाने की अभिलाषा पर प्रकाश डाला। उसने इस तथ्य पर भी प्रकाश डाला कि यद्यपि शिक्षा के सभी अवयवों का विस्तार हुआ है, तथापि उसमें अनेक दोष अवलोकित होते हैं। इन दोषों के निवारण के लिए, "समिति" ने मोटे तौर पर यथावि? सुझाव दिए :—"हमसे शिक्षा के संगठन के विषय में रिपोर्ट देने के लिए कहा गया था। इस संगठन के प्रत्येक पक्ष पर पुनर्विचार करने एवं उसको शक्तिशाली बनाने की आवश्यकता है। शिक्षा के सङ्गठन के लिए जो संस्थाएँ उत्तरदायी हैं, उनके सम्बन्धों को पुन निर्धारित करना अनिवार्य है।"—

"We were asked to report on the organization of education. At almost every point that organization needs reconsideration and strengthening, and the relations of the bodies responsible for the organization of education need re-adjustment."—*Hartog Committee Report*, p. 346

भारतीय शिक्षा के दोषों का निवारण करने के लिए मुख्य उपायों का उल्लेख करने के पश्चात् "समिति" ने शिक्षा के विविध अंगों के दोषों और उन दोषों के निराकरण के उपायों के सम्बन्ध में अपने सुझावों और सिफारिशों को क्रमबद्ध किया। हम इनमें से महत्त्वपूर्ण का वर्णन अधोलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत कर रहे हैं; यथा :—

1 प्राथमिक शिक्षा : Primary Education

"समिति" ने यह स्वीकार किया कि यद्यपि प्राथमिक शिक्षा का विस्तार हो रहा था, तथापि वह सन्तोषप्रद नहीं था। 'समिति' ने इसके दो मुख्य कारण बताए—अपव्यय और अवरोधन। उसने पहले इन दोनों के अर्थ का स्पष्टीकरण किया, फिर इनके कारण बताए और अन्त में इन कारणों के निवारण के लिए, प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में अपने सुझावों एवं सिफारिशों को लिखित रूप प्रदान किया, यथा :—

1 "अपव्यय" व "अवरोधन" का अर्थ Meaning of 'Wastage' & 'Stagnation'—"समिति" के विचारानुसार प्राथमिक शिक्षा में "अपव्यय" और "अवरोधन" की समस्याएँ अत्यन्त विकराल थीं। इन दोनों शब्दों के अर्थ को "समिति" ने निम्नलिखित प्रकार से स्पष्ट किया —

(i) " 'अपव्यय' से हमारा अभिप्राय है—प्राथमिक शिक्षा पूर्ण होने से पहले बालकों को विद्यालय की किसी भी कक्षा से हटा लेना।"

"By 'wastage' we mean the premature withdrawal of children from school at any stage before the completion of the primary course."—*Hartog Committee Report*, p 47.

3. सुझाव व सिफारिशें : Suggestions & Recommendations—"समिति" ने "अपव्यय" और "अवरोधन" के कारणों को दूर करने और प्राथमिक शिक्षा की उन्नति करने के लिए अग्रलिखित विचार व्यक्त किए :—

1. प्राथमिक विद्यालयों की संख्यात्मक (Quantitative) वृद्धि की अपेक्षा गुणात्मक (Qualitative) उन्नति पर बल दिया जाना चाहिए।
2. प्राथमिक शिक्षा को ठोस (Consolidation) बनाने की नीति का अनुसरण किया जाना चाहिए।
3. उन विद्यालयों को जो छोटे हैं, जिनमें विद्यार्थियों की संख्या कम है और जिनमें शिक्षण की उचित व्यवस्था नहीं है, उनको बन्द कर दिया जाना चाहिए।
4. प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा की अवधि कम-से-कम 4 वर्ष की होनी चाहिए और उनके शिक्षण स्तर का उन्नयन किया जाना चाहिए।
5. प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम को उदार एवं व्यावहारिक और वातावरण एवं परिस्थिति के अनुकूल बनाया जाना चाहिए।
6. प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षण का समय, छुट्टियों और अन्य कार्यक्रमों को स्थानीय ऋतुओं और आवश्यकताओं के अनुसार निश्चित किया जाना चाहिए।
7. प्राथमिक विद्यालयों की निम्नतम कक्षा के प्रति विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, और उसमें होने वाले "अपव्यय" एवं "अवरोधन" का निराकरण करने के लिए पूर्ण प्रयास किया जाना चाहिए।
8. प्राथमिक विद्यालयों में अध्ययन करने वाले विद्यार्थियों में स्वच्छता, स्वास्थ्य, सहकारिता, आत्म-विश्वास आदि गुणों का विकास किया जाना चाहिए।
9. प्राथमिक विद्यालयों को मनोरंजन, ग्राम-सुधार, वयस्क-शिक्षा और साधारण चिकित्सा के केन्द्र बनाया जाना चाहिये।
10. शिक्षकों के शिक्षण-स्तर का उन्नयन करने के लिये, उनके प्रशिक्षण-काल में वृद्धि की जानी चाहिए।
11. शिक्षकों के वेतन में वृद्धि और उनकी कार्य करने की दशाओं में सुधार करके, योग्य व्यक्तियों को शिक्षण-कार्य के प्रति आकृष्ट किया जाना चाहिए।
12. प्रशिक्षण-विद्यालयों में सुधार किया जाना चाहिए और उनमें 'नवीनकरण-पाठ्यक्रमों' (Refresher Courses) की योजना आरम्भ की जानी चाहिये।

2· माध्यमिक शिक्षा : Secondary Education

"हर्टाग-समिति" ने माध्यमिक शिक्षा के दो प्रमुख दोष बताए :— मेट्रीकुलेशन परीक्षा की प्रधानता, और (2) अनुत्तीर्ण होने वाले छात्रों की विशाल संख्या। माध्यमिक शिक्षा को इन दोषों से मुक्त करने के लिये, "समिति" ने अग्रांकित सुझाव दिये :—

1. मिडिल स्कूलों का पाठ्यक्रम इतना संकीर्ण है कि उसका अध्ययन करने के पश्चात् विद्यार्थी किसी भी जीवनोपयोगी कार्य को नहीं कर सकते हैं। अतः पाठ्यक्रम का विस्तार करके, उसमें इस प्रकार के विषयों को स्थान दिया जाना चाहिए, जो विद्यार्थियों को धन का उपार्जन करने में सहायता दें।
2. मिडिल स्कूल का पाठ्यक्रम समाप्त करने के उपरान्त विद्यार्थियों की परीक्षा ली जानी चाहिए और उसमें उत्तीर्ण होने वाले विद्यार्थियों को उन उद्योगों एवं व्यवसायों की शिक्षा दी जानी चाहिये, जिनके लिये उनको उपयुक्त समझा जाय।
3. हाई स्कूल के पाठ्यक्रम में औद्योगिक एवं व्यावसायिक विषयों का समावेश किया जाना चाहिये और विद्यार्थियों को उनका अध्ययन करने के लिये उत्प्रेरित किया जाना चाहिए।
4. हाई स्कूल के पाठ्यक्रम में इस प्रकार के वैकल्पिक विषयों का समावेश किया जाना चाहिए, जिनसे विद्यार्थियों को लाभ हो और जिनक चयन वे अपनी व्यक्तिगत रुचियों के अनुसार कर सकें।
5. शिक्षा के स्तर का उन्नयन करने के लिये अध्यापकों के प्रशिक्षण उपयुक्त व्यवस्था की जानी चाहिये। साथ ही, प्रशिक्षण-विद्यालयों ... करके, उनमें शिक्षण की नवीनतम् वि

समय का नोटिस देकर अपने पद से हटा दिया जाता है। इन सब दोषों को दूर करके, शिक्षक के पद को सुरक्षित बनाया जाना चाहिए।

3. विश्वविद्यालय शिक्षा : *University Education*

"हर्टॉग-समिति" ने विश्वविद्यालय-शिक्षा की जाँच करने के पश्चात् उसमें अधोलिखित दोषों का ज्ञान प्राप्त किया :—शिक्षण का निम्न स्तर, छात्रों की संख्या में वृद्धि, "आनर्स कोर्स" की अनुपयुक्त व्यवस्था, अनुत्तीर्ण छात्रों की अत्यधिक संख्या, स्नातकों में बढ़ती हुई बेरोजगारी, उत्तम पुस्तकालयों और प्रयोगशालाओं का अभाव, इत्यादि।

"समिति" ने विश्वविद्यालय-शिक्षा को उक्त दोषों से रहित करने के विचार से निम्नलिखित सुझाव दिए —

1. उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए शिक्षण एवं एकात्मक (Teaching & Unitary) विश्वविद्यालय सर्वोत्तम होते हैं। परन्तु, भारत की परिस्थितियों को देखते हुए, अभी सम्बद्धक (*Affiliating*) विश्वविद्यालयों की पर्याप्त समय तक आवश्यकता रहेगी। अतः देश में दोनों प्रकार के विश्वविद्यालयों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।
2. विश्वविद्यालयों के शिक्षा-स्तर का उन्नयन किया जाना चाहिए। इससे विश्वविद्यालयों में अध्ययन करने वाले छात्रों के अलावा माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों का भी हित होगा।
3. विश्वविद्यालयों में प्रवेश करने के नियमों को कड़ा बना दिया जाना चाहिए और उनमें केवल उन्हीं छात्रों को प्रवेश दिया जाना चाहिए, जिनमें उच्च शिक्षा ग्रहण करने की योग्यता हो।
4. विश्वविद्यालयों को उत्तम पुस्तकालयों, सुसज्जित प्रयोगशालाओं और श्रेष्ठ अनुसंधान-कार्यों की अनिवार्य रूप से समुचित व्यवस्था करनी चाहिए।
5. विश्वविद्यालयों में "आनर्स कोर्स" के शिक्षण का उपयुक्त प्रबन्ध किया जाना चाहिए और उसे "पास कोर्स" से पृथक् रखा जाना चाहिए। "आनर्स कोर्स" की सफलता के लिए विश्वविद्यालय और उससे सम्बद्ध कालेजों के शिक्षकों पर सम्मिलित उत्तरदायित्व रखा जाना चाहिए।
6. स्नातकों की बढ़ती हुई बेरोजगारी का अन्त करने के लिए, विश्वविद्यालयों में औद्योगिक शिक्षा के पाठ्यक्रम का प्रचलन किया जाना चाहिए। इस शिक्षा को ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों को सरकार द्वारा नौकरियाँ दी जानी चाहिए।
7. स्नातकों को अपनी योग्यताओं के अनुकूल नौकरियाँ प्राप्त करने में

सहायता देने के लिए, विश्वविद्यालयों में "रोजगार के कार्यालयों" (Employment Bureaus) की सृष्टि की जानी चाहिए।

8. विश्वविद्यालयों का एक महत्त्वपूर्ण कार्य—जनसाधारण में ज्ञान का विस्तार करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिऐ विश्वविद्यालयों में व्याख्यान-मालाओं की योजना आरम्भ की जानी चाहिए।

हर्टाग-समिति का मूल्यांकन
Estimate of Hartog Committee

"हर्टाग-समिति" के प्रतिवेदन का भारतीय शिक्षा के इतिहास में विशिष्ट स्थान है। "समिति" ने शिक्षा के अनेक अवयवों के जिन दोषों की ओर संकेत किया, वे सभी स्पष्ट और सर्वविदित थे। उसने इन दोषों को दूर करने और शिक्षा के पुनर्संङ्गठन के सम्बन्ध में जो भी सुझाव दिए, वे उसके विवेक और दूरदर्शिता के प्रमाण थे। ये सभी सुझाव उसके इस निष्कर्ष पर आश्रित थे कि शिक्षा की गुणात्मक उन्नति का बलिदान करके, उसका संख्यात्मक विस्तार किया गया था। अतः उसने पूर्ण विश्वास से यह विचार व्यक्त किया कि शिक्षा के संख्यात्मक विस्तार पर स्थायी अंकुश लगा कर, पहले उसकी गुणात्मक उन्नति की जाय।

"समिति" के इस विचार का भारत में मिश्रित स्वागत हुआ। भारतीय जनता ने शिक्षा के गुणात्मक उन्नति के सुझाव की निन्दा की। उसका कहना था कि यह सुझाव इसलिए दिया गया था, ताकि इस देश में शिक्षा का प्रसार अवरुद्ध हो जाय। इसके विपरीत, भारत-सरकार ने इस सुझाव की प्रशंसा की। उसका कहना था कि शिक्षा का संख्यात्मक विस्तार करने से पूर्व उसकी गुणात्मक उन्नति की जानी अत्यन्त आवश्यक है। इस सुझाव ने सरकार की प्रतिनिधि शिक्षा-नीति को निश्चित रूप प्रदान किया। उसने इस सुझाव की आड़ में शिक्षा के प्रसार को रोक दिया और वह लगभग 20 वर्ष तक अर्थात् 1947 तक रुका रहा। डा० एस० एन० मुकर्जी के अग्रांकित वाक्य से हमारे कथन को बल प्राप्त होता है :—"हर्टाग-समिति के प्रतिवेदन ने इस देश में अपने जीवन के अन्तिम दो दशकों में ब्रिटिश सरकार की शिक्षा-नीति का बहुत-कुछ निर्माण किया।"

"The Hartog Committee Report more or less shaped the educational policy of British Government during the last two decades of its existence in this country."—Dr. S. N. Mukerji : *History of Education in India* p. 228.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. What were the views of the Hartog Committee on "Wastage" and "Stagnation" in Primary Education? What measures did it suggest to overcome them?

प्राथमिक शिक्षा में "अपव्यय" और "अवरोधन" के विषय में हर्टाग-समिति के क्या विचार थे ? उसने उनके समाधान के लिए क्या उपाय बताए ?

2. Summarize and criticise the main recommendations of the Hartog Committee and say how far they have influenced the modern conception of Secondary Education in India.

हर्टाग-समिति की मुख्य सिफ़ारिशों का संक्षेप में वर्णन कीजिए और उनकी आलोचना कीजिए। बताइए कि उन्होंने भारत में माध्यमिक शिक्षा की वर्तमान धारणा को कहाँ तक प्रभावित किया है ?

14

वुड-एबट रिपोर्ट, 1937

WOOD-ABBOTT REPORT, 1937

"Vocational education should not be regarded as being on a lower plane than literary education."

—Wood-Abbott Report.

विषय-प्रवेश

हर्टाग-समिति की सिफ़ारिश के फलस्वरूप भारत-सरकार ने सन् 1935 में "केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड" (Central Advisory Board of Education) की पुनः स्थापना की। इस "बोर्ड" ने दिसम्बर, 1935 की अपनी पहली बैठक में शिक्षा-सुधार के सम्बन्ध में अनेक प्रस्ताव पारित किए। उनमें से एक प्रस्ताव यह था :—"छात्रों के लिए उच्चतर माध्यमिक स्तर पर प्राविधिक विषयों की शिक्षा की व्यवस्था की जाय।"

"बोर्ड" के उपर्युक्त प्रस्ताव को स्वीकार करके, भारत-सरकार ने 1936 में इंगलैंड के दो प्रसिद्ध शिक्षा-विशेषज्ञों को भारत आने के लिए आमन्त्रित किया। ये विशेषज्ञ थे :—

1. एस० एच० वुड, इंगलैंड के शिक्षा-बोर्ड का डाइरेक्टर ऑफ इन्टैलिजेन्स (S. H. Wood, Director of Intelligence, Board of Education).

2. ए० एबट, इंगलैंड के शिक्षा-बोर्ड के प्रौद्योगिक स्कूलों का भूतपूर्व चीफ़-इंसपेक्टर (A. Abbott, Ex-Chief Inspector of Technical Schools, Board of Education).

जाँच के विषय
Terms of Reference

भारत-सरकार ने उपर्युक्त दो विशेषज्ञों की समिति से 4 बातों की जाँच करने के लिए कहा; यथा :—

1. क्या वर्तमान औद्योगिक एवं व्यावसायिक शिक्षा संस्थाओं में सुधार किया जाना चाहिए ?
2. क्या नवीन औद्योगिक एवं व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना की जानी चाहिए ?
3. ग्राम के बालकों के लिए किस प्रकार की शिक्षा की विशेष व्यवस्था की जानी चाहिए ?
4. क्या प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में किसी प्रकार का व्यावसायिक या व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ? यदि हाँ, तो उसका स्वरूप और विस्तार क्या होना चाहिए ?

   "Whether any vocational or practical training should be imparted in primary, secondary, and higher secondary schools, and if so, what should be its nature and extent ?"—*Resolution Appointing the Committee.*

वुड-एबट रिपोर्ट
Wood-Abbott Report

वुड और एबट नवम्बर, 1936 से मार्च, 1937 तक भारत में रहे। उनके पास समय का अभाव था। अतः उन्होंने केवल दिल्ली, पंजाब और संयुक्त प्रान्त का भ्रमण करके भारतीय शिक्षा का अध्ययन किया और जून, 1937 में अपनी रिपोर्ट को भारत-सरकार के पास प्रेषित किया। इस रिपोर्ट का शीर्षक है :—' Vocational Education in India with a Section on General Education and Administration" यह रिपोर्ट "वुड-एबट रिपोर्ट" के नाम से प्रसिद्ध है। यह दो भागों में विभक्त है; यथा :—

1. वुड द्वारा लिखित — 'सामान्य शिक्षा एवं प्रशासन' (General Education & Administration)
2. एबट द्वारा लिखित — व्यावसायिक शिक्षा (Vocational Education)

हम इन दोनों भागों में अंकित महत्त्वपूर्ण सुझावों का दिग्दर्शन करा रहे हैं, यथा :—

1. सामान्य शिक्षा-सम्बन्धी सिफ़ारिश
Recommendations on General Education

1. विभिन्न स्तरों पर शिक्षा की अवधि इस प्रकार होनी चाहिए :— (i) प्राथमिक शिक्षा—4 वर्ष; (ii) निम्न माध्यमिक शिक्षा—4 वर्ष; (iii) उच्च माध्यमिक शिक्षा—6 वर्ष, (iv) स्नातक-शिक्षा—3 वर्ष।
2. शिशु-शिक्षा (Infant Education) की उपयुक्त व्यवस्था की जानी चाहिए और शिशु-कक्षाओं के लिए केवल प्रशिक्षित अध्यापिकाएँ नियुक्त की जानी चाहिए।
3. प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षा को पुस्तकों पर आधारित न करके, बालकों की स्वाभाविक रुचियों, क्रियाओं और प्रवृत्तियों पर आधारित किया जाना चाहिए।
4. निम्न माध्यमिक (Lower Secondary) कक्षाओं में अंग्रेज़ी की शिक्षा पर बल नहीं दिया जाना चाहिए।
5. उच्च माध्यमिक (Higher Secondary) कक्षाओं में अंग्रेज़ी की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जानी चाहिए।
6. हाई स्कूल तक की शिक्षा—भारतीय भाषाओं के माध्यम से दी जानी चाहिए।
7. अंग्रेज़ी की शिक्षा को साहित्यिक रूप न देकर, अधिक व्यावहारिक बनाने का यत्न किया जाना चाहिए।
8. रचनात्मक हस्तकार्य (Constructive Handwork) की शिक्षा के प्रति विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए और उसकी शिक्षा सभी विद्यालयों में दी जानी चाहिए।
9. ललित कलाओं (Fine Arts) की शिक्षा को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए और उनके शिक्षण के लिए प्रशिक्षित शिक्षकों की नियुक्ति की जानी चाहिए।
10. ग्रामों के मिडिल स्कूलों के पाठ्यक्रम में वहाँ की आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुसार पाठ्यविषयों को स्थान दिया जाना चाहिए।
11. विद्यालयों का नियमित रूप से निरीक्षण करने के लिए विद्यालय-निरीक्षकों की नियुक्ति की जानी चाहिए और उनको कार्य करने की स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिए।
12. अध्यापकों के प्रशिक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापक कम-से-कम मिडिल पास होने चाहिए। उनके प्रशिक्षण की अवधि 3 वर्ष की होनी चाहिए और उनके लिए "अभिनवन पाठ्यक्रमों" (Refresher Courses) का आयोजन किया जाना चाहिए।

2. व्यावसायिक शिक्षा-सम्बन्धी सिफारिशें

Recommendations on Vocational Education

1. माध्यमिक शिक्षा का प्रसार देश की औद्योगिक आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर किया जाना चाहिए।
2. व्यावसायिक शिक्षा को वही पद प्रदान किया जाना चाहिए, जो साहित्यिक शिक्षा को प्राप्त है।
3. व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों को जीविकोपार्जन के उद्देश्य से व्यवसाय का चयन करने में सहायता देने के लिए उचित परामर्श दिया जाना चाहिए।
4. देश के विभिन्न प्रान्तों में व्यावसायिक शिक्षा का स्वरूप वहाँ के उद्योगों, व्यापारों और परिस्थितियों को ध्यान में रख कर निश्चित किया जाना चाहिए।
5. सामान्य एवं व्यावसायिक शिक्षा को एक-दूसरे से भिन्न नहीं समझा जाना चाहिए, अपितु उनको निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया का पूर्ववर्ती एवं परवर्ती चरण समझा जाना चाहिए।
6. सामान्य एवं व्यावसायिक शिक्षा के साधनों एवं लक्ष्यों में अन्तर है। अतः दोनों प्रकार की शिक्षा के लिए अलग-अलग विद्यालयों की सृष्टि की जानी चाहिए।
7. कुटीर उद्योग-धन्धों में संलग्न व्यक्तियों को उपयुक्त व्यापारिक एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
8. उद्योग तथा व्यापार और उद्योग तथा शिक्षा में निकट सम्पर्क स्थापित करने के लिए प्रत्येक प्रान्त में "व्यावसायिक शिक्षा की सलाहकार समिति" (Advisory Council for Vocational Education) का अनिवार्य रूप से निर्माण किया जाना चाहिए।
9. कम-से-कम 50 हजार जनसंख्या वाले औद्योगिक क्षेत्रों में जूनियर और सीनियर टेकनिकल स्कूलों की सृष्टि की जानी चाहिए।
10. व्यावसायिक शिक्षा का पाठ्यक्रम समाप्त करने वाले विद्यार्थियों को प्रमाण-पत्र (Certificates) दिए जाने चाहिए।
11. उद्योगपतियों द्वारा धन, सामग्री और भवन देकर व्यावसायिक शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।
12. विभिन्न व्यवसायों में संलग्न व्यक्तियों को शिक्षा देने के लिए अल्पकालिक (Part-Time) व्यावसायिक विद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिए। इन विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने के लिए कर्मचारियों को उनके स्वामियों द्वारा एक सप्ताह में आधे दिन का अवकाश दिया जाना चाहिए।

13. ग्राम के निवासियों का प्रधान व्यवसाय—कृषि है। अतः ग्रामों में स्थापित किए जाने वाले निम्न और उच्च माध्यमिक विद्यालयों में कृषि की शिक्षा को अनिवार्य विषय बनाया जाना चाहिए एवं इस विषय के शिक्षण का विशेष प्रबन्ध किया जाना चाहिए।
14. भारत-सरकार को एक व्यावसायिक प्रशिक्षण-महाविद्यालय (Vocational Training College) की स्थापना करनी चाहिए, जिसका अन्य प्रकार के शिक्षक-प्रशिक्षण-महाविद्यालयों से सम्बन्ध होना चाहिए।
15. भारत-सरकार को अग्रलिखित प्रकार के पूर्णकालिक (Full-Time) व्यावसायिक स्कूलों का शिलान्यास करना चाहिए :—(i) प्राथमिक शिक्षा-प्राप्त छात्रों के लिए "ट्रेड स्कूल" (Trade Schools), (ii) आठवीं कक्षा पास छात्रों के लिए "जूनियर वोकेशनल स्कूल" (Junior Vocational Schools), (iii) दसवीं कक्षा पास छात्रों के लिए "सीनियर वोकेशनल स्कूल" (Senior Vocational Schools), और (iv) बी० एस-सी० पास छात्रों के लिए "प्रौद्योगिक संस्थाएँ" (Technological Institutes)।

वुड-एबट रिपोर्ट का मूल्यांकन
Estimate of Wood-Abbott Report

समय का अभाव होने के कारण वुड और एबट ने सम्पूर्ण भारत की शिक्षा-सम्बन्धी आवश्यकताओं का निरीक्षण किए बिना अपने प्रतिवेदन को अत्यन्त अल्प काल में तैयार किया। पर, क्योंकि इन दोनों शिक्षा-विशारदों की अपने समय के विशेषज्ञों में गणना थी, अतः उन्होंने केवल दिल्ली, पंजाब और संयुक्त प्रान्त की विभिन्न परिस्थितियों का सूक्ष्म अवलोकन करके, समस्त देश की शिक्षा की वास्तविक स्थिति का बहुत-कुछ सत्य अनुमान लगा लिया। अपने इसी अनुमान के आधार पर उन्होंने सामान्य और व्यावसायिक शिक्षा के विषय में अत्यन्त विवेकपूर्ण और व्यावहारिक सिफ़ारिशों को अपने प्रतिवेदन में लिपिबद्ध किया और भारत-सरकार ने उनकी उपयोगिता को स्वीकार किया। अतः जैसा कि डा० श्रीधरनाथ मुखोपाध्याय ने लिखा है :—"इस प्रतिवेदन की सिफ़ारिशों के फलस्वरूप भारत में कुछ औद्योगिक एवं व्यावसायिक विद्यालय खोले गए। इनके साथ-साथ देश में सर्वप्रथम बहु-उद्योगीय विद्यालय अस्तित्व में आया। वह संस्था है—दिल्ली पॉलीटेक्नीक।"

भारत-सरकार—"वुड-एबट प्रतिवेदन" की कुछ ही सिफ़ारिशों को कार्यान्वित कर पाई थी कि सन् 1939 में द्वितीय विश्व-युद्ध के आकस्मिक विस्फोट ने सम्पूर्ण विश्व में संकटकालीन परिस्थिति उत्पन्न कर दी। इस परिस्थिति में अंग्रेज—यूरोप में अपने शत्रुओं के विरुद्ध और इस देश में "भारत छोड़ो' आन्दोलन के विरुद्ध—दो मोर्चों पर संघर्ष करने में तन-मन से जुटे हुये थे। अतः उन्होंने "वुड-

एबट प्रतिवेदन" को बन्द करके, एक ओर रख दिया। इस प्रकार, सार्जेण्ट ने "प्रतिवेदन" के महत्व को नष्ट कर दिया और आज भी इसका कोई महत्व नहीं है। नूरुल्ला व नायक ने सत्य ही लिखा है,—"इस समय वुड और एबट के प्रतिवेदन का ऐतिहासिक महत्व के अलावा और कोई महत्व नहीं है।"

"Today, the report of Messrs. Wood and Abbott has hardly any, except a historical, importance"—Nurullab & Naik : *A History of Education in India*, p. 788.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Summarize the views expressed by Messrs. Wood and Abbott on the development of general education in this country
   इस देश में सामान्य शिक्षा के विकास के लिए वुड और एबट द्वारा प्रकट किये गये विचारों को संक्षेप में लिखिये।
2. Summarize the views expressed by Messrs Wood and Abbott on the development of vocational education in India. How far were they put into practice ?
   भारत में व्यावसायिक शिक्षा के विकास के लिये वुड और एबट द्वारा व्यक्त किये गये विचारों को संक्षेप में लिखिये। उनको कहाँ तक कार्यान्वित किया गया ?

15

शिक्षा की प्रगति

PROGRESS OF EDUCATION
(1921–1947)

"It was under *Diarchy* that Indians first obtained the control of the Education Department."

—Nurullah & Naik.

विषय-प्रवेश

हम सुविधा की दृष्टि से 1921 से 1947 तक की शिक्षा की प्रगति का वर्णन निम्नांकित दो शीर्षकों के अन्तर्गत कर रहे हैं :—

1. द्वैध-शासन (Diarchy) में शिक्षा की प्रगति (1921-1937)।
2. प्रान्तीय स्वशासन (Provincial Autonomy) में शिक्षा की प्रगति (1937-1947)।

द्वैध-शासन में शिक्षा की प्रगति
Progress of Education under Diarchy

1919 के "भारत-सरकार-अधिनियम" (Government of India Act) के अनुसार इस देश में 1921 में "द्वैध-शासन" अर्थात् "दोहरे शासन" की व्यवस्था की गई। "दोहरे शासन" का अभिप्राय यह था कि प्रान्तों के प्रशासकीय विषयों को दो भागों में विभाजित कर दिया गया था—संरक्षित और हस्तान्तरित (Reserved & Transferred)। संरक्षित विषयों पर अंग्रेज मंत्रियों का अधिकार था, जो गवर्नर के प्रति उत्तरदायी थे। हस्तान्तरित विषयों पर लोकप्रिय भारतीय मंत्रियों का आधिपत्य था, जो व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी थे। उदाहरणार्थ—वित्त-विभाग, अंग्रेज मंत्रियों को और शिक्षा-विभाग, भारतीय मंत्रियों को सौंपा गया था।

इस परिस्थिति में, शिक्षा-मन्त्रियों को अपनी शिक्षा-योजनाओं को पूर्ण करने के लिए अंग्रेज मन्त्रियों का मुँह देखना पड़ता था, जो उनकी योजनाओं के प्रति सामान्यतः उदासीन रहते थे। फिर भी, उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन और शिक्षा के प्रति अपने देशवासियों की जागरूकता से प्रेरणा प्राप्त करके, शिक्षा के विस्तार के लिए यथाशक्ति प्रयास किए। किन्तु, उनको अपने प्रयासों के अनुपात में सफलता प्राप्त नहीं हुई और सरकार पूर्व की भाँति प्राथमिक शिक्षा की उपेक्षा करके, माध्यमिक और उच्च शिक्षा के विस्तार में व्यस्त रही। हम द्वैध-शासन (1921-1937) में शिक्षा की प्रगति का वर्णन अधोलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत कर रहे हैं।

I प्राथमिक शिक्षा : Primary Education

इस अवधि में प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित दो विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं—प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए पारित किए जाने वाले "प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम" (Primary Education Acts) और प्राथमिक शिक्षा की प्रगति में शिथिलता।

1. प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम—इस अवधि में बम्बई, आसाम, संयुक्त प्रान्त और बंगाल में "प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम" बनाकर, इस शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया। इससे पूर्व भी कुछ प्रान्तों में इस प्रकार के अधिनियम पास किए जा चुके थे। हम इन अधिनियमों का सम्पूर्ण चित्र प्रस्तुत करने के उद्देश्य से इनका विवरण अंकित कर रहे हैं (Nurullah & Naik, p 662), यथा :—

1. सन् 1919 में पंजाब में सब बालकों और बालिकाओं के लिए।
2. सन् 1919 में संयुक्त प्रान्त में केवल शहरी बालकों और बालिकाओं के लिए।
3. सन् 1919 में बंगाल में केवल शहरी बालकों के लिए।
4. सन् 1919 में बिहार और उड़ीसा में केवल सब बालकों के लिए।
5. सन् 1920 में बम्बई में केवल बम्बई नगर के सब बालकों और बालिकाओं के लिए।
6. सन् 1920 में मध्य प्रान्त में सब बालकों और बालिकाओं के लिए।
7. सन् 1920 में मद्रास में सब बालकों और बालिकाओं के लिए।
8. सन् 1923 में बम्बई में बम्बई नगर के अलावा सब बालकों और बालिकाओं के लिए।
9. सन् 1926 में आसाम में सब बालकों और बालिकाओं के लिए।
10. सन् 1926 में संयुक्त प्रान्त में केवल ग्रामीण क्षेत्रों के बालकों और बालिकाओं के लिए।
11. सन् 1930 में बंगाल में केवल ग्रामीण क्षेत्रों के बालकों और बालिकाओं के लिए।

2. प्राथमिक शिक्षा की प्रगति—इस अवधि में प्राथमिक शिक्षा के अधि-नियमों के बावजूद इस शिक्षा की सन्तोषजनक प्रगति नहीं हुई। इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए, डा० श्रीधरनाथ मुखोपाध्याय ने लिखा है :—"सन् 1931-37 के बीच सम्पूर्ण जगत् में एक विश्व-व्यापी मन्दी छा गयी। इस कारण किसी भी शिक्षा-योजना को चलाना असम्भव था। इसके अतिरिक्त, हर्टॉग-समिति की सिफारिशों के अनुसार सरकार ने ठोस नीति अपनाई। इसके अनुसार जहाँ तक बन सका, नए स्कूल स्थापित नहीं हुए एवं कमजोर स्कूलों का खात्मा कर दिया।" इस अवधि में प्राथमि[क] शिक्षा की प्रगति का अनुमान निम्नांकित तालिका से लगाया जा सकता है (Nurull[ah] & Naik p. 680) :—

	1921–1922	1936–1937
1. प्राथमिक विद्यालयों की संख्या	1,55,017	1,92,244
2 छात्रों की संख्या	61,09,752	1,02,24,288

2. माध्यमिक शिक्षा : Secondary Education

इस अवधि में माध्यमिक शिक्षा की दो विशेषताएँ हमारे ध्यान को आकृष्ट करती हैं—माध्यमिक शिक्षा की अनेक दिशाओं में उन्नति और माध्यमिक शिक्षा की तीव्र प्रगति।

1. माध्यमिक शिक्षा की उन्नति—इस अवधि में माध्यमिक शिक्षा की अग्रां-कित दिशाओं में उन्नति परिलक्षित हुई :—(1) विश्वविद्यालयों और शिक्षा-विभागों का संघर्ष समाप्त हो गया। फलतः विश्वविद्यालयों ने शिक्षा-विभागों द्वारा स्वीकृत हाई स्कूलों को मान्यता प्रदान कर दी। (2) अंग्रेजी पर कम बल दिए जाने के कारण मातृभाषा द्वारा शिक्षा का प्रसार बढ़ने लगा। (3) पाठ्यक्रमों का विस्तार करके उनमें नवीन विषयों का समावेश किया गया। (4) कृषि, तकनीकी और अन्य व्या[व]सायिक विद्यालयों की स्थापना हुई। (5) विद्यालयों की सामग्री और उपकरणों [के] प्रति विशेष ध्यान दिया जाने लगा।

2. माध्यमिक शिक्षा की प्रगति—इस अवधि में माध्यमिक शिक्षा की [प्रगति] अत्यन्त तीव्र गति से हुई। इसके तीन प्रधान कारण थे : पहला, जनसाधा[रण में] जागृति होने के कारण माध्यमिक शिक्षा की माँग में वृद्धि हुई। दूसरा, बाल[िकाओं के] लिए माध्यमिक शिक्षा को सुलभ बनाने के निमित्त ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना की गई। तीसरा, स्त्रियों और पिछड़ी जा[तियों में] माध्यमिक शिक्षा ग्रहण करने की रुचि उत्पन्न हुई। इन कारणों के फलस्[वरूप इस] अवधि में माध्यमिक शिक्षा की जो प्रगति हुई, उसे अधोलिखित तालिका में [दिखाया] गया है (Nurullah & Naik, p. 646) :—

	1921–1922	1936–1937
1. माध्यमिक स्कूलों की संख्या	7,530	13,056
2. छात्रों की संख्या	11,06,803	22,87,872

3 उच्च शिक्षा : Higher Education

इस अवधि में उच्च शिक्षा की सर्वाधिक और अनेकमुखी उन्नति हुई; यथा :—

1 नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना—सन् 1913 के "शिक्षा-सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव" की सिफारिश के अनुसार, इस अवधि में 5 नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना की गई, यथा —(1) दिल्ली विश्वविद्यालय, 1922; (2) नागपुर विश्वविद्यालय, 1923, (3) आन्ध्र विश्वविद्यालय, 1926; (4) आगरा विश्वविद्यालय, 1927; और (5) अन्नामलाई विश्वविद्यालय, 1929।

2 पुराने विश्वविद्यालयों का पुनर्संगठन—इस अवधि में पुराने विश्वविद्यालयों में सुधार करके, उनका पुनर्संगठन किया गया। पंजाब विश्वविद्यालय ने विज्ञान के "आनर्स कोर्स" का विस्तार करके, उसे अधिक व्यापक बनाया गया। मद्रास विश्वविद्यालय में विज्ञान के अन्तर्गत अनेक नवीन विषयों को स्थान देकर, उनके शिक्षण एवं अनुसन्धान का प्रबन्ध किया गया। बम्बई विश्वविद्यालय में स्नातकोत्तर और औद्योगिक शिक्षा का आयोजन करके, शिक्षा देने का कार्य आरम्भ किया गया। इन विश्वविद्यालयों के अलावा पटना और कलकत्ता विश्वविद्यालयों का भी पुनर्गठन करके, उनकी कार्य-क्षमता में अभिवृद्धि की गई।

3 उच्च शिक्षा की प्रगति—इस अवधि में विश्वविद्यालय और कॉलेज-शिक्षा की आश्चर्यजनक प्रगति हुई। हम इसका स्पष्टीकरण निम्नांकित तालिका में कर रहे हैं (Nurullah & Naik, pp 631 & 632) —

	1921–1922	1936–1937
1. विश्वविद्यालयों की संख्या	12	17
2. कॉलेजों की संख्या	207	366
3. विश्वविद्यालयों व कॉलेज-छात्रों की संख्या	66,258	1,26,228

प्रान्तीय स्वशासन में शिक्षा की प्रगति

Progress of Education under Provincial Autonomy

1935 के "भारत-सरकार-अधिनियम" (Government of India Act) के अनुसार इस देश में 1937 में "प्रान्तीय स्वशासन" की स्थापना हुई। "प्रान्तीय स्वशासन" का अभिप्राय यह था कि प्रान्त के सम्पूर्ण प्रशासकीय क्षेत्र पर उत्तरदायी

सन स्थापित हो गया। फलस्वरूप, "द्वैध शासन" का अन्त हो गया, संरक्षित और स्तान्तरित विषयों का भेद समाप्त हो गया और प्रान्त के समस्त विषयों पर लोकप्रिय भारतीय मन्त्रियों का अधिकार हो गया।

इस परिस्थिति में शिक्षा-मन्त्रियों ने पूर्ण स्वतन्त्रता के वातावरण में अपना कार्य आरम्भ किया। किन्तु, अंग्रेजों ने अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए 1939 में आरम्भ होने वाले द्वितीय विश्व-युद्ध में भारत को फँसा दिया। उनकी इस निकृष्ट नीति के विरोध मे 1937 में 6 प्रान्तों में पद-ग्रहण करने वाले कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने अपने त्याग-पत्र दे दिए। युद्ध के उपरान्त, 1946 में 8 प्रान्तों में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल फिर सत्तारूढ़ हुए।

इस प्रकार, "प्रान्तीय स्वशासन" की 10 वर्ष की अवधि में लगभग 3 वर्ष ही प्रान्तीय शासन का सूत्र भारतीय मन्त्रियों के हाथ में रहा। अतः इस अल्प काल में वे शिक्षा का उतना विस्तार न कर सके, जितनी कि उनसे आशा की गई थी। फिर भी, उन्होंने 'प्रान्तीय स्वशासन" (1937-1947) की अवधि में शिक्षा की प्रगति में योग देने का प्रयास किया। हम इस प्रगति के विविध अंगों पर निम्नांकित पंक्तियों में प्रकाश डाल रहे हैं।

1. केन्द्रीय सरकार के शिक्षा-सम्बन्धी कार्य
Educational Activities of the Central Government

1919 के "अधिनियम" के अनुसार, शिक्षा का अधिकांश भार प्रान्तीय सरकारों को हस्तान्तरित कर दिया गया था। परिणामतः केन्द्रीय सरकार—शिक्षा के क्षेत्र से पृथक् हो गई थी। 1935 के "अधिनियम" के अनुसार, शिक्षा-सम्बन्धी सब कार्यों को दो स्पष्ट भागों में विभक्त कर दिया गया—केन्द्रीय और प्रान्तीय। फलस्वरूप, 1937 से शिक्षा-विषयक कार्यों का उत्तरदायित्व पुनः केन्द्रीय सरकार पर आ गया। इन कार्यों को कुशलतापूर्वक सम्पादित करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने कतिपय समितियों और संस्थाओं का निर्माण किया, जिनमें निम्नलिखित मुख्य थीं :—

1. **केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड : Central Advisory Board of Education**—इस बोर्ड का निर्माण सन् 1920 में केन्द्रीय और प्रान्तीय शिक्षा-नीतियों में सामंजस्य स्थापित करने और प्रान्तीय सरकारों को शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओं पर परामर्श देने के उद्देश्य से किया गया था। यद्यपि इस बोर्ड ने अत्यन्त लाभप्र कार्य किया था तथापि व्यय में कमी करने के विचार से केन्द्रीय सरकार ने 192 में इसको भंग कर दिया था।

"हर्टॉग-समिति" की सिफारिश के फलस्वरूप इस बोर्ड को 1935 में संगठित किया गया। उसी समय से यह बोर्ड भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न क को कुशलतापूर्वक सम्पन्न करता चला आ रहा है। इस बोर्ड के चार मुख्य कार्य हैं
(1) अपने वार्षिक अधिवेशन में सम्पूर्ण भारत की शिक्षा की स्थिति और प्रग

करना, (2) प्रान्तीय सरकारों को शिक्षा-प्रसार के विषय में समय-समय पर देना, (3) शिक्षा-विषयक समस्याओं का समाधान करने के लिए विशिष्ट ...ों की नियुक्ति करना, और (4) शिक्षा के विभिन्न अंगों के सम्बन्ध में अपनी ... प्रकाशित करना।

2 केन्द्रीय शिक्षा-सचिवालय : Central Secretariat of Education—"केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड" की ...सचिवालय की स्थापना सन् 1945 में ... सन् 1947 में इसको ...रिश के फलस्वरूप हुई थी। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् ... सर्वप्रमुख कार्य—सम्पूर्ण भारत की ...क्षा-मन्त्रालय का अंग बना दिया गया। इसका ... नियोजन करना है। ...क्षा पर नियन्त्रण रखना और उसका ... "सचिवालय" का सर्वोच्च अधिकारी—शिक्षा-सलाहकार (Educational Adviser) है। वह शिक्षा-मन्त्रालय के सचिव का भी कार्य करता है। वह शिक्षा-मन्त्री को सम्पूर्ण देश की शिक्षा-नीति एवं प्रशासन के विषय में परामर्श देता है।

3 केन्द्रीय शिक्षा सूचना-कार्यालय : Central Bureau of Education—इस कार्यालय के मुख्य कार्य अग्रांकित हैं :—(1) देश-विदेश में शिक्षा-सम्बन्धी आँकड़ों और समाचारों का संकलन करना, (2) प्रान्तीय सरकारों और शिक्षा संस्थाओं की शिक्षा-विषयक समस्याओं का समाधान करना, (3) सरकार की शिक्षा-सम्बन्धी रिपोर्टों को प्रकाशित करना और (4) शिक्षा-सम्बन्धी पुस्तकों एवं पत्रिकाओं का प्रकाशन करना।

4. विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग University Grants Commission—"केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड" की सिफारिश के परिणामस्वरूप सन् 1945 में "विश्वविद्यालय अनुदान-समिति" (University Grants Committee) की सृष्टि की गई। तीन वर्ष पश्चात् ... आयोग के सुझाव को स्वीकार करके, इस 'समिति' को सन् 1953 में विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग का पद प्रदान किया गया।

इस "आयोग" के मुख्य कार्य हैं :—(1) शिक्षा सुधार और विस्तार ... उन्नयन के विषय में विश्वविद्यालयों को परामर्श देना, (2) विश्वविद्यालयों को ... कोष में से धन देना एवं उसके सम्बन्ध में अपनी नीति निर्धारित करना, और (...) विश्वविद्यालयों की आर्थिक स्थिति की जाँच करना एवं केन्द्रीय सरकार से ... सहायता-अनुदान दर को निर्धारित करना।

2 प्राथमिक शिक्षा Primary Education

इस अवधि में प्राथमिक शिक्षा की दो विशेषताएँ उल्लेखनीय हैं—... प्राथमिक शिक्षा का प्रचलन और प्राथमिक शिक्षा की वृद्धि में अवरोध।

1 अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा—... अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा ...
...के अन्दर ... में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा ...

8 में इस शिक्षा की स्थिति निम्नांकित तालिका में स्पष्ट की गई है (Nuru- Naik, p. 777) :—

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा

प्रान्त	केवल बालकों के लिए		बालकों व बालिकाओं के लिए	
	नगरों की संख्या	ग्रामों की संख्या	नगरों की संख्या	ग्रामों की संख्या
बिहार	17	....	....	....
बम्बई	9	134	110	5,100
मध्य प्रदेश	34	1,031	....	....
पूर्वी पंजाब	37	1,420	....	....
मद्रास	16	31	12	1,607
उड़ीसा	1	1	....	....
उत्तर प्रदेश	36	1,371	3	3
पश्चिमी बंगाल	1	....	....	....
दिल्ली	1	7	....	....
योग	152	4,995	125	6,710

2 प्राथमिक शिक्षा की प्रगति—इस अवधि में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए अग्रांकित उपाय अपनाये :—(1) विद्यालय-रहित ग्रामों में प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना, (2) स्थानीय निकायों को अतिरिक्त सहायता-अनुदान, (3) बालिका-विद्यालयों की आवश्यकतानुसार स्थापना, और (4) प्राथमिक विद्यालयों में अधिक शिक्षकों की नियुक्ति।

उक्त उपायों के बावजूद भी इस अवधि में प्राथमिक शिक्षा की प्रगति में अवरोध उत्पन्न हो गया। नूरुल्ला व नायक ने इसके दो मुख्य कारण बताए हैं : पहला, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की योजना को विशाल पैमाने पर क्रियान्वित नहीं किया गया। दूसरा, द्वितीय विश्वयुद्ध ने प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के प्रतिकूल परिस्थितियों को जन्म दिया। हम इस अवधि में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति को निम्नांकित तालिका में स्पष्ट कर रहे हैं (Nurullah & Naik, p. 778) :—

	1936-1937	1946-1947
1. प्राथमिक विद्यालयों की संख्या	1,92,244	1,34,866
2. छात्रों की संख्या	1,02,24,288	1,05,25,943

3. माध्यमिक शिक्षा : Secondary Education

इस अवधि में माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित दो तथ्य हमारे ध्यान को
...त करते हैं माध्यमिक शिक्षा की नवीन विशेषताएँ और माध्यमिक शिक्षा की
...म अपेक्षाकृत मन्दता।

1 माध्यमिक शिक्षा की विशेषताएँ—इस अवधि में माध्यमिक शिक्षा में
...लिन नवीन विशेषताएँ दृष्टिगोचर हुईं (1) अंग्रेजी के महत्व में न्यूनता,
...) शिक्षा के माध्यम के पद पर भारतीय भाषाओं का प्रतिष्ठापन, (3) स्त्रियों का
...ान व्यवसाय म पदार्पण (4) प्रशिक्षण-संस्थाओं की संख्या में वृद्धि, (5) हाई-
...लों म वाणिज्य की शिक्षा का सूत्रपात, (6) अनेक प्रान्तों में कृषि और तकनीकी
...ई-स्कूलों की स्थापना और (7) शब्दावली एवं पाठ्यपुस्तकों का प्रकाशन।

2 माध्यमिक शिक्षा की प्रगति इस अवधि में माध्यमिक शिक्षा का प्रसार
...ो हुआ, पर पूर्व काल की तुलना में उसम निश्चित मन्दता थी। इसके चार प्रधान
कारण थे (1 प्राथमिक शिक्षा की प्रगति म शिथिलता होने के कारण माध्यमिक
विद्यालयों की छात्र-संख्या में ह्रास, (2) शिक्षकों को मँहगाई-भत्ता देने के कारण
शिक्षा शुल्क म ... (3) पाठ्यपुस्तकों और शिक्षा की सामग्री के मूल्यों में वृद्धि,
और (4) युद्ध जनित मँहगाई के कारण सामान्य स्थिति के अभिभावकों के पास धन
का अभाव। इस ... अवधि म माध्यमिक शिक्षा की प्रगति को निम्नांकित तालिका
म अंकित कर रहे हैं (Nurullah & Naik p 707)।

	1936-1937	1946-1947
1 माध्यमिक विद्यालयों की संख्या	13,056	11,907
2 छात्रों की संख्या	22,87,872	26,81,981

4 उच्च शिक्षा Higher Education

इस अवधि म उच्च शिक्षा के ... म केवल दो तथ्य उल्लेख करने के योग्य
है यथा —

1 नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना इस अवधि म अग्रलिखित 4 नवीन
विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई (1) त्रावनकोर विश्वविद्यालय, 1937, (2
उत्कल विश्वविद्यालय 1943, (3) सागर विश्वविद्यालय 1946, और (4) राज
पूताना विश्वविद्यालय 1947।

2 उच्च शिक्षा की प्रगति इस अवधि म उच्च शिक्षा का विस्तार ...
युद्ध पूर्व काल की अपेक्षा ... म हुआ। इसके अग्रलिखित 4 मुख्य का
थे —(1) स्त्रियों और पिछड़ी जातियों म उच्च शिक्षा प्राप्त करने की ...
(2) युद्ध से सम्बन्धित व्यवसायों के लिए शिक्षित व्यक्तियों की माँग, (-

7-48 में इस शिक्षा की स्थिति निम्नांकित तालिका में स्पष्ट की गई है (Nurul-lah & Naik, p. 777) :—

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा

प्रान्त	केवल बालकों के लिए		बालकों व बालिकाओं के लिए	
	नगरों की संख्या	ग्रामों की संख्या	नगरों की संख्या	ग्रामों की संख्या
बिहार	17	....	....	....
बम्बई	9	134	110	5,100
मध्य प्रदेश	34	1,031	....	....
पूर्वी पंजाब	37	1,420	....	....
मद्रास	16	31	12	1,607
उड़ीसा	1	1	....	....
उत्तर प्रदेश	36	1,371	3	3
पश्चिमी बंगाल	1	....	....	....
दिल्ली	1	7	....	....
योग	152	4,995	125	6,710

2 प्राथमिक शिक्षा की प्रगति—इस अवधि में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए अग्रांकित उपाय अपनाये :—(1) विद्यालय-रहित ग्रामों में प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना, (2) स्थानीय निकायों को अतिरिक्त सहायता-अनुदान, (3) बालिका-विद्यालयों की आवश्यकतानुसार स्थापना, और (4) प्राथमिक विद्यालयों में अधिक शिक्षकों की नियुक्ति।

उक्त उपायों के बावजूद भी इस अवधि में प्राथमिक शिक्षा की प्रगति में अवरोध उत्पन्न हो गया। नूरुल्ला व नायक ने इसके दो मुख्य कारण बताए हैं। पहला, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की योजना को विशाल पैमाने पर क्रियान्वित न… किया गया। दूसरा, द्वितीय विश्वयुद्ध ने प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के प्रतिकूल प… स्थितियों को जन्म दिया। हम इस अवधि में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति को निम… ंकित तालिका में स्पष्ट कर रहे हैं (Nurullah & Naik, p. 778) :—

	1936-1937	1946-19…
1. प्राथमिक विद्यालयों की संख्या	1,92,244	1,34…
2. छात्रों की संख्या	1,02,24,288	1,05,25…

3. माध्यमिक शिक्षा : Secondary Education

इस अवधि में माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित दो तथ्य हमारे ध्यान को आकर्षित करते हैं—माध्यमिक शिक्षा की नवीन विशेषताएँ और माध्यमिक शिक्षा की प्रगति में अपेक्षाकृत मन्दता।

1. माध्यमिक शिक्षा की विशेषताएँ—इस अवधि में माध्यमिक शिक्षा में अधोलिखित नवीन विशेषताएँ दृष्टिगोचर हुईं :—(1) अंग्रेजी के महत्त्व में न्यूनता, (2) शिक्षा के माध्यम के पद पर भारतीय भाषाओं का प्रतिष्ठापन, (3) स्त्रियों का शिक्षण-व्यवसाय में पदार्पण, (4) प्रशिक्षण-कॉलेजों की संख्या में वृद्धि, (5) हाई-स्कूलों में वाणिज्य की शिक्षा का सूत्रपात, (6) अनेक प्रान्तों में कृषि और तकनीकी हाई-स्कूलों की स्थापना, और (7) शब्दावली एवं पाठ्यपुस्तकों का प्रकाशन।

2. माध्यमिक शिक्षा की प्रगति—इस अवधि में माध्यमिक शिक्षा का प्रसार तो हुआ, *पर पूर्व कालों की तुलना में उसमें निश्चित मन्दता थी।* इसके चार प्रधान कारण थे :—(1) प्राथमिक शिक्षा की प्रगति में शिथिलता होने के कारण माध्यमिक विद्यालयों की छात्र-संख्या में ह्रास, (2) *शिक्षकों को महँगाई-भत्ता देने* के कारण शिक्षा-शुल्क में वृद्धि, (3) पाठ्यपुस्तकों और शिक्षा की सामग्री के मूल्यों में वृद्धि, और (4) युद्ध-जनित महँगाई के कारण सामान्य स्थिति के अभिभावकों के पास धन का अभाव। हम इस अवधि में माध्यमिक शिक्षा की प्रगति को निम्नांकित तालिका में अंकित कर रहे हैं (Nurullah & Naik, p. 767) :—

	1936-1937	1946-1947
1. माध्यमिक विद्यालयों की संख्या	13,056	11,907
2. छात्रों की संख्या	22 87,872	26,81,981

4. उच्च शिक्षा : Higher Education

इस अवधि में उच्च शिक्षा के विषय में केवल दो तथ्य उल्लेख करने के योग्य हैं; यथा :—

1. नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना—इस अवधि में अग्रलिखित 4 नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई :—(1) त्रावनकोर विश्वविद्यालय, 1937, (2) उत्कल विश्वविद्यालय, 1943, (3) सागर विश्वविद्यालय, 1946, और (4) राजपूताना विश्वविद्यालय, 1947।

2. उच्च शिक्षा की प्रगति—इस अवधि में उच्च शिक्षा का विस्तार बहुत-कुछ पूर्व कालों की भाँति तीव्र गति से हुआ। इसके अग्रलिखित 4 मुख्य कारण थे :—(1) स्त्रियों और पिछड़ी जातियों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने की लालसा, (2) युद्ध से सम्बन्धित व्यवसायों के लिए शिक्षित व्यक्तियों की माँग, (3) उच्च

947-48 में इस शिक्षा की स्थिति निम्नांकित तालिका में स्पष्ट की गई है (Nuru-llah & Naik, p. 777) :—

अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा

प्रान्त	केवल बालकों के लिए		बालकों व बालिकाओं के लिए	
	नगरों की संख्या	ग्रामों की संख्या	नगरों की संख्या	ग्रामों की संख्या
बिहार	17	....	....	....
बम्बई	9	134	110	5,100
मध्य प्रदेश	34	1,031	....	....
पूर्वी पंजाब	37	1,420	....	....
मद्रास	16	31	12	1,607
उड़ीसा	1	1	....	....
उत्तर प्रदेश	36	1,371	3	3
पश्चिमी बंगाल	1	....	....	....
दिल्ली	1	7	....	....
योग	152	4,995	125	6,710

2 प्राथमिक शिक्षा की प्रगति—इस अवधि में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए अग्रांकित उपाय अपनाये :—(1) विद्यालय-रहित ग्रामों में प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना, (2) स्थानीय निकायों को अतिरिक्त सहायता-अनुदान, (3) बालिका-विद्यालयों की आवश्यकतानुसार स्थापना, और (4) प्राथमिक विद्यालयों में अधिक शिक्षकों की नियुक्ति।

उक्त उपायों के बावजूद भी इस अवधि में प्राथमिक शिक्षा की प्रगति अवरोध उत्पन्न हो गया। नूरुल्ला व नायक ने इसके दो मुख्य कारण बताए पहला, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की योजना को विशाल पैमाने पर क्रियान्वित किया गया। दूसरा, द्वितीय विश्वयुद्ध ने प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के प्रतिकूल स्थितियों को जन्म दिया। हम इस अवधि में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति को नि कित तालिका में स्पष्ट कर रहे हैं (Nurullah & Naik, p. 778) :—

	1936-1937	1946-1
1. प्राथमिक विद्यालयों की संख्या	1,92,244	1,3
2. छात्रों की संख्या	1,02,24,288	1,05,

शिक्षा के प्रसार के लिए सरकार द्वारा कॉलिजों और विश्वविद्यालयों को अधिक सहायता-अनुदान, और (4) युद्ध-काल में अधिक धन का अर्जन करने के कारण व्यवसायी-वर्ग द्वारा उच्च शिक्षा की संस्थाओं को आर्थिक सहायता। इस अवधि में उच्च शिक्षा की प्रगति का अनुमान अधोलिखित तालिका में प्रदर्शित किए गए आँकड़ों से लगाया जा सकता है (डा० मुखोपाध्याय, पृष्ठ 203) :—

	1931-1932	1946-1947
1. कॉलिजों की संख्या	417	933
2. छात्रों की संख्या	99,893	1,99,253

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Describe the progress of Primary, Secondary and University Education from 1921 to 1937.
1921 से 1937 तक प्राथमिक, माध्यमिक और विश्वविद्यालय-शिक्षा की प्रगति का वर्णन कीजिए।

2. Write a short account of the educational activities of the Central Government from 1937 to 1947.
1937 से 1947 तक केन्द्रीय सरकार के शिक्षा-सम्बन्धी कार्यों को संक्षेप में लिखिए।

3. Write short essays on the development of the followin from 1937 to 1947 :—(a) Primary Education, an (b) Secondary Education
1937 से 1947 तक अधोलिखित के विकास पर संक्षिप्त नि लिखिए :—(अ) प्राथमिक शिक्षा, और (ब) माध्यमिक शिक्षा।

16

बुनियादी शिक्षा या नई तालीम
(वर्धा-शिक्षा-योजना)

BASIC EDUCATION OR NAI TALIM
(Wardha Scheme of Education)

"The Wardha Scheme was first sketched in 1937 by M. K. Gandhi in the *Harijan* published at Wardha."

— T. N. Siqueira.

विषय-प्रवेश

अविनाशलिंगम् के शब्दों में — 'बुनियादी शिक्षा—हमारे राष्ट्रपिता का अन्तिम और सम्भवतः महानतम उपहार है।"

"Basic education is the last and perhaps the greatest gift of the Father of our Nation." T. S. Avinashlingam : *Understanding Basic Education*, p. 1

हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी के इसी उपहार को 'नई तालीम' और "वर्धा-शिक्षा-योजना' के नामों से भी पुकारा जाता है। उन्होंने यह उपहार सन् 1937 में किन परिस्थितियों में और किन आवश्यकताओं के सम्बन्ध में अपने देशवासियों को भेंट किया, इसका यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हुए, ए० एन० बसु ने लिखा है —"कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों के कार्यक्रम में दो मुख्य बातें थीं — जन-शिक्षा और नशा निषेध। किन्तु, वे एक दुविधा में थे। नशा निषेध का पालन करने का परिणाम होता — आय में भारी कमी, जबकि जन-शिक्षा के कार्यक्रम को वास्तव में प्रभावपूर्ण बनाने के लिए अत्यधिक अतिरिक्त व्यय की आवश्यकता थी। इन दोनों विरोधी बातों में समन्वय किस प्रकार स्थापित किया जा सकता था? उस अवसर पर गांधीजी ने अपनी स्वावलम्बी बुनियादी शिक्षा की योजना प्रस्तुत की।"

किया। यही "रिपोर्ट"—"वर्धा-शिक्षा-योजना" (Wardha Scheme of Education) के नाम से प्रसिद्ध है और बुनियादी शिक्षा का आधार है।

वर्धा-योजना की रूपरेखा
Outline of Wardha Scheme

"वर्धा-योजना" अथवा "बेसिक शिक्षा-योजना" की रूपरेखा इस प्रकार है:—

1. बेसिक शिक्षा के पाठ्यक्रम की अवधि 7 वर्ष की है।
2. यह शिक्षा 7 से 14 वर्ष तक के बालकों और बालिकाओं के लिए निःशुल्क और अनिवार्य है।
3. शिक्षा का माध्यम—मातृभाषा है।
4. पाठ्यक्रम में अंग्रेजी का कोई स्थान नहीं है।
5. सम्पूर्ण शिक्षा का सम्बन्ध किसी आधारभूत शिल्प (Basic Craft) से होता है।
6. शिल्प को बालकों की योग्यता और स्थान की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर चुना जाता है।
7. चुने हुए शिल्प की शिक्षा इस प्रकार दी जाती है कि यह बालकों को अच्छा शिल्पी बना कर, उनको स्वावलम्बी बना देती है।
8. उक्त शिल्प की शिक्षा इस प्रकार प्रदान की जाती है कि बालक उसके सामाजिक और वैज्ञानिक महत्त्व से भलीभाँति परिचित हो जाते हैं।
9 शारीरिक श्रम पर बल दिया जाता है, ताकि बालक सीखे हुए शिल्प के द्वारा अपनी जीविका का उपार्जन कर सकें।
10 शिक्षा का बालक के जीवन, गृह तथा ग्राम से और उसके ग्राम के उद्योगों, हस्त-शिल्पों और व्यवसायों से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है।
11. बालकों द्वारा बनाई जाने वाली वस्तुएँ ऐसी होती हैं, जिनका प्रयोग किया जा सकता है या जिनको बेचकर विद्यालय का कुछ व्यय चलाया जा सकता है।

इस प्रकार, बेसिक शिक्षा की योजना में गांधीजी के शिक्षा-दर्शन के मुख्य तत्त्वों का समावेश है।

बुनियादी शिक्षा नाम क्यों ?
Why Termed Basic Education ?

अंग्रेजी के "Basic" शब्द का हिन्दी अर्थ है—"आधारभूत" और उर्दू अर्थ है—"बुनियादी"। क्योंकि यह शिक्षा अग्रलिखित कारणों के फलस्वरूप "आधारभूत" या "बुनियादी" मानी गई है, इसलिए इसका नाम 'बेसिक शिक्षा" रखा है —

1. यह शिक्षा —भारत की राष्ट्रीय सभ्यता, संस्कृति और शिल्प का आधार मानी गई है।

2. यह शिक्षा—प्रत्येक भारतीय बच्चे के लिए अनिवार्य आधारभूत शिक्षा स्वीकार की गई है।

3. यह शिक्षा—प्रत्येक भारतीय की आधारभूत सामान्य सम्पत्ति है।

4. यह शिक्षा—बच्चों की आधारभूत आवश्यकताओं और अभिरुचियों में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करती है।

5. यह शिक्षा—सामुदायिक जीवन के आधारभूत व्यवसायों से सम्बन्धित है।

6. यह शिक्षा—सभी भारतीयों को ऐसा आधारभूत ज्ञान प्रदान करती है, जो उनको अपने पर्यावरण को बुद्धिमत्तापूर्वक समझने और प्रयोग करने में सहायता देता है।

7. यह शिक्षा—किसी आधारभूत शिल्प के द्वारा दी जाती है, जिसका प्रयोग व्यक्ति अपने भावी जीवन के निर्वाह के लिए कर सकता है।

इस प्रकार, जैसा कि स्वयं गांधीजी ने लिखा है :—"बुनियादी शिक्षा—बच्चों को, चाहे वे नगरों के हों या ग्रामों के, भारत की समस्त सर्वोत्तम और स्थायी बातों से सम्बन्धित करती है।"

"Basic Education links the children, whether of the cities or of the villages, to all that is best and lasting in India."—M. K. Gandhi : *Constructive Programme*, p. 16.

बुनियादी शिक्षा का पाठ्यक्रम
Curriculum of Basic Education

बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम में निम्नलिखित विषय निर्धारित किए गए हैं :—

1. आधारभूत शिल्प—अग्रांकित शिल्पों में से कोई एक—(i) कृषि, (ii) कताई-बुनाई, (iii) लकड़ी का काम, (iv) चमड़े का काम, (v) मिट्टी का काम (खिलौने और बर्तन बनाना), (vi) पुस्तक कला (कागज और कार्ड-बोर्ड का काम), (vii) मछली पालना, (viii) फल और सब्जी की बागवानी, (ix) गृह-विज्ञान (केवल बालिकाओं के लिए), (x) स्थानीय और भौगोलिक आवश्यकताओं के अनुकूल कोई अन्य उपयुक्त और शिक्षाप्रद हस्तशिल्प।

2. मातृभाषा।

3. गणित।

4. सामाजिक अध्ययन (इतिहास, भूगोल और नागरिक शास्त्र)।

5. सामान्य विज्ञान—(i) प्रकृति अध्ययन, (ii) वनस्पति-विज्ञान, (i... जीव-विज्ञान, (iv) रसायन-शास्त्र, (v) स्वास्थ्य-विज्ञान, (vi) नक्ष... का ज्ञान, (vii) महान् अन्वेषकों और वैज्ञानिकों की कहानियाँ।
6 कला—संगीत और चित्रकला।
7 हिन्दी—जहाँ वह मातृभाषा नहीं है।
8 शारीरिक शिक्षा—व्यायाम और खेल-कूद।

बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम की विशेषताएँ
Characteristics of Basic Education Curriculum

बुनियादी शिक्षा के पाठ्यक्रम की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं :—

1 पाँचवीं कक्षा तक सह-शिक्षा है और बालकों एवं बालिकाओं के लिए समान पाठ्यक्रम है।
2 पाँचवीं कक्षा के पश्चात् बालकों और बालिकाओं के लिए पृथक् विद्यालयों की व्यवस्था है।
3. छठवीं और सातवीं कक्षाओं में बालिकाएँ आधारभूत शिल्प के स्थान पर गृह विज्ञान ले सकती हैं।
4. सातवीं और आठवीं कक्षाओं में संस्कृत, फारसी, अरबी आधुनिक भारतीय भाषाओं आदि की शिक्षा की व्यवस्था है।
5. शिक्षा का माध्यम—मातृभाषा है, पर राष्ट्रभाषा हिन्दी का अध्ययन सब बालकों और बालिकाओं के लिए अनिवार्य है।
6 पाठ्यक्रम का स्तर वर्तमान मैट्रिक के समान है
7 पाठ्यक्रम में अंग्रेजी और धर्म का कोई स्थान नहीं है।

अपनी योजना में धर्म को स्थान न देने का कारण बताते हुए, महात्मा गांधी ने लिखा है — "हमारी वर्धा-शिक्षा योजना में से धार्मिक शिक्षा का बहिष्कार कर ...या गया है क्योंकि हमें भय है कि आज जिन धर्मों की शिक्षा दी जाती है अथवा ...किया जाता है वे मेल के स्थान पर झगड़े उत्पन्न करते हैं। साथ ही, मेरा ...वास है कि बच्चों को ऐसी शिक्षा अवश्य दी जानी चाहिए, जिसमें सभी मुख्य ...धर्मों का सार निहित हो। धर्म का यह सार केवल पुस्तकों और गुरुओं से नहीं पढ़ाया ...जाता है। इसे तो बालक केवल शिक्षक के दैनिक जीवनचर्या से ही सीख ...ते हैं।"

बुनियादी विद्यालयों की समय-सारणी
Time Table of Basic Schools

बुनियादी विद्यालयों में प्रतिदिन 5½ घण्टे कार्य होता है और निम्नलिखित ...यों का अनुसरण किया जाता है

प्रशिक्षण-विद्यालयों में उन्हीं व्यक्तियों को प्रवेश दिया जाता है, जो या तो हाईस्कूल परीक्षा में उत्तीर्ण हो चुके हों, या वर्नाक्यूलर फाइनल परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् कम-से-कम दो वर्ष तक किसी विद्यालय में शिक्षण कार्य कर चुके हों।

बुनियादी शिक्षण विधि
Basic Method of Teaching

रायबर्न के अनुसार :—"बेसिक शिक्षा—शिक्षण की विधि नहीं है। यह पाठ्यक्रम को निश्चित करने की विधि है। अध्यापक उन विधियों का प्रयोग करता है, जो सबसे अधिक रोचक और प्रभावपूर्ण सिद्ध हुई हैं। सब प्रगतिशील विधियों का बुनियादी शिक्षा में स्थान हो सकता है और प्रयोग किया जा सकता है।"

"Basic education is not a method of teaching. It is a method of determining the curriculum. The teacher uses the methods which have proved to be the most interesting and effective. All progressive methods can have their place and be used in Basic Education."—W M Ryburn . *The Progressive School*, p 263.

बुनियादी शिक्षा में चाहे जिस विधि का प्रयोग किया जाय, पर शिक्षण का वास्तविक कार्य क्रियाओं और अनुभवों पर अनिवार्य रूप से आधारित किया जाता है। दूसरे शब्दों में, शिक्षण-विधि इतनी व्यावहारिक होती है कि बालक विभिन्न विषयों का ज्ञान एक ही समय में प्राप्त करता है। साथ ही, उसे यह ज्ञान थोड़े समय में प्राप्त हो जाता है। विस्तार रूप में, प्रत्येक कक्षा के बालकों को निम्नलिखित प्रकार से शिक्षा दी जाती है —

कक्षा के बालकों को सर्वप्रथम अपनी मातृभाषा का मौखिक ज्ञान कराया जाता है। इसके लिए वार्तालाप और कहानी को माध्यम बनाया जाता है। मातृभाषा का ज्ञान हो जाने के उपरान्त बालक पहले पढ़ना और फिर लिखना सीखते हैं। जिस समय वे लिखना सीखते हैं उस समय वे किसी आधारभूत [illegible] का ज्ञान भी प्राप्त करते हैं। इस प्रकार, बालक ज्यों ज्यों अगली कक्षाओं म [illegible] वे विभिन्न विषयों का ज्ञान अर्जित करते हैं।

कला के माध्यम से अनेक विषयों का परस्पर सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। बालक को अपनी रुचि के अनुसार हस्त-शिल्प का चुनाव करने की स्वतंत्रता दी जाती है।

इस प्रकार, जब बालक—बुनियादी शिक्षा का पाठ्यक्रम समाप्त करते हैं, तब उनको सभी विषयों का पूर्ण ज्ञान हो जाता है। साथ ही, उन्हें आधारभूत शिल्प की इतनी अच्छी जानकारी हो जाती है कि वे उसकी सहायता से धन का उपार्जन कर सकते हैं।

बुनियादी शिक्षा के उद्देश्य
Aims of Basic Education

बुनियादी शिक्षा के मुख्य उद्देश्य दृष्टव्य हैं :

1. आर्थिक उद्देश्य : Economic Aim—इस उद्देश्य के दो अभिप्राय हैं :—(i) बालकों द्वारा बनाई जाने वाली वस्तुओं को बेचकर विद्यालय के व्यय की आंशिक पूर्ति करना, और (ii) बुनियादी शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् बालकों का किसी उद्योग के द्वारा धन का अर्जन करना। इस सम्बन्ध में स्वयं गांधीजी ने लिखा है :—"प्रत्येक बालक और बालिका को विद्यालय छोड़ने के पश्चात् किसी व्यवसाय में लगकर स्वावलम्बी बनना चाहिए।"

2. नैतिक लक्ष्य : Moral Aim—आधुनिक भारतीय समाज का अविराम गति से नैतिक पतन हो रहा है। अतः बुनियादी शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य है—बालक का नैतिक विकास करना। नैतिक शिक्षा में अपना विश्वास प्रकट करते हुए, गांधीजी ने लिखा है :—"मैंने हृदय की संस्कृति या चारित्रिक निर्माण को सर्वोच्च स्थान दिया है। मुझे विश्वास है कि नैतिक प्रशिक्षण सबको समान रूप से दिया जा सकता है। इस बात से कोई प्रयोजन नहीं है कि उनकी आयु और पालन-पोषण में कितना अन्तर है।"

"I had given the top place to the culture of the heart or the building of character, and I felt confident that moral training could be given to all alike no matter how different their ages or upbringing."—M K Gandhi : *Autobiography*, p. 408.

3. सांस्कृतिक उद्देश्य : Cultural Aim—हमारी शिक्षा-प्रणाली का एक प्रमुख दोष यह है कि उसमें भारतीय संस्कृति का ज्ञान न कराया जाकर, बालकों को पाश्चात्य आदर्शों और विचारों का भक्त बनाया जाता है। फलस्वरूप, वे अपनी परम्परागत संस्कृति से पूर्णतया अनभिज्ञ रहते हैं। इसके दूषित परिणाम को बताते हुए, गांधीजी ने लिखा[1] :—"यदि किसी स्थिति में पहुँचकर एक पीढ़ी अपने पूर्वजों के प्रयासों से पूर्णतया अनभिज्ञ हो जाती है, या उसे अपनी संस्कृति पर लज्जा आने लगती है, तो वह नष्ट हो जाती है।"

1. *Young India*, March 20, 1924.

One of the aims of Basic Education is to reconstruct society in accordance with Gandhiji's conception of the Sarvodaya Samaj." – Dr. M. S Patel : *The Educational Philosophy of Mahatma Gandhi*, p 193.

बुनियादी शिक्षा के सिद्धान्त
Principles of Basic Education

बुनियादी शिक्षा के मुख्य सिद्धान्त अग्रांकित हैं :—

1. जनसाधारण की शिक्षा : Education of the Masses—भारत की अधिकांश साधारण जनता—अज्ञानता के अंधकार से आवृत है। यही कारण है कि बुनियादी शिक्षा का सर्वप्रथम सिद्धान्त—जनसाधारण को शिक्षित बनाना निर्धारित किया गया है। इस प्रकार, गांधीजी के अग्रांकित कथन के अनुसार कार्य किया जा रहा है :—"जनसाधारण की शिक्षा—पाप और कलंक है। अतः उसका अन्त किया जाना अनिवार्य है।"

"Mass illiteracy is India's sin and shame, and must be liquidated."– M. K. Gandhi : *India of My Dreams*, p. 181.

2. निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा : Free & Compulsory Education—गांधीजी का भारत के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा में अडिग विश्वास था। परतंत्र भारत अपने बच्चों के लिए इस प्रकार की शिक्षा का आयोजन करने में विफल रहा। अतः स्वतन्त्र "भारत के संविधान" में यह घोषित किया गया :—"जब तक सब बच्चे 14 वर्ष की अवस्था पूर्ण नहीं कर लेंगे, तब तक राज्य उनको निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा।"

"The State shall endeavour to provide for the free and compulsory education for all children until they complete the age of fourteen years."—*Article 45 of the Constitution of India.*

3 स्वावलम्बी शिक्षा : Self-Supporting Education– गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्त की ओर संकेत करते हुए कहा :–"सच्ची शिक्षा स्वावलम्बी होनी चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि शिक्षा से पूँजी के अतिरिक्त वह सब धन मिल जाना चाहिए, जो उसे प्राप्त करने में व्यय किया जाए।"

बुनियादी शिक्षा के इस स्वावलम्बी पहलू के प्रति विशेष ध्यान देकर उसे स्वावलम्बी बनाया गया है। डा० एम० एस० पटेल के अनुसार, बुनियादी शिक्षा दो प्रकार से स्वावलम्बी है–(i) बुनियादी शिक्षा प्राप्त करने वाला बालक किसी हस्तशिल्प को सीखकर उसे अपने भावी जीवन के निर्वाह का साधन बनाए, और (ii) विद्यालय में बालकों द्वारा बनाई जाने वाली वस्तुओं को बेचकर, अध्यापकों को

बुनियादी शिक्षा के गुण या विशेषताएँ

Merits or Characteristics of Basic Education

[illegible] ने बुनियादी शिक्षा को महात्मा गांधी का "महानतम् उपहार" बताया है। [illegible] कहा है कि इसमें अनेक अद्वितीय गुण या विशेषताएँ हैं। [illegible]

1. क्रिया-प्रधान शिक्षा : Activity Centred Education—बुनियादी शिक्षा क्रिया-प्रधान है, क्योंकि इसमें सम्पूर्ण ज्ञान का आधार अनुभव माना जाता है। [illegible] के अनुसार, "बालक हस्त-शिल्प के क्षेत्र में सक्रिय रहकर, मानसिक अनुभवों के साथ-साथ अन्य प्रकार के अनुभव भी प्राप्त करता है।"

2. बालक-प्रधान शिक्षा : Child Centred Education—बुनियादी शिक्षा बालक-प्रधान है। इसमें बालक को शिक्षा का "ग्राहक" समझा जाता है और उसकी आवश्यकताओं का [illegible] किया जाता है और उनको पूर्ण करने का प्रयत्न किया जाता है। डा० एस० एन० मुकर्जी के शब्दों में :—"नई तालीम बाल-केन्द्रित शिक्षा है और बालक क्रिया द्वारा ज्ञान का अर्जन करता है।"

"Nai Talim is child-centred education, and the child learns through activity."—Dr S. N. Mukerji : *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 58.

3. बालक का आध्यात्मिक विकास : Spiritual Development of Child—बुनियादी शिक्षा बालक के आध्यात्मिक विकास की ओर पूर्ण ध्यान देती है और उसकी आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूर्ण करती है। इस प्रकार, यह शिक्षा—बालक को अपने और सामाजिक जीवन की पूर्णता के आनन्द का अनुभव कराती है।

4. गृह, स्कूल व समाज में सामंजस्य : Harmony between Home, School & Society—बुनियादी शिक्षा—गृह, स्कूल और समाज के जीवन में [illegible] सामंजस्य स्थापित करती है। इसका कारण बताते हुए, [illegible] ने लिखा है :—"बालक, हस्तशिल्प की शिक्षा प्राप्त करके, अपने को गृह, स्कूल और समाज में [illegible] समान वातावरण में पाता है।"

5. आर्थिक आधार : Economic Basis—बुनियादी शिक्षा का आधार आर्थिक है। इसके समर्थक [illegible] उल्लिखित किए जा सकते हैं, यथा :—(i) बुनियादी विद्यालयों के [illegible] द्वारा बनाई जाने वाली वस्तुओं को बेचने से [illegible] [illegible] और (ii) बालक किसी हस्त-शिल्प की शिक्षा [illegible] [illegible] अर्जन कर सकता है। [illegible] डा० मुकर्जी के शब्दों में :—"बुनियादी शिक्षा का प्रयोजन, बेरोजगारी की समस्या का समाधान करना है।"

"Basic Education proposes to solve the problem of unemployment."—Dr. S. N. Mukerji : *op. cit.*, pp. 58-59.

6. सामाजिक आधार : Social Basis—बुनियादी शिक्षा का आधार—सामाजिक है, क्योंकि इसमें बालक के अनेक सामाजिक गुणों को विकसित करने की चेष्टा की जाती है। बालक में हस्तशिल्प के माध्यम से सेवा और स्नेह, सहयोग और सहिष्णुता, आत्म-संयम और आत्म-विश्वास के गुणों को सुविकसित करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया जाता है। अतः "बेसिक शिक्षा-योजना" के निर्माताओं ने यह आशा प्रकट की —"व्यावहारिक उत्पादक कार्य—शारीरिक और मानसिक कार्यकर्ताओं के मध्य उपस्थित द्वेष की दीवार को नष्ट कर देगा।"

"Practical productive work will tend to break down the existing barriers of prejudice between manual and intellectual workers." *Educational Reconstruction*, p 121.

7. मनोवैज्ञानिक आधार : Psychological Basis—बुनियादी शिक्षा का आधार मनोवैज्ञानिक है, क्योंकि इसमें बालक को प्रधानता दी जाती है, न कि उसके द्वारा अध्ययन किए जाने वाले पाठ्य विषयों को। बालक का स्वाभाविक विकास किसी कार्य में संलग्न होकर ही हो सकता है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को ध्यान में रखकर, बुनियादी शिक्षा में हस्त-शिल्प द्वारा उत्पादक कार्य को प्रधान स्थान दिया गया है।

8. शारीरिक श्रम का सम्मान : Dignity of Labour—बुनियादी शिक्षा—बालक में शारीरिक श्रम के प्रति सम्मान की भावना का निर्माण करती है। बालक स्वयं हस्तशिल्प के माध्यम से किसी उत्पादक कार्य को करता है। अतः वह शारीरिक श्रम को महत्त्व देने लगता है और इस प्रकार का श्रम करने वाले व्यक्तियों को आदर की दृष्टि से देखने लगता है।

9. समवायी शिक्षण विधि : Correlated Method of Teaching—बुनियादी शिक्षा में 'समवायी शिक्षण-विधि' का प्रयोग किया जाता है। बालक को समस्त विषयों की शिक्षा किसी कार्य या हस्त-शिल्प के माध्यम से दी जाती है। दूसरे शब्दों में, उसे क्रिया के द्वारा ज्ञान प्रदान किया जाता है। वह कृषि, कताई-बुनाई, काष्ठ-कला आदि में से किसी हस्त शिल्प का चयन करता है। उसके पश्चात् वह उस कार्य को करके उसका और उससे सम्बन्धित बातों का ज्ञान प्राप्त करता है।

हम अपने कथन का स्पष्टीकरण करने के उद्देश्य से [illegible] दुबे के निम्नांकित शब्द उद्धृत कर रहे हैं — "बुनियादी शिक्षा में दस्तकारी द्वारा शिक्षा को प्रधानता दी गई है और विविध विषयों के ज्ञान की रचना भी इसी मूल-उद्योग के इर्द-गिर्द की गई है। दस्तकारी को ज्ञान का वाहन अथवा साधन बनाया गया है। तात्पर्य यह है कि विविध विषयों का ज्ञान बालक को क्रियाओं से ही सम्बन्धित किया जाता है। इसी सम्बन्ध के जोड़ने को समवाय कहते हैं।"

10. ज्ञान की एकसूत्रता : Unification of Knowledge—बुनियादी शिक्षा में ज्ञान को एक अभिन्न और अखण्ड इकाई माना जाता है। अतः

बुनियादी शिक्षा के गुण या विशेषताएँ
Merits or Characteristics of Basic Education

अविनाशलिंगम् ने बुनियादी शिक्षा को महात्मा गांधी का "महानतम् उपहार" बताया है। इसका कारण यह है कि इसमें अनेक अद्वितीय गुण या विशेषताएँ हैं; यथा

1. क्रिया-प्रधान शिक्षा : Activity Centred Education—बुनियादी शिक्षा क्रिया-प्रधान है, क्योंकि इसमें सम्पूर्ण ज्ञान का आधार अनुभव माना जाता है। रायबर्न के अनुसार :—"बालक हस्त-शिल्प के क्षेत्र में सक्रिय रहकर, मानसिक अनुभवों के साथ-साथ अन्य प्रकार के अनुभव भी प्राप्त करता है।"

2. बालक-प्रधान शिक्षा : Child Centred Education—बुनियादी शिक्षा—बालक-प्रधान है। इसमें बालक को शिक्षा का "ग्राहक" समझा जाता है। अतः उसकी आवश्यकताओं का अध्ययन किया जाता है और उनको पूर्ण करने का प्रयत्न किया जाता है। डा० एस० एन० मुकर्जी के शब्दों में :—"नई तालीम बाल-केन्द्रित शिक्षा है और बालक क्रिया द्वारा ज्ञान का अर्जन करता है।"

"Nai Talim is child-centred education, and the child learns through activity."—Dr. S N. Mukerji : *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 58.

3. बालक का आध्यात्मिक विकास : Spiritual Development of Child—बुनियादी शिक्षा—बालक के आध्यात्मिक विकास की ओर पूर्ण ध्यान देती है और उसकी आध्यात्मिक आवश्यकताओं को पूर्ण करती है। इस प्रकार, यह शिक्षा—बालक को अपने और सामाजिक जीवन की पूर्णता के आनन्द का अनुभव कराती है।

4. गृह, स्कूल व समाज में सामंजस्य : Harmony between Home, School & Society—बुनियादी शिक्षा—गृह, स्कूल और समाज के जीवन में पूर्ण सामंजस्य स्थापित करती है। इसका कारण बताते हुए, रायबर्न ने लिखा है :—"बालक, हस्तशिल्प की शिक्षा प्राप्त करके, अपने को गृह, स्कूल और समाज में प्रायः समान वातावरण में पाता है।"

5. आर्थिक आधार : Economic Basis—बुनियादी शिक्षा का आधार—आर्थिक है। इसके समर्थन में दो तर्क उपस्थित किए जा सकते हैं; यथा :—(i) बुनियादी विद्यालयों में बालकों द्वारा बनाई जाने वाली वस्तुओं को बेचने से विद्यालय को कुछ आय मिल सकती है, और (ii) बालक किसी हस्त-शिल्प को सीखकर अपने भावी जीवन में धन का अर्जन कर सकता है। एक अन्य तर्क डा० एस० एन० मुकर्जी से सुनिए :—"बुनियादी शिक्षा का प्रयोजन, बेरोजगारी की समस्या का समाधान करना है।"

"Basic Education proposes to solve the problem of unemployment."—Dr. S N. Mukerji : *op. cit.*, pp. 58-59.

6 सामाजिक आधार : Social Basis—बुनियादी शिक्षा का आधार—सामाजिक है, क्योंकि इसमें बालक के अनेक सामाजिक गुणों को विकसित करने की चेष्टा की जाती है। बालक में हस्तशिल्प के माध्यम से सेवा और स्नेह, सहयोग और सहिष्णुता, आत्म-संयम और आत्म-विश्वास के गुणों का पुष्पित करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया जाता है। अतः "बेसिक शिक्षा-योजना" के निर्माताओं ने यह आशा प्रकट की—"व्यावहारिक उत्पादक कार्य—शारीरिक और मानसिक कार्यकर्त्ताओं के मध्य उपस्थित द्वेष की दीवार को नष्ट कर देगा।"

"Practical productive work will tend to break down the existing barriers of prejudice between manual and intellectual workers." *Educational Reconstruction* p 121

7 मनोवैज्ञानिक आधार Psychological Basis—बुनियादी शिक्षा का आधार मनोवैज्ञानिक है क्योंकि इसमें बालक को प्रधानता दी जाती है, न कि उसके द्वारा अध्ययन किए जाने वाले पाठ्य विषयों को। बालक का स्वाभाविक विकास किसी कार्य में संलग्न होकर ही हो सकता है। इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को ध्यान में रखकर, बुनियादी शिक्षा में हस्त-शिल्प द्वारा उत्पादक कार्य को प्रधान स्थान दिया गया है।

8 शारीरिक श्रम का सम्मान Dignity of Labour—बुनियादी शिक्षा—बालक में शारीरिक श्रम के प्रति सम्मान की भावना का निर्माण करती है। बालक स्वयं हस्तशिल्प के माध्यम से किसी उत्पादक कार्य को करता है। अतः वह शारीरिक श्रम को महत्त्व देने लगता है और इस प्रकार का श्रम करने वाले व्यक्तियों को आदर की दृष्टि से देखने लगता है।

9 समवायी शिक्षण विधि Correlated Method of Teaching—बुनियादी शिक्षा में समवायी शिक्षण विधि का प्रयोग किया जाता है। बालक को समस्त विषयों की शिक्षा किसी कार्य या हस्त-शिल्प के माध्यम से दी जाती है। दूसरे शब्दों में, उसे क्रिया के द्वारा ज्ञान प्रदान किया जाता है। वह कृषि, कताई-बुनाई, काष्ठ-कला आदि में से किसी हस्त-शिल्प का चयन करता है। उसके पश्चात् वह उस कार्य को करके उसका और उससे सम्बन्धित बातों का ज्ञान प्राप्त करता है।

इस [illegible] स्पष्टीकरण करने के उद्देश्य से [illegible] के [illegible] बुनियादी शिक्षा में हस्तकार्य द्वारा शिक्षा को प्रधानता दी गई है और विविध विषयों के ज्ञान की रचना भी इसी मूल उद्योग के इर्द-गिर्द की गई है। हस्तकार्य को ज्ञान का वाहन अथवा साधन बनाया गया है। तात्पर्य यह है कि विविध विषयों का ज्ञान बालक की क्रियाओं से ही सम्बन्धित किया जाता है। इसी सम्बन्ध के जोड़ने को समवाय कहते हैं।

10. ज्ञान की अखण्डता Unification of Knowledge—बुनियादी शिक्षा में ज्ञान को एक अविभक्त और अखण्ड इकाई माना जाता है। अतः

विषयों को अलग-अलग विभाजित नहीं किया जाता है और न उनका ज्ञान ही अलग-अलग दिया जाता है। इसके विपरीत, सब विषयों का ज्ञान किसी उपयोगी शिल्प के द्वारा परस्पर सम्बन्धित करके दिया जाता है। हंसराज भाटिया के शब्दों में :—"बुनियादी शिक्षा में ज्ञान— एक अभिन्न-अखण्ड समष्टि (One unified whole) है, और उसका अनेक असम्बद्ध और अनेक बार, परस्पर अविभाजित विषयों (Exclusive Subjects) में विभाजन निषिद्ध है।"

11. शिल्प द्वारा शिक्षा : Education through Craft—बुनियादी शिक्षा का माध्यम—आधारभूत शिल्प (Basic Craft) है। सब विषयों की शिक्षा इसी शिल्प के माध्यम से प्रदान की जाती है। आधुनिक युग के सभी शिक्षाशास्त्रियों द्वारा इस बात को स्वीकार किया जाता है कि बालक की शिक्षा का माध्यम कोई उत्पादक कार्य होना चाहिए। उनका मत है कि केवल इसी प्रकार की शिक्षा—बालक का वास्तविक जीवन से सम्बन्ध स्थापित कर सकती है।

12. बालक व शिक्षक की स्वतन्त्रता : Independence of Child & Teacher—बुनियादी शिक्षा में बालक और शिक्षक पर्याप्त स्वतन्त्रता का उपभोग करते हैं। बालक को कार्य करने, कार्य में रुचि लेने और कार्य को करके उपयोगी ज्ञान प्राप्त करने का पूर्ण अवसर मिलता है। शिक्षक को न तो किसी निर्धारित पाठ्य-क्रम का अनुसरण करना पड़ता है और न कोई निश्चित पाठ ही पढ़ाना पड़ता है। उसे न तो पाठ्य-पुस्तकों को समाप्त करने की आतुरता रहती है और न आने वाली परीक्षा के कारण व्याकुलता। वह अपनी इच्छा के अनुसार प्रयोग एवं परीक्षण कर सकता है, और बालकों की योग्यता के विकास एवं विद्यालय की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किसी भी उपयुक्त शिक्षण-विधि और लाभप्रद उद्योग का प्रयोग कर सकता है।

सारांश में, हम टी० एन० सिक्वेरा के शब्दों में कह सकते हैं :—"वर्धा-योजना को भारत की निरक्षरता की महान् समस्या का समाधान करने के लिए अब तक किए जाने वाले प्रयासों में सबसे साहसी और सम्पूर्ण माना जा सकता है।"

"The Wardha Scheme may be considered the boldest and completest attempt so far made to solve the great problem of India's illiteracy." - T. N. Siqueira : *The Education of India*, pp. 221-222.

बुनियादी शिक्षा के दोष
Defects of Basic Education

बुनियादी शिक्षा के कुछ स्पष्ट दोषों की चर्चा नीचे की पंक्तियों में की जा रही है :—

1. यह शिक्षा नगरों के बजाय ग्रामों के लिए अधिक उपयुक्त है।

2. यह शिक्षा—"उत्पादन के सिद्धान्त" (Principle of Productivity) पर आवश्यकता से अधिक बल देती है। अतः बुनियादी विद्यालय, शिक्षण के केन्द्र न रह कर, उद्योग के केन्द्र बन जाते हैं।
3. यह शिक्षा—कताई, बुनाई और धुनाई के *समान प्राचीन उद्योगों को* महत्व देती है। इस प्रकार, यह शिक्षा—भारत की औद्योगिक उन्नति में बाधक है। यह युग मशीनों का है, न कि हस्त-शिल्पों का।
4. यह शिक्षा किसी हस्त-शिल्प के माध्यम से बालक को सब विषयों का ज्ञान प्रदान करने की चेष्टा करती है, जो पूर्णतया असम्भव है। **डा० श्रीधरनाथ मुखोपाध्याय के शब्दों में :—"केन्द्रीय दस्तकारी के द्वारा सम्पूर्ण शिक्षा नहीं दी जा सकती है।"**
5. यह शिक्षा—आधारभूत शिल्प के द्वारा न तो बालक का सर्वांगीण करने में और न उसे सामान्य शिक्षा प्रदान करने में सफल होती है।
6. *यह शिक्षा—तकली द्वारा कताई पर अत्यधिक बल देती है।* तकली से बहुत समय में थोड़ा-सा सूत काता जाता है। इस प्रकार, यह शिक्षा न केवल बालक का समय नष्ट करती है, वरन् उसके लिए मँहगी भी पड़ती है।
7. डा० मुखोपाध्याय के अनुसार[1] :—यह शिक्षा स्वावलम्बी नहीं बन सकती है, क्योंकि बालकों द्वारा बनाई जाने वाली वस्तुओं से शिक्षकों के वेतन का व्यय नहीं निकल सकता है।
8. **डा० मुकर्जी के अनुसार[2] :—"यह शिक्षा, बालक की रुचियों और प्रवृत्तियों का विकास होने से पूर्व और उनका वास्तविक ज्ञान प्राप्त किए बिना, बालक को अल्प आयु में ही किसी हस्त-शिल्प से बाँध देती है।"**
9. *झींगरन व शर्मा के शब्दों में[3]* :—**"यह शिक्षा, काल्पनिक है, एक अनावश्यक विश्वास है, एक मनःतुष्टि है और वास्तविक व्यवहार से परे है।"**
10. इस शिक्षा में बालक के मानसिक और व्यावसायिक प्रशिक्षण में किसी प्रकार का सन्तुलन नहीं है।
11. इस शिक्षा में "उत्पादन के सिद्धान्त" पर बल दिए जाने के कारण शिक्षकों का नैतिक पतन हो जाता है, क्योंकि वे विद्यालयों को फैक्ट्रियों

---

1. डा० श्रीधरनाथ मुखोपाध्याय : 'भारतीय शिक्षा का इतिहास', पृ० 198।
2. S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 58
3. Jhingran & Sharma : *Reports on Indian Education*, p. 37.

में और बालकों को धन का उपार्जन करने वाली मशीनों में परिणत कर देती है।

12. "Education in India" (1947-57) के अनुसार :—इस शिक्षा में जनता और अध्यापकों को कोई आकर्षण नहीं मिला है। अतः दोनों ने इसका घोर विरोध किया है।

13. "Modern Review" (April, 1955) के अनुसार :—इस शिक्षा का अभिभावकों ने स्वागत नहीं किया है। उनका कहना है कि वे अपने बच्चों को स्कूल में पढ़ने के लिए भेजते हैं, न कि कताई-बुनाई और गुड़ाई-निराई करने के लिए।

14. झींगरन व शर्मा के शब्दों में[1] :—"इस शिक्षा में सुस्थिर शिक्षा-दर्शन की अपेक्षा भावुकता अधिक है। इसे गांधीजी की महानता से प्रभावित व्यक्तियों ने भावुकतावश ही स्वीकार किया है।"

15. "मूल्यांकन-समिति" के विचार से :—"सामान्य धारणा यह है कि बुनियादी विद्यालय—साधारण विद्यालय से अधिक मँहगा है। यही कारण है कि बुनियादी शिक्षा का शीघ्रता से प्रसार नहीं किया जा सकता है।" "There is a general view that a Basic School is more costly than an ordinary school. This is followed by the corollary that that is why Basic Education cannot be spread quickly."—*Report of the Assessment Committee on Basic Education,* p. 33.

बुनियादी शिक्षा का मूल्यांकन
Estimate of Basic Education

बुनियादी शिक्षा के उपरिलिखित गुणों के आधार पर हम निस्संकोच भाव से स्वीकार कर सकते हैं कि दरिद्रता के दानव के चंगुल में फँसे हुए, हमारे देश के लिये यह शिक्षा एक अनुपम वरदान है। यह न तो प्रचलित शिक्षा के समान पुस्तकीय एवं अव्यावहारिक है और न परीक्षा एवं पाठ्यक्रम की जंजीरों में जकड़ी हुई है। जबकि वर्तमान शिक्षा केवल बालकों के मानसिक विकास की ओर ध्यान देती है, बुनियादी शिक्षा उनके शारीरिक, मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास के लिए सचेष्ट प्रयास करती है। बुनियादी शिक्षा की सर्वप्रधान विशेषता—उसका उत्पादन का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप प्रदान करके, बालकों को अपने भावी जीवन में निश्चित रूप से आत्म-निर्भर और स्वावलम्बी बनाया जा सकता है।

बुनियादी शिक्षा के उपर्युक्त और अन्य गुणों के कारण हमारे देश के अनेक राष्ट्रीय नेताओं और शिक्षा-शास्त्रियों ने इसका जोरदार स्वागत किया है और नतमस्तक

1. Jhingran & Sharma : *op. cit.*, p. 37.

होकर इसकी उपयोगिता को स्वीकार किया है। किन्तु, यदि इस शिक्षा का सूक्ष्मता से विश्लेषण किया जाय, तो वास्तविकता कुछ और ही दिखायी देती है। इसका आधारभूत कारण यह है कि बेसिक शिक्षा की योजना यथार्थ जगत् से सम्बन्धित न होकर, कल्पना-प्रदेश की वस्तु है। आचार्य कृपलानी ने तो यहाँ तक कह दिया है :— "बेसिक शिक्षा की योजना—शिक्षा के क्षेत्र में गांधीजी की अन्तिम मनःसृष्टि है।"

"The scheme of Basic Education is Gandhiji's latest fad in the domain of education."—*Acharya Kriplani.*

केवल "मनःसृष्टि" का आक्षेप ही बुनियादी शिक्षा के समस्त गौरव, समस्त महत्त्व और समस्त उपयोगिता को गड़-मड़ करके, नष्ट कर देता है। यही कारण है कि महात्मा गांधी के कुछ अन्य शैक्षिक विचारों की भाँति उनका बुनियादी *शिक्षा-सम्बन्धी विचार भी समयानुकूल न होने के कारण शैक्षिक-संसार में सामान्य* स्वीकृति प्राप्त नहीं कर पाया है। यह सत्य है कि भारत की वर्तमान परिस्थितियों के अनुसार इसमें रूपान्तर करके, इसे इस देश के लिए उपयुक्त बनाया जा सकता है। पर इस कार्य को करे कौन ? इस प्रश्न का उत्तर देते हुए, डा० एस० एन० मुकर्जी ने लिखा है[1] :—"यह कार्य, महात्मा गांधी के शिष्यों द्वारा किया जाना चाहिए। किन्तु उनके लिए गांधीजी का प्रत्येक कार्य और प्रत्येक शब्द इतना दैवी और पवित्र है कि वे उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन करने का साहस नहीं कर सकते हैं। यदि गांधीजी आज जीवित होते, तो वे अनिवार्यतः अपनी बेसिक शिक्षा की योजना को नये साँचे में ढाल कर देश की आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुकूल बना देते।"

क्योंकि "योजना" में किसी प्रकार का भी हेर-फेर किया जाना सम्भव नहीं है, इसलिए वह गांधीजी के नाम से भारत के विभिन्न राज्यों में बस चल रही है। कुछ राज्यों में वह किस प्रकार चल रही है, उसका सजीव वर्णन "मूल्यांकन समिति" के इन शब्दों में पढ़िए[2] :—"कुछ राज्यों में हमने बेसिक स्कूलों को बिल्कुल अस्त-व्यस्त दशा में देखा। एक राज्य में किसी प्रकार का अन्तर किए बिना सब स्कूलों को बेसिक स्कूल कहा जाता था। एक-दूसरे राज्य में हमने पुराने ढंग के प्राथमिक विद्यालयों को बेसिक स्कूलों के नाम से चलते हुए देखा।" इसका कारण बेसिक शिक्षा के प्रति अधिकारियों की उदासीनता थी। "समिति" के अनुसार उनका कहना था :— "बेसिक शिक्षा को अभी प्रतीक्षा करनी चाहिए। इससे हमने यह अर्थ निकाला कि बेसिक शिक्षा को अपने प्रसार के लिए अनन्त समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।"

1. S N Mukerji *op cit*, p 61.

2. *Report of the Assessment Committee on Basic Education*, p. 20.

"Basic Education had better wait. We thought this would mean that Basic Education would have to wait indefinitely."—*Report of the Assessment Committee on Basic Education*, p. 20.

यह है बुनियादी शिक्षा के बारे में सरकारी अधिकारियों और सरकार द्वारा नियुक्त की जाने वाली "मूल्यांकन समिति" की राय। एक दूसरी राय डा० मुजीब के इन शब्दों में पढ़िए:—"वास्तविक बेसिक स्कूल कुछ ही शिक्षाविदों के आदर्श रह गये हैं। दूसरे शिक्षाविद्, जिनके पास धन है, वे बेसिक शिक्षा का प्रचार तो करते हैं, पर अपने बच्चों को अंग्रेजी के माध्यम से शिक्षा देने वाले स्कूलों में भेजते हैं। हाई-स्कूलों में उत्तर-बेसिक स्कूलों के छात्रों को प्रवेश नहीं दिया जाता है, क्योंकि उनकी शैक्षिक योग्यता कम होती है। इससे ग्रामीण जनता में यह विश्वास उत्पन्न हो गया है कि बेसिक स्कूल गांवों के लिए तो काफी अच्छे हैं, पर उच्च शिक्षा के अभिलाषी बालकों के लिए बिलकुल भी अच्छे नहीं हैं।"

"The genuine basic school remained the ideal of a few educationists, those who had the means sent their children to English-medium schools, while propagating basic education. The high schools refused to admit children from post basic schools, because their academic attainments were low. This made the rural population aware that the Basic School was regarded as something good enough for the village but not good enough for further education."
—Dr. M. Mujeeb. His Article in *The Illustrated Weekly of India*, August 18, 1963, p. 12.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Discuss the fundamental principles of Basic Education. How far are they workable ?
   बुनियादी शिक्षा के आधारभूत सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए। उनको कार्य रूप में कहाँ तक परिणत किया जा सकता है ?
2. What are the main aims of Basic Education ? How far have they been formulated keeping in view the needs of the child and the country ?
   बुनियादी शिक्षा के मुख्य उद्देश्य क्या हैं ? उनको बालक और देश की आवश्यकताओं को कहाँ तक ध्यान में रखकर निर्धारित किया गया है ?
3. Write a reasoned criticism of the Wardha Scheme of Education.
   "वर्धा-शिक्षा-योजना" की सकारण समीक्षा कीजिए।

4. "Basic Education was Gandhiji's latest fad in the domain of education." Discuss.
"बुनियादी शिक्षा, शिक्षा के क्षेत्र में गांधीजी की अन्तिम मन-सृष्टि थी।" विवेचना कीजिए।
5. "Basic Education was the greatest gift of Mahatma Gandhi." Comment.
"बुनियादी शिक्षा, महात्मा गांधी की महानतम् भेंट थी।" समीक्षा कीजिए।
6. Write short notes on :—(a) Wardha Educational Conference, (b) Zakir Husain Committee, (c) Wardha Scheme of Education, and (d) Basic method of teaching.
अग्रलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए :—(अ) वर्धा-शिक्षा-सम्मेलन, (ब) जाकिर हुसेन समिति, (स) वर्धा-शिक्षा-योजना, और (द) बुनियादी शिक्षण-विधि।

17

सार्जेन्ट-रिपोर्ट, 1944

शिक्षा-विकास की युद्धोत्तर योजना, 1944

SARGENT-REPORT, 1944

POST-WAR PLAN OF EDUCATIONAL DEVELOPMENT, 1944

"The function of the *High School* is to cater for those children who are well above the average in ability."

—Sargent Report.

विषय-प्रवेश

द्वितीय विश्व-युद्ध की समाप्ति से कुछ समय पूर्व अन्य देशों के समान भारत में भी युद्धोत्तर विकास की योजनाओं के निर्माण-कार्य की दिशा में रचनात्मक कदम उठाए गए। इन योजनाओं में शिक्षा का भी स्थान था। अतः "गवर्नर-जनरल की प्रबन्धकारिणी कौंसिल की पुनर्निर्माण समिति" (Reconstruction Committee of Governor-General's Executive Council) ने "केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड" (Central Advisory Board of Education) को भारत में शिक्षा के विकास के लिए एक योजना तैयार करने का निर्देश दिया।

"केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड" ने इस निर्देश का पालन करने के लिए भारत-सरकार के तत्कालीन शिक्षा-सलाहकार, सर जॉन सार्जेन्ट (Sir John Sargent) से उक्त योजना प्रस्तुत करने का अनुरोध किया। अतः सार्जेन्ट ने अपनी योजना को एक "स्मृति-पत्र" (Memorandum) में लिपिबद्ध करके सन् 1944 में "बोर्ड" के समक्ष प्रस्तुत किया। इस "स्मृति-पत्र" को 4 विभिन्न नामों से पुकारा जाता है; यथा :—

1. सार्जेन्ट-रिपोर्ट : Sargent-Report.
2. सार्जेन्ट-योजना : Sargent Plan, or Scheme.
3. भारत में युद्धोत्तर शिक्षा-विकास-योजना : Scheme of Post-War Educational Development in India.
4. केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड की रिपोर्ट : Report by the Central Advisory Board of Education.

सार्जेन्ट-योजना के उद्देश्य
Aims of the Sargent Plan

"सार्जेन्ट-रिपोर्ट" 12 भागों में विभाजित है। इसमें पूर्व-प्राथमिक शिक्षा से लेकर विश्वविद्यालय-शिक्षा तक और शिक्षा के अनेक अन्य अंगों पर भी सविस्तार विचार किया गया है और उनके विकास के लिए उत्युत्तम सुझावों एवं सिफारिशों को अक्षरबद्ध किया गया है। इस "रिपोर्ट" में राष्ट्रीय शिक्षा की योजना प्रस्तुत की गई है। इस "योजना" के उद्देश्यों के सम्बन्ध में दो लेखकों के विचार द्रष्टव्य हैं :—

1. नुरुल्ला व नायक। —"योजना का उद्देश्य – कम-से-कम 40 वर्ष की अवधि में भारत में शैक्षिक योग्यताओं के उसी स्तर का निर्माण करना है, जिस पर इङ्गलैंड पहुँच चुका था।"

"The object of the *Plan* is to create in India, in a period of not less than forty years, the same standard of educational attainments as had already been attained in England."—Nurullah & Naik : *A History of Education in India*, p. 834

2. भगवान दयाल —"योजना का उद्देश्य—313 करोड़ रुपए व्यय करके, शिक्षा की सम्पूर्ण पद्धति का पुनर्संगठन करना था। योजना आठ पंचवर्षीय कार्यक्रमों में पूर्ण की जानी थी। प्रथम पंचवर्षीय कार्यक्रम में केवल शिक्षकों का प्रशिक्षण किया जाना था। शेष सात पंचवर्षीय कार्यक्रमों में योजना का धीरे-धीरे एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में उस समय तक क्रमशः प्रसार किया जाना था, जब तक कि वह सम्पूर्ण देश में न फैल जाय।"

"The *Plan* aimed at reorganising the entire system of education at a total cost of 313 crores. The *Plan* was to be carried out by means of eight five-year programmes. The first five year programme was to be entirely devoted to the training of teachers, while the remaining seven five-year programmes were meant for the gradual extension of the scheme from area to area, till it spread over the whole country."—Bhagwan Dayal. *The Development of Modern Indian Education*, p. 160

"सार्जेन्ट-योजना" के उपरिअंकित उद्देश्यों से स्पष्ट हो जाता है कि यह भारतीय शिक्षा-प्रणाली का आदि से अन्त तक पुनर्संगठन करके, उसे एक उच्च स्तर पर प्रतिष्ठित करना चाहती थी।

सुझाव व सिफ़ारिशें
Suggestions & Recommendations

"सार्जेन्ट-रिपोर्ट" में शिक्षा के विभिन्न अंगों के विषय में निम्नांकित सुझावों और सिफ़ारिशों को स्थान दिया गया है :—

1. पूर्व-प्राथमिक शिक्षा : Pre-Primary Education—"सार्जेन्ट-रिपोर्ट" में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के विषय में अधोलिखित सिफ़ारिशें की गई हैं :—

1. पूर्व-प्राथमिक शिक्षा की उत्तम व्यवस्था की जानी चाहिए, क्योंकि यह शिक्षा—राष्ट्रीय शिक्षा-योजना का अनिवार्य अंग है।
2. पूर्व-प्राथमिक शिक्षा 3 से 6 वर्ष-वर्ग के बालकों एवं बालिकाओं के लिए होनी चाहिए, और कम-से-कम 10 लाख बच्चों के लिए शिशु-शालाओं (Nursery Schools) की स्थापना की जानी चाहिए।
3. शिशु-शालाओं में शिक्षा हर हालत में निःशुल्क होनी चाहिए।
4. शिशु-शालाओं में केवल अध्यापिकाओं की ही नियुक्ति की जानी चाहिए और वे विशेष प्रशिक्षण-प्राप्त होनी चाहिए।
5. शिशु-शालाओं की स्थापना सब बड़े नगरों में की जानी चाहिए। ग्रामों में इन शालाओं को जूनियर बेसिक स्कूलों के एक भाग में चलाया जाना चाहिए।
6. शिशु-शालाओं में शिशुओं की उपस्थिति अनिवार्य नहीं होनी चाहिए, पर उनके अभिभावकों से उन्हें नियमित रूप से भेजने का आग्रह किया जाना चाहिए।
7. शिशु-शालाओं का मुख्य उद्देश्य—शिशुओं को सामाजिक अनुभव और शिष्टाचार की शिक्षा देना होना चाहिए, न कि सामान्य शिक्षा प्रदान करना।

2. प्राथमिक या बेसिक शिक्षा : Primary or Basic Education—प्राथमिक शिक्षा के लिए, "सार्जेन्ट रिपोर्ट" ने कुछ परिवर्तनों के पश्चात् "बेसिक शिक्षा-योजना" को स्वीकार किया है। उसने बेसिक शिक्षा में प्राथमिक और मिडिल (Primary & Middle) स्तरों की शिक्षा को सम्मिलित किया है और उसके सम्बन्ध में अधोलिखित सुझाव दिए हैं :—

1. 6 से 14 वर्ष तक की आयु के सब बालकों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा दी जानी चाहिए।

2. शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए "उपस्थिति-निरीक्षक-पदाधिकारियों" (Attendance Officers) की नियुक्ति की जानी चाहिए।
3. बेसिक शिक्षा किसी आधारभूत शिल्प के माध्यम से दी जानी चाहिए।
4. बेसिक शिक्षा को आत्म-निर्भर नहीं बनाया जाना चाहिए, क्योंकि बच्चों द्वारा बनाई जाने वाली वस्तुओं को बेचना कठिन है।
5. बेसिक शिक्षा को दो भागों में विभक्त किया जाना चाहिए :—(1) जूनियर बेसिक शिक्षा, 6 से 11 वर्ष तक के बच्चों के लिए, और (2) सीनियर बेसिक शिक्षा, 11 से 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए।
6 जूनियर बेसिक स्कूलों के पाठ्यक्रम में अंग्रेजी को स्थान नहीं दिया जाना चाहिए। इन स्कूलों में सह-शिक्षा प्रचलित की जा सकती है।
7. सीनियर बेसिक स्कूलों में अंग्रेजी की शिक्षा साधारणतया नहीं दी जानी चाहिए। किन्तु, यदि किसी प्रान्त में अंग्रेजी की माँग है, तो "प्रान्तीय शिक्षा-विभाग" उसकी पढ़ाई की आज्ञा दे सकता है।
8. दोनों प्रकार के स्कूलों में शिक्षा का माध्यम —मातृभाषा होनी चाहिए।
9. दोनों प्रकार के स्कूलों में बाह्य परीक्षा के बजाय आन्तरिक परीक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।
10. परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले छात्रों को सर्टिफिकेट दिए जाने चाहिए।

3. हाई-स्कूल-शिक्षा High School Education—"सार्जेन्ट-रिपोर्ट" में हाई-स्कूल की शिक्षा के विषय में अधोलिखित विचार व्यक्त किए गए हैं :—

1. हाई स्कूल की शिक्षा 6 वर्ष की, अर्थात् 11 से 17 वर्ष तक की आयु के बालकों और बालिकाओं के लिए होनी चाहिए।
2. हाई स्कूलों में केवल उन्हीं छात्रों को प्रवेश दिया जाना चाहिए, जिनकी क्षमताएँ औसत छात्रों से स्पष्टतः ऊँची हों।
3. जूनियर बेसिक स्कूलों की शिक्षा समाप्त करने वाले छात्रों में से लगभग 20 प्रतिशत को हाई स्कूलों में प्रवेश दिया जाना चाहिए।
4. हाई स्कूलों में 11 वर्ष से कम आयु के छात्रों को प्रवेश नहीं दिया जाना चाहिए।
5. हाई स्कूलों में प्रवेश लेने वाले छात्रों को 14 वर्ष की आयु की समाप्ति तक अनिवार्य रूप से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।
6 हाई स्कूलों में अध्ययन करने वाले छात्रों में से केवल 50 प्रतिशत छात्रों से शुल्क लिया जाना चाहिए और शेष 50 प्रतिशत को निःशुल्क शिक्षा दी जानी चाहिए।

7. हाई स्कूलों में अध्ययन करने वाले निर्धन छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिए।
8. हाई स्कूलों में शिक्षा का माध्यम—मातृभाषा होनी चाहिए और अंग्रेजी की शिक्षा, द्वितीय अनिवार्य विषय के रूप में दी जानी चाहिए।
9. हाई स्कूलों का पाठ्यक्रम—विश्वविद्यालय-शिक्षा का आधार-मात्र न होकर, अपने आप में सम्पूर्ण होना चाहिए, ताकि इस पाठ्यक्रम का पूर्ण अध्ययन करने के उपरान्त छात्रों को किसी व्यवसाय को करने की योग्यता प्राप्त हो जाय।
10. हाई स्कूल दो प्रकार के होने चाहिए :—(1) साहित्यिक हाई स्कूल (Academic High Schools), और (2) तकनीकी हाई स्कूल (Technical High Schools)।
11. दोनों प्रकार के हाई स्कूलों में अग्रांकित विषयों की शिक्षा सामान्य रूप से दी जानी चाहिए :—(1) मातृभाषा, (2) अंग्रेजी, (3) आधुनिक भाषाएँ, (4) भारत तथा विश्व का इतिहास, (5) भारत तथा विश्व का भूगोल, (6) गणित, (7) विज्ञान, (8) अर्थशास्त्र, (9) कृषि, (10) कला, (11) संगीत, और (12) शारीरिक शिक्षा।
12. उक्त सामान्य विषयों के अलावा साहित्यिक हाई स्कूलों में प्राच्य-भाषाओं (Classical Languages) और नागरिक-शास्त्र की भी शिक्षा दी जानी चाहिए। बालिकाओं को गृह-विज्ञान की शिक्षा देने की विशेष व्यवस्था की जानी चाहिए।
13. तकनीकी हाई स्कूलों में उल्लिखित विषयों के अतिरिक्त अग्रलिखित विषयों की भी शिक्षा दी जानी चाहिए :—(1) काष्ठ-कला, (2) धातु-कला, (3) साधारण इंजीनियरिंग, (4) ड्राइंग, (5) वाणिज्य-सम्बन्धी विषय, (6) बुक कीपिंग, (7) शार्ट हैण्ड, (8) टाइप-राइटिंग, (9) एकाउन्टेंसी, और (10) व्यापार-पद्धति।
14. हाई स्कूलों में अध्यापक एवं छात्रों का अनुपात 1 : 20 होना चाहिए।

4. विश्वविद्यालय-शिक्षा : University Education—"सार्जेन्ट-रिपोर्ट" की विश्वविद्यालय-शिक्षा के सम्बन्ध में अग्रांकित सिफारिशें हैं :—

1. बी० ए०, बी० एस-सी० आदि स्नातक की उपाधि प्राप्त करने की न्यूनतम अवधि 3 वर्ष की होनी चाहिए।
2. इंटरमीडिएट कक्षाओं को भंग कर दिया जाना चाहिए। उनकी 11वीं कक्षा को हाई स्कूल से और 12वीं कक्षा को विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कर दिया जाना चाहिए।
3. विश्वविद्यालयों के प्रवेश-नियमों को इतना कठोर बना दिया जाना

चाहिए कि माध्यमिक शिक्षा समाप्त करने वाले 15 छात्रों में से केवल 1 छात्र ही विश्वविद्यालय में प्रवेश प्राप्त कर सके।

4. विश्वविद्यालयों के शिक्षा-स्तर का उन्नयन करने के लिए अग्रांकित 3 उपाय अपनाए जाने चाहिए :—(1) योग्य शिक्षकों की नियुक्ति, (2) शिक्षकों के वेतन-क्रम में वृद्धि, और (3) शिक्षकों की सेवा-दशाओं (Conditions of Service) में सुधार।
5. भारत के सब विश्वविद्यालयों में एकरूपता स्थापित करने के लिए "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" (University Grants Commission) का संगठन किया जाना चाहिए।
6. विश्वविद्यालयों में छात्रों और शिक्षकों के पारस्परिक सम्बन्धों में घनिष्ठता उत्पन्न करने के लिए "उपकक्षा-प्रणाली" (Tutorial System) का प्रचलन प्रारम्भ किया जाना चाहिए।

5. तकनीकी व व्यावसायिक शिक्षा : Technical & Vocational Education—"सार्जेन्ट-रिपोर्ट" ने इस बात पर बल दिया है कि तकनीकी और व्यावसायिक शिक्षा के लिए "पूर्ण-कालीन" (Full Time) और "अल्प-कालीन" (Part Time) शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना की जानी चाहिए। इन संस्थाओं में भारतीय उद्योगों के लिए निम्नांकित 4 प्रकार के कार्यकर्त्ताओं को तैयार किया जाना चाहिए :—

1. मुख्य अधिकारी व अनुसन्धानकर्त्ता Chief Executives & Research Workers—इनकी शिक्षा—प्रौद्योगिक (Technological) या इसी प्रकार की किसी अन्य उच्च शिक्षा-संस्था में होनी चाहिए।

2 साधारण अधिकारी, फोरमैन आदि Minor Executives, Foremen etc.—इनकी शिक्षा तकनीकी हाई स्कूलों में होनी चाहिए।

3. कुशल शिल्पकार : Skilled Craftsmen—इनकी शिक्षा व्यापार या उद्योग के स्कूलों (Trade or Industrial Schools) में होनी चाहिए।

3. अर्द्ध-कुशल व अकुशल श्रमिक Semi-Skilled & Unskilled Labour—इनकी शिक्षा सीनियर बेसिक अर्थात् मिडिल स्कूलों (Senior Basic, or Middle Schools) में होनी चाहिए।

4. वयस्क-शिक्षा . Adult Education—"सार्जेन्ट-रिपोर्ट" में प्रजातन्त्र के आदर्श को सफल बनाने के लिए वयस्क-शिक्षा को परम आवश्यक बताया गया है और इसके सम्बन्ध में अधोलिखित सुझाव प्रस्तुत किए गए हैं .—

1 10 से 40 वर्ष तक की अवस्था के वयस्कों के लिए वयस्क-शिक्षा का आयोजन किया जाना चाहिए।
2. वयस्क-शिक्षा की अवधि कम-से-कम एक वर्ष की होनी चाहिए।
3. वयस्क-शिक्षा के पाठ्यक्रम में पढ़ने, लिखने और अंकगणित ('10'

के अलावा भूगोल, इतिहास, अर्थशास्त्र, नागरिक-शास्त्र आदि विषयों को भी स्थान दिया जाना चाहिए।

4. वयस्क-शिक्षा को रोचक और हितप्रद बनाने के लिए सिनेमा, रेडियो, नृत्य, चलचित्र, ग्रामोफोन, मैजिक लैन्टर्न, अभिनय आदि के कार्यक्रम आरम्भ किए जाने चाहिए।
5. पुरुषों, स्त्रियों, बालकों और युवतियों के लिए पृथक् विद्यालयों की सृष्टि की जानी चाहिए।
6. वयस्कों के लिए सम्पूर्ण देश में जगह-जगह पर 20 वर्ष की अवधि में पुस्तकालयों और वाचनालयों की स्थापना की जानी चाहिए।

7. अध्यापकों का प्रशिक्षण : Training of Teachers—"सार्जेन्ट-रिपोर्ट" में यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि उसके द्वारा प्रस्तावित शिक्षा की योजना को सफल बनाने के लिए प्रशिक्षित अध्यापकों की विशाल संख्या की आवश्यकता है। "रिपोर्ट" ने इस संख्या का अनुमान विभिन्न प्रकार के स्कूलों में शिक्षक और छात्रों का निम्नांकित अनुपात निर्धारित करके लगाया है :—

	शिक्षक	छात्र
1. पूर्व-प्राथमिक व जूनियर बेसिक स्कूल	1	30
2. सीनियर बेसिक स्कूल	1	25
3. हाई स्कूल	1	20

इस अनुपात के अनुसार "रिपोर्ट" ने शिक्षकों की संख्या का अनुमान इस प्रकार लगाया है :—

1. प्रशिक्षित उप-स्नातक Trained Under-Graduates	लगभग 20 लाख
2. प्रशिक्षित स्नातक Trained Graduates	,, 2 लाख

इतनी विशाल संख्या में शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए "रिपोर्ट" ने यह सिफ़ारिश की है कि अग्रांकित तीन प्रकार की प्रशिक्षण-संस्थाएँ समुचित संख्या में स्थापित की जानी चाहिए :—

1. पूर्व-प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों के लिए।
2. जूनियर और सीनियर बेसिक स्कूलों के शिक्षकों के लिए।
3. हाई स्कूलों के शिक्षकों के लिए।

अन्त में, "रिपोर्ट" ने शिक्षक-प्रशिक्षण के सम्बन्ध में 4 महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए हैं; यथा :—

1. प्रशिक्षण-संस्थाएँ यथासम्भव सावास (Residential) होनी चाहिए।

2. प्रशिक्षण-संस्थाओं के छात्राध्यापकों से शुल्क नहीं लिया जाना चाहिए।
3. सब प्रकार के शिक्षकों के लिए "अभिनवन पाठ्यक्रम" (Refresher Course) की व्यवस्था की जानी चाहिए।
4. योग्य व्यक्तियों को शिक्षण-व्यवसाय के प्रति आकृष्ट करने के लिए अध्यापकों के वेतन में वृद्धि की जानी चाहिए।

8 अन्य सिफारिशें : Other Recommendations—"सार्जेन्ट रिपोर्ट" में उपर्युक्त के अतिरिक्त और भी अनेक विषयों के सम्बन्ध में सिफारिश की गई है। इन विषयों में अग्रांकित महत्त्वपूर्ण हैं :—(1) छात्रों के स्वास्थ्य की देखभाल की उचित व्यवस्था, (2) विकलांगों (Handicapped) के लिए विशिष्ट विद्यालयों का आयोजन, (3) छात्रों के लिए मनोरंजनात्मक और सामाजिक कार्यों का संयोजन, (4) छात्रों को व्यवसाय का चयन करने में परामर्श देने के लिए स्थान-स्थान पर "सेवा-योजनालयों" (Employment Bureaus) की स्थापना, और (5) राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली की स्थापना के लिए केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों में निकट सहयोग।

सार्जेन्ट-रिपोर्ट का मूल्यांकन
Estimate of Sargent-Report

भारतीय शिक्षा के इतिहास में "सार्जेन्ट-रिपोर्ट" का अपना विशेष स्थान है। इससे पूर्व भारत में आयोगों की नियुक्तियाँ हुई थीं, समितियों का संगठन हुआ था, सरकारी-प्रस्तावों की उद्घोषणा हुई थी। किन्तु, इनमें से एक को भी "सार्जेन्ट-रिपोर्ट" के समकक्ष होने का अधिकार प्राप्त नहीं है। इस "रिपोर्ट" में व्यापकता थी, भारतीय शिक्षा का सम्पूर्ण चित्र था और उसके दोषों का निर्भीक वर्णन था।

इन सब गुणों की उपस्थिति में भी कुछ नुक्ताचीनी करने वालों ने इसमें कुछ त्रुटियाँ खोज ली हैं। उनका आग्रह है कि इस "रिपोर्ट" में प्रस्तुत की जाने वाली शिक्षा-योजना में मौलिकता का पूर्ण अभाव है। यह योजना—शिक्षा का एक ऐसा आदर्श प्रस्तुत करती है, जो अप्राप्य है। योजना अपूर्ण है, क्योंकि यह ग्रामीण शिक्षा के बारे में बिल्कुल मौन है। यह इतनी खर्चीली काल्पनिक और विलम्बकारी है कि यह भारत जैसे दरिद्र देश के लिए सर्वथा अनुपयुक्त है।

"सार्जेन्ट-रिपोर्ट" के उपरिवर्णित दोषों और गुणों का सूक्ष्म विश्लेषण करके और उसे उपयोगिता एवं अनुपयोगिता की कसौटियों पर कस के, भारत के माने हुए शिक्षाशास्त्रियों ने इसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। इन शिक्षाशास्त्रियों में सर्वमान्य के० जी० सैयदैन ने अपने अग्रांकित विचार लिखबद्ध किए हैं :—"सार्जेन्ट-रिपोर्ट राष्ट्रीय शिक्षा की प्रथम व्यापक योजना है। यह इस धारणा को स्वीकार नहीं करती है कि भारत—शिक्षा के क्षेत्र में अन्य राष्ट्रों से सदैव निम्नतर स्तर पर रहेगा। यह इस विश्वास पर आधारित है कि अन्य देशों ने शिक्षा के क्षेत्र में जो सफलता प्राप्त की है, उसे प्राप्त करने की इस देश में भी पर्याप्त क्षमता है।"

"The Sargent Report is the first comprehensive scheme of national education. It does not start with the assumption that India was destined to occupy a position of educational inferiority in the comity of nations. It is based on the conviction that what other countries have achieved in the field of education is well within the competence of this country."—K. G. Saiyidain : *Education, Culture & Social Order*, p. 507.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Explain the importance of "Sargent-Report" and summarise its main recommendations.
   "सार्जेन्ट-रिपोर्ट" का महत्त्व बताइए और उसकी मुख्य सिफ़ारिशों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. Write a reasoned criticism of the "Sargent-Plan" as a scheme of National Education.
   राष्ट्रीय शिक्षा की योजना के रूप में "सार्जेन्ट-योजना" की यथोचित समीक्षा कीजिए।

18

विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग
(राधाकृष्णन् कमीशन)
UNIVERSITY EDUCATION COMMISSION
(Radhakrishnan Commission)
(1948-1949)

"The student is not created for the university, but the university exists for the student."—*Radhakrishnan Commission Report*

विषय-प्रवेश

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत-सरकार ने इस देश की शिक्षा को सुनियोजित और सुसंगठित करने का दृढ़ निश्चय किया। उसने यह कार्य विश्वविद्यालय-शिक्षा से आरम्भ किया। इसका मुख्य कारण यह था कि स्वाधीनता के युग में प्रवेश करने के समय में भारतीय विश्वविद्यालयों में अध्ययन करने वाले छात्रों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही थी, किन्तु उनमें शिक्षा का स्तर निम्न होने के कारण इस देश के निवासियों में व्यापक असन्तोष था। इसके अतिरिक्त, ये विश्वविद्यालय—भारत की नवीन सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों के अनुसार देश की आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असमर्थ थे।

उच्च शिक्षा के उपर्युक्त और अन्य दोषों का निवारण करने के विचार से भारत सरकार ने इस शिक्षा के पुनर्गठन की आवश्यकता का अनुभव किया। उसी समय के आस पास, उच्च शिक्षा की तत्कालीन कमियों से अवगत होने के कारण "अन्तर्विश्वविद्यालय शिक्षा-परिषद्' (Inter-University Board of Education) और "केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड" (Central Advisory Board of Education)

ने भारत-सरकार के समक्ष एक अखिल-भारतीय विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग नियुक्त करने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया। सरकार ने इस प्रस्ताव को मान्यता प्रदान करके, 4 नवम्बर, 1948 को "विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग" की नियुक्ति की। इसके अध्यक्ष, डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् थे। अतः उनके नाम से इस "आयोग" को "राधाकृष्णन् कमीशन" भी कहा जाता है।

आयोग की नियुक्ति के उद्देश्य
Aims of the Appointment of the Commission

"आयोग" की नियुक्ति के उद्देश्य, स्वयं "आयोग" के शब्दों में अग्रांकित थे :—"भारतीय विश्वविद्यालय-शिक्षा के विषय में रिपोर्ट देना और उन सुधारों एवं विस्तारों के सम्बन्ध में सुझाव प्रस्तुत करना, जो देश की वर्तमान और भावी आवश्यकताओं के लिए वांछनीय हों।"

"To report on Indian University Education and suggest improvements and extensions that may be desirable to suit present and future requirements of the country."—*Report of the University Education Commission*, p. 1.

आयोग के जाँच के विषय
Terms of Reference of the Commission

"आयोग" से लगभग 20 विषयों की जाँच करने के लिए कहा गया था, जिनमें से मुख्य थे :—

1. भारत में विश्वविद्यालय-शिक्षा एवं अनुसन्धान-कार्य के उद्देश्य।
2. भारतीय विश्वविद्यालयों के संगठन, नियन्त्रण, कार्य-क्षेत्र एवं विधान के सम्बन्ध में आवश्यक परिवर्तन।
3. विश्वविद्यालयों एवं उनसे सम्बद्ध कॉलिजों में शिक्षा एवं परीक्षा के स्तरों में उन्नयन।
4. विश्वविद्यालय-शिक्षा की अवधि, माध्यम एवं पाठ्यक्रम।
5. विश्वविद्यालयों में धार्मिक शिक्षा।
6. प्रादेशिक या अन्य आधार पर अधिक विश्वविद्यालयों की स्थापना।
7. अध्यापकों की योग्यतायें, सेवा-दशायें, वेतन, कार्य एवं अधिकार।
8. छात्रों के अनुशासन, छात्रावासों, उपकक्षा-कार्य (Tutorial Work) आदि का संयोजन।

सारांश में, "आयोग" से विश्वविद्यालय-शिक्षा के सब अंगों का अध्ययन करने और उनमें सुधार करने के लिए सुझाव देने को कहा गया। "आयोग" ने इन कार्यों को एक वर्ष से कम समय में ही समाप्त करके, 25 अगस्त, 1949 को अपना प्रतिवेदन—भारत-सरकार को प्रेषित कर दिया।

आयोग के सुझाव व सिफ़ारिशें
Suggestions & Recommendations of the Commission

"आयोग" ने विश्वविद्यालय-शिक्षा के सभी अंगों के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट किए हैं और उनमें सुधार करने के लिए ठोस सुझाव भी दिये हैं। हम महत्त्व-पूर्ण अंगों से सम्बन्धित उसके विचारों, सुझावों और सिफ़ारिशों को पृथक्-पृथक् शीर्षकों के अन्तर्गत लेखबद्ध कर रहे हैं; यथा:—

1. विश्वविद्यालय-शिक्षा के उद्देश्य : Aims of University Education— "आयोग" ने विश्वविद्यालय-शिक्षा के निम्नांकित उद्देश्य बताए हैं :—

1. स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् हमारे देश की आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक परिस्थितियों में महान् परिवर्तन हुए हैं। इन परिवर्तनों ने हमारे विश्वविद्यालयों के कार्यों एवं उत्तरदायित्वों में वृद्धि कर दी है। अतः अब उन्हें राजनीतिक, व्यावसायिक, औद्योगिक एवं वाणिज्यिक क्षेत्रों में नेतृत्व ग्रहण कर सकने वाले व्यक्तियों का निर्माण करना चाहिए।
2. विश्वविद्यालय—समाज-सुधार के कार्य में महान् योग दे सकते हैं। अतः उन्हें दूरदर्शी, बुद्धिमान और बौद्धिक साहस वाले व्यक्तियों (Intellectual Adventures) को जन्म देना चाहिए।
3. विश्वविद्यालयों को प्रजातन्त्र को सफल बनाने के लिए, शिक्षा का प्रसार और ज्ञान की खोज कर सकने वाले व्यक्तियों को उत्पन्न करना चाहिए।
4. विश्वविद्यालयों को अपनी सांस्कृतिक विरासत को विस्मृत नहीं करना चाहिए। अत. उन्हें राष्ट्रीय विरासत को अपनाने वाले और उसमें योगदान देने वाले नवयुवकों को तैयार करना चाहिए।
5. विश्वविद्यालय—देश की सभ्यता एवं संस्कृति के रक्षक और पोषक हैं। अतः उन्हें सभ्यता एवं संस्कृति के अग्रदूतों का निर्माण करना चाहिए।
6. शिक्षा को व्यक्ति के जन्मजात गुणों की खोज करके, उनका विकास करना चाहिए। विश्वविद्यालयों को अपने छात्रों के प्रति इन दोनों कर्त्तव्यों का पालन करना चाहिए।
7. स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है। अतः *विश्वविद्यालयों को अपने छात्रों का न केवल मानसिक विकास, वरन्* शारीरिक विकास भी करना चाहिए।
8. "आयोग" के शब्दों में —"हम न्याय, स्वतन्त्रता, समानता एवं बन्धुता की प्राप्ति द्वारा प्रजातन्त्र की खोज में संलग्न हैं। अतः हमारे विश्व-विद्यालयों को अनिवार्यतः इन आदर्शों का प्रतीक एवं संरक्षक होना चाहिए।"

2. शिक्षक-वर्ग : Teaching Staff—"आयोग" ने विश्वविद्यालयों के शिक्षकों की दशा में सुधार करने के लिए निम्नांकित सुझाव दिए हैं :—

1. शिक्षकों को "प्रॉविडेण्ट-फ़ंड" की अधिक उत्तम सुविधा प्रदान की जानी चाहिए। इस फ़ंड में शिक्षक एवं विश्वविद्यालय—दोनों को 8-8 प्रतिशत देना चाहिए।
2. शिक्षकों के लिए किराए के निवास-स्थानों की विश्वविद्यालय के समीप ही व्यवस्था होनी चाहिए।
3. शिक्षकों (Teachers) को 60 वर्ष की अवस्था में अपने पदों से अवकाश दिया जाना चाहिए। अच्छे स्वास्थ्य वाले प्रोफ़ेसरों (Professors) को 64 वर्ष की अवस्था तक अपने पदों पर कार्य करने की अनुमति दी जानी चाहिए।
4. शिक्षकों को अध्ययन के लिए एक बार में 1 वर्ष का और सम्पूर्ण सेवा-काल में 3 वर्ष का आधे वेतन पर अवकाश दिया जाना चाहिए।
5. शिक्षकों को एक सप्ताह में 18 घंटे (Periods) से अधिक का शिक्षण-कार्य नहीं दिया जाना चाहिए।

3. शिक्षण के स्तर : Standards of Teaching—"आयोग" ने कॉलेजों और विश्वविद्यालयों के शिक्षण-स्तर का उन्नयन करने के लिए अधोलिखित सिफ़ारिशें की हैं :—

1. छात्रों की बढ़ती हुई भीड़ को रोकने के लिए, शिक्षण-विश्वविद्यालयों में 3,000 और उनसे सम्बद्ध कॉलेजों में 1,500 से अधिक छात्र नहीं होने चाहिए।
2. कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में परीक्षा-दिवसों को छोड़कर, एक वर्ष में कम-से-कम 180 दिन शिक्षण-कार्य किया जाना चाहिए।
3. शिक्षकों के व्याख्यान परिश्रम और सावधानी से तैयार किए जाने चाहिए। उनके व्याख्यानों की पूर्ति करने के लिए लिखित कार्य, ट्यूटोरिअल कक्षाओं और पुस्तकालयों में अध्ययन की व्यवस्था की जानी चाहिए।
4. अध्ययन के किसी भी कोर्स के लिए पाठ्य-पुस्तकें निर्धारित नहीं की जानी चाहिए।
5. स्नातकोत्तर (Post-Graduate) कक्षाओं के विद्यार्थियों को व्याख्यानों में उपस्थित होने के लिए विवश नहीं किया जाना चाहिए।
6. स्नातकोत्तर कक्षाओं में विचार-गोष्ठियों (Seminars) की योजना क्रियान्वित की जानी चाहिए।

7. विभिन्न व्यवसायों में संलग्न व्यक्तियों के लिए सायंकालीन कक्षाएँ (Evening Classes) प्रारम्भ की जानी चाहिए ।
8. परीक्षाओं के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी के लिए न्यूनतम प्राप्तांक क्रमशः 70, 55 और 40 प्रतिशत होने चाहिए ।

4 पाठ्यक्रम : Courses of Study—"आयोग" के पाठ्यक्रम-सम्बन्धी विचार अग्रांकित हैं :—

1. *स्नातक की उपाधि प्राप्त करने के लिए अध्ययन की अवधि 3 वर्ष की होनी चाहिए ।*
2. स्नातकोत्तर उपाधि—स्नातक बनने के 2 वर्ष पश्चात् और "आनर्स कोर्स" के 1 वर्ष पश्चात् दी जानी चाहिए ।
3. विशेषीकृत शिक्षा (Specialization) के दोषों का निवारण करने के लिए विश्वविद्यालयों और माध्यमिक स्कूलों में "सामान्य शिक्षा के सिद्धान्त एवं प्रयोग" (Theory & Practice of General Education) का शिक्षण आरम्भ किया जाना चाहिए ।
4. शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में सामान्य और विशेषीकृत शिक्षा में समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए ।
5. कॉलेजों और विश्वविद्यालयों में उन्हीं छात्रों को प्रवेश दिया जाना चाहिए, जो 12 वर्ष की विद्यालय-शिक्षा समाप्त कर चुके हों ।

5. स्नातकोत्तर-प्रशिक्षण व अनुसंधान-कार्य . **Post-Graduate Training & Research Work**—"आयोग" ने विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर-प्रशिक्षण और अनुसंधान-कार्य के स्तरों को ऊँचा उठाने के लिए अग्रलिखित सुझाव दिए हैं :—

1. स्नातकोत्तर कक्षाओं के पाठ्यक्रमों में एक विशेष विषय के उच्च अध्ययन एवं अनुसंधान की विधियों के प्रशिक्षण को स्थान दिया जाना चाहिए ।
2. स्नातकोत्तर कक्षाओं में छात्रों को प्रवेश अखिल-भारतीय स्तर पर दिया जाना चाहिए और छात्रों एवं शिक्षकों में घनिष्ठ व्यक्तिगत सम्बन्ध स्थापित किए जाने चाहिए ।
3. पी-एच० डी० के छात्रों का चयन, अखिल-भारतीय स्तर पर किया जाना चाहिए और उनके अनुसंधान-कार्य की अवधि दो वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए ।
4. एम० एस-सी० एवं पी-एच० डी० के छात्रों को "शिक्षा-मंत्रालय" द्वारा बड़ी संख्या में छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिए ।
5. डी० लिट्० और डी० एस-सी० उपाधियाँ केवल उच्च कोटि के मौलिक एवं प्रकाशित कार्यों पर दी जानी चाहिए ।

6. शिक्षा का माध्यम : Medium of Instruction—"आयोग" ने सब राज्यों और जातियों की भाषाओं पर विचार करने के बाद शिक्षा के माध्यम के विषय में निम्नांकित विचार व्यक्त किए हैं :—

1. उच्च शिक्षा का माध्यम—अंग्रेज़ी के बजाय प्रादेशिक भाषाएँ होनी चाहिए, पर संघीय भाषा (हिन्दी) को शिक्षा का माध्यम बनाने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए।
2. संघीय भाषा के लिए केवल देवनागरी लिपि का प्रयोग किया जाना चाहिए और इस लिपि के दोषों को यथाशीघ्र दूर किया जाना चाहिए।
3. उच्चतर माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय-स्तर पर छात्रों को 3 भाषाओं की शिक्षा दी जानी चाहिए :—(i) मातृभाषा अर्थात् प्रादेशिक भाषा, (ii) हिन्दी अर्थात् संघीय भाषा, और (iii) अंग्रेज़ी।
4. संघीय और प्रादेशिक भाषाओं का विकास करने के लिए शीघ्र ही ठोस क़दम उठाए जाने चाहिए।
5. विद्यार्थियों को नवीन ज्ञान के सम्पर्क में रखने के लिए हाई स्कूलों, कॉलिजों और विश्वविद्यालयों में अंग्रेज़ी की शिक्षा को बनाए रखना चाहिए।

7. परीक्षाएँ : Examinations—"आयोग" ने विश्वविद्यालयों की परीक्षा-प्रणाली को सबसे अधिक दोषपूर्ण पाया है। अतः "आयोग" ने यह विचार प्रकट किया है :—"हमें इस बात का विश्वास है कि यदि हमसे विश्वविद्यालय-शिक्षा में केवल एक बात के बारे में सुझाव देने के लिए कहा जाय, तो वह सुझाव—परीक्षाओं के सम्बन्ध में होगा।" इन परीक्षाओं को दोष-मुक्त करने के लिए, "आयोग" ने निम्नलिखित सिफ़ारिशें की हैं :—

1. छात्रों की प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए यथाशीघ्र "वस्तुनिष्ठ-प्रगति-परीक्षाओं" का कुलक (Set of Objective Progressive Tests) तैयार किया जाना चाहिए।
2. त्रिवर्षीय डिग्री कोर्स की परीक्षा 3 वर्ष पश्चात् न ली जाकर, प्रत्येक वर्ष के अन्त में ली जानी चाहिए। यह परीक्षा—"स्वतःपूर्ण इकाइयों" (Self-Contained Units) में ली जानी चाहिए और छात्रों के लिए प्रत्येक इकाई अर्थात् प्रति वर्ष की परीक्षा में उत्तीर्ण होना अनिवार्य होना चाहिए।
3. परीक्षाओं के स्तर का उन्नयन करने के लिए प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय श्रेणी के न्यूनतम प्राप्तांक क्रमशः 70, 55 एवं 40 प्रतिशत होने चाहिए।
4. सब विश्वविद्यालयों की सब परीक्षाओं में कृपांक (Grace Marks) देने की पद्धति समाप्त कर दी जानी चाहिए।

5. प्रत्येक विश्वविद्यालय में कम-से-कम 5 वर्ष के शिक्षण का अनुभव रखने वाले 3 सदस्यों का एक पूर्णकालीन बोर्ड संगठित किया जाना चाहिए। इस बोर्ड के निम्नांकित 3 मुख्य कार्य होने चाहिए :—
   (i) विश्वविद्यालयों एवं उनसे सम्बद्ध कॉलेजों के शिक्षकों को वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं की नवीन योजनाएँ बनाने में सहायता देना।
   (ii) उक्त शिक्षकों को पाठ्यक्रम में संशोधन करने के लिए सामग्री देने की व्यवस्था करना।
   (iii) सम्बद्ध कॉलेजों के छात्रों की प्रगति का समय-समय पर 'प्रगति-परीक्षाओं" द्वारा मूल्यांकन करना।

8. धार्मिक शिक्षा . Religious Education—"आयोग" ने अपने प्रतिवेदन में यह मत अंकित किया है कि यद्यपि भारत—धर्म-निरपेक्ष राज्य है, तथापि इसका अभिप्राय यह नहीं है कि शिक्षा-संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जा सकती है। इसका अभिप्राय—धार्मिक कट्टरता और संकीर्णता का निषेध करना है, न कि व्यक्तिगत धार्मिक स्वतन्त्रता का। अपने इन विचारों के आधार पर, "आयोग" ने धार्मिक शिक्षा के विषय में अनेक व्यावहारिक सुझाव दिए हैं, यथा :—

1. सब शिक्षा-संस्थाओं को अपना दैनिक कार्य कुछ मिनट के मौन चिन्तन के पश्चात् आरम्भ करना चाहिए।
2. डिग्री कोर्स के प्रथम वर्ष में विश्व के सुप्रसिद्ध धार्मिक नेताओं की जीवनियाँ पढ़ाई जानी चाहिए, यथा —बुद्ध, ईसा, गांधी, शंकर, कबीर, नानक, माधव, सुकरात, रामानुज, मुहम्मद एवं कनफ्यूशियस।
3. डिग्री कोर्स के द्वितीय वर्ष में विश्व के प्रसिद्ध धार्मिक ग्रन्थों में से सार्वभौमिक महत्त्व के कुछ चुने हुए भाग पढ़ाए जाने चाहिए।
4. डिग्री कोर्स के तृतीय वर्ष में धर्म-दर्शन (Philosophy of Religion) की मुख्य समस्याएँ पढ़ाई जानी चाहिए।

9 व्यावसायिक शिक्षा : Professional Education—"आयोग" ने व्यावसायिक शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार किया है और उसके विभिन्न अंगों के सम्बन्ध में अपनी सिफारिशों को निम्नित रूप प्रदान किया है, यथा —

(1) कृषि . Agriculture

1. प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा में कृषि की शिक्षा को सर्वप्रथम स्थान दिया जाना चाहिए।
2. छात्रों को कृषि का प्रत्यक्ष और व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि शिक्षा की संस्थाओं की स्थापना की जानी चाहिए।

3. कृषि के वर्तमान कॉलिजों को उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता देकर, अधिक साधन-सम्पन्न बनाया जाना चाहिए।
4. कृषि के नवीन कॉलिजों को यथासम्भव नवीन ग्रामीण विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध किया जाना चाहिए।
5. कृषि-अनुसंधान-कार्य के लिए, केन्द्रीय एवं राज्य-सरकारों द्वारा "प्रयोगात्मक फार्म" (Experimental Farms) खोले जाने चाहिए।

(ii) वाणिज्य : Commerce

1. बी० कॉम० की शिक्षा प्राप्त करते समय, छात्रों को 3 या 4 प्रकार की विभिन्न व्यावसायिक फर्मों में व्यावहारिक कार्य करने का अवसर दिया जाना चाहिए।
2. बी० कॉम० परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले छात्रों को किसी विशेष शाखा में विशेषज्ञ बनने का परामर्श दिया जाना चाहिए।
3. एम० कॉम० में केवल विशेष योग्यता रखने वाले छात्रों को अध्ययन करने की अनुमति दी जानी चाहिए। इस परीक्षा में पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा व्यावहारिक ज्ञान पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।

(iii) शिक्षण : Teaching

1. प्रशिक्षण-कॉलिजों के पाठ्यक्रम में संशोधन एवं सुधार किया जाना चाहिए और पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा अध्यापन के अभ्यास पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।
2. छात्राध्यापकों के वार्षिक कार्य का मूल्यांकन करने के समय, उनकी शिक्षण-योग्यता को विशेष महत्त्व दिया जाना चाहिए।
3. प्रशिक्षण-कॉलिजों में अधिकांश अध्यापक वही होने चाहिए, जो स्कूलों में पढ़ाने का पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर चुके हों।
4. शिक्षा-सिद्धान्त के पाठ्यक्रम को लचीला एवं स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल बनाया जाना चाहिए।
5. एम० एड० की डिग्री के लिए केवल उन्हीं व्यक्तियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जो कुछ वर्षों का शिक्षण-अनुभव प्राप्त कर चुके हों।

(iv) इंजीनियरिंग व टेक्नोलॉजी : Engineering & Technology

1. वर्तमान इंजीनियरिंग एवं टेक्नोलॉजी की संस्थाओं को देश की राष्ट्रीय सम्पत्ति समझा जाना चाहिए और उनकी उपयोगिता में वृद्धि की जानी चाहिए।
2. फोरमैन, ड्राफ्टसमैन एवं ओवरसियरों को शिक्षा देने वाले इंजीनियरिंग

स्कूलों की संख्या में वृद्धि करने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए।

3. देश की विभिन्न आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए इंजीनियरिंग की विभिन्न शाखाओं में विभिन्न प्रकार की संस्थाओं का शिलान्यास किया जाना चाहिए।
4. इंजीनियरिंग के स्कूलों एवं कॉलेजों में शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों को कारखानों में कार्य करके, व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने का पूर्ण अवसर दिया जाना चाहिए।
5. उच्च व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने के लिए टेक्नॉलॉजिकल संस्थाओं (Technological Institutes) की शीघ्र-से-शीघ्र सृष्टि की जानी चाहिए।

(v) कानून : Law

1. कानून का अध्ययन करने की आज्ञा केवल उन्हीं छात्रों को दी जानी चाहिए जो 3 वर्ष के "पूर्व-कानूनी एवं सामान्य डिग्री कोर्स" (Pre-Legal & General Degree Course) को पास कर चुके हों।
2. कानून के विशेष विषयों के पाठ्यक्रम की अवधि 3 वर्ष की होनी चाहिए।
3. कानून के विद्यार्थियों को अपने अध्ययन-काल में अन्य डिग्री कोर्स लेने की अनुमति केवल विशेष परिस्थितियों में प्रदान की जानी चाहिए।
4. कानून के अध्यापकों में "पूर्णकालीन" और "अल्पकालीन" दोनों प्रकार के अध्यापक नियुक्त किए जाने चाहिए।
5. प्रत्येक स्थान की कानून की कक्षाओं में कानून-सम्बन्धी अनुसंधान की व्यवस्था होनी चाहिए।

(vi) चिकित्सा : Medicine

1. किसी भी मेडिकल कालेज में 100 से अधिक छात्रों को प्रवेश नहीं दिया जाना चाहिए।
2. प्रत्येक मेडिकल कॉलेज में योग्य अध्यापक और प्रचुर शिक्षण-सामग्री होनी चाहिए।
3. मेडिकल कॉलेज में अध्ययन करने वाले प्रत्येक छात्र के लिये 10 रोगी होने चाहिए।
4. स्नातक-पूर्व और स्नातकोत्तर कक्षाओं के विद्यार्थियों को ग्रामीण क्षेत्रों में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
5. देशी चिकित्सा-पद्धतियों में अनुसंधान-कार्य के लिए सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

10. छात्र-क्रियाएँ व कल्याण : Student's Activities & Welfare— "आयोग" का कथन है :—"छात्र का निर्माण—विश्वविद्यालय के लिए नहीं, वरन् विश्वविद्यालय का निर्माण—छात्र के लिए होता है। अतः विश्वविद्यालय को प्रत्येक सम्भव प्रयास एवं उपाय से छात्रों की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का पूर्णतम् और अधिकतम् विकास करना चाहिए।" अपनी इस धारणा के अनुसार, "आयोग" ने छात्रों की क्रियाओं और कल्याण के लिए अधोलिखित सुझाव उपस्थित किए हैं :—

1. प्रवेश के समय और उसके पश्चात् एक वर्ष में कम-से-कम एक बार प्रत्येक छात्र एवं छात्रा की निःशुल्क स्वास्थ्य परीक्षा की जानी चाहिए।
2. प्रत्येक विश्वविद्यालय में छात्रों की चिकित्सा के लिए एक चिकित्सालय होना चाहिए।
3. छात्रों को मध्याह्न के समय उचित मूल्य पर पौष्टिक आहार दिया जाना चाहिए।
4. प्रत्येक विश्वविद्यालय में और प्रत्येक सम्बद्ध कॉलेज में छात्रों के स्वास्थ्य में उन्नति करने के लिए एक "स्वास्थ्य-शिक्षा-निर्देशक" (Director of Physical Education) की नियुक्ति की जानी चाहिए।
5. छात्रों को स्वस्थ रखने के लिए जेमनेशियमों, व्यायामशालाओं, खेल के मैदानों आदि की समुचित व्यवस्था की जानी चाहिए।
6. सब छात्रों एवं छात्राओं के लिए दो वर्ष की शारीरिक शिक्षा अनिवार्य बना दी जानी चाहिए।
7. सब कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में एन० सी० सी० की स्थापना की जानी चाहिए और छात्रों को उसका सदस्य बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
8. सब कालेजों एवं विश्वविद्यालयों में उत्तम प्रकार के छात्रावासों की व्यवस्था होनी चाहिए, जिनमें शाकाहारी एवं अशाकाहारी—दोनों प्रकार के भोजन का प्रबन्ध होना चाहिए।
9. छात्र-संघों (Students' Unions) को छात्रों की सामूहिक क्रियाओं का प्रमुख केन्द्र होना चाहिए। इन संघों का संचालन, छात्रों के द्वारा एवं छात्रों के लिए किया जाना चाहिए। कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों के अधिकारियों को उनके कार्यों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए।
10. छात्रों की प्रशासन में रुचि उत्पन्न करने के लिए "प्रॉक्टोरियल-प्रणाली" (Proctorial System) का प्रचलन किया जाना चाहिए।
11. प्रत्येक विश्वविद्यालय में 'छात्र-कल्याण-सलाहकार बोर्ड" (Advisory Board of Student Welfare) का निर्माण किया जाना चाहिए।

11. ग्रामीण विश्वविद्यालय : Rural Universities—"आयोग" का कथन है कि बड़े नगरों में स्थित होने के कारण भारत के विश्वविद्यालयों को यहाँ के ग्रामों से कोई सरोकार नहीं है। क्योंकि भारत ग्रामों का देश है, इसलिए यह परम आवश्यक है कि ग्रामीण भारत की सामान्य उन्नति और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ग्रामीण कॉलिजों और विश्वविद्यालयों की पद्धति को अविलम्ब आरम्भ किया जाय। अपने इस विचार से अनुप्राणित होकर, "आयोग" ने ग्राम-निवासियों की शिक्षा के विषय में अग्रांकित सुझाव दिये है :—

1. ग्रामों में छोटे और आवासिक (Residential) स्नातक-पूर्व कॉलिजों की स्थापना की जानी चाहिए। इन कॉलिजों के केन्द्र में एक ग्रामीण विश्वविद्यालय का निर्माण किया जाना चाहिए।
2. एक कॉलिज के छात्रों की संख्या लगभग 300 और विश्वविद्यालय एवं उससे सम्बद्ध सब कॉलिजों के छात्रों की संख्या 2,500 से अधिक नहीं होनी चाहिए।
3. सब कॉलिजों के लिए पृथक् अध्यापक होने चाहिए, किन्तु एक विश्वविद्यालय से सम्बद्ध अधिक-से-अधिक कालेजों के लिए पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं, चिकित्सालयों, खेल के मैदानों आदि की व्यवस्था एक ही स्थान पर होनी चाहिए।
4. ग्रामीण कॉलिजों का प्रमुख उद्देश्य -विद्यार्थियों को सामान्य शिक्षा देना और उनकी व्यक्तिगत रुचियों एवं मनोवृत्तियों का अधिकतम् विकास करना होना चाहिए।
5. ग्रामीण कॉलिजों में स्नातक-पूर्व शिक्षा ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों को विश्वविद्यालय में या व्यावसायिक स्कूल में किसी विशेष विषय का अध्ययन करने की सुविधा उपलब्ध होनी चाहिए।
6. स्नातक-पूर्व और स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों में इस प्रकार विभाजन किया जाना चाहिए कि जो छात्र, स्नातक पूर्व शिक्षा प्राप्त कर रहे है, वे कुछ विषयों में स्नातकोत्तर शिक्षा भी ग्रहण कर सकें।

आयोग का मूल्यांकन
Estimate of the Commission

"राधाकृष्णन् कमीशन" ने विश्वविद्यालय-शिक्षा के सभी पक्षों का विस्तृत र विधिवत् अध्ययन करने के पश्चात् उनको सशक्त बनाने के लिए व्यावहारिक र रचनात्मक सुझाव दिए। भारत के लगभग सभी श्रेष्ठ शिक्षा-मर्मज्ञों ने इन वों में विश्वविद्यालय-शिक्षा के नवीन स्वरूप का संकेत पाया है। ग्रामों में उच्च ा की आवश्यकता की ओर जनता एवं सरकार का ध्यान सर्वप्रथम आकर्षित का श्रेय इसी "कमीशन" को प्राप्त है। इसी की सारगर्भित सिफारिश को

स्वीकार करके, भारत-सरकार ने 1954 में "ग्रामीण उच्चतर शिक्षा-समिति" (Rural Higher Education Committee) का निर्माण करके ग्रामीण शिक्षा का उत्तरदायित्व उसको सौंप दिया।

सम्भवत: यह कहना सत्य से दूर न होगा कि आज तक भारत में विश्वविद्यालय-शिक्षा का निरीक्षण करने और उसके सुधार के लिए सुझाव देने के विचार से जिन आयोगों और समितियों का आविर्भाव हुआ है, उनमें "विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग" का नाम ही सबसे पहले लिया जाता है। यदि हमारी सरकार ने उसके सब सुझावों और प्रस्तावों को क्रियान्वित कर दिया होता, तो आज हमारी विश्वविद्यालय-शिक्षा का नक्शा ही कुछ और होता। इस तथ्य से पूर्णतया अवगत होने के कारण भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति, डा० राजेन्द्र प्रसाद ने जनता को अपना यह संदेश प्रसारित किया :—

"विश्वविद्यालय-आयोग के प्रतिवेदन का महत्त्व अधिकांश रूप में इस बात में है कि वह इस देश की प्रचलित शिक्षा-पद्धति में आधारभूत परिवर्तन की आवश्यकता को स्वीकार करता है, और इस आधार पर उसकी शिक्षा-विषयक समस्याओं की विवेचना करता है। यही कारण है कि प्रतिवेदन को अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तनों के सुझाव देने पड़े हैं। साथ ही, प्रतिवेदन का एक गुण यह भी है कि वह अतीत से पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद नहीं करना चाहता है, वरन् उसमें उपलब्ध सर्वोत्तम बातों को सुरक्षित रखना चाहता है।"

"The value of the University Commission Report lies very largely, in the fact that it recognises the necessity for a fundamental change in the set-up of things in this country and proceeds to deal with its educational problems on that basis. It has, therefore, had to recommend many revolutionary changes. It has, further, the merit of not contemplating a complete break with the past but of conserving the best that is available."—*Speeches of President Rajendra Prasad*. Publication Division, 1955, p. 5.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Describe briefly the reforms suggested in the University Education of India by the Radhakrishnan Commission
   राधाकृष्णन् आयोग द्वारा भारत की विश्वविद्यालय-शिक्षा के सम्बन्ध में प्रस्तावित सुधारों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. What, according to the Radhakrishnan Commission should be the aims of University Education in India? How far do you agree with them?

राधाकृष्णन् आयोग के अनुसार भारत में विश्वविद्यालय-शिक्षा के क्या उद्देश्य होने चाहिए ? आप उनसे कहाँ तक सहमत हैं ?

3. Express the views of the University Education Commission on the following :—(a) Rural Universities, (b) Reform in Examinations, and (c) Medium of Instruction.

   अधोलिखित पर विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग के विचारों को व्यक्त कीजिए :—(अ) ग्रामीण विश्वविद्यालय, (ब) परीक्षाओं में सुधार, और (स) शिक्षा का माध्यम ।

6. *माध्यमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम संकीर्ण है। अतः यह छात्रों को अपनी रुचियों एवं मनोवृत्तियों के अनुसार विषयों का चयन करने का अवसर नहीं देती है।*
7. शिक्षण-विधियाँ परम्परागत होने के कारण छात्रों को प्रभावित नहीं करती हैं और परीक्षा-प्रणाली उनके ज्ञान की वास्तविक परीक्षा नहीं लेती है।
8. अंग्रेजी—शिक्षा का माध्यम एवं अध्ययन का अनिवार्य विषय है। अतः जिन छात्रों को अंग्रेजी का पर्याप्त ज्ञान नहीं होता है, वे इसके अध्ययन *में अपनी शक्ति एवं समय को नष्ट करते हैं।*

2. माध्यमिक शिक्षा के उद्देश्य : Aims of Secondary Education—"आयोग" ने भारत की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर, माध्यमिक शिक्षा के अग्रलिखित उद्देश्य निर्धारित किए हैं :—

1. जनतन्त्रीय नागरिकता का विकास : Development of Democratic Citizenship—माध्यमिक शिक्षा का पहला उद्देश्य—छात्रों में जनतन्त्रीय नागरिकता का विकास करना होना चाहिए। अतः माध्यमिक शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार की जानी चाहिए, जिससे छात्रों में अनुशासन, देश-प्रेम, सहयोग, सहिष्णुता, *स्पष्ट विचार आदि गुणों का विकास हो। इन गुणों से सम्पन्न होकर, छात्र इस देश* के योग्य नागरिक बनेंगे और भारत में धर्म-निरपेक्ष गणतन्त्र की स्थापना में योग देंगे। इसी गणतन्त्र की स्थापना करना भारत का उद्देश्य है।

2. व्यावसायिक कुशलता में उन्नति : Improvement of Vocational Efficiency—माध्यमिक शिक्षा का दूसरा उद्देश्य—छात्रों में व्यावसायिक कुशलता की उन्नति करना होना चाहिए। अतः माध्यमिक शिक्षा में औद्योगिक एवं व्यावसायिक विषयों को स्थान दिया जाना चाहिए। इन विषयों की शिक्षा से छात्रों और देश—दोनों का हित होगा। छात्र अपनी शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् *किसी व्यवसाय को स्वतन्त्र रूप से ग्रहण कर सकेंगे। अतः उनको नौकरी खोजने के* लिए इधर-उधर नहीं भटकना पड़ेगा। देश का हित यह होगा कि उसे अपने विभिन्न उद्योगों एवं व्यवसायों के लिए प्रशिक्षित व्यक्ति सरलता से मिल जायेंगे।

3. व्यक्तित्व का विकास : Development of Personality—माध्यमिक शिक्षा का तीसरा उद्देश्य—छात्रों के व्यक्तित्व का सर्वाङ्गीण विकास करना होना चाहिए। अतः माध्यमिक शिक्षा का संगठन इस प्रकार किया जाना चाहिए, जिससे छात्रों का साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं कलात्मक विकास हो। इस विकास के फलस्वरूप छात्र अपनी सांस्कृतिक विरासत के महत्त्व को समझ सकेंगे और उसकी वृद्धि में योग दे सकेंगे।

4. नेतृत्व का विकास : Development of Leadership—माध्यमिक शिक्षा का चौथा और अन्तिम उद्देश्य—छात्रों में नेतृत्व ग्रहण करने की क्षमता का विकास

करना होना चाहिए। अतः माध्यमिक शिक्षा का आयोजन इस प्रकार किया जाना चाहिए, जिससे छात्र—सामाजिक, सांस्कृतिक, औद्योगिक, व्यावसायिक और राजनीतिक क्षेत्रों में नेतृत्व का दायित्व ग्रहण कर सकें। प्रजातन्त्र तभी सफल हो सकता है, जब इन क्षेत्रों में नेतृत्व का दायित्व ग्रहण करने वाले व्यक्ति उपलब्ध हों।

3. माध्यमिक शिक्षा का नवीन संगठित स्वरूप : New Organizational Pattern of Secondary Education—"आयोग" ने माध्यमिक शिक्षा के संगठन को देश की नवीन परिस्थितियों के लिए अनुपयुक्त बताकर, उसके पुनर्संगठन पर बल दिया है। इस सम्बन्ध में उसने अग्रांकित सुझाव दिए हैं:—

1. माध्यमिक शिक्षा की अवधि 7 वर्ष की होनी चाहिए।
2. माध्यमिक शिक्षा 11 से 17 वर्ष तक की अवस्था के बालकों एवं बालिकाओं के लिए होनी चाहिए।
3. माध्यमिक शिक्षा की अवधि अग्रांकित दो स्तरों में विभक्त की जानी चाहिए —
   (i) 3 वर्ष का मिडिल या जूनियर माध्यमिक या सीनियर बेसिक स्तर (Middle or Junior Secondary or Senior Basic Stage)।
   (ii) 4 वर्ष का उच्चतर माध्यमिक स्तर (Higher Secondary Stage)।
4. वर्तमान इंटरमीडिएट कक्षाओं को भंग कर दिया जाना चाहिए। उनकी 11वीं कक्षा को हाई स्कूलों से और 12वीं कक्षा को कॉलिजों से सम्बद्ध कर दिया जाना चाहिए।
5. डिग्री कोर्स की अवधि 3 वर्ष की कर दी जानी चाहिए।
6. बहुउद्देशीय स्कूलों (Multi-purpose Schools) की स्थापना की जानी चाहिए। इन स्कूलों में पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण (Diversification of Courses) किया जाना चाहिए, ताकि छात्र अपने विभिन्न उद्देश्यों, रुचियों और योग्यताओं के अनुसार पाठ्यक्रम का चयन कर सकें।
7. ग्रामीण स्कूलों में कृषि-शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार किया जाना चाहिए। अतः इन स्कूलों में उद्यान-विज्ञान (Horticulture), पशु-पालन (Animal Husbandry) एवं कुटीर उद्योग-धंधों की शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।
8. औद्योगिक क्षेत्रों में टेक्निकल स्कूलों की बहुत बड़ी संख्या में स्थापना की जानी चाहिए।
9. बड़े नगरों में प्रौद्योगिक संस्थानों (Technological Instiutes) का निर्माण किया जाना चाहिए।

10. सब बालिका-विद्यालयों में बालिकाओं को गृह-विज्ञान (Domestic Science) के अध्ययन की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए।

4. भाषाओं का अध्ययन : Study of Languages—"आयोग" ने मुख्यतः तीन भाषाओं के स्थान एवं अध्ययन के सम्बन्ध में अपने सुझाव दिए हैं; यथा :—

(अ) हिन्दी का स्थान—"आयोग" ने इस बात पर बल दिया है कि हिन्दी को विद्यालय-स्तर पर अध्ययन का अनिवार्य विषय बनाया जाना चाहिए। इस पक्ष में "आयोग" के तर्क निम्नलिखित हैं :—

1. भारत के संविधान में हिन्दी को राजभाषा का स्थान प्रदान किया गया है।
2. कुछ समय के पश्चात् हिन्दी—केन्द्रीय एवं राज्य-सरकारों के मध्य विचारों के आदान-प्रदान की भाषा बन जायगी।
3. कुछ समय के उपरान्त हिन्दी—भारत के अधिकांश व्यक्तियों के विचारों के विनिमय की भाषा बन जायगी।
4. राजभाषा के रूप में हिन्दी इस देश की राष्ट्रीय एकता एवं सुदृढ़ता के विकास में योग देगी।
5. जो व्यक्ति—हिन्दी का अध्ययन नहीं करेंगे, उनको सरकारी नौकरियाँ नहीं मिलेंगी और न वे हिन्दी जानने वाले व्यक्तियों के विचारों को समझ पायेंगे।

(ब) अंग्रेजी का स्थान—"आयोग" का कथन है कि अंग्रेजी लगभग सभी राज्यों में माध्यमिक स्तर पर अध्ययन का अनिवार्य विषय है। "आयोग" का मत है कि भविष्य में भी अंग्रेजी को इसी स्थान पर रखा जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में "आयोग" ने अधोलिखित तर्क प्रस्तुत किए हैं :—

1. अंग्रेजी—भारत के शिक्षित वर्गों की अत्यन्त लोकप्रिय भाषा है।
2. अंग्रेजी के अध्ययन ने भारत में राजनीतिक एवं अन्य क्षेत्रों में एकता स्थापित करने में पर्याप्त योग दिया है।
3. भारत की अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जो स्थिति है, वह अंग्रेजी के अध्ययन का ही परिणाम है।
4. यदि हम राष्ट्रीय भावना से निर्देशित होकर, अंग्रेजी को माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम से हटा देंगे, तो इसके परिणाम भारत के हित के प्रतिकूल सिद्ध होंगे।

(स) संस्कृत का स्थान—"आयोग" ने माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में संस्कृत को स्थान दिए जाने के पक्ष में अनेक अकाट्य तर्क दिए हैं, यथा :—

1. संस्कृत—भारत की अधिकांश भाषाओं की जननी है। अतः इसका ज्ञान अनिवार्य है।

2. संस्कृत ने धार्मिक एव सांस्कृतिक दृष्टियों से व्यक्तियों को सदैव अपनी ओर आकृष्ट किया है। अतः इसकी उपेक्षा करना विवेक का प्रमाण नहीं है।

3. संस्कृत का अध्ययन करके ही भारत के प्राचीन ग्रंथों में विद्यमान ज्ञान की जानकारी प्राप्त की जा सकती है। अतः इसके अध्ययन को प्रोत्साहित करना आवश्यक है।

5. पाठ्यक्रम : *Curriculum*—"आयोग" ने पाठ्यक्रम के दोषों का निराकरण करने के विचार से निम्नलिखित सुझाव दिए हैं :—

1. पाठ्यक्रम में पर्याप्त विविधता एव लचीलापन होना चाहिए, ताकि यह छात्रों की विभिन्न रुचियों एव आवश्यकताओं को पूर्ण कर सके।
2. पाठ्यक्रम का निर्माण स्थानीय आवश्यकताओं एव परिस्थितियों को ध्यान में रख कर किया जाना चाहिए।
3. पाठ्यक्रम का सामाजिक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध होना चाहिए और छात्रों को इस जीवन की महत्वपूर्ण क्रियाओं के सम्पर्क में लाया जाना चाहिए।
4. पाठ्यक्रम के विषयों का एक-दूसरे से एव जीवन से प्रत्यक्ष सम्बन्ध होना चाहिए।

6 पाठ्यक्रम के विषय Subjects of the Curriculum—"आयोग" ने माध्यमिक शिक्षा की अवधि को जिन दो स्तरों में विभाजित किया है, उनके पाठ्यक्रमों में निम्नांकित विषयों को स्थान दिया है —

(अ) मिडिल या जूनियर माध्यमिक या सीनियर बेसिक स्कूल—इन तीनों प्रकार के स्कूलों के पाठ्यक्रमों में अग्रलिखित विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिए —

(i) भाषाएं (Languages), (ii) सामाजिक अध्ययन (Social Studies), (iii) सामान्य विज्ञान (General Science) (iv) गणित (Mathematics), (v) कला तथा संगीत (Art & Music), (vi) शिल्प (Craft), और (vii) शारीरिक शिक्षा।

(ब) हाई व हायर सेकण्डरी स्कूल—"आयोग" ने इस बात की सिफारिश की है कि माध्यमिक शिक्षा के उच्चतर स्तर पर पाठ्यक्रम के विषयों का विभिन्नीकरण (Diversification) किया जाना चाहिए, ताकि वे छात्रों की अभिरुचियों एव आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें। इस उद्देश्य से "आयोग" ने पाठ्यक्रम के विषयों का दो भागों में विभाजन किया है (i) आन्तरिक विषय (Core Subjects), और (ii) वैकल्पिक विषय (Optional Subjects)। "आन्तरिक विषयों" का अध्ययन सब छात्रों के लिए अनिवार्य होगा। वैकल्पिक विषयों" के 7 समूह होंगे, जिनमें से छात्रों को किसी एक समूह के विषयों का अध्ययन करना होगा। इन्हीं विषयों में

का विभिन्नीकरण" किया गया है। "आयोग" के अनुसार, "आन्तरक" एवं "वैकल्पिक" विषय इस प्रकार हैं :—

1. आन्तरक विषय : Core Subjects

आन्तरक विषय सभी बालकों एवं बालिकाओं के लिए अनिवार्य हैं और इस प्रकार हैं :—

अ—(1) मातृभाषा, या प्रादेशिक भाषा, या मातृभाषा और शास्त्रीय भाषा (Mother Tongue, or Regional Language, or Mother Tongue & Classical Language)।

(2) निम्नलिखित में से चुनी जाने वाली कोई एक और भाषा :—

(i) हिन्दी (उन छात्रों के लिए, जिनकी मातृभाषा हिन्दी नहीं है)।

(ii) प्रारम्भिक अंग्रेजी (उन छात्रों के लिए, जिन्होंने जूनियर माध्यमिक स्तर पर इसका अध्ययन नहीं किया है)।

(iii) उच्च अंग्रेज़ी (उन छात्रों के लिए, जिन्होंने जूनियर माध्यमिक स्तर पर अंग्रेज़ी का अध्ययन किया है)।

(iv) हिन्दी के अतिरिक्त एक अन्य आधुनिक भारतीय भाषा।

(v) अंग्रेज़ी के अतिरिक्त एक अन्य आधुनिक विदेशी भाषा।

(vi) एक शास्त्रीय भाषा।

टिप्पणी :—(1) में मातृभाषा और शास्त्रीय भाषा का मिश्रित पाठ्यक्रम होगा। (vi) में शास्त्रीय भाषा का पृथक् पाठ्यक्रम होगा।

ब—(1) सामाजिक अध्ययन—अध्ययन के इन विषयों की शिक्षा केवल प्रथम दो वर्षों में दी जायगी।

(2) गणित और सामान्य विज्ञान—इन विषयों की शिक्षा केवल प्रथम दो वर्षों में दी जायगी।

स—अग्रलिखित में से चुना जाने वाला कोई एक शिल्प (Craft) :—

(1) कताई और बुनाई, (2) धातु का काम, (3) दर्ज़ी का काम, (4) लकड़ी का काम, (5) मुद्रण का काम (Typography), (6) वर्कशॉप में काम (Workshop Practice), (7) मॉडल बनाना, (8) उद्यान-विज्ञान, और (9) कसीदा एवं क्रोशिया का काम।

2. वैकल्पिक विषय : Optional Subjects

पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण वैकल्पिक विषयों में होगा। वैकल्पिक विषयों के निम्नलिखित 7 समूह होंगे। छात्रों को किसी एक समूह के 3 विषयों का अध्ययन करना होगा।

समूह 1—मानव-विज्ञान : Humanities—(1) एक शास्त्रीय भाषा या 'अ 2' में से न ली गई एक भाषा, (2) इतिहास, (3) भूगोल, (4) अर्थशास्त्र और नागरिक शास्त्र, (5) मनोविज्ञान और तर्कशास्त्र, (6) गणित, (7) संगीत, (8) गृह-विज्ञान।

समूह 2—विज्ञान : Sciences—(1) भौतिक शास्त्र, (2) रसायन-शास्त्र, (3) जीव-शास्त्र, (4) भूगोल, (5) गणित, (6) शरीर-विज्ञान और स्वास्थ्य-विज्ञान।

समूह 3—प्राविधिक : Technical—(1) व्यावहारिक गणित (Applied Mathematics) और रेखिकीय ड्राइंग (Geometrical Drawing), (2) व्यावहारिक विज्ञान, (3) मेकेनिकल इंजीनियरिंग, (4) विद्युत-इंजीनियरिंग।

समूह 4—वाणिज्य : Commercial—(1) वाणिज्यिक प्रयोग (Commercial Practice), (2) बही-खाता, (3) वाणिज्य-भूगोल या अर्थशास्त्र और नागरिक शास्त्र, (4) शार्टहैंड और टाइपराइटिंग।

समूह 5—कृषि : Agriculture—(1) सामान्य कृषि, (2) पशु-पालन, (3) औद्यानिकी (Horticulture) और बागवानी, (4) कृषि-रसायन (Agricultural Chemistry) और वनस्पति-विज्ञान।

समूह 6—ललित कलायें Fine Arts—(1) कला का इतिहास, (2) ड्राइंग और डिजाइन बनाना, (3) चित्रकला, (4) मॉडल बनाना, (5) संगीत, (6) नृत्य।

समूह 7—गृह-विज्ञान Domestic Sciences—(1) गृह-अर्थशास्त्र, (2) पोषण और पाक-कला (Nutrition & Cookery), (3) मातृकला और शिशु-पालन, (4) गृह-प्रबन्ध और गृह-उपचारण (Home Nursing)।

8. पाठ्य-पुस्तकें Text-Books—"आयोग" ने पाठ्य-पुस्तकों में सुधार करने के लिए अधोलिखित सुझाव अंकित किए हैं —

1. पाठ्य-पुस्तकों के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए प्रत्येक राज्य में एक "उच्चस्तरीय पाठ्य-पुस्तक समिति" (High Power Text-Book Committee) का संगठन किया जाना चाहिए।
2. पुस्तकों में चित्र बनाने की कला में प्रशिक्षण देने के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा एक संस्था का निर्माण किया जाना चाहिए।
3. एक विषय में एक पाठ्य-पुस्तक निर्धारित करने के बजाय पाठ्य-पुस्तकों की पर्याप्त संख्या निश्चित की जानी चाहिए। विद्यालयों को इन पाठ्य-पुस्तकों में से किसी एक को चुनने का अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए।
4. पाठ्य-पुस्तकों एवं अध्ययन की अन्य पुस्तकों में शीघ्र परिवर्तन करने की प्रचलित प्रथा का अन्त किया जाना चाहिए।

8. शिक्षण की प्रावैगिक विधियां : Dynamic Methods of Teaching—"आयोग" के विचारानुसार, माध्यमिक विद्यालयों में प्रयोग की जाने वाली शिक्षण-विधियां—नीरस एवं निर्जीव हैं। अतः उनके स्थान पर प्रावैगिक अथवा सक्रिय एवं स्फूर्तिपूर्ण शिक्षण-विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए। "आयोग" ने इन विधियों का निम्नलिखित प्रकार से स्पष्टीकरण किया है :—

1. शिक्षण-विधियों का उद्देश्य—छात्रों को केवल कुशलतापूर्वक ज्ञान प्रदान करना ही नहीं होना चाहिए, वरन् उनमें उचित मूल्यों, उचित दृष्टिकोणों एवं कार्य करने की उचित आदतों का निर्माण करना भी होना चाहिए।
2. शिक्षण में मौखिक बातों और कंठस्थ करने के कार्य का कोई स्थान नहीं होना चाहिए। अतः इन पर बल न देकर, शिक्षण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि वह उद्देश्यपूर्ण, वास्तविक और साभिप्रायिक हो। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए शिक्षण-विधियों में "क्रिया-विधि" (Activity Method) एवं "योजना-विधि" (Project Method) को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।
3. छात्रों में सामाजिक जीवन एवं सहयोगी कार्य के गुणों का विकास करने के उद्देश्य से, उनको समूहों में कार्य करने के लिए अधिक-से-अधिक अवसर दिये जाने चाहिए।
4. प्रावैगिक शिक्षण-विधियों को लोकप्रिय बनाने के लिए "प्रयोगात्मक" एवं "प्रदर्शनात्मक" (Experimental & Demonstration) विद्यालयों की विभिन्न स्थानों पर स्थापना की जानी चाहिए।

9. धार्मिक शिक्षा : Religious Instruction—"आयोग" का विचार है कि चरित्र के निर्माण में धार्मिक शिक्षा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अतः उसने धार्मिक शिक्षा के विषय में निम्नलिखित सुझाव दिए हैं :—

1. धार्मिक शिक्षा—विद्यालयों में दी जा सकती है।
2. धार्मिक शिक्षा—विद्यालय के शिक्षण के समय से पहले या बाद में दी जानी चाहिए।
3. धार्मिक शिक्षा—छात्रों के अभिभावकों की अनुमति प्राप्त करने के बाद दी जानी चाहिए।
4. धार्मिक शिक्षा को ग्रहण करने के लिए किसी छात्र को विवश नहीं किया जाना चाहिए।

10. चरित्र-निर्माण की शिक्षा : Education of Character—"आयोग" ने चरित्र-निर्माण की शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया है और इसके विषय में निम्नलिखित सुझाव दिए हैं :—

1. छात्रों के चरित्र का निर्माण करना—सब शिक्षकों का अनिवार्य उत्तरदायित्व होना चाहिए।
2. प्रत्येक विद्यालय के प्रत्येक कार्यक्रम का उद्देश्य—चरित्र-निर्माण की शिक्षा देना होना चाहिए।
3. विद्यालय—विस्तृत समाज के अन्दर लघु समाज है। अतः जिन मूल्यों और दृष्टिकोणों का राष्ट्रीय जीवन के लिए महत्व है, उनको विद्यालय-जीवन में प्रतिबिम्बित किया जाना चाहिए।
4. छात्रों में उत्तम अनुशासन की भावना का विकास करने के लिए, उनमें और शिक्षकों में घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किए जाने चाहिए।
5. विद्यालयों में स्वशासन-प्रणाली (System of Self-Government) को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।
6. विद्यालयों में "अतिरिक्त पाठ्यक्रम-क्रियाओं" (Extra-Curricular Activities) एवं "पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओं" (Co-Curricular Activities) को स्थान दिया जाना चाहिए।
7. 17 वर्ष से कम आयु के छात्रों को राजनीतिक कार्यों से पृथक् रखने के लिए, सरकार द्वारा कानून बना दिया जाना चाहिए।
8. सब विद्यालयों में एन० सी० सी०, फर्स्ट-एड, स्काउटिंग, सेंट जॉन एम्बुलेंस एवं जूनियर रेड क्रास की व्यवस्था की जानी चाहिए।

11 निर्देशन व परामर्श Guidance & Counselling—"आयोग" ने उच्चतर माध्यमिक स्तर पर "पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण" किया है, ताकि छात्रों को अपनी रुचियों के अनुसार विषयों का अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हो। किन्तु, अनुभवहीन बालक—विषयों का चयन करने में गलती कर सकते हैं। अतः उनको निर्देशन और परामर्श दिए जाने की आवश्यकता है। अपनी इस धारणा के आधार पर, "आयोग" ने निर्देशन और परामर्श के सम्बन्ध में अग्रांकित सुझाव दिए हैं :—

1. शिक्षा के अधिकारियों को छात्रों के शैक्षिक निर्देशन के प्रति विशेष ध्यान देना चाहिए।
2. छात्रों को विभिन्न उद्योगों के कारखानों में ले जाया जाना चाहिए और उनको इन उद्योगों के फिल्म दिखाए जाने चाहिए, ताकि उनको विभिन्न उद्योगों से सम्बन्धित विभिन्न व्यवसायों की जानकारी प्राप्त हो जाय।
3. छात्रों को व्यवसायों के विषय में सूचना देने के लिए, विद्यालयों में समय-समय पर "जीविकोपार्जन सम्मेलनों" (Career Conferences) का आयोजन किया जाना चाहिए।
4. विद्यालयों में "निर्देशन-अधिकारियों" (Guidance

"जीविकोपार्जन-शिक्षकों" (Career Masters) की नियुक्ति की जानी चाहिए।

12. छात्रों का शारीरिक कल्याण : Physical Welfare of Students—"आयोग" का मत है कि छात्रों के शारीरिक कल्याण के प्रति विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है, क्योंकि वे भावी नागरिक हैं। स्वस्थ नागरिक ही अपने देश का कल्याण कर सकते हैं। इस विचार से प्रेरित होकर, "आयोग" ने छात्रों के शारीरिक कल्याण के सम्बन्ध में अधोलिखित सुझाव दिए हैं :—

1. सब राज्यों में "स्कूल-स्वास्थ्य-सेवा" (School Medical Service) की सुसंगठित योजना क्रियान्वित की जानी चाहिए।
2. सब विद्यालयों के सब छात्रों की एक वर्ष में कम-से-कम एक बार स्वास्थ्य-परीक्षा अवश्य की जानी चाहिए।
3. कठिन रोगों में ग्रस्त छात्रों की स्वास्थ्य-परीक्षा बार-बार की जानी चाहिए।
4. रोगी छात्रों एवं छात्राओं का "विद्यालय-स्वास्थ्य-अधिकारी" (School Health Officer) द्वारा मुफ्त उपचार किया जाना चाहिए।
5. छात्रावासों एवं सावास विद्यालयों (Residential Schools) में विद्यार्थियों के लिये पौष्टिक तथा संतुलित भोजन का प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

13. परीक्षा व मूल्यांकन : Examination & Evaluation—"आयोग" की धारणा है कि प्रचलित परीक्षा-प्रणाली—छात्रों के वास्तविक ज्ञान का मूल्यांकन करने में असमर्थ है। अतः "आयोग" ने अधोलिखित सुझावों द्वारा एक नवीन परीक्षा-प्रणाली की रूपरेखा प्रदर्शित की है :—

1. वाह्य परीक्षाओं (External Examinations) की संख्या में कमी की जानी चाहिए।
2. माध्यमिक शिक्षा का सम्पूर्ण पाठ्यक्रम समाप्त करने के पश्चात् केवल एक "सार्वजनिक परीक्षा" (Public Examination) होनी चाहिए।
3. परीक्षाओं में पूछे जाने वाले प्रश्न—निबन्धात्मक ढंग (Essay Type) के न होकर वस्तुनिष्ठ प्रकार (Objective Type) के होने चाहिए, ताकि परीक्षाओं के "आत्मगत-तत्त्वों" (Subjective Elements) का अन्त किया जा सके।
4. छात्रों के कार्य का अन्तिम मूल्यांकन करते समय, अग्रलिखित को उचित महत्त्व दिया जाना चाहिए :—आन्तरिक परीक्षाएँ (Internal Examinations), नियतकालिक परीक्षाएँ (Periodical Tests), एवं विद्यालय-अभिलेख (School Records)।

5. बाह्य एवं आन्तरिक परीक्षाओं का मूल्यांकन अंकों में न किया जाकर प्रतीकों (Symbols) में किया जाना चाहिए।

14. अध्यापकों की स्थिति में सुधार : *Improvement of Teacher's Status*—"आयोग" का कथन है :—"अध्यापकों की स्थिति, वेतन एवं कार्य करने की दशाएँ बहुत ही असंतोषजनक हैं।" इस बात को ध्यान में रखकर, "आयोग" ने उनकी स्थिति में सुधार करने के लिये अनेक मूल्यवान सुझाव दिये हैं; यथा :—

1. देश के सब माध्यमिक विद्यालयों में अध्यापकों के चुनाव एवं नियुक्ति की विधि समान होनी चाहिये।
2. अध्यापकों को उचित वेतन नहीं मिलता है। अतः विशिष्ट समितियों की नियुक्ति करके, उनसे यह सुझाव माँगा जाना चाहिए कि वर्तमान स्थिति में उनका वेतन कितना होना चाहिये।
3. सब अध्यापकों के लिये "त्रिमुखी लाभ-योजना" (*Triple Benefit Scheme*) आरम्भ की जानी चाहिये। इस योजना के अन्तर्गत उनको पेन्शन, जीवन-बीमा एवं प्राविडेंट फण्ड की सुविधायें प्रदान की जानी चाहिये।
4. अध्यापकों की विशेष कठिनाइयों का समाधान करने और उनकी शिकायतों को सुनने के लिये, "निर्णायक-मण्डल" (*Arbitration Board*) की नियुक्ति की जानी चाहिये।
5. अध्यापकों को अग्रांकित सुविधायें प्रदान की जानी चाहिए :—उनके बच्चों को निःशुल्क शिक्षा, उनके लिये विद्यालयों के समीप निवास-स्थान, उनको स्वास्थ्यवर्द्धक स्थानों एवं शिक्षा के सम्मेलनों में जाने के लिए अवकाश एवं यात्रा के किराये में कमी, और चिकित्सालयों में मुफ्त चिकित्सा।

15. अध्यापक-प्रशिक्षण : Teacher Training—"आयोग" का विश्वास है कि माध्यमिक शिक्षा की जिस नवीन संरचना को वह भारत में देखने का अभिलाषी है, उसके लिए विशेष प्रकार का प्रशिक्षण प्राप्त अध्यापकों की आवश्यकता है। भारत की तत्कालीन प्रशिक्षण-संस्थायें अपने सीमित दृष्टिकोण के कारण इस प्रकार के शिक्षकों का निर्माण करने में सफल नहीं हो सकती हैं। अतः "आयोग" ने अध्यापक-प्रशिक्षण के सम्बन्ध में निम्नांकित विचार व्यक्त किये हैं :—

1. प्रशिक्षण-संस्थाएँ दो प्रकार की होनी चाहिये :—
   (i) उच्चतर माध्यमिक शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों के लिए। इनके प्रशिक्षण की अवधि दो वर्ष की होनी चाहिए।
   (ii) स्नातकों के लिये। इनके प्रशिक्षण की अवधि अभी एक वर्ष की होनी चाहिये, पर कुछ समय के पश्चात् दो वर्ष की कर दी जानी चाहिये।

2. प्रथम प्रकार की प्रशिक्षण-संस्थाएँ एक बोर्ड के अधीन होनी चाहिए, जिसका निर्माण इसी उद्देश्य से किया जाना चाहिये। स्नातकों की प्रशिक्षण-संस्थायें—विश्वविद्यालयों के अधीन और उन्हीं से सम्बद्ध होनी चाहिए।
3. छात्राध्यापकों को एक या एक से अधिक "अतिरिक्त पाठ्यक्रम-क्रियाओं (Extra-Curricular Activities) में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
4. प्रशिक्षण-संस्थाओं में छात्राध्यापकों से शुल्क नहीं लिया जाना चाहिए और उनको राज्य द्वारा शिष्यवृत्तियों (Stipends) के रूप में पर्याप्त आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए। जो अप्रशिक्षित शिक्षक—विद्यालयों में काम कर रहे हैं, उन्हें प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए पूर्ण वेतन पर अवकाश दिया जाना चाहिए।
5. प्रशिक्षण-काल में छात्राध्यापकों का प्रशिक्षण-संस्थाओं से सम्बद्ध छात्रावासों में रहना अनिवार्य होना चाहिए, और उनके लिए सामाजिक जीवन से सम्बन्धित क्रियाओं का आयोजन किया जाना चाहिए।
6. ट्रेनिंग कॉलिजों अर्थात् स्नातकों की प्रशिक्षण-संस्थाओं में अग्रलिखित की व्यवस्था की जानी चाहिए :—"अभिनवन पाठ्यक्रम" (Refresher Courses), "लघु-गहन-पाठ्यक्रम" (Short Intensive Courses) एवं "कार्यशाला में व्यावहारिक प्रशिक्षण" (Practical Training in Workshops)।
7. ट्रेनिंग कॉलिजों में शिक्षण-शास्त्र के महत्त्वपूर्ण अंगों के सम्बन्ध में अनुसंधान किया जाना चाहिए। इस कार्य को सुविधाजनक बनाने के लिए प्रत्येक ट्रेनिंग कॉलिज के अधीन एक "प्रदर्शनात्मक विद्यालय" (Demonstration School) होना चाहिए।
8. ट्रेनिंग कॉलिजों के अध्यापकों, माध्यमिक स्कूलों के कुछ विशेष प्रधानाध्यापकों एवं विद्यालय-निरीक्षकों में समय-समय पर प्रशिक्षण के सम्बन्ध में विचार-विनिमय होना चाहिए।
9. एम० एड० कक्षाओं में उन्हीं व्यक्तियों को प्रवेश दिया जाना चाहिए, जो प्रशिक्षित स्नातक हों और किसी विद्यालय में कम-से-कम तीन वर्ष तक शिक्षण का कार्य कर चुके हों।
10. अध्यापिकाओं के अभाव को दूर करने के लिए विशिष्ट अल्पकालीन प्रशिक्षण-पाठ्यक्रम (Special Part-Time Training Courses) की योजना कार्यान्वित की जानी चाहिए।

आयोग का मूल्यांकन

Estimate of the Commission

यह कहना असंगत प्रतीत नहीं होता है कि भारतीय शिक्षा के इतिहास में

"मुदालियर कमीशन" का स्थान बेजोड़ है। उसने माध्यमिक शिक्षा के पुनर्निर्माण के सम्बन्ध में अनेक सुन्दर एवं सुदूरगामी सुझाव दिए हैं; यथा :—स्वतन्त्र भारत की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए शिक्षा के नवीन उद्देश्यों का निर्धारण, छात्रों की व्यक्तिगत अभिरुचियों एवं अभिवृत्तियों को सन्तुष्ट करने के लिए पाठ्यक्रम का विभिन्नीकरण, छात्रों को अपनी वैयक्तिक क्षमताओं एवं योग्यताओं के अनुकूल विभिन्न विषयों का अध्ययन सुलभ बनाने के लिए बहु-उद्देशीय विद्यालयों की योजना, छात्रों को अपने भावी व्यवसायों का चयन करने में सहायता देने के लिये निर्देशन एवं परामर्श की उपलब्धि, कृषि-प्रधान देश की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिये कृषि-शिक्षा की अनिवार्यता का समर्थन, देश के उद्योगों एवं व्यवसायों के लिये प्रशिक्षित व्यक्तियों को तैयार करने के लिये तकनीकी स्कूलों एवं प्राविधिक संस्थाओं की व्यवस्था, और परीक्षा-प्रणाली, अध्यापक-प्रशिक्षण एवं शिक्षकों की स्थिति में सुधार किये जाने पर बल।

"माध्यमिक शिक्षा-आयोग" ने माध्यमिक शिक्षा को छात्रों एवं देश के लिये उपयोगी बनाने के विचार से उपर्युक्त के अतिरिक्त और भी अनेक व्यावहारिक एवं रचनात्मक सुझाव दिये हैं। उसके कुछ सुझाव वस्तुतः अधूरे, अमान्य एवं अविस्तृत हैं; जैसे, छात्रों द्वारा तीन भाषाओं का अध्ययन और स्त्री-शिक्षा के प्रसार के लिए सिफारिशों में कमी। पर, यदि हम उसके सुझावों पर समग्र रूप में विचार करें, तो हम सन्देहरहित होकर कह सकते हैं कि उसके सुझावों को क्रियान्वित करने से माध्यमिक शिक्षा का कलेवर बदल जाता, उसका स्वरूप नवीन एवं आकर्षक हो जाता। इस नवीन माध्यमिक शिक्षा को ग्रहण करके, भारत के भावी नागरिक बनने वाले छात्र अपनी मातृभूमि की आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्रों में उन्नति करके, उसकी बहुमुखी प्रगति में योग देते।

किन्तु, हमारी सरकार ने न जाने क्या सोच-समझ कर, "आयोग" के कुछ चुने हुये सुझावों को ही क्रियान्वित किया। यदि उसने "कमीशन" के अधिकांश सुझावों को भी क्रियान्वित कर दिया होता, तो माध्यमिक शिक्षा से सम्पूर्ण देश का हित हुआ होता। हम अपने इस कथन के समर्थन में "आयोग" के सुझावों को क्रियान्वित किये जाने से पूर्व भगवान दयाल द्वारा व्यक्त किया जाने वाला विचार अंकित कर रहे हैं :—"यदि आयोग के अधिकांश सुझावों को क्रियान्वित कर दिया जायगा, तो माध्यमिक शिक्षा इस देश में निश्चित रूप से एक स्वस्थ आधार पर प्रतिष्ठित हो जायगी, जिसके फलस्वरूप सम्पूर्ण देश के हित में सुनियोजित प्रगति सम्भव हो जायगी।"

"If most of the suggestions of the Commission are carried out, Secondary Education in the country will no doubt be placed on a healthy footing, where planned development will be possible in the interest of the country as a whole." —Bhagwan Dayal: *The Development of Modern Indian Education*, pp. 329-330.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Describe briefly the recommendations of the Secondary Education Commission regarding the new organizational pattern of Secondary Education.
   माध्यमिक शिक्षा के नवीन संगठन के विषय में माध्यमिक शिक्षा-आयोग की सिफ़ारिशों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. Elucidate the main recommendations of the Mudaliar Commission regarding the National Pattern of Secondary Education as suggested by it.
   मुदालियर आयोग द्वारा प्रस्तावित माध्यमिक शिक्षा के राष्ट्रीय स्वरूप के विषय में उसकी मुख्य सिफ़ारिशों पर प्रकाश डालिए।
3. Critically examine the recommendations of the Mudaliar Commission for the reorganization of Secondary Education in India.
   भारत में माध्यमिक शिक्षा के पुनर्गठन के बारे में मुदालियर आयोग की सिफ़ारिशों का आलोचनात्मक निरीक्षण कीजिए।

20

शिक्षा-आयोग
(कोठारी कमीशन)
EDUCATION COMMISSION
(Kothari Commission)
(1964–1966)

"Secondary Education should be increasingly and largely vocationalized, and in higher education a greater emphasis should be placed on agricultural and technical education."—*Education Commission Report*

विषय-प्रवेश

1882 से 1952 तक भारत में पाँच आयोगों की नियुक्ति हो चुकी थी। इनमें अन्तिम दो, अर्थात् "राधाकृष्णन् कमीशन" (1948-49) एवं "मुदालियर कमीशन" (1952-53) की नियुक्ति स्वतन्त्र भारत में हुई थी। इन दोनों कमीशनों ने शिक्षा के लगभग सभी अवयवों को दोषमुक्त करने एवं सुदृढ़ बनाने के लिए अनेक बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किये थे। भारत-सरकार ने बहुत समय तक सोच-विचार करने के बाद, उनमें से कुछ सुझावों को क्रियान्वित किए जाने का आदेश दिया।

सुझावों को क्रियान्वित किए कुछ ही वर्ष बीते थे कि सरकार ने 1964 में "शिक्षा-आयोग" नामक एक नवीन आयोग की नियुक्ति कर दी और उस पर 15 लाख रुपये से अधिक की धनराशि व्यय कर दी।[1] सरकार ने "राधाकृष्णन् एवं

---

1 "आयोग" पर कुल 1,509,175 रुपये व्यय हुए। देखिए, "आयोग" की रिपोर्ट, पृष्ठ 612।

मुदालियर आयोगों" के सुझावों के क्रियान्वित किए जाने के परिणामों को देखने की प्रतीक्षा किए बिना किन कारणों से विवश होकर यह क़दम उठाया ? हम पहले इस प्रश्न का उत्तर देकर आपकी जिज्ञासा को शान्त कर रहे हैं।

आयोग की नियुक्ति के कारण व प्रयोजन
Reasons & Purposes for Setting-up the Commission

भारत-सरकार ने अपने 14 जुलाई, 1964 के "प्रस्ताव" (Resolution) में आयोग की नियुक्ति के कारणों एवं प्रयोजनों को निम्नांकित शब्दों में प्रकाशित किया[1] :—

1. स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से ही भारत-सरकार ने अपने देश की लोकप्रिय परम्पराओं एवं आधारभूत मान्यताओं और आधुनिक समाज की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं के अनुसार राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के विकास के प्रति पर्याप्त ध्यान दिया है। इस दिशा में कुछ कार्य भी किया गया है, पर सामान्यतः समय की माँगों के अनुसार राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का विकास नहीं हुआ है। शिक्षा के अनेक महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में अब भी "विचार एवं कार्य" (Thought & Action) में महान् अन्तर विद्यमान है।
2. स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से ही देश की आर्थिक एव सामाजिक प्रगति में शिक्षा के महत्त्वपूर्ण स्थान को स्वीकार किया गया है। शिक्षा ही सच्चे लोकतन्त्रीय समाज का निर्माण कर सकती है। शिक्षा ही राष्ट्रीय एकता को सम्भव बना सकती है। शिक्षा ही व्यक्ति को श्रेष्ठता एवं पूर्णता की अनन्त खोज के लिए प्रेरणा दे सकती है। इन सब बातों को ध्यान में रख कर अब यह अनिवार्य समझा जाने लगा है कि शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र की जाँच की जाय, जिसके फलस्वरूप कम-से-कम सम्भव समय में एक ऐसी सुसंतुलित एवं सुसंगठित राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का विकास किया जा सके, जो राष्ट्रीय जीवन के सब क्षेत्रों को महत्त्वपूर्ण योगदान दे।
3. स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से ही भारत ने राष्ट्रीय विकास के नव-युग में प्रवेश किया है। इस युग में भारत के लक्ष्य हैं :—न केवल शासन, वरन् जीवन के ढंग में भी धर्म-निरपेक्ष लोकतन्त्र (Secular Democracy) की स्थापना; जनता की निर्धनता की समाप्ति; कृषि का आधुनीकरण एवं उद्योगों का शीघ्र विकास करके, सब व्यक्तियों के रहन-सहन के स्तर का उन्नयन; आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी (Techno-

---

1. *Resolution of the Government of India, Setting-up the Education Commission,* dated the 14th of July, 1964.

मुदालियर आयोगों" के सुझावों के क्रियान्वित किए जाने के परिणामों को देखने की प्रतीक्षा किए बिना किन कारणों से विवश होकर यह क़दम उठाया ? हम पहले इस प्रश्न का उत्तर देकर आपकी जिज्ञासा को शान्त कर रहे हैं।

आयोग की नियुक्ति के कारण व प्रयोजन
Reasons & Purposes for Setting-up the Commission

भारत-सरकार ने अपने 14 जुलाई, 1964 के "प्रस्ताव" (Resolution) में आयोग की नियुक्ति के कारणों एवं प्रयोजनों को निम्नांकित शब्दों में प्रकाशित किया[1] :—

1. स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से ही भारत-सरकार ने अपने देश की लोकप्रिय परम्पराओं एवं आधारभूत मान्यताओं और आधुनिक समाज की आवश्यकताओं एवं आकांक्षाओं के अनुसार राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के विकास के प्रति पर्याप्त ध्यान दिया है। इस दिशा में कुछ कार्य भी किया गया है, पर सामान्यतः समय की माँगों के अनुसार राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का विकास नहीं हुआ है। शिक्षा के अनेक महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में अब भी "विचार एवं कार्य" (Thought & Action) में महान् अन्तर विद्यमान है।
2. स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से ही देश की आर्थिक एव सामाजिक प्रगति में शिक्षा के महत्त्वपूर्ण स्थान को स्वीकार किया गया है। शिक्षा ही सच्चे लोकतन्त्रीय समाज का निर्माण कर सकती है। शिक्षा ही राष्ट्रीय एकता को सम्भव बना सकती है। शिक्षा ही व्यक्ति को श्रेष्ठता एवं पूर्णता की अनन्त खोज के लिए प्रेरणा दे सकती है। इन सब बातों को ध्यान में रख कर अब यह अनिवार्य समझा जाने लगा है कि शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र की जाँच की जाय, जिसके फलस्वरूप कम-से-कम सम्भव समय में एक ऐसी सुसंतुलित एवं सुसंगठित राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का विकास किया जा सके, जो राष्ट्रीय जीवन के सब क्षेत्रों को महत्त्वपूर्ण योगदान दे।
3. स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से ही भारत ने राष्ट्रीय विकास के नव-युग में प्रवेश किया है। इस युग में भारत के लक्ष्य हैं :—न केवल शासन, वरन् जीवन के ढंग में भी धर्म-निरपेक्ष लोकतन्त्र (Secular Democracy) की स्थापना; जनता की निर्धनता की समाप्ति; कृषि का आधुनीकरण एवं उद्योगों का शीघ्र विकास करके, सब व्यक्तियों के रहन-सहन के स्तर का उन्नयन; आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी (Techno-

---

1. *Resolution of the Government of India, Setting-up the Education Commission*, dated the 14th of July, 1964.

logy) का प्रयोग, और परम्परागत आध्यात्मिक मूल्यों से उनका समन्वय; समाजवादी ढग के समाज की स्थापना करके, धन का उचित वितरण; और सब व्यक्तियों को शिक्षा, रोजगार एवं सांस्कृतिक प्रगति के लिए अवसरो की समानता।

इन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए शिक्षा को सबसे अधिक शक्तिशाली साधन माना जाने लगा है। किन्तु, शिक्षा इन लक्ष्यों की प्राप्ति में तभी सहायता दे सकती है, जब उसके परम्परागत स्वरूप में आमूल परिवर्तन कर दिया जाय, और उसमें आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी को महत्त्व-पूर्ण स्थान दिया जाय।

4. स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से ही सब स्तरों पर शिक्षा का असाधारण विस्तार हुआ है। किन्तु, इस विस्तार के बावजूद शिक्षा के अनेक अंगों के सम्बन्ध में व्यापक असन्तोष है। उदाहरणार्थ—14 वर्ष की अवस्था तक के सब बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था नहीं की गई है। जनसाधारण की निरक्षरता का समाधान नहीं किया गया है। माध्यमिक स्कूलों एवं विश्वविद्यालयों में शिक्षा के स्तरों का पर्याप्त उन्नयन नहीं किया गया है। माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा में पाठ्यक्रमों के विभिन्नीकरण (Diversification of Courses) की योजना को पूर्ण नहीं किया गया है, जिसके फलस्वरूप एक ओर शिक्षित व्यक्तियों की बेरोजगारी पहले से अधिक हो गई है, और दूसरी ओर अनेक उद्योगों एवं व्यवसायों के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों का अत्यधिक अभाव है। शिक्षकों के वेतनों एवं कार्य की दशाओं (Service Conditions) में वांछनीय परिवर्तन नहीं किए गए हैं। शिक्षा की अनेक महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर अब भी तीव्र विवाद चल रहा है।

संक्षेप में, जिस गति से शिक्षा की संख्यात्मक (Quantitative) उन्नति हुई है, उस गति से गुणात्मक (Qualitative) उन्नति नहीं हुई है। इसके अलावा, शिक्षा की गुणात्मक उन्नति के लिए निर्धारित की जाने वाली नीतियों और निश्चित किए जाने वाले कार्यक्रमों को सन्तोषजनक ढग से क्रियान्वित नहीं किया गया है।

5. स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से ही भारत-सरकार का यह दृढ़ विश्वास है कि शिक्षा—राष्ट्रीय प्रगति एवं कल्याण का आधार है। सरकार का यह भी दृढ़ विश्वास है कि देश एवं जनता का जितना हित शिक्षा से हो सकता है, उतना किसी अन्य वस्तु से नहीं हो सकता है। सरकार ने शिक्षा के क्षेत्र में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के सब साधनों का प्रयोग करने का और इन पर अधिक-से-अधिक धन व्यय करने का निश्चय कर लिया है। पर यह तभी किया जा सकता है, जब शिक्षा का आधार उत्तम

एवं प्रगतिशील हो। सरकार ने शिक्षा को इस आधार पर प्रतिष्ठित करने का दृढ़ संकल्प किया है।

6. भारत में राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का विकास करने के लिए, शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र की जाँच की जानी आवश्यक है, क्योंकि शिक्षा-प्रणाली के सब अंग एक-दूसरे पर शक्तिशाली प्रतिक्रिया करते हैं और प्रभाव भी डालते हैं। उत्तम माध्यमिक विद्यालयों के बिना शक्तिशाली एवं प्रगतिशील विश्वविद्यालय नहीं हो सकते हैं, और माध्यमिक विद्यालय तभी उत्तम हो सकते हैं, जब प्राथमिक विद्यालय कुशलतापूर्वक कार्य करें।

अत: यह आवश्यक है कि शिक्षा के विभिन्न अंगों एवं स्तरों की अलग-अलग जाँच न करके, शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र की जाँच की जाय। उक्त "प्रस्ताव" के अन्त में लिखा गया है :—"पिछले समय में अनेक आयोगों एवं समितियों ने शिक्षा के सीमित क्षेत्रों एवं विशिष्ट अंगों का सर्वेक्षण किया है। इसके विपरीत, अब सम्पूर्ण शिक्षा-प्रणाली का सूक्ष्म सर्वेक्षण किया जायगा।"

आयोग की नियुक्ति
Appointment of the Commission

भारत-सरकार ने 14 जुलाई, 1964 के अपने "प्रस्ताव" में नवीन शिक्षा-आयोग की नियुक्ति के कारणों एवं प्रयोजनों का स्पष्टीकरण करके, उसी "प्रस्ताव" के द्वारा "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" (University Grants Commission) के अध्यक्ष—प्रोफ़ेसर डी० एस० कोठारी (D. S. Kothari) की अध्यक्षता में "शिक्षा-आयोग" की नियुक्ति की घोषणा की। प्रोफ़ेसर कोठारी के नाम से इस "आयोग" को "कोठारी कमीशन" भी कहा जाता है। "आयोग" में कुल 17 सदस्य थे, जिनमें से 6 अन्य देशों के शिक्षा-विशेषज्ञ थे।

आयोग के जाँच के विषय
Terms of Reference of the Commission

14 जुलाई, 1964 के "प्रस्ताव" में "शिक्षा-आयोग" के जाँच के विषयों को अग्रांकित शब्दों में लेखबद्ध किया गया :—"आयोग—भारत-सरकार को शिक्षा के राष्ट्रीय स्वरूप और उसके सब स्तरों एवं पक्षों पर शिक्षा के विकास के लिये सामान्य सिद्धान्तों एवं नीतियों के विषय में परामर्श देगा। आयोग को चिकित्सा या क़ानून की शिक्षा की समस्याओं की जाँच करने की आवश्यकता नहीं है, पर वह इन समस्याओं के उन पक्षों की जाँच कर सकता है, जो व्यापक जाँच की दृष्टि से आवश्यक हों।"

"The Commission will advise the Government of India on the national pattern of education and on general principles and

policies for the development of education at all stages and in all its aspects. It need not, however, examine the problems of medical or legal education, but such aspects of these problems as are necessary for its comprehensive enquiry may be looked into."—*Resolution of the Government of India Setting-up the Education Commission,* dated the 14th of July, 1964.

"शिक्षा-आयोग" को अपना प्रतिवेदन 31 मार्च, 1966 तक प्रस्तुत करने का आदेश दिया गया था। किन्तु, कुछ कठिनाइयों के कारण, उसने अपने प्रतिवेदन को निर्धारित तिथि से लगभग 3 माह पश्चात् अर्थात् 29 जून, 1966 को भारत-सरकार के तत्कालीन शिक्षा-मंत्री एम० सी० छागला (M. C. Chagla) के समक्ष प्रस्तुत किया। लगभग 700 पृष्ठों का यह प्रतिवेदन तीन भागों में विभाजित है और इसका नाम है :—"शिक्षा एवं राष्ट्रीय प्रगति" (Education & National Development)।

आयोग के सुझाव व सिफ़ारिशें
Suggestions & Recommendations of the Commission

"आयोग" ने शिक्षा के सभी अंगों के विषय में अपने विचार व्यक्त किये हैं। इनमें से महत्त्वपूर्ण अंग निम्नलिखित हैं :—

1. शिक्षा एवं राष्ट्रीय लक्ष्य : Education & National Objectives.
2. शिक्षा की संरचना एवं स्तर : Educational Structure & Standards.
3. अध्यापक की स्थिति : Teacher Status
4. अध्यापक-शिक्षा Teacher Education.
5. छात्र-संख्या एवं जनबल Enrolment & Manpower
6. शैक्षिक अवसरों की समानता Equalization of Educational Opportunities
7. विद्यालय-शिक्षा का विस्तार : Expansion of School Education.
8. विद्यालय-पाठ्यक्रम School Curriculum
9. शिक्षण-विधियाँ, निर्देशन एवं मूल्यांकन Teaching Methods, Guidance & Evaluation.
10. उच्च शिक्षा . Higher Education.
11. स्त्री-शिक्षा Women's Education
12. वयस्क-शिक्षा Adult Education.
13. विज्ञान की शिक्षा Science Education.

10. अंग्रेजी के शिक्षण एवं अध्ययन को विद्यालय-स्तर से ही प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
11. रूसी भाषा एवं अन्तर्राष्ट्रीय महत्त्व की अन्य भाषाओं के अध्ययन के प्रति विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।
12. विश्व की कुछ महत्त्वपूर्ण भाषाओं की शिक्षा देने के लिए कुछ स्कूलों एवं विश्वविद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिए।
13. बी० ए० एवं एम० ए० के स्तरों पर छात्रों को दो भारतीय भाषाओं के अध्ययन की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए।
14. सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना के विकास को विद्यालय-शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य माना जाना चाहिए।
15. सभी पाठ्यक्रमों में नागरिकता, संविधान के सिद्धान्तों एवं लोकतंत्रीय समाजवादी समाज के स्वरूप को विशेष स्थान दिया जाना चाहिए।

3. शिक्षा व प्रजातंत्र की सुदृढ़ता : **Education & Consolidation of Democracy**—"आयोग" ने शिक्षा द्वारा प्रजातंत्र को सुदृढ़ बनाने के लिए अग्रांकित सुझाव दिए हैं :—

1. 14 वर्ष की आयु तक के बालकों एवं बालिकाओं को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए।
2. वयस्क-शिक्षा के कार्यक्रमों को दो उद्देश्यों को सामने रखकर आयोजित किया जाना चाहिए :—(i) निरक्षरता का उन्मूलन, एवं (ii) व्यक्ति की नागरिक एवं राष्ट्रीय कुशलता और सामान्य सांस्कृतिक स्तर का उन्नयन।
3. माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा का विस्तार किया जाना चाहिए और छात्रों को इन दोनों स्तरों पर कुशल नेतृत्व का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
4. धर्म, वर्ग, लिंग, जाति एवं स्थिति का भेदभाव किए बिना सब बालकों एवं बालिकाओं को शिक्षा के समान अवसर दिए जाने चाहिए।
5. सब व्यक्तियों में वैज्ञानिक विचार एवं दृष्टिकोण का और सहिष्णुता, पहलकदमी, जन-हित, समाज-सेवा, आत्म-निर्भरता, एवं आत्म-अनुशासन के गुणों का विकास किया जाना चाहिए।

4. शिक्षा व आधुनीकरण : **Education & Modernization**—"आयोग" ने शिक्षा द्वारा भारत का आधुनीकरण करने के लिए अग्रलिखित सुझाव दिए हैं :—

1. आधुनीकरण करने के लिए विज्ञान पर आधारित प्रौद्योगिकी (Technology) का प्रयोग किया जाना चाहिए।
2. आधुनीकरण करने के लिए शिक्षा को महत्त्वपूर्ण साधन बनाया जाना

चाहिए और आधुनीकरण की प्रगति एवं शैक्षिक प्रसार की गतियों में समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए।

3. शिक्षा द्वारा छात्रों में उचित मूल्यों एवं दृष्टिकोणों का विकास किया जाना चाहिए।
4. शिक्षा द्वारा छात्रों में स्वतंत्र विचार, स्वतंत्र निर्णय एवं स्वतंत्र अध्ययन की आदतों का निर्माण किया जाना चाहिए।
5. सामान्य व्यक्ति के शैक्षिक स्तर का उन्नयन किया जाना चाहिए।

5. सामाजिक, नैतिक व आध्यात्मिक मूल्यों का विकास : Development of Social, Moral & Spiritual Values—"आयोग" ने यह विचार प्रकट किया है कि शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों के सामाजिक, नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करके, उनके चरित्र का निर्माण किया जाना चाहिए। इन कार्यों में सफलता प्राप्त करने के लिए, "आयोग" ने अधोलिखित सुझाव दिए हैं :—

1. सब प्रकार की शिक्षा-संस्थाओं में सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। यह शिक्षा—"विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग" द्वारा दिए गए सुझावों के अनुसार प्रदान की जानी चाहिए।
2. प्राथमिक विद्यालयों में इन मूल्यों की शिक्षा रोचक कहानियों द्वारा दी जानी चाहिए।
3. माध्यमिक विद्यालयों में इन मूल्यों के सम्बन्ध में अध्यापकों एवं विद्यार्थियों में विचार-विनिमय होना चाहिए।
4. उपर्युक्त दोनों प्रकार के विद्यालयों के वातावरण को सामाजिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों से निमज्जित किया चाहिए। इस कार्य का दायित्व सब शिक्षकों एवं अधिकारियों पर रखा जाना चाहिए।
5. प्रत्येक विश्वविद्यालय में "तुलनात्मक धर्म" (Comparative Religion) नामक विभाग की सृष्टि की जानी चाहिए। इस विभाग द्वारा यह खोज की जानी चाहिए कि इन मूल्यों की प्रभावशाली ढंग से किस प्रकार शिक्षा दी जा सकती है।

2 शिक्षा की संरचना व स्तर

Educational Structure & Standards

"आयोग" ने शिक्षा की नवीन संरचना अर्थात् ढाँचे और शिक्षा-स्तरों के उन्नयन के सम्बन्ध में जो विचार अभिव्यक्त किए हैं, हम उनका वर्णन निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत कर रहे हैं :—

1. विद्यालय-शिक्षा की नवीन संरचना : New Structure of School Education—"आयोग" ने विद्यालय-शिक्षा के प्रचलित स्वरूप को ध्यान में रखते हुए, इस शिक्षा की नवीन संरचना को इस प्रकार प्रस्तुत किया है :—

2 या 3 वर्ष की उच्चतर माध्यमिक शिक्षा

2 या 3 वर्ष की निम्न माध्यमिक शिक्षा

3 वर्ष की उच्च प्राथमिक शिक्षा

4 या 5 वर्ष की निम्न प्राथमिक शिक्षा

1 से 3 वर्ष की पूर्व-विद्यालय शिक्षा

10 वर्ष की सामान्य शिक्षा

2. संरचना-सम्बन्धी सुझाव : Suggestions Regarding Structure—"आयोग" ने विद्यालय-शिक्षा की नवीन संरचना के विषय में अधोअंकित सुझाव दिए हैं :—

1. सामान्य शिक्षा (General Education) की अवधि 10 वर्ष की होनी चाहिए और इसमें प्राथमिक एवं निम्न माध्यमिक शिक्षा को सम्मिलित किया जाना चाहिए।
2. सामान्य शिक्षा आरम्भ करने से पूर्व छात्रों को 1 से 3 वर्ष तक की पूर्व-विद्यालय (Pre-School) या पूर्व-प्राथमिक (Pre-Primary) शिक्षा दी जानी चाहिए।
3. प्राथमिक शिक्षा की अवधि 7 से 8 वर्ष की होनी चाहिए और इसको अग्रलिखित दो भागों में विभाजित किया जाना चाहिए :—(i) 4 या 5 वर्ष की निम्न प्राथमिक शिक्षा (Lower Primary Education), और (ii) 3 वर्ष की उच्च प्राथमिक शिक्षा (Higher Primary Education)।
4. निम्न माध्यमिक (Lower Secondary) शिक्षा की अवधि 2 या 3 वर्ष की होनी चाहिए।
5. निम्न माध्यमिक स्तर पर छात्रों को अग्रांकित दो प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए :—(i) 2 या 3 वर्ष की सामान्य शिक्षा, और (ii) 1 से 3 वर्ष की व्यावसायिक शिक्षा (Vocational Education)।
6. उच्चतर माध्यमिक (Higher Secondary) शिक्षा की अवधि 2 या 3 वर्ष की होनी चाहिए।

7. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर छात्रों को अग्राकित दो प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए :—(i) 2 वर्ष की सामान्य शिक्षा, और (ii) 1 से 3 वर्ष की व्यावसायिक शिक्षा।
8. प्रथम सार्वजनिक बाह्य परीक्षा (First Public External Examination) 10 वर्ष की विद्यालय-शिक्षा के पश्चात् होनी चाहिए।
9. कक्षा 1 में प्रवेश करने की आयु साधारणतः 6 वर्ष से कम नहीं होनी चाहिए।
10. 9वी कक्षा से पृथक् विद्यालय स्थापित किये जाने की प्रचलित विधि का अन्त कर देना चाहिए।
11. 10वी कक्षा तक छात्रों को किसी विषय में विशिष्टीकरण (Specialization) की अनुमति नहीं दी जानी चाहिये।
12 माध्यमिक विद्यालय केवल अग्राकित दो प्रकार के होने चाहिए :—(i) हाई स्कूल और (ii) हायर सेकण्डरी स्कूल। हाई स्कूलों में शिक्षा की अवधि 10 वर्ष की और हायर सेकण्डरी स्कूलों में यह अवधि 12 वर्ष की होनी चाहिये।

3. उच्च शिक्षा का नवीन संरचना . New Structure of Higher Education—"आयोग" ने उच्च शिक्षा की नवीन संरचना इस प्रकार प्रस्तुत की है :—

2 या 3 वर्ष का स्नातकोत्तर-कोर्स

2 या 3 वर्ष का द्वितीय डिग्री-कोर्स

3 वर्ष का प्रथम डिग्री-कोर्स

4. संरचना-सम्बन्धी सुझाव . Suggestions Regarding Structure—"आयोग" ने उच्च शिक्षा की नवीन संरचना के विषय में निम्नांकित सुझाव दिए हैं :—

1. उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के पश्चात् प्रथम डिग्री-कोर्स की अवधि कम-से-कम 3 वर्ष की होनी चाहिए।
2. द्वितीय डिग्री-कोर्स की अवधि 2 या 3 वर्ष की होनी चाहिये।
3. कुछ विश्वविद्यालयों में "ग्रेजुएट स्कूलों" (Graduate Schools) की सृष्टि की जानी चाहिये, जिनमें कुछ विशेष विषयों में 3 वर्ष के स्नातकोत्तर (Post-Graduate) कोर्स की व्यवस्था की जानी चाहिए।
4. उत्तर-प्रदेश में त्रि-वर्षीय डिग्री कोर्स (Three Year Degree Course) को कुछ विशिष्ट विषयों और विशिष्ट विश्वविद्यालयों में आरम्भ किया जाना चाहिए। अन्य विश्वविद्यालयों में यह कोर्स 15 से 20 वर्ष की अवधि में आरम्भ कर दिया जाना चाहिए

5. स्तरों का उन्नयन : Raising of Standards—"आयोग" ने शिक्षा के सब स्तरों का उन्नयन करने के लिए अधोलिखित सुझाव दिए हैं :—

1. 10 वर्ष की विद्यालय-शिक्षा में गुणात्मक उन्नति की जानी चाहिए, ताकि इस स्तर पर होने वाले अपव्यय (Wastage) में कमी की जा सके।
2. 10 वर्ष की अवधि में कक्षा 10 के स्तर का इतना उन्नयन कर दिया जाना चाहिए कि वह वर्तमान हायर सेकण्डरी के स्तर पर पहुँच जाय।
3. विश्वविद्यालयों की उपाधियों के स्तरों का उन्नयन करने के लिये, इन उपाधियों के पाठ्यक्रमों में अधिक उन्नत विषय-वस्तु को स्थान दिया जाना चाहिए।
4. शिक्षा-स्तरों का उन्नयन करने के लिए, शिक्षा के विभिन्न अंगों में समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए।
5. "विद्यालय-संकुलों" (School Complexes) का यथाशीघ्र निर्माण किया जाना चाहिए। एक संकुल में एक माध्यमिक स्कूल और उसके निकटवर्ती सब प्राथमिक स्कूल होने चाहिए। प्रत्येक संकुल के सब स्कूलों द्वारा सामूहिक रूप से स्तरों के उन्नयन के लिए प्रयत्न किए जाने चाहिए।

3. अध्यापक की स्थिति
Status of Teacher

अध्यापक की वर्तमान करुणाजनक स्थिति का "आयोग" के लगभग सभी सदस्यों को व्यक्तिगत अनुभव था। उनकी यह दृढ़ धारणा थी कि जब तक शिक्षक की स्थिति में समुन्नति नहीं की जायगी, तब तक सुयोग्य व्यक्ति—शिक्षण-व्यवसाय का आलिंगन नहीं करेंगे। इसी बात को ध्यान में रखकर "आयोग" ने यह विचार लिपिबद्ध किया है :— 'शिक्षकों की आर्थिक, सामाजिक एवं व्यावसायिक स्थिति को समुन्नत बनाने और प्रतिभाशाली तरुण व्यक्तियों को शिक्षण-व्यवसाय के प्रति पुनः आकर्षित करने के लिए सघन एवं सतत प्रयासों की आवश्यकता है।"

"Intensive and continuous efforts are necessary to raise the economic, social, and professional status of teachers and to feed back talented young persons into the profession."—*Education Commission Report*, p. 617.

"आयोग" ने शिक्षक की स्थिति में सुधार करने के लिए जो विचार व्यक्त किए हैं, हम उनका क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं; यथा :—

1. वेतन : Remuneration—"आयोग" ने शिक्षकों के वेतन के विषय में अधोलिखित विचार प्रकट किए हैं :—

1. भारत-सरकार द्वारा विद्यालयों के शिक्षकों के न्यूनतम वेतन-क्रम (Minimum Scales of Pay) निश्चित किए जाने चाहिए।
2. सरकारी और ग़ैर-सरकारी—दोनों प्रकार के विद्यालयों के शिक्षकों के वेतन-क्रमों में समानता के सिद्धान्त का पालन किया जाना चाहिए।
3. विश्वविद्यालयों एवं उनसे सम्बद्ध कालिजों के अध्यापकों के वेतन-क्रमों में पर्याप्त वृद्धि की जानी चाहिए।

2. शिक्षकों के वेतन-क्रम : Scales of Pay of Teachers—"आयोग" ने शिक्षा के विभिन्न स्तरों और विभिन्न शैक्षिक योग्यताओं वाले शिक्षकों के लिए निम्नांकित वेतन-क्रमों की सिफ़ारिश की है :—

शिक्षक	वेतन व वेतन-क्रम	
1. माध्यमिक कोर्स पास प्राथमिक विद्यालयों के अप्रशिक्षित शिक्षक	न्यूनतम वेतन	100 रु०
2. उक्त शिक्षकों का 5 वर्ष की सेवा के बाद	न्यूनतम वेतन	125 रु०
3. माध्यमिक कोर्स व 2 वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षक	न्यूनतम वेतन	125 रु०
4. उक्त शिक्षकों का 5 वर्ष की सेवा के बाद	न्यूनतम वेतन	150 रु०
5. सैकण्डरी कोर्स व 2 वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक	न्यूनतम वेतन	150 रु०
6. उक्त शिक्षकों का 20 वर्ष बाद	अधिकतम वेतन	250 रु०
7. श्रेणी (6) में से 15% चुने जाने वाले शिक्षक		250-300 रु०
8. 1 वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त ग्रेजुएट	न्यूनतम वेतन	220 रु०
9. उक्त शिक्षकों का 20 वर्ष बाद		400 रु०
10. श्रेणी (9) में से 15% चुने जाने वाले शिक्षक		400-500 रु०
11. अप्रशिक्षित ग्रेजुएट	न्यूनतम वेतन	220 रु०
12. अप्रशिक्षित स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त		300-600 रु०
13. प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद श्रेणी 11 व 12 के शिक्षक	जितना वेतन वे पा रहे हैं, उसमें एक वर्ष की वेतन-वृद्धि।	

14. माध्यमिक स्कूलों के प्रधानाचार्य	इनका वेतन इनकी योग्यताओं एवं विद्यालय के आकार पर निर्भर होगा। इनको सम्बद्ध कॉलेजों के शिक्षकों के लिए निर्धारित कोई भी वेतन-क्रम दिया जा सकता है।
15. सम्बद्ध कॉलेजों के शिक्षक	(i) लेक्चरार, जूनियर स्केल 300-25-600 रु० (ii) लेक्चरार, सीनियर स्केल 400-30-640-40-800 रु० (iii) सीनियर लेक्चरार या रीडर 700-40-1100 रु० (iv) प्रिंसीपल I 700-40-1100 रु० II 800-50-1500 रु० III 1000-50-1500 रु०
16. विश्वविद्यालय के शिक्षक	(i) लेक्चरार 500-40-800-50-950 रु० (ii) रीडर 700-50-1250 रु० (iii) प्रोफेसर 1100-50-1300-60-1600 रु०

3. वेतन-क्रम-सम्बन्धी सुझाव : Suggestions Regarding Pay-Scales—"आयोग" ने शिक्षकों के वेतन-क्रम के विषय में अधोलिखित सुझाव दिए हैं :—

1. शिक्षकों को सरकारी कर्मचारियों के बराबर मँहगाई-भत्ता दिया जाना चाहिए।
2. शिक्षकों के वेतन-क्रम प्रत्येक 5 वर्ष के पश्चात् दोहराए जाने चाहिए।
3. शिक्षकों के वेतन-क्रमों के विषय में जो सुझाव दिये गये हैं, उन्हें तत्काल क्रियान्वित किया जाना चाहिए।
4. वेतन-क्रमों को क्रियान्वित करने के साथ-साथ शिक्षकों की योग्यताओं एवं नियुक्ति की विधियों में सुधार किया जाना चाहिए।

4. कार्य व सेवा की दशाएँ : Conditions of Work & Service—"आयोग" ने शिक्षकों के कार्य एवं सेवा की दशाओं में सुधार करने के लिए अधोलिखित सुझाव दिए हैं :—

1. शिक्षा-संस्थाओं में शिक्षकों को कुशलतापूर्वक कार्य करने के लिए न्यूनतम सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।
2. शिक्षकों को अपनी व्यावसायिक उन्नति करने के लिए उपयुक्त सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।
3. शिक्षकों के अध्यापन-कार्य के घण्टों को निश्चित करते समय, उनके द्वारा किए जाने वाले अन्य कार्यों को ध्यान में रखा जाना चाहिए।
4. शिक्षकों को 5 वर्ष में कम-से-कम एक बार, देश के किसी स्थान में भ्रमण करने के लिए, उनके वेतन के अनुसार रियायती दर पर रेल के टिकट दिए जाने चाहिए।

5. सरकारी एवं गैर-सरकारी विद्यालयों के शिक्षकों की सेवा-दशाओं में समानता स्थापित की जानी चाहिए।
6. ग्रामों में कार्य करने वाले शिक्षकों को निवास-स्थान प्रदान किये जाने के लिए प्रयत्न किये जाने चाहिए।
7. शिक्षकों को बड़े नगरों में मकान के किराये के लिए भत्ता देने की प्रथा आरम्भ की जानी चाहिए।
8. शिक्षकों के लिए सरकारी गृह-निर्माण-योजनाओं को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
9. शिक्षकों को सभी नागरिक अधिकारों का उपभोग करने की स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए।
10. शिक्षकों में प्रचलित व्यक्तिगत ट्यूशनों की प्रथा को नियंत्रित किया जाना चाहिए।
11. शिक्षकों पर किसी प्रकार के निर्वाचनों में भाग लेने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए।
12. शिक्षा के सभी स्तरों पर अध्यापिकाओं की नियुक्ति को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।
13. अध्यापिकाओं के लिए "पत्र-व्यवहार द्वारा शिक्षा" (Correspondence Courses) की सुविधाओं में विस्तार किया जाना चाहिए।
14. ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करने वाली अध्यापिकाओं को विशेष भत्ते दिये जाने चाहिए।

4 अध्यापक-शिक्षा
Teacher Education

"आयोग" ने अध्यापकों की व्यावसायिक शिक्षा के महत्त्व को दर्शाते हुए लिखा है :—"शिक्षा की गुणात्मक उन्नति के लिए अध्यापकों की व्यावसायिक शिक्षा का ठोस कार्यक्रम अनिवार्य है।"

"A sound programme of professional education of teachers is essential for the qualitative improvement of education."—*Education Commission Report*, p 67

अध्यापक-शिक्षा के उपर्युक्त महत्त्व को ध्यान में रखते हुए, 'आयोग" ने पहले अध्यापक-शिक्षा के दोषों का उल्लेख किया है और उसके बाद इस शिक्षा के सुधार के सम्बन्ध में अपने विचारों को लेखबद्ध किया है, यथा :—

1. अध्यापक-शिक्षा के दोष Defects of Teacher Education—'आयोग" के मतानुसार, अध्यापक-शिक्षा के प्रमुख दोष इस प्रकार हैं :—

1. प्रशिक्षण संस्थाओं का कार्य—निम्न या साधारण कोटि का है।
2. प्रशिक्षण-संस्थाओं में योग्य अध्यापकों का अभाव है।

3. प्रशिक्षण-संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में नवीनता, सजीवता एवं वास्तविकता का अभाव है।
4. प्रशिक्षण-संस्थाओं द्वारा दिया जाने वाला प्रशिक्षण अधिकांश रूप में परम्परागत है।
5. प्रशिक्षण-संस्थाओं में सिखाई जाने वाली शिक्षण-विधियाँ घिसी-पिटी हैं और शिक्षा के वर्तमान उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायता नहीं देती हैं।
6. प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं का इन विद्यालयों की दैनिक समस्याओं से कोई सम्बन्ध नहीं है।
7. माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं का इन विद्यालयों की दैनिक समस्याओं और विश्वविद्यालय के साहित्यिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है।

अध्यापक-शिक्षा के उपरिवर्णित दोषों का निराकरण करने के लिए, "आयोग" ने जो सुझाव दिये हैं, उनमें से निम्नांकित महत्त्वपूर्ण हैं :—

2. अध्यापक-शिक्षा की पृथक्ता का अन्त : **Removal of Isolation of Teacher Education**—"आयोग" का कथन है :—"अध्यापकों की व्यावसायिक शिक्षा को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए, उसे एक ओर विश्वविद्यालयों के साहित्यिक जीवन से और दूसरी ओर विद्यालय-जीवन एवं शिक्षा-सम्बन्धी नवीनतम् विचारों के सम्पर्क में लाया जाना परम आवश्यक है।" इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए, "आयोग" ने अधोलिखित सुझाव प्रस्तुत किये हैं :—

1. "शिक्षा" विषय को विश्वविद्यालयों के बी० ए० एवं एम० ए० के पाठ्यक्रमों में सम्मिलित किया जाना चाहिए।
2. कुछ विशिष्ट विश्वविद्यालयों में अध्यापक-शिक्षा के कार्यक्रमों के विकास, अध्ययन एवं अनुसंधान के लिये "शिक्षा-विभागों" (Schools of Education) की सृष्टि की जानी चाहिए।
3. सब प्रशिक्षण-संस्थाओं में "प्रसार-सेवा-विभाग" (Extension Service Department) का निर्माण किया जाना चाहिये।
4. प्रशिक्षण-काल में छात्राध्यापकों के शिक्षण-अभ्यास के लिये केवल मान्यता-प्राप्त स्कूलों का ही चयन किया जाना चाहिये।
5. प्रशिक्षण-संस्थाओं एवं उनसे सम्बद्ध शिक्षण-अभ्यास (Teaching Practice) के स्कूलों के अध्यापकों को समय-समय पर एक-दूसरे के स्थान पर कार्य करना चाहिये।
6. विभिन्न प्रकार की शिक्षण-संस्थाओं की पृथक्ता का अन्त करने के लिए, सबको "ट्रेनिंग कालिजों" की संज्ञा दी जानी चाहिये और उनको अपने क्षेत्रों के विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध किया जाना चाहिए।

7. सब राज्यो मे "कॉम्प्रीहेन्सिव कॉलिजो" (Comprehensive Colleges) की स्थापना की जानी चाहिये और उनमें शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिये अध्यापकों को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिये ।
8. प्रत्येक राज्य मे 'अध्यापक-शिक्षा की राज्य-परिषद्' (State Board *of Teacher Education*) का निर्माण किया जाना चाहिये, जिस पर सब क्षेत्रों एव सब स्तरो के प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व होना चाहिये ।

3. व्यावसायिक शिक्षा की उन्नति : Improvement in Professional Education—"आयोग" ने अध्यापको की व्यावसायिक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति करने के लिये निम्नांकित सिफारिशें की हैं :—

1. शिक्षण के अभ्यास मे गुणात्मक उन्नति करने के प्रयास किये जाने चाहिए ।
2 छात्राध्यापकों के लिये विशिष्ट कार्यक्रमो एवं पाठ्यक्रमो का निर्माण किया जाना चाहिये ।
3. अध्यापक-शिक्षा के सब स्तरो पर कार्यक्रमो एव पाठ्यक्रमों को उन आधारभूत उद्देश्यों को ध्यान मे रखकर दोहराया जाना चाहिये, जिनके लिये छात्राध्यापकों को तैयार किया जा रहा है ।
4. सब प्रशिक्षण-सस्थाओ के पाठ्यक्रमो की शिक्षा एव विषय-सामग्री मे इस प्रकार रूपान्तर किया जाना चाहिये जिससे छात्राध्यापकों को विद्यालयों मे पढ़ाये जाने वाले विषयों के उद्देश्यों, प्रयोजनों एव जटिलताओं का समुचित ज्ञान प्राप्त हो जाय ।
5. विश्वविद्यालयो मे सामान्य एव व्यावसायिक शिक्षा के एकीकृत (Integrated) पाठ्यक्रम प्रचलित किये जाने चाहिये ।

4. प्रशिक्षण की अवधि Period of Training—"आयोग" ने विभिन्न प्रशिक्षण-स्तरो की अवधि के विषय मे अधोलिखित विचार अंकित किये हैं :—

1. प्राथमिक विद्यालयों के उन अध्यापको के लिये, जिन्होंने सेकण्डरी स्कूल कोर्स पास किया है, प्रशिक्षण की अवधि 2 वर्ष की होनी चाहिए ।
2. माध्यमिक विद्यालयों के उन अध्यापको के लिए, जो स्नातक हैं, प्रशिक्षण की अवधि अभी तो 1 वर्ष की होनी चाहिये, पर कुछ समय के पश्चात् 2 वर्ष की कर दी जानी चाहिए ।
3. शिक्षा मे स्नातकोत्तर (M. Ed.) पाठ्यक्रम की अवधि $1\frac{1}{2}$ वर्ष की होनी चाहिए।

5. प्रशिक्षण-सस्थाओं की उन्नति Improvement in Training Institutions—"आयोग" ने प्रशिक्षण-सस्थाओं की गुणात्मक
सिफारिशें की हैं :—

1. ट्रेनिंग कॉलेजों के अध्यापकों के पास शिक्षा की उपाधि (Degree in Education) के अतिरिक्त दो स्नातकोत्तर उपाधियाँ (Post-Graduate Degrees) होनी चाहिए।
2. ट्रेनिंग कॉलेजों के अध्यापकों में "डाक्टर" (Doctorate) की उपाधियों वाले शिक्षकों की संख्या उचित अनुपात में होनी चाहिये।
3. गणित, विज्ञान, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र ऐसे विषयों की शिक्षा देने के लिए विशेषज्ञों की नियुक्ति की जानी चाहिए, चाहे उन्होंने प्रशिक्षण प्राप्त न किया हो।
4. प्रत्येक प्रशिक्षण-संस्था से एक प्रयोगात्मक (Experimental) विद्यालय संलग्न होना चाहिए।
5. प्रशिक्षण-संस्थाओं में छात्राध्यापकों से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाना चाहिए और उनको ऋण एवं छात्रवृत्तियों के रूप में आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था की जानी चाहिए।
6. वर्तमान प्रशिक्षण-संस्थाओं के पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं आदि में सुधार किया जाना चाहिए, क्योंकि उनकी दशा अत्यधिक असंतोष-जनक है।
7. विद्यालयों में कार्य करने वाले अप्रशिक्षित शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिए केन्द्रीय स्थानों पर "ग्रीष्मकालीन संस्थाओं" (Summer Institutes) की योजना आरम्भ की जानी चाहिए।
8. प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं के अध्यापकों के पास या तो "शिक्षा" में एम० ए० (M. A. in Education) की उपाधि होनी चाहिये, या बी० एड० (B. Ed.) की उपाधि के साथ-साथ कोई स्नातकोत्तर (M. A., M. Sc.) उपाधि होनी चाहिये।

6. **प्रशिक्षण-सुविधाओं का विस्तार : Expansion of Training Facilities**—"आयोग" ने प्रशिक्षण-सुविधाओं का विस्तार करने के उद्देश्य से अग्रांकित विचार व्यक्त किये हैं :—

1. प्रशिक्षण-संस्थाओं के आकार में एक निश्चित योजना के अनुसार पर्याप्त विस्तार किया जाना चाहिये।
2. पत्र-व्यवहार द्वारा शिक्षा एवं अल्पकालीन प्रशिक्षण की सुविधाओं में विस्तार किया जाना चाहिये।
3. शिक्षकों की माँग की पूर्ति करने और शिक्षण-कार्य में संलग्न अप्रशिक्षित शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिये प्रत्येक राज्य को प्रशिक्षण की सुविधाओं में विस्तार करने के लिये योजना तैयार करनी चाहिये।
4. विद्यालय-शिक्षकों को अध्यापन-कार्य करते हुये शिक्षा तथा प्रशिक्षण

प्राप्त करने की सुविधायें प्रदान करने के लिये विश्वविद्यालयों तथा प्रशिक्षण-संस्थाओं को विभिन्न प्रकार के कार्यक्रमों का आयोजन करना चाहिये।

5. छात्र-संख्या व जनबल
Enrolment & Manpower

"आयोग" ने "छात्र-संख्या एवं जनबल" के अन्तर्गत 2 मुख्य विषयों पर विचार किया है—छात्र-संख्या की राष्ट्रीय नीति और माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा की छात्र-संख्या-सम्बन्धी नीतियाँ। हम निम्नांकित पंक्तियों में इनका वर्णन कर रहे हैं; यथा :—

1. छात्र-संख्या की राष्ट्रीय नीति : National Enrolment Policy— "आयोग" का कथन है :—"आगामी बीस वर्षों में छात्र-संख्या से सम्बन्धित राष्ट्रीय नीति के सामान्य रूप से निम्नलिखित लक्ष्य होने चाहिए :—

1. प्रत्येक बालक एवं बालिका को कम-से-कम 7 वर्ष तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा देना।
2. निम्न माध्यमिक शिक्षा का अधिक-से-अधिक सम्भव विस्तार करना।
3. इच्छुक एवं योग्य व्यक्तियों के लिए उच्चतर माध्यमिक एवं विश्व-विद्यालय-शिक्षा का प्रबंध करना।
4. उपर्युक्त दोनों प्रकार की शिक्षा को प्रशिक्षित व्यक्तियों की माँग के अनुरूप बनाना।
5. उपर्युक्त दोनों प्रकार की शिक्षा के आवश्यक स्तरों को यथावत् बनाए रखना।
6. उपर्युक्त दोनों प्रकार की शिक्षा ग्रहण करने के लिए निर्धन छात्रों को पर्याप्त आर्थिक सहायता देना।
7. व्यावसायिक, प्राविधिक एवं जीविका-सम्बन्धी शिक्षा (Professional, Technical & Vocational Education) के विस्तार पर बल देना।
8. कृषि एवं उद्योगों की उन्नति के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों को तैयार करना।
9. प्रतिभाशाली छात्रों का चयन करके, उनको अपनी सब शक्तियों का पूर्ण विकास करने में सहायता देना।
10. जनसाधारण की निरक्षरता का उन्मूलन करना।
11. वयस्क-शिक्षा एवं अनवरत शिक्षा (Continuation Education) के उपयुक्त कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना।
12. शैक्षिक अवसरों में समानता स्थापित करने के लिए निरन्तर प्रयत्न करना।

2. माध्यमिक व उच्च शिक्षा में छात्र-संख्या-सम्बन्धी नीतियाँ : *Enrolment* **Policies in Secondary & Higher Education**—इन नीतियों का मुख्य उद्देश्य, जैसा कि "आयोग" के निम्नांकित विचारों से विदित हो जायगा, छात्रों की बढ़ती हुई भीड़ को रोकना है :—

1. उत्तर-प्राथमिक शिक्षा (Post-Primary Education) में छात्र-संख्या-सम्बन्धी नीति को अग्रांकित 4 तथ्यों को ध्यान में रखकर निर्धारित किया जाना चाहिए :—(i) माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के लिए जनता की माँग; (ii) छात्रों की सब जन्मजात योग्यताओं का पूर्ण विकास; (iii) शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर उत्तम शैक्षिक सुविधाओं की व्यवस्था करने की समाज की क्षमता; और (vi) जनबल की आवश्यकताएँ।
2. प्रथम तीन पंचवर्षीय योजनाओं में माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा के लिए जनता की माँग में अत्यधिक वृद्धि हुई है और भविष्य में होती रहेगी। शिक्षा की इस बढ़ती हुई माँग को पूर्ण करने के लिए शिक्षकों, धन या शिक्षण-सामग्री को जुटाना देश की आर्थिक स्थिति को ध्यान में रखते हुए असम्भव है। अतः हायर सेकण्डरी स्कूलों, कॉलेजों एवं विश्व-विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने के इच्छुक छात्रों के सम्बन्ध में 'चयनात्मक प्रवेश-प्रणाली" (Policy of Selective Admissions) की नीति का अनुसरण किया जाना आवश्यक है।
3. समस्त योग्य छात्रों को माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा प्रदान करने के लक्ष्य को प्राप्त करने में धनी समाज भी कठिनाई का अनुभव करते हैं। कम-से-कम निकट भविष्य में भारत द्वारा इस लक्ष्य की प्राप्ति असम्भव है। हमें इस लक्ष्य की प्राप्ति का प्रयास करना चाहिए। पर जब तक हम ऐसा न कर सकें, तब तक हमारी छात्र-संख्या-सम्बन्धी राष्ट्रीय नीति का लक्ष्य यह होना चाहिए :—माध्यमिक शिक्षा समाप्त करने वाले प्रतिभाशाली छात्रों में से 5 से 15 प्रतिशत को उच्च शिक्षा प्राप्त करने की आज्ञा दी जानी चाहिए और इन छात्रों की आर्थिक कठिनाइयों का समाधान करने के लिए, इनको उदारतापूर्वक छात्र-वृत्तियाँ दी जानी चाहिए।
4. पिछले समय में धन, योग्य शिक्षकों, शिक्षण-सामग्री आदि के अभाव के प्रति ध्यान न देकर माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा का विस्तार तीव्र गति से किया गया है। परिणामस्वरूप, शिक्षा का स्तर गिर गया है। अतः देश के हित को ध्यान में रखकर भविष्य में इस नीति का अनुसरण नहीं किया जाना चाहिए।
5. भविष्य में शिक्षा की सुविधाओं का विस्तार—शिक्षित व्यक्तियों को रोजगार मिलने के अवसरों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए।

6. शैक्षिक अवसरों की समानता
Equalization of Educational Opportunities

"आयोग" के शब्दों में :—"शिक्षा का एक महत्त्वपूर्ण सामाजिक उद्देश्य शिक्षा प्राप्त करने के अवसरों में समानता स्थापित करना है, ताकि पिछड़े हुए कम अधिकारों वाले वर्ग एवं व्यक्ति अपनी दशा में सुधार करने के लिए शिक्षा साधन के रूप में प्रयोग कर सकें।"

"One of the important social objectives of education is equalize opportunity, enabling the backward or underprivileg classes and individuals to use education as a lever for the improv ment of their condition."—*Education Commission Report*, p. 108.

"आयोग" ने शिक्षा के क्षेत्र में दो मुख्य प्रकार की व्यापक असमानताएँ बताई हैं :—(i) शिक्षा के सब पक्षों एवं स्तरों पर बालकों एवं बालिकाओं की शिक्षा में व्यापक असमानता, और (ii) उन्नत वर्गों, पिछड़े वर्गों, अछूत जातियों, पहाड़ी जातियों एवं आदिवासियों की शिक्षा में व्यापक असमानता। इन दोनों प्रकार की असमानताओं को दूर करने के लिए, "आयोग" ने 4 सुझाव दिए हैं :—(1) नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था, (2) शिक्षा के खर्चों में कमी, (3) छात्रवृत्तियों की व्यवस्था, और (4) छात्रवृत्तियों की योजना। हम इन चारों सुझावों से सम्बन्धित "आयोग" के विचारों को लिपिबद्ध कर रहे हैं, यथा —

1. नि:शुल्क शिक्षा : Free Education—"आयोग" ने नि:शुल्क शिक्षा के सम्बन्ध में अधोलिखित विचार व्यक्त किए हैं —

1 चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्त में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा को नि:शुल्क कर दिया जाना चाहिए।

2 पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त तक या उससे पूर्व निम्न माध्यमिक शिक्षा को नि:शुल्क कर दिया जाना चाहिए।

3 पाँचवीं पंचवर्षीय योजना के अन्त में 10 वर्ष की अवधि में उच्चतर माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय-शिक्षा को योग्य एवं निर्धन छात्रों के लिए नि:शुल्क कर दिया जाना चाहिए।

2. शिक्षा के खर्चों में कमी : Reduction in Costs of Education—"आयोग" ने शिक्षा के खर्चों में कमी करने के लिए निम्नलिखित विचार प्रकट किए हैं :—

1. प्राथमिक विद्यालयों के छात्रों को पाठ्य-पुस्तकें एवं लेखन-सामग्री मुफ्त दी जानी चाहिए।

2 माध्यमिक विद्यालयों, कालेजों एवं विश्वविद्यालयों में "पुस्तक-बैंकों" (Book-Banks) की व्यवस्था की जानी चाहिए, जहाँ से छात्रों को पाठ्य-पुस्तकें दी जानी चाहिए।

3. माध्यमिक विद्यालयों एवं उच्च शिक्षा की संस्थाओं के पुस्तकालयों में पाठ्य-पुस्तकें पर्याप्त संख्या में होनी चाहिए, ताकि छात्र उनको प्रयोग कर सकें।
4. योग्य छात्रों को पाठ्य-पुस्तकों एवं अन्य आवश्यक पुस्तकों को खरीदने के लिए आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए।

3. छात्रवृत्तियों की व्यवस्था : Provision for Scholarships—"आयोग" ने छात्रवृत्तियों के सम्बन्ध में अग्रांकित विचार लिपिबद्ध किए हैं :—

1. निम्न प्राथमिक स्तर के उपरान्त शिक्षा के सभी स्तरों पर छात्रवृत्तियों के कार्यक्रम को संगठित किया जाना चाहिए।
2. जब छात्र—शिक्षा के एक स्तर से दूसरे स्तर पर पहुँचें, तब इस बात का पूर्ण ध्यान रखा जाना चाहिए कि कोई निर्धन पर योग्य विद्यार्थी—छात्रवृत्ति न मिल सकने के कारण अपनी भावी शिक्षा से वंचित न रह जाय।
3. उच्चतर प्राथमिक स्तर पर 1975-76 तक 2·5 प्रतिशत प्रतिभाशाली छात्रों को और 1985-86 तक 5 प्रतिशत योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिए।
4. माध्यमिक स्तर पर 15 प्रतिशत प्रतिभाशाली छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिए।
5. पूर्व-स्नातक-स्तर पर 1975-76 तक 15 प्रतिशत योग्य छात्रों को और 1985-86 तक 25 प्रतिशत योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिए।
6. स्नातकोत्तर-स्तर पर 1975-76 तक 25 प्रतिशत योग्य छात्रों को और 1985-86 तक 50 प्रतिशत योग्य छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिए।
7. विश्वविद्यालय-स्तर पर दो प्रकार की छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की जानी चाहिए :—(i) छात्रावासों में रहकर कॉलेज या विश्वविद्यालय में अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए। इन छात्रों को छात्रवृत्तियों के रूप में इतना धन दिया जाना चाहिए, जिससे शिक्षा से सम्बन्धित सम्पूर्ण प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष व्यय की पूर्ति हो जाय। (ii) अपने घरों पर रहकर अध्ययन करने वाले छात्रों के लिए। इन छात्रों को केवल इतनी आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए, जिससे अधिकांश प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष व्यय की पूर्ति हो जाय।

4. छात्रवृत्तियों की योजनाएँ : Schemes of Scholarships—"आयोग" ने छात्रवृत्तियों की अनेक प्रकार की योजनाओं के बारे में अपने विचार अंकित किए हैं; यथा :—

1. राष्ट्रीय छात्रवृत्तियों (National Scholarships) की योजना का विस्तार एवं विकेन्द्रीकरण किया जाना चाहिए।
2. राष्ट्रीय छात्रवृत्तियों की योजना की पूर्ति करने के लिए "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" द्वारा "विश्वविद्यालय-छात्रवृत्तियों" (University Scholarships) की योजना आरम्भ की जानी चाहिए।
3. व्यावसायिक शिक्षा (Vocational Education) ग्रहण करने वाले विद्यार्थियों में से विद्यालय-स्तर पर 30 प्रतिशत को एवं कॉलिज-स्तर पर 50 प्रतिशत छात्रों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जानी चाहिए।
4. ऋण-छात्रवृत्तियों (Loan Scholarships) की योजना को कुछ सीमा तक सामान्य शिक्षा प्राप्त करने वाले योग्य छात्रों के लिए क्रियान्वित किया जाना चाहिए।
5. उक्त योजना को विज्ञान एवं व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण करने वाले सब छात्रों के लिए अनिवार्य रूप में लागू किया जाना चाहिए।
6. असाधारण प्रतिभा के विद्यार्थियों को विदेशों में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रति वर्ष 500 छात्रवृत्तियाँ प्रदान की जानी चाहिए।
7. छात्रवृत्तियों पर किए जाने वाले व्यय को कम करने के लिए विद्यार्थियों को आवागमन एवं अध्ययन-काल में धनोपार्जन की सुविधाएँ दी जानी चाहिए।

7 विद्यालय-शिक्षा का विस्तार
Expansion of School Education

"आयोग" की धारणा है कि यद्यपि पिछले समय में विद्यालय-शिक्षा का पर्याप्त विस्तार हुआ है, तथापि देश की आवश्यकताओं को पूर्ण न कर सकने के कारण, उसको संतोषजनक नहीं कहा जा सकता है। अपनी इस धारणा के फलस्वरूप "आयोग' ने विद्यालय-शिक्षा के विभिन्न अंगों के विस्तार के विषय में अपने विचार प्रकट किए हैं और सुझाव भी दिए हैं। हम इनका वर्णन निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत उपस्थित कर रहे हैं, यथा —

1. पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का विस्तार : Expansion of Pre-Primary Education—"आयोग" ने पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए अग्रांकित सुझाव दिए हैं :—

1. प्रत्येक राज्य के "राज्य-शिक्षा-संस्थान' (State Insutute of Education) में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए राज्य-स्तर पर एक केन्द्र की स्थापना की जानी चाहिए.
2. प्रत्येक जिले में पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करने के लिए एक केन्द्र की सृष्टि की जानी चाहिए। इस केन्द्र के मुख्य कार्य —

होने चाहिए :—(i) पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देना, (ii) इन विद्यालयों में कार्य करने वाले शिक्षकों के अध्यापन का निरीक्षण करना और इन शिक्षकों के लिए "अभिनवन-पाठ्यक्रमों" (Refresher Courses) का संचालन करना।

3. व्यक्तिगत प्रबंधकों को उदार आर्थिक सहायता देकर, पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना एवं संचालन करने के लिए प्रेरणा दी जानी चाहिए।
4. पूर्व-प्राथमिक शिक्षा में परीक्षण-कार्य (Experimentation) को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, ताकि इस शिक्षा के विस्तार के लिए कम खर्चीले उपायों की खोज की जा सके।
5. पूर्व-प्राथमिक विद्यालयों के कार्यक्रमों में ज्ञानेन्द्रिय-शिक्षा (Sensorial Education) के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार की शारीरिक क्रियाओं को स्थान दिया जाना चाहिए।
6. शिशुओं के "खेल-केन्द्रों" (Play Centres) को प्राथमिक विद्यालयों से सम्बद्ध किया जाना चाहिए।

2. प्राथमिक शिक्षा का विस्तार : Expansion of Primary Education—"आयोग" ने प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिये अग्रांकित सुझाव दिये हैं :—

1. 1975-76 तक देश के सब बच्चों के लिये 5 वर्ष की उत्तम प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिये।
2. 1985-86 तक देश के सब बच्चों के लिये 7 वर्ष की उत्तम प्राथमिक शिक्षा की योजना पूर्ण कर दी जानी चाहिये और भारतीय संविधान द्वारा प्रतिपादित लक्ष्य की प्राप्ति हो जानी चाहिए।
3. अपव्यय एवं अवरोधन (Wastage & Stagnation) को अधिक-से-अधिक कम करने के लिए प्रयास किये जाने चाहिए।
4. जो बालक कक्षा 7 पास करने के समय 14 वर्ष के न हों और अपनी सामान्य शिक्षा के क्रम को जारी न रखना चाहते हों, उनको इस आयु तक उनकी रुचि के अनुसार व्यावसायिक शिक्षा दी जानी चाहिए।
5. प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करने के लिए, प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना इस प्रकार की जानी चाहिये कि लोअर प्राइमरी स्कूल और अपर प्राइमरी स्कूल किसी बालक के घर से क्रमशः 1 और 3 मील से अधिक दूर न हों।
6. जो बालक निम्न प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद आगे अध्ययन न करना चाहते हों, उनके लिये अल्पकालीन शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

3. माध्यमिक शिक्षा का विस्तार : Expansion of Secondary Education—"आयोग" का मत है कि धनाभाव के कारण कुछ वर्षों तक माध्यमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाया जाना सम्भव नहीं है। अतः माध्यमिक शिक्षा का विस्तार निम्नांकित उपायों एवं सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए :—

1. माध्यमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों की संख्या को शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता के अनुसार निश्चित किया जाना चाहिए।
2. माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण (Vocationalization) इस प्रकार किया जाना चाहिए कि निम्न माध्यमिक स्तर पर 20 प्रतिशत छात्रों को एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 50 प्रतिशत छात्रों को व्यावसायिक शिक्षा प्रदान की जा सके।
3. माध्यमिक शिक्षा में अवसरों की समानता स्थापित की जानी चाहिए।
4. बालिकाओं, जनजातियों एवं अछूत जातियों में माध्यमिक शिक्षा का प्रसार करने के लिए विशेष योजनाओं का निर्माण किया जाना चाहिए।
5. प्रत्येक जिले में माध्यमिक शिक्षा के प्रसार के लिए योजनाएँ तैयार की जानी चाहिए और उनको 10 वर्ष की अवधि में पूर्ण रूप से क्रियान्वित कर दिया जाना चाहिए।
6. माध्यमिक विद्यालयों में अध्ययन करने के लिए केवल योग्य छात्रों का ही चयन किया जाना चाहिए।
7. निम्न एवं उच्चतर माध्यमिक स्तरों पर छात्रों को पूर्णकालीन एव अल्पकालीन व्यावसायिक शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।
8. बालिकाओं की शिक्षा का विस्तार करने के लिए आगामी 20 वर्षों में ठोस क़दम उठाए जाने चाहिए।

4. माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण : Vocationalization of Secondary Education—"आयोग" ने माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण पर विशेष बल दिया है और इसका कारण बताते हुए लिखा है —"माध्यमिक स्कूल के स्तर पर शिक्षा का व्यावसायीकरण करके शिक्षा और उत्पादन में सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।"

"The link between education and productivity can be forged through vocationalization of education at the secondary school level."—*Education Commission Report*, p 6.

"आयोग" ने अपने विचार को ध्यान में रखते हुए, पहले व्यावसायिक शिक्षा के विषय में सामान्य सुझाव दिए हैं, और उसके बाद निम्न एवं उच्च माध्यमिक स्तरों पर व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में अपनी सिफ़ारिशें प्रस्तुत की हैं; यथा :—

(i) सामान्य सुझाव : General Suggestions—"आयोग" ने व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में निम्नांकित सामान्य सुझाव दिए हैं :—

1. माध्यमिक शिक्षा का विशेष रूप से अधिक-से-अधिक व्यावसायीकरण किया जाना चाहिए ।
2. उद्योगों के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों की माँग की पूर्ति करने के लिए माध्यमिक शिक्षा को व्यावसायिक बनाया जाना चाहिए ।
3. निम्न एवं उच्चतर माध्यमिक स्तरों पर पूर्णकालीन एवं अल्पकालीन व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए ।
4. माध्यमिक विद्यालयों को व्यावसायिक बनाने के लिए केन्द्रीय-सरकार द्वारा राज्य-सरकारों को विशेष अनुदान दिए जाने चाहिए ।
5. बालिकाओं को व्यावसायिक शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए ।

(ii) निम्न माध्यमिक स्तर : Lower Secondary Stage—"आयोग" ने निम्न माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में अग्रांकित सिफ़ारिशें की हैं :—

1. निम्न माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या सन् 1986 तक इस स्तर की सम्पूर्ण छात्र-संख्या की लगभग 20 प्रतिशत कर दी जानी चाहिए ।
2. औद्योगिक प्रशिक्षण-संस्थाओं (Industrial Training Institutes) में प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने वाले छात्र प्रवेश कर सकते हैं । इस समय इन संस्थाओं में प्रवेश करने की आयु 15 वर्ष है । इस प्रवेश-आयु को कम करके 14 वर्ष कर दिया जाना चाहिए, ताकि प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने वाले छात्रों को इन संस्थाओं में प्रवेश करने के लिए 1 वर्ष तक प्रतीक्षा न करनी पड़े ।
3. टेकनिकल स्कूलों में पढ़ाए जाने वाले "अन्तिम पाठ्यक्रमों" (Terminal Courses) में विस्तार किया जाना चाहिए, ताकि छात्रों को विभिन्न उद्योगों के लिए प्रशिक्षण प्राप्त हो सके ।
4. कुछ छात्र 7वीं या 8वीं कक्षा के बाद अपने पारिवारिक व्यवसाय में प्रवेश करने के लिए या कोई छोटा-मोटा निजी कारोबार करने के लिए विद्यालयों को छोड़ देते हैं । ऐसे छात्रों के लिए विविध प्रकार की अल्पकालीन शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए ।
5. ग्रामीण क्षेत्रों के अनेक बालक अपने परिवारों के कृषि-सम्बन्धी कार्यों में सहयोग देने के लिए प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने के बाद किसी प्रकार की शिक्षा ग्रहण नहीं करते हैं । ऐसे बालकों के लिए कृषि-सम्बन्धी पाठ्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए ।

6. प्राथमिक शिक्षा पूर्ण करने से पूर्व या कुछ समय पश्चात् अनेक बालिकाओं के विवाह हो जाते हैं। ऐसी बालिकाओं के लिए गृह-विज्ञान एवं सामान्य शिक्षा का प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

(iii) उच्चतर माध्यमिक स्तर : Higher Secondary Stage—"आयोग" ने उच्चतर माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा के विषय में नीचे लिखी सिफ़ारिशें की हैं :—

1. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या सन् 1986 तक इस स्तर की सम्पूर्ण छात्र-संख्या की लगभग 50 प्रतिशत कर दी जानी चाहिए।
2. पॉलिटेकनीकों (Polytechnics) में विभिन्न विषयों के पूर्णकालीन पाठ्यक्रमों की सुविधाओं में विस्तार किया जाना चाहिए।
3. उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में विभिन्न उद्योगों से सम्बन्धित पूर्णकालीन और अल्पकालीन शिक्षा का आयोजन किया जाना चाहिए।
4. विभिन्न उद्योगों में कार्य करने वाले जो व्यक्ति व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण करना चाहते हैं, उन्हें अवकाश दिया जाना चाहिए और उनके लिए "पत्राचार पाठ्यक्रमों" (Correspondence Coures) का कार्यक्रम आरम्भ किया जाना चाहिए।
5. कृषि एवं इंजीनियरिंग के कार्यों में सलग्न उन व्यक्तियों के लिए जो अपने ज्ञान का नवीनीकरण करना चाहते हैं, कृषि और इंजीनियरिंग के पॉलिटेकनीकों में "संक्षिप्त-सघन पाठ्यक्रमों" (Short Condensed Courses) की व्यवस्था की जानी चाहिए।
6. कुछ औद्योगिक प्रशिक्षण-संस्थाएँ ऐसी हैं, जिनमें 10वीं कक्षा पास करने के बाद ही बालकों का प्रवेश होता है। इन संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में अति तीव्र गति से विस्तार किया जाना चाहिए।
7. स्वास्थ्य, वाणिज्य, प्रशासन, लघु-उद्योगों आदि से सम्बन्धित 6 माह से 3 वर्ष तक के पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

8 विद्यालय-पाठ्यक्रम
School Curriculum

"आयोग" का मत है कि विद्यालय-पाठ्यक्रम में अनेक दोषों का समावेश हो गया है। इन दोषों को दूर करने और पाठ्यक्रम में सुधार करने के लिए, "आयोग" ने विभिन्न कक्षाओं के लिए जो पाठ्यक्रम निर्धारित किए हैं, उनका वर्णन दृष्टव्य है :—

1. निम्न प्राथमिक स्तर : Lower Primary Stage : Classes I to IV

1. एक भाषा—मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा (Mother Tongue or

Regional Language), 2. गणित (Mathematics), 3. वातावरण का अध्ययन (Study of Environment)—कक्षा 3 और 4 में विज्ञान एवं सामाजिक अध्ययन की शिक्षा, 4. सृजनात्मक क्रियाएँ (Creative Activities), 5. कार्य-अनुभव एवं समाज-सेवा (Work-Experience & Social Service), 6. स्वास्थ्य-शिक्षा (Health Education)।

2. उच्चतर प्राथमिक स्तर : Higher Primary Stage : Classes V to VII

1. दो भाषाएँ—(अ) मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा, (ब) हिन्दी या अंग्रेजी, 2. गणित, 3. विज्ञान, 4. सामाजिक अध्ययन (इतिहास, भूगोल एवं नागरिक-शास्त्र), 5. कला (Art), 6. कार्य-अनुभव एवं समाज-सेवा, 7. शारीरिक शिक्षा (Physical Education), 8. नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा (Education in Moral & Spiritual Values)।

3. निम्न माध्यमिक स्तर : Lower Secondary Stage : Classes : VIII to X

1. तीन भाषाएँ—अहिन्दी-भाषी क्षेत्रों में सामान्य रूप से अग्रांकित भाषाएँ होनी चाहिए : (अ) मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा, (ब) उच्च या निम्न स्तर की हिन्दी, (स) उच्च या निम्न स्तर की अंग्रेजी। हिन्दी-भाषी क्षेत्रों में सामान्य रूप से अग्रांकित भाषाएँ होनी चाहिए : (अ) मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा, (ब) अंग्रेजी (या हिन्दी, यदि अंग्रेजी मातृभाषा के रूप में ली गई है), (स) हिन्दी के अतिरिक्त एक अन्य आधुनिक भारतीय भाषा, 2. गणित, 3. विज्ञान, 4. इतिहास, भूगोल तथा नागरिक-शास्त्र, 5. कला, 6. कार्य-अनुभव एवं समाज-सेवा, 7. शारीरिक शिक्षा, 8. नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा।

4. उच्चतर माध्यमिक स्तर : Higher Secondary Stage : Classes XI & XII

1. कोई दो भाषाएँ—जिनमें कोई आधुनिक भारतीय भाषा, कोई आधुनिक विदेशी भाषा एवं कोई शास्त्रीय भाषा सम्मिलित हो, 2. अग्रलिखित में से कोई तीन विषय : (i) एक अतिरिक्त भाषा, (ii) इतिहास, (iii) भूगोल, (iv) अर्थशास्त्र, (v) तर्कशास्त्र (Logic), (vi) मनोविज्ञान, (vii) समाजशास्त्र, (viii) कला, (ix) भौतिकशास्त्र, (x) रसायनशास्त्र, (xi) गणित, (xii) जीव-विज्ञान, (xiii) भूगर्भ-शास्त्र (Geology), (xiv) गृह-विज्ञान (Home Science), 3. कार्य-अनुभव एवं समाज-सेवा, 4. शारीरिक शिक्षा, 5. कला या शिल्प (Art or Craft), 6. नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा।

5. त्रिभाषा-सूत्र में संशोधन : Amendment in the Three-Language Formula—त्रिभाषा-सूत्र के सम्बन्ध में "आयोग" ने लिखा है :—यह फार्मूला सन् 1956 में "केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार-बोर्ड" (Central Advisory Board of Education) के द्वारा प्रतिपादित किया गया था और सन् 1961 में मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में स्वीकार किया गया था। किन्तु, व्यावहारिक रूप में इस फार्मूले को

सफलता प्राप्त नहीं हुई है और इसका यह कहकर घोर विरोध किया जा रहा है कि इसने पाठ्यक्रम को भाषाओं की दृष्टि से बहुत बोझिल बना दिया है। अतः इस सूत्र में संशोधन किया जाना अनिवार्य है। यह संशोधन अधोलिखित सिद्धान्तों के आधार पर किया जाना चाहिए :—

1. संघ की राजभाषा के रूप में हिन्दी—मातृभाषा के बाद महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त करे।
2. छात्रों के लिए अंग्रेजी का ज्ञान उपयोगी है।
3. तीन भाषाओं की शिक्षा प्राप्त करने के लिए सबसे अधिक उपयुक्त स्तर—निम्नतर माध्यमिक है।
4. हिन्दी या अंग्रेजी की शिक्षा उस समय आरम्भ की जाय, जब इनके लिए प्रेरणा या आवश्यकता का अनुभव किया जाय।
5. किसी भी स्तर पर चार भाषाओं के अध्ययन को अनिवार्य न बनाया जाय।

"आयोग" ने उपरिअंकित सिद्धान्तों के आधार पर त्रिभाषा-सूत्र का संशोधित रूप इस प्रकार प्रस्तावित किया है :—

(i) मातृभाषा या क्षेत्रीय अथवा प्रादेशिक भाषा।
(ii) संघ की राजभाषा या सह-राजभाषा (जिस समय तक रह है)।
(iii) एक आधुनिक भारतीय भाषा या यूरोपीय भाषा, जो छात्र ने पाठ्यक्रम में से चुनी न हो और जो शिक्षा का माध्यम न हो।

6. भाषाओं का अध्ययन Study of Languages—"आयोग" ने शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर भाषाओं के अध्ययन के विषय में अग्रांकित विचार लिपिबद्ध किए हैं :—

1. निम्न प्राथमिक स्तर पर छात्रों को साधारणतः एक भाषा का अध्ययन करना चाहिए। यह भाषा—मातृभाषा या क्षेत्रीय अथवा प्रादेशिक भाषा होनी चाहिए।
2. उच्चतर प्राथमिक स्तर पर छात्रों को दो भाषाओं का अध्ययन करना चाहिए। ये भाषाएँ—मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा और उनके राज्य की राजभाषा या सह-राजभाषा होनी चाहिए।
3. निम्न माध्यमिक स्तर पर छात्रों को तीन भाषाओं का अध्ययन करना चाहिए। ये भाषाएँ—मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा, राजभाषा या सह-राजभाषा और एक आधुनिक भारतीय भाषा होनी चाहिए।
4. प्रत्येक राज्य के कुछ चुने हुए विद्यालयों में अंग्रेजी के अलावा अन्य विदेशी भाषाओं की शिक्षा दी जानी चाहिए और छात्रों को उन्हें अंग्रेजी या हिन्दी के बजाय अध्ययन करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

5. अहिन्दी क्षेत्रों के कुछ चुने हुए विद्यालयों में आधुनिक भारतीय भाषाओं की शिक्षा दी जानी चाहिए और छात्रों को उन्हें अंग्रेजी या हिन्दी के बजाय अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।
6. उच्च शिक्षा की संस्थाओं में छात्रों के लिए किसी भी भाषा का अध्ययन अनिवार्य नहीं होना चाहिए।
7. हिन्दी के अध्ययन को प्रोत्साहित करने के लिए सम्पूर्ण देश के विभिन्न स्थानों में कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए, पर किसी को हिन्दी का अध्ययन करने के लिए विवश नहीं किया जाना चाहिए।
8. अंग्रेजी की शिक्षा 5वीं कक्षा से पहले आरम्भ नहीं होनी चाहिए।
9. संस्कृत या अरबी के समान शास्त्रीय भाषाओं की शिक्षा 8वीं कक्षा से आरम्भ होनी चाहिए, पर इन भाषाओं को वैकल्पिक विषयों में स्थान दिया जाना चाहिए।
10. शास्त्रीय भाषाओं के अध्ययन के लिए उच्च शिक्षा के केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिये।

9. शिक्षण-विधियाँ, निर्देशन व मूल्याङ्कन
Teaching Methods, Guidance & Evaluation

"आयोग" ने विद्यालयों में शिक्षण-विधियों, पाठ्य-पुस्तकों, निर्देशन एवं मूल्यांकन के विषय में अत्यन्त सारगर्भित विचार वाक्यबद्ध किए हैं। हम आपके समक्ष इनका वर्णन उपस्थित कर रहे हैं; यथा :—

1. शिक्षण-विधियों में सुधार : Improvement in Teaching Methods—"आयोग" के मतानुसार, हमारे विद्यालयों में प्रयोग की जाने वाली शिक्षण-विधियाँ अब भी प्राचीन एवं परम्परागत हैं। अतः वे छात्रों की दृष्टि से तनिक भी लाभप्रद नहीं हैं। उनमें सुधार करने के लिए, "आयोग" ने अनेक उपयोगी सुझाव दिए हैं; यथा :—

1. शिक्षण-विधियों में लचीलेपन एवं गतिशीलता के गुणों का समावेश किया जाना चाहिए। इस कार्य के लिये स्वयं शिक्षकों को व्यक्तिगत रूप में क़दम उठाने चाहिए।
2. शिक्षा-संस्थाओं के प्रधानाचार्यों एवं शिक्षा के अधिकारियों को शिक्षण-विधियों में सुधार करने के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण करना चाहिए।
3. शिक्षण-विधियों में गतिशीलता का समावेश करने के लिए अध्यापकों में परीक्षण, पहलक़दमी एवं सृजनात्मकता के गुणों का विकास किया जाना चाहिए।
4. नवीन शिक्षण-विधियों का प्रसार करने के लिए प्रदर्शनों, वर्कशॉपों,

परीक्षणों, सेमिनारों एवं अभिनवन-पाठ्यक्रमों के कार्यक्रम आरम्भ किए जाने चाहिए।

5. शिक्षण-विधियों में अनुसंधान-कार्य की उपयुक्त सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

2. पाठ्यपुस्तकों में सुधार : Improvement in Text-Books—"आयोग" का कथन है :—"उत्तम पाठ्य-पुस्तकें—शिक्षण-स्तर के उन्नयन में अतिशय योग देती हैं।"

"आयोग" ने इस बात पर खेद प्रकट किया है कि हमारे देश के विद्यालयों में प्रयोग की जाने वाली पाठ्य-पुस्तकें अत्यन्त निम्न कोटि की हैं। अतः "आयोग" ने उनमें सुधार करने के लिए अग्रांकित विचारों की अभिव्यक्ति की है :—

1. पाठ्य-पुस्तकों को तैयार करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक व्यापक योजना का निर्माण किया जाना चाहिए।
2. पाठ्य-पुस्तकों को "राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण-परिषद्" (NCERT) के द्वारा निर्धारित किए गए सिद्धान्तों के अनुसार तैयार किया जाना चाहिए।
3. पाठ्य-पुस्तकों को लिखने के लिए देश के प्रतिभाशाली व्यक्तियों को पर्याप्त पारिश्रमिक देकर प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
4. पाठ्य-पुस्तकों को तैयार करवाने एवं उनका मूल्यांकन करने का उत्तरदायित्व राज्य के शिक्षा-विभाग पर होना चाहिए।
5. पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण-कार्य को राष्ट्रीय स्तर पर करने के लिए शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा एक "स्वायत्त-संगठन" (Autonomous Organization) की स्थापना की जानी चाहिए।
6. प्रत्येक राज्य में पाठ्य-पुस्तकों के निर्माण के लिए एक विशेष समिति का संगठन किया जाना चाहिए।
7. शिक्षा-विभाग को स्वयं पाठ्यपुस्तकों की बिक्री न करके, इस कार्य को विद्यालयों के सहकारी भंडारों को सौंप देना चाहिए।
8. शिक्षा-विभाग को आकाशवाणी से सम्पर्क स्थापित करके रेडियो द्वारा विभिन्न पाठों के शिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए।

3. प्राथमिक स्तर पर निर्देशन : Guidance at Primary Stage—"आयोग" का मत है कि निर्देशन का कार्य प्राथमिक स्तर से ही प्रारम्भ हो जाना चाहिए। इस सम्बन्ध में "आयोग" के नीचे लिखे सुझाव प्रस्तुत किए हैं :—

1. प्राथमिक विद्यालयों की निम्नतम कक्षा से निर्देशन दिए जाने का कार्य आरम्भ किया जाना चाहिए।
2. प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों को प्रशिक्षण-काल में सब बातों का ज्ञान प्रदान किया जाना चाहिए।

3. अध्यापकों को निर्देशन-कार्य में सहायता देने के लिए व्यावसायिक साहित्य का निर्माण किया जाना चाहिए।
4. आगे की शिक्षा के विषयों का चयन करने के लिए विद्यार्थियों और उनके अभिभावकों को सहायता दी जानी चाहिए।

4. माध्यमिक स्तर पर निर्देशन : Guidance at the Secondary Stage—"आयोग" ने माध्यमिक स्तर पर छात्रों को निर्देशन प्रदान करने के लिए अग्रांकित सुझाव दिए हैं :—

1. माध्यमिक विद्यालयों के सब शिक्षकों को सेवा-काल या प्रशिक्षण-काल में निर्देशन-सम्बन्धी जानकारी प्रदान की जानी चाहिए।
2. सब माध्यमिक विद्यालयों के लिए न्यूनतम निर्देशन का कार्यक्रम तैयार किया जाना चाहिये।
3. 10 माध्यमिक विद्यालयों के लिए एक परामर्शदाता (Counsellor) की नियुक्ति की जानी चाहिए।
4 प्रत्येक ज़िले में कम-से-कम एक माध्यमिक विद्यालय में निर्देशन का सघन कार्यक्रम संचालित किया जाना चाहिए।

5. मूल्यांकन : Evaluation—"आयोग" के अनुसार, मूल्यांकन—शिक्षा का अभिन्न अंग है और इसका शिक्षा के उद्देश्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः मूल्यांकन की विधियाँ वस्तुनिष्ठ, विश्वसनीय एवं व्यावहारिक होनी चाहिए। किन्तु, भारत में प्रचलित परीक्षा-प्रणाली में इन गुणों का सर्वथा अभाव है। इस प्रणाली में सुधार करने और इसे उपयोगी बनाने के लिए, "आयोग" ने निम्नलिखित सुझाव दिए हैं :—

1. मूल्यांकन की नवीन धारणा के अनुसार लिखित परीक्षाओं में सुधार करने के लिए प्रयत्न किए जाने चाहिए, ताकि वे छात्रों की शैक्षिक उपलब्धियों का विश्वसनीय ढंग से माप कर सकें।
2. छात्रों की जिन उपलब्धियों का माप लिखित परीक्षाओं द्वारा किया जाना असम्भव है, उनका माप करने के लिए अन्य विधियों का विकास किया जाना चहिए।
3. निम्न प्राथमिक स्तर पर मूल्यांकन का मुख्य उद्देश्य—छात्रों की मूलभूत कुशलताओं में सुधार करना और उनमें अच्छी आदतों एवं अभिवृत्तियों का विकास करना होना चाहिए।
4. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर छात्रों की उपलब्धियों का मूल्यांकन करने के लिए लिखित परीक्षाओं के अलावा मौखिक एवं निदानात्मक (Diagnostic) परीक्षाओं का भी प्रयोग किया जाना चाहिए। छात्रों के संचित अभिलेख-पत्रों (Cumulative Record Cards) पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।

5. प्राथमिक स्तर की शिक्षा समाप्त करने पर जिले के शिक्षा-अधिकारी द्वारा छात्रों की बाह्य परीक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए। परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले छात्रों को सर्टिफिकेट दिए जाने चाहिए।
6. बाह्य परीक्षाओं के प्रश्नपत्रों में वस्तुनिष्ठ (Objective) प्रश्न देने की प्रथा प्रचलित की जानी चाहिए।
7. आन्तरिक जाँचों (Internal Assessments) को इतना व्यापक बना दिया जाना चाहिए कि उनकी सहायता से छात्रों के सभी पक्षों का मूल्यांकन किया जा सके। बाह्य परीक्षाओं के साथ-साथ इन जाँचों को भी प्रमाणपत्र प्रदान करने का आधार बनाया जाना चाहिए।
8. मूल्यांकन की नवीन विधियों को क्रियान्वित करने के लिए कुछ प्रयोगात्मक विद्यालयों (Experimental Schools) की स्थापना की जानी चाहिए। इन विद्यालयों को कक्षा 10 के अपने छात्रों की स्वयं परीक्षा लेने का अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए।

10. उच्च शिक्षा
Higher Education

"आयोग" ने उच्च शिक्षा के लगभग सभी अंगों के विषय में महत्वपूर्ण विचार अङ्कित किए हैं। हम इनका वर्णन अधोलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत उपस्थित कर रहे हैं; यथा :—

1. विश्वविद्यालयों के लक्ष्य Objectives of Universities—"आयोग" के मतानुसार, आधुनिक भारतीय विश्वविद्यालयों के मुख्य लक्ष्य अधोलिखित होने चाहिए :—

1 नवीन ज्ञान की खोज एवं उसका विकास करना।
2 सत्य की खोज के लिए साहस एवं निर्भयता से कार्य करना।
3. सामाजिक एवं सांस्कृतिक विभिन्नताओं को कम करना।
4. समानता एवं सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित करना।
5. राष्ट्रीय चेतना को विकसित करने के लिए कार्य करना।
6. नवीन खोजों एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर प्राचीन ज्ञान का विश्लेषण करना।
7. जीवन के सब क्षेत्रों में उचित प्रकार का नेतृत्व करने वाले व्यक्तियों को प्रदान करना।
8. प्रतिभाशाली नवयुवकों की खोज करना और उनकी अपनी शक्तियों एवं प्रतिभाओं का विकास करने में सहायता देना।
9. देश के कला, कृषि, विज्ञान, चिकित्सा, प्रौद्योगिकी एवं अन्य व्यवसायों के लिए कुशल एवं प्रशिक्षित व्यक्तियों का निर्माण क

10. छात्रों एवं शिक्षकों में और उनके द्वारा समाज के व्यक्तियों में उचित मान्यताओं और दृष्टिकोणों का विकास करना।

2. नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना : Establishment of New Universities—"आयोग' का मत है कि नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना करने के समय निम्नांकित सिद्धान्तों को ध्यान में रखा जाना चाहिए :—

1. कोई नवीन विश्वविद्यालय—"विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" की सहमति के बिना स्थापित नहीं किया जाना चाहिए।
2. नवीन विश्वविद्यालय सामान्य रूप से उस स्थान पर स्थापित नहीं किए जाने चाहिए, जहाँ कुछ समय से कोई विश्वविद्यालय कार्य कर रहा है।
3. नवीन विश्वविद्यालय की स्थापना तभी की जानी चाहिये जब इस बात का पूरा भरोसा हो कि उससे शिक्षा के स्तर में उन्नति होगी, उसके लिये योग्य शिक्षक उपलब्ध होंगे और उसमें उच्च स्तर का शिक्षण एवं अनुसंधान-कार्य किया जायगा।
4. जिन स्थानों पर अनेक स्नातकोत्तर कॉलेज कार्य कर रहे हैं, उनको संगठित करके विश्वविद्यालयों का रूप प्रदान किया जाना चाहिए।

3. वरिष्ठ विश्वविद्यालयों का विकास : Development of Major Universities—वरिष्ठ विश्वविद्यालयों के विषय में "आयोग" ने अपने विचार इस प्रकार उपस्थित किए हैं :—"उच्च शिक्षा में सबसे महत्त्वपूर्ण सुधार—कुछ वरिष्ठ विश्वविद्यालयों का विकास करना है, जिनमें सर्वोत्तम प्रकार का स्नातकोत्तर-कार्य एवं अनुसंधान सम्भव होगा और जिनके स्तर की संसार के किसी भाग में इस प्रकार की सर्वोत्तम संस्थाओं के स्तर से तुलना की जा सकेगी। "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" को जल्दी-से-जल्दी वर्तमान विश्वविद्यालयों में से लगभग 6 विश्वविद्यालयों को वरिष्ठ विश्वविद्यालयों के रूप में विकसित करने के लिए चुन लेना चाहिए। इनमें से 1 प्रौद्योगिकी का और 1 कृषि का होना चाहिए। यह कार्यक्रम 1966-67 में आरम्भ हो जाना चाहिए। वरिष्ठ विश्वविद्यालयों में असाधारण क्षमता एवं अध्यवसाय के छात्र एवं अध्यापक होने चाहिए।"

"आयोग" के अनुसार, वरिष्ठ विश्वविद्यालयों का विकास करने में निम्नलिखित बातों की ओर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए :—

1. वरिष्ठ विश्वविद्यालयों के व्यय का भार "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" को वहन करना चाहिए।
2. वरिष्ठ विश्वविद्यालयों में "उच्च अध्ययन-केन्द्रों के समूहों (Clusters of Advanced Centres) की स्थापना की जानी चाहिए।
3. वरिष्ठ विश्वविद्यालयों में पूर्व-स्नातक स्तर के लिए कुछ छात्रवृत्तियाँ

होनी चाहिए, ताकि उनको स्नातकोत्तर-कक्षाओं के लिए प्रतिभाशाली छात्र पर्याप्त संख्या में उपलब्ध हो सकें।

4. वरिष्ठ विश्वविद्यालयों के अध्यापकों की नियुक्ति—राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय आधारों पर की जानी चाहिए। यदि आवश्यक हो, तो चुने जाने वाले अध्यापकों को अग्रिम वेतन-वृद्धि या विशेष वेतन-क्रम दिये जाने चाहिए। इन अध्यापकों को अनुसंधान करने के लिये सभी सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

4. कॉलेजों व विश्वविद्यालयों में सुधार : Improvement in Colleges & Universities—"आयोग" ने वर्तमान कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों के सुधार के लिए निम्नांकित सुझाव दिये हैं :—

1. विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध कॉलेजों का उनके कार्य के आधार पर वर्गीकरण किया जाना चाहिए।
2. यदि किसी विश्वविद्यालय में सम्बद्ध कोई असाधारण कॉलेज है, तो उसे "स्वायत्त कॉलेज" (Autonomous College) बना दिया जाना चाहिए।
3. वरिष्ठ विश्वविद्यालयों को दूसरे विश्वविद्यालयों एवं उनसे सम्बद्ध कॉलेजों को सुयोग्य अध्यापक प्रदान करने चाहिए।
4. विश्वविद्यालयों एवं उनसे सम्बद्ध कॉलेजों को पहली बार नियुक्त किए जाने वाले अपने अध्यापकों को कुछ समय के लिए वरिष्ठ विश्वविद्यालयों में भेजना चाहिए, ताकि वे वहाँ अपने विषयों से सम्बन्धित नवीनतम् तथ्यों एवं विचारों का ज्ञान प्राप्त कर लें।
5. विश्वविद्यालयों एवं उनसे सम्बद्ध कॉलेजों को समय-समय पर विभिन्न विषयों के सुप्रसिद्ध विद्वानों एवं वैज्ञानिकों को आमन्त्रित करके, सेमिनारों एवं अनुसंधान-कार्यों का आयोजन करना चाहिए।
6. "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" को विश्वविद्यालयों में "उच्च अध्ययन-केन्द्रों" की स्थापना करने के लिए उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता देनी चाहिए।

5. शिक्षण में सुधार Improvement in Teaching—"आयोग" ने विश्वविद्यालयों एवं उनसे सम्बद्ध कॉलेजों में शिक्षण में सुधार करने के विचार से अधोलिखित सुझाव दिये हैं —

1. कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों में उत्तम पुस्तकालयों की व्यवस्था की जानी चाहिए।
2. छात्रों में प्रचलित निष्क्रिय रटने की प्रवृत्ति को निरुत्साहित किया जाना चाहिए और उनमें मौलिक चिन्तन को प्रोत्साहित किया जाना चाहि—

3. व्याख्यान के बाद उसकी सामग्री को याद करने के लिए छात्रों को 45 मिनट का समय दिया जाना चाहिए।
4. औपचारिक कक्षा-कार्य और प्रयोगशाला-कार्य के घण्टों में कमी की जानी चाहिए। छात्रों द्वारा इस प्रकार बचने वाले समय का प्रयोग एक निर्देशक (Instructor) के मार्गदर्शन में स्वाध्याय, लेखन-कार्य, समस्या-समाधान, अनुसन्धान-कार्य आदि के लिये करना चाहिए।
5. नए अध्यापकों की नियुक्तियां गर्मी की छुट्टियों में कर दी जानी चाहिए, ताकि नियुक्त किया जाने वाला प्रत्येक अध्यापक सत्र के आरम्भ से ही शिक्षण-कार्य करने लगे।
6. सत्र (Term) के मध्य में किसी अध्यापक को एक संस्था को छोड़कर दूसरी संस्था में जाने की आज्ञा नहीं दी जानी चाहिए।
7. किसी भी शिक्षक को एक सत्र में 7 दिन से अधिक का अवकाश नहीं दिया जाना चाहिए।
8. शिक्षण-विधियों में सुधार करने के लिए, "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" द्वारा एक विशेष समिति की नियुक्ति की जानी चाहिये।

6. मूल्यांकन में सुधार : Improvement in Evaluation—"आयोग" ने मूल्यांकन में सुधार करने के लिए अधोलिखित विचार व्यक्त किए हैं :—

1. "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" को विश्वविद्यालयों की सहायता से "केन्द्रीय परीक्षा-सुधार-यूनिट" (Central Examination Reform Unit) का निर्माण करना चाहिए।
2. शिक्षण-विश्वविद्यालयों में बाह्य परीक्षाओं की प्रणाली को समाप्त करके, स्वयं अध्यापकों द्वारा "आन्तरिक तथा क्रमिक मूल्यांकन" (Internal & Continuous Evaluation) की प्रणाली का प्रचलन किया जाना चाहिए।
3. सम्बद्धीकरण विश्वविद्यालयों में बाह्य परीक्षाओं के साथ-साथ आन्तरिक जाँचों (Internal Assessments) का भी प्रयोग किया जाना चाहिए।
4. विश्वविद्यालयों के अध्यापकों को सेमिनारों, वर्कशापों एवं विचार-सम्मेलनों का आयोजन करके, मूल्यांकन की नवीन एवं उन्नत विधियों की जानकारी प्रदान की जानी चाहिए।
5. परीक्षकों को उत्तर-पुस्तिकाओं की जाँच करने के लिए किसी प्रकार का पारिश्रमिक नहीं दिया जाना चाहिये।
6. एक परीक्षक को 1 वर्ष में 500 से अधिक उत्तर-पुस्तिकाएँ जाँचने के लिए नहीं दी जानी चाहिए।

7. शिक्षा का माध्यम : Medium of Instruction—"आयोग" ने कलिजों एव विश्वविद्यालयों में शिक्षा के माध्यम के बारे में अधोकित सुझाव अंकित किये हैं —

1. पूर्व-स्नातक-स्तर पर शिक्षा का माध्यम यथासम्भव क्षेत्रीय भाषाएँ और स्नातकोत्तर-स्तर पर शिक्षा का माध्यम—अंग्रेजी होनी चाहिए।
2. क्षेत्रीय अथवा प्रादेशिक भाषाओं (Regional Languages) को 10 वर्ष की अवधि में विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम बना दिया जाना चाहिए।
3. उच्च शिक्षा की संस्थाओं में कार्य करने वाले सब शिक्षकों को यथा-सम्भव दो भाषाओं का ज्ञान होना चाहिए।
4. आधुनिक भारतीय भाषाओं (जिनमें उर्दू भी है) के विकास के लिए उच्च अध्ययन-केन्द्रों की व्यवस्था की जानी चाहिए।
5. शास्त्रीय एवं आधुनिक भारतीय भाषाओं को विश्वविद्यालयों में अनिवार्य विषयों में स्थान न देकर, वैकल्पिक विषयों में स्थान दिया जाना चाहिए।
6. विश्वविद्यालयों एवं सम्बद्ध कॉलिजों में छात्रों को अंग्रेजी का अध्ययन करने के लिए विशेष सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।
7. उक्त शिक्षा-संस्थाओं में छात्रों को रूसी भाषा का अध्ययन करने के लिए उपयुक्त सुविधाएँ दी जानी चाहिए।

8. चयनात्मक प्रवेश-प्रणाली : System of Selective Admission—"आयोग" का मत है कि भविष्य में जिस अनुपात में उच्च शिक्षा की माँग में वृद्धि होगी, उस अनुपात में उच्च शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार करना सम्भव नहीं होगा। अतः जनबल (Manpower) की आवश्यकता को ध्यान में रखकर "चयनात्मक प्रवेश-प्रणाली" का प्रयोग किया जाना अनिवार्य है। इस प्रणाली की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए, "आयोग" ने लिखा है —"सामान्य रूप में यह होता है कि श्रेष्ठ क्षमताओं वाले थोड़े-से छात्रों को उच्च शिक्षा की संस्थाओं में प्रवेश नहीं मिल पाता है, और उनमें छात्रों की उस विशाल संख्या का प्रवेश हो जाता है, जो उच्च शिक्षा के लिए पूरी तरह से तैयार नहीं होते हैं।" इस दोष का निवारण करने के लिए, आयोग ने चयनात्मक प्रवेश-प्रणाली के प्रयोग पर बल दिया है और उसके सम्बन्ध में अधोकित सुझाव दिये हैं —

1. विश्वविद्यालयों द्वारा प्रवेश-योग्यताओं के नियमों का निर्माण किया जाना चाहिये।
2. विश्वविद्यालयों में प्रवेश चाहने वाले छात्रों में से योग्यतम छात्रों का ही चुनाव किया जाना चाहिये।

3. उच्च शिक्षा की संस्थाओं में विद्यार्थियों की संख्या का निश्चय इन संस्थाओं में उपलब्ध शिक्षक-संख्या और शिक्षण-सुविधाओं के आधार पर किया जाना चाहिये।
4. जब तक प्रवेश-सम्बन्धी नवीन विधियों की खोज न हो जाय, तब तक परीक्षाओं में प्राप्त होने वाले अङ्कों को प्रवेश का आधार बनाया जाना चाहिये।

9. विश्वविद्यालय-स्वाधीनता : University Autonomy—विश्वविद्यालय-स्वाधीनता की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए, "आयोग" ने लिखा है :—"यह स्वीकार किया जाना आवश्यक है कि स्वाधीनता के अभाव में विश्वविद्यालय अपने शिक्षण, अनुसंधान एवं समाज-सेवा के मुख्य कार्यों को कुशलतापूर्वक नहीं कर सकते हैं।"

"It is important to recognise that without autonomy universities cannot discharge effectively their principal functions of teaching research, and service to the community."—*Education Commission Report*, p. 326.

"आयोग" ने अग्रांकित क्षेत्रों में विश्वविद्यालयों की स्वाधीनता का समर्थन किया है :—छात्रों का चुनाव, शिक्षकों की नियुक्ति एवं पदोन्नति, और पाठ्य-विषयों, शिक्षण-विधियों एवं अनुसंधान-कार्य के क्षेत्रों एवं समस्याओं का निर्धारण। इन क्षेत्रों में विश्वविद्यालयों की स्वाधीनता को ध्यान में रखते हुए, "आयोग" ने निम्नलिखित विचार प्रकट किए हैं :—

1. विश्वविद्यालयों को अपने विभागों को कार्य करने की पर्याप्त स्वतन्त्रता देनी चाहिये।
2. प्रत्येक विभाग के अध्यक्ष की अधीनता में एक प्रबन्ध-समिति का निर्माण किया जाना चाहिये। इस समिति को व्यापक आर्थिक एवं प्रशासनीय शक्तियों से सम्पन्न किया जाना चाहिये।
3. विश्वविद्यालयों को अपने प्रशासन में इस सिद्धान्त को ध्यान में रखना चाहिये कि श्रेष्ठ विचारों का जन्म साधारणतः निम्न स्तरों में होता है।
4. विश्वविद्यालयों को कॉलिजों की स्वतन्त्रता का उतना ही आदर करना चाहिये, जितना वे अपनी स्वतन्त्रता का करते हैं।
5. विश्वविद्यालयों की "साहित्यिक परिषदों" (Academic Councils) एवं सभाओं (Courts) में छात्र-प्रतिनिधियों की उपयुक्त संख्या को स्थान दिया जाना चाहिये।
6. विश्वविद्यालयों को अपनी स्वाधीनता को बनाये रखने के लिये सदैव प्रयत्नशील रहना चाहिये। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिये,

उनको अपने बौद्धिक एवं सार्वजनिक कार्यों को सदैव तत्परता से करना चाहिये।

7. प्रत्येक कॉलेज के प्रत्येक विभाग में छात्रों एवं अध्यापकों की संयुक्त समितियों *(Joint Committees)* का निर्माण किया जाना चाहिये।
8. प्रत्येक कॉलेज में प्रधानाचार्य की अध्यक्षता में एक केन्द्रीय समिति का संगठन किया जाना चाहिये, जिसके द्वारा कॉलेज की सामान्य समस्याओं एवं कठिनाइयों का अध्ययन किया जाना चाहिये।
9. "विश्वविद्यालय-अनुदान - आयोग", "अन्तर-विश्वविद्यालय-परिषद्" (Inter-University Board) एवं शिक्षित व्यक्तियों द्वारा विश्व-विद्यालय-स्वाधीनता के पक्ष में जनमत का निर्माण किया जाना चाहिये।
10. सरकार, विश्वविद्यालयों, "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" एवं "अन्तर-विश्वविद्यालय-परिषद्" को संयुक्त रूप से अग्रांकित कार्य करने चाहिये :—विभिन्न प्रश्नों पर विचार-विमर्श करना, प्रवेश दिये जाने वाले छात्रों की संख्या निश्चित करना एवं प्रयोगात्मक अनुसंधान की समस्याओं का समाधान करने के लिये उपाय योजना।

11. स्त्री-शिक्षा
Women's Education

स्त्री-शिक्षा के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए, "आयोग" ने लिखा है :— "हमारे मानव-साधनों के पूर्ण विकास, परिवारों की उन्नति एवं शैशवावस्था के वर्षों में अत्यधिक सरलता से प्रभावित होने वाले बच्चों के चरित्र का निर्माण करने के लिए, स्त्रियों की शिक्षा का महत्त्व पुरुषों की शिक्षा से भी अधिक है।"

"For full development of our human resources, the improvement of homes, and for moulding the character of children during the most impressionable years of infancy, the education of women is of even greater importance than that of men"—*Education Commission Report*, p 135

"आयोग" ने स्त्री-शिक्षा के लगभग सभी अंगों के विषय में अपने विचारों को लेखबद्ध किया है। *हम प्रमुख अंगों से सम्बन्धित उसके विचारों का वर्णन कर* रहे हैं; यथा :—

1. प्राथमिक व माध्यमिक शिक्षा Primary & Secondary Education— "आयोग" ने बालिकाओं की प्राथमिक एवं माध्यमिक शिक्षा के विषय में निम्नांकित सुझाव दिये हैं :—

1. भारतीय संविधान में अंकित लक्ष्य की प्राप्ति के लिये, बालिकाओं की प्राथमिक शिक्षा का अधिक-से-अधिक विस्तार किया जाना चाहिए ।
2. माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा के विस्तार की गति इतनी तीव्र कर दी जानी चाहिये, जिससे 20 वर्ष के अन्त में निम्न माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं और बालकों की संख्या का अनुपात 1 : 2 और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 1 : 3 हो जाय ।
3. बालिकाओं के लिये पृथक् विद्यालयों एवं छात्रावासों और छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की जानी चाहिये ।

2. उच्च शिक्षा : Higher Education—"आयोग" ने बालिकाओं एवं स्त्रियों की उच्च शिक्षा के विषय में अग्रांकित सिफ़ारिशें की हैं :—

1. स्त्रियों के लिये पर्याप्त छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की जानी चाहिए ।
2. स्त्रियों के लिये उचित प्रकार के और मितव्ययी छात्रावासों की स्थापना की जानी चाहिये ।
3. शिक्षा, गृह-विज्ञान एवं सामाजिक कार्य (Social Work) के पाठ्य-विषयों का विस्तार करके, उनको समुन्नत बनाया जाना चाहिये ।
4. एक या दो विश्वविद्यालयों में स्त्री-शिक्षा से सम्बन्धित "अनुसंधान यूनिटों" (Research Units) की सृष्टि की जानी चाहिये ।
5. स्त्रियों को कला, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, मानव-शास्त्र आदि विषयों में से अपने अध्ययन के विषयों का चुनाव करने की आज्ञा दी जानी चाहिये ।
6. जिन स्थानों में मांग है, वहाँ स्त्रियों के लिये पृथक् पूर्व-स्नातक कॉलेजों का निर्माण किया जाना चाहिये ।
7. स्त्रियों के लिये पृथक् स्नातकोत्तर-कालेजों की स्थापना नहीं की जा[नी] चाहिये ।

3. पाठ्यक्रम : Curriculum—"स्त्री-शिक्षा की राष्ट्रीय समि[ति]" (National Council of Women's Education) द्वारा श्रीमती हंसा मेहता [की] अध्यक्षता में नियुक्त की जाने वाली समिति के विचारानुसार बालकों और बालि[काओं] के पाठ्यक्रम में अन्तर नहीं होना चाहिये । "शिक्षा-आयोग"—"हंसा मेहता स[मिति]" (Hansa Mehta Committee) के विचारों से सहमत है । फिर भी "आयो[ग]" बालिकाओं के लिये विभिन्न पाठ्यक्रम के विषय में अग्रांकित विचार व्य[क्त] हैं :—

1. कक्षा 10 के अन्त तक सब बालकों एवं बालिकाओं के लिये [...] पाठ्यक्रम होना चाहिये और उनको केवल कार्य-अनुभव [...] Experience) या भाषा में पृथक् चुनाव करने का अवसर दि[...] चाहिये ।

2. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं को गृह-विज्ञान की शिक्षा दी जानी चाहिये, पर उनके लिये यह विषय अनिवार्य नहीं बनाया जाना चाहिए।
3. बालिकाओं को संगीत एवं कलाओं की शिक्षा देने के लिये अधिक उत्तम व्यवस्था की जानी चाहिए।
4. माध्यमिक स्तर पर बालिकाओं को विज्ञान या गणित का अध्ययन करने के लिए विशेष प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

4. स्त्री-शिक्षा का विस्तार : Expansion of Women's Education—"आयोग" ने स्त्री-शिक्षा के विस्तार के लिए अग्रांकित सुझाव दिए हैं :—

1. स्त्री-शिक्षा के विस्तार के लिए उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए।
2. स्त्री-शिक्षा का प्रसार करने के लिए कुछ वर्षों तक इसे शिक्षा के सम्पूर्ण कार्यक्रम का अभिन्न एवं महत्त्वपूर्ण अंग बनाया जाना चाहिए।
3. स्त्री-शिक्षा के मार्ग में समस्त बाधाओं को हटाने के लिए ठोस एवं निश्चित कदम उठाये जाने चाहिए।
4. स्त्रियों और पुरुषों की शिक्षा के मध्य जो विशाल अन्तर उत्पन्न हो गया है, उसे समाप्त करने के लिए विशेष योजनाओं का निर्माण किया जाना चाहिए।
5. स्त्री-शिक्षा का सतर्कतापूर्वक निरीक्षण करने के लिए केन्द्र और राज्य—दोनों स्तरों पर शक्तिशाली प्रशासकीय संगठनों का निर्माण किया जाना चाहिए।
6. विवाहित स्त्रियों के लिए अल्पकालीन और अविवाहित स्त्रियों के लिए पूर्णकालीन रोजगारों की व्यवस्था की जानी चाहिए।
7. बालिकाओं एवं स्त्रियों के लिए अल्पकालीन एवं पूर्णकालीन व्यावसायिक शिक्षा के कार्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए।

12 वयस्क-शिक्षा
Adult Education

"आयोग" ने वयस्क-शिक्षा के विषय में जो विचार व्यक्त किए हैं, हम उनका वर्णन क्रमबद्ध शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत कर रहे हैं, यथा —

1. वयस्क-शिक्षा की आवश्यकता : Need of Adult Education—"आयोग" ने वयस्क-शिक्षा का पर्याप्त विस्तार में वर्णन किया है। हम इस वर्णन को "आयोग" के अग्रांकित शब्दों से आरम्भ कर रहे हैं :—"विद्यालय-शिक्षा के बाद शिक्षा का अन्त नहीं होता है, क्योंकि शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। आज के वयस्क को

तीव्र गति से परिवर्तित होने वाले संसार की और समाज की बढ़ती हुई जटिलताओं की जानकारी होना आवश्यक है। जिन व्यक्तियों ने सर्वोत्तम प्रकार की शिक्षा प्राप्त की है, उनके लिए भी जीवन में शिक्षा की आवश्यकता है।" अतः वयस्क-शिक्षा का संगठन अनिवार्य है।

"आयोग" ने अपने वर्णन में आगे लिखा है :—"जो देश आर्थिक उन्नति, सामाजिक परिवर्तन एवं राष्ट्रीय सुरक्षा चाहता है, उसे अपने वयस्क नागरिकों को विकास कार्यक्रमों में कुशलता एवं बुद्धिमत्ता से भाग लेने की शिक्षा देनी चाहिए। यह बात भारत के लिए विशेष रूप से सत्य है, क्योंकि यहाँ के विशाल जनसमूहों को विद्यालयों में किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त नहीं हुई है और जिनको शिक्षा प्राप्त भी हुई है, वह विकास-कार्यक्रमों के लिए व्यर्थ है। जो कृषक, भूमि को जोतता है, उसे भूमि की बनावट का ज्ञान होना चाहिए। जो श्रमिक, मशीन को चलाता है, उसे मशीन के अंगों का ज्ञान होना चाहिए। कृषकों, श्रमिकों आदि को अपने कार्यों का ज्ञान नहीं है।" अतः उनको ज्ञान प्रदान करने के लिए वयस्क-शिक्षा की व्यवस्था की जानी आवश्यक है।

"आयोग" ने अपने वर्णन को जारी करते हुए लिखा है :—"कोई भी राष्ट्र अपनी सुरक्षा के भार को केवल पुलिस एवं सेना को नहीं सौंप सकता है। वस्तुतः राष्ट्रीय सुरक्षा बहुत बड़ी सीमा तक नागरिकों की शिक्षा, विभिन्न कार्यक्रमों के उनके ज्ञान, उनके चरित्र, उनकी अनुशासन की भावना एवं सुरक्षा-सम्बन्धी कार्यों में उनके कुशलतापूर्वक भाग लेने की क्षमता पर आधारित रहती है।" अतः नागरिकों में इन गुणों का विकास करने के लिए वयस्क-शिक्षा का कार्यक्रम आवश्यक है।

आयोग ने भारत में वयस्क-शिक्षा की आवश्यकता के दो मूलभूत कारण बताए हैं : पहला, भारत के 70 प्रतिशत व्यक्ति निरक्षर हैं, जिनको साक्षर बनाया जाना आवश्यक है; दूसरा, भारत—जनतन्त्रीय गणतन्त्र है। अतः उसका कर्त्तव्य प्रत्येक वयस्क-नागरिक को ऐसी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान करना है, जो वह प्राप्त करना चाहता है और जो उसे अपनी व्यक्तिगत उन्नति, व्यावसायिक प्रगति और सामाजिक एवं राजनीतिक कार्यों में सक्रिय भाग लेने के लिए प्राप्त करनी चाहिए।

2. वयस्क-शिक्षा का कार्यक्रम : Programme of Adult Education—"आयोग" ने वयस्क-शिक्षा के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्यक्रमों को स्थान दिया है :—

(i) निरक्षरता का उन्मूलन : Liquidation of Illiteracy.
(ii) अनवरत शिक्षा : Continuation Education.
(iii) पत्राचार-पाठ्यक्रम : Correspondence Courses.
(iv) पुस्तकालय : Libraries.
(v) विश्वविद्यालयों के कार्य : Role of Universities.
(vi) संगठन व प्रशासन : Organization & Administration.

2. उक्त शिक्षा-संस्थाओं को उक्त समय में इस प्रकार के पाठ्यक्रमों का आयोजन करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए, जिनसे वयस्कों को अपनी समस्याओं का समाधान करने और अधिक ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त करने में सहायता मिले।
3. साक्षर वयस्कों को स्कूलों एवं कालिजों के छात्रों के समान डिप्लोमा एवं डिग्री प्राप्त करने का अवसर देने के लिए अल्पकालीन शिक्षा की प्रणाली प्रचलित की जानी चाहिए।
4. जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले व्यक्तियों के ज्ञान एवं कुशलता में उन्नति करने, जीवन के प्रति उनके दृष्टिकोण का विस्तार करने और उनमें अपने वयस्कों के प्रति उत्तरदायित्व की भावना का विकास करने के लिए विशेष प्रकार की अनवरत शिक्षा का प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

(iii) पत्राचार-पाठ्यक्रम : Correspondence Courses—"आयोग" ने वयस्क-शिक्षा का विस्तार करने के उद्देश्य से पत्राचार-पाठ्यक्रमों का सुझाव दिया है और इनके सम्बन्ध में अधोलिखित विचार प्रकट किए हैं :—

1. पत्राचार-पाठ्यक्रमों की व्यवस्था उन व्यक्तियों के लिए की जानी चाहिए, जो अल्पकालीन शिक्षा से लाभ उठाने में असमर्थ हैं।
2. पत्राचार-पाठ्यक्रमों की व्यवस्था उन व्यक्तियों के लिए भी की जानी चाहिए, जो सांस्कृतिक एवं सौन्दर्यात्मक विषयों का ज्ञान प्राप्त करके, अपने जीवन को समृद्ध बनाना चाहते हैं।
3. पत्राचार-पाठ्यक्रमों की व्यवस्था उन व्यक्तियों के लिए भी की जानी चाहिए, जो देश के "माध्यमिक शिक्षा-बोर्डों" एवं विश्वविद्यालयों की परीक्षाएँ पास करना चाहते हैं।
4. पत्राचार-पाठ्यक्रमों की व्यवस्था—कृषि, विभिन्न उद्योगों और अन्य क्षेत्रों में कार्य करने वाले व्यक्तियों के लिए भी की जानी चाहिए।
5. पत्राचार-पाठ्यक्रमों द्वारा शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्तियों को कभी-कभी अपने शिक्षकों से भेंट करने का अवसर दिया जाना चाहिए।
6. पत्राचार-पाठ्यक्रमों का रेडियो एवं टेलीविजन के कार्यक्रमों से निकट सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिए।

(iv) पुस्तकालय : Libraries—"आयोग" ने वयस्क-शिक्षा से सम्बन्धित पुस्तकालयों के विषय में निम्नलिखित विचार प्रस्तुत किए हैं :

1. वयस्कों के पुस्तकालय प्रगतिशील होने चाहिए।
2. उक्त पुस्तकालयों को वयस्कों को शिक्षित एवं आकर्षित करना चाहिए।
3. विद्यालयों के पुस्तकालयों को सार्वजनिक पुस्तकालयों का रूप दिया

जाना चाहिए और उनमें बच्चों एवं नव-साक्षरों (Neo-Literates) की रुचियों को ध्यान में रखकर पुस्तकों का संग्रह किया जाना चाहिए।

4. "पुस्तकालय-सलाहकार-समिति" (Advisory Committee on Libraries) द्वारा प्रस्तावित सम्पूर्ण देश में पुस्तकालयों की स्थापना की योजना को क्रियान्वित किया जाना चाहिए।

(v) वयस्क-शिक्षा में विश्वविद्यालयों के कार्य : Role of Universities in Adult Education—"आयोग" के मतानुसार विश्वविद्यालयों को वयस्क-शिक्षा के प्रसार के लिए अग्रांकित कार्य करने चाहिए :—

1. विश्वविद्यालयों को वयस्कों को शिक्षा प्रदान करने का उत्तरदायित्व ग्रहण करना चाहिए।
2. विश्वविद्यालयों को विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन करके, वयस्कों के आर्थिक, शैक्षिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास में योग देना चाहिए।
3. विश्वविद्यालयों को दिल्ली-विश्वविद्यालय के समान पत्राचार-पाठ्यक्रमों की योजना आरम्भ करनी चाहिए।
4. विश्वविद्यालयों को राजस्थान-विश्वविद्यालय के समान वयस्क-शिक्षा के विभाग की स्थापना करनी चाहिए।
5. विश्वविद्यालयों को अपने वयस्क-शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रमों को संचालित करने के लिए सरकार से उदार आर्थिक सहायता प्राप्त होनी चाहिए।

(vi) वयस्क-शिक्षा का संगठन व प्रशासन : Organization & Administration of Adult Education—"आयोग" ने वयस्क-शिक्षा के संगठन एवं प्रशासन ...य में निम्नांकित सुझाव दिए हैं :—

1. वयस्क-शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करने वाली व्यक्तिगत संस्थाओं को सरकार द्वारा आर्थिक एवं प्राविधिक सहायता दी जानी चाहिए।
2. शिक्षा-मन्त्रालय द्वारा "राष्ट्रीय वयस्क शिक्षा-परिषद्" (National Board of Adult Education) की स्थापना की जानी चाहिए।
3. उक्त "परिषद्" पर निम्नलिखित कार्यों को सम्पादित करने का उत्तरदायित्व रखा जाना चाहिए :—
   (i) केन्द्र एवं राज्य की सरकारों को अनौपचारिक वयस्क शिक्षा एवं प्रशिक्षण के बारे में परामर्श देना और इनसे सम्बन्धित योजनाओं एवं कार्यक्रमों का निर्माण करना।
   (ii) वयस्कों की शिक्षा के लिए उपयुक्त साहित्य, पठन-सामग्री एवं प्रशिक्षण-कार्यक्रमों के उत्पादन को प्रोत्साहन देना।
   (iii) विभिन्न मन्त्रालयों और सरकारी एवं गैर-सरकारी संस्थाओं के कार्यों में सामंजस्य स्थापित करना।

(iv) समय-समय पर वयस्क-शिक्षा के प्रसार की जाँच करना और उसमें सुधार एवं परिवर्तन करने के लिए सुझाव देना।

(v) वयस्क-शिक्षा के क्षेत्र में अन्वेषण, अनुसंधान एवं मूल्यांकन करना।

4. उक्त "परिषद्" के समान राज्य-स्तर पर परिषदों का और जिला-स्तर पर समितियों का निर्माण किया जाना चाहिए। ग्राम-स्तर पर "परिषद्" के कार्यों को विद्यालयों को सौंपा जाना चाहिए।

13. विज्ञान की शिक्षा
Science Education

"आयोग" का मत है कि विज्ञान की शिक्षा—भारत की प्रगति, सुरक्षा एवं कल्याण के लिए परम आवश्यक है। अतः उसने विज्ञान की शिक्षा (जिसमें उसने गणित एवं प्रौद्योगिकी को भी सम्मिलित किया है) के प्रसार के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए हैं; यथा :—

1. आधुनिक युग में विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के महत्त्व को स्वीकार करके, इनको शिक्षा-प्रणाली का अभिन्न अंग बनाया जाना चाहिए।
2. विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की शिक्षा को देश के आर्थिक एवं औद्योगिक विकास से सम्बन्धित किया जाना चाहिए।
3. विज्ञान एवं गणित के पूर्व-स्नातक एवं स्नातकोत्तर-स्तरों के पाठ्यक्रमों में आमूल संशोधन करके, उनको उच्च बनाया जाना चाहिए।
4. विज्ञान एवं गणित की शिक्षा के लिए उच्च अध्ययन-केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए और उनमें योग्य एवं अनुभवी अध्यापकों की नियुक्ति की जानी चाहिए।
5. विज्ञान की शिक्षा में सुधार करने के लिए, विद्यालयों, कॉलिजों एवं विश्वविद्यालयों के अध्यापकों के लिए "ग्रीष्मकालीन संस्थानों" (Summer Institutes) की योजना संचालित की जानी चाहिए।
6. विज्ञान से सम्बन्धित विषयों के सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक पक्षों में समन्वय स्थापित किया जाना चाहिए।
7. देश की औद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए विज्ञान के छात्रों की संख्या में वृद्धि की जानी चाहिए।
8. प्रत्येक कॉलिज एवं विश्वविद्यालय में विज्ञान की पूर्णतया सुसज्जित प्रयोगशालाएँ एवं वर्कशॉप होने चाहिए, जिनमें छात्रों को विभिन्न यन्त्रों का प्रयोग भलीभाँति सिखाया जाना चाहिए।
9. विदेशी वैज्ञानिकों एवं विदेशों में कार्य करने वाले अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के भारतीय वैज्ञानिकों को भारत में शिक्षण-कार्य करने के लिए आमन्त्रित किया जाना चाहिए।

10. "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" को एक अखिल भारतीय समिति निर्माण करना चाहिए। इस समिति को 2 या 3 वर्ष के इकरारना पर विज्ञान के "विज़िटिंग प्रोफ़ेसरों" (Visiting Professors) क नियुक्ति करनी चाहिए।

11. प्रायोगिक भौतिकशास्त्र एवं रसायनशास्त्र का विकास करने के लिए विशेष प्रयास किए जाने चाहिए।

12. एम० एस-सी० स्तर के बाद वैकल्पिक आधार पर एक नवीन उपाधि प्रदान करने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

13. वर्तमान वैज्ञानिक, औद्योगिक एवं अन्य आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए 2 वर्ष के एम० एस-सी० के कोर्स के अतिरिक्त 1 वर्ष या कम अवधि का कोई विशेष कोर्स आरम्भ किया जाना चाहिए।

14. अन्तिम परीक्षा में प्रयोगात्मक परीक्षा नहीं होनी चाहिए, वरन् कक्षा के रेकार्ड के आधार पर प्रयोगात्मक कार्य का मूल्यांकन किया जाना चाहिए।

15. औद्योगिक कार्यकर्त्ताओं को पत्र-व्यवहार एवं सायंकालीन कक्षाओं के द्वारा प्रयोगशालाओं में प्रयोग करने की सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

14 कृषि की शिक्षा
Agricultural Education

कृषि-प्रधान देश, भारत में कृषि की हीन दशा और देश के लिए उसके महत्व को ध्यान में रखते हुए, 'आयोग' ने कृषि की शिक्षा में सुधार एवं विस्तार करने के लिए जो सुझाव प्रस्तुत किये हैं, उनका विवरण दृष्टव्य है :—

1 कृषि-विश्वविद्यालय Agricultural Universities—"आयोग" ने कृषि-विश्वविद्यालयों की स्थापना, कार्यों आदि के विषय में निम्नलिखित सुझाव दिये हैं —

1. प्रत्येक राज्य में कम-से-कम एक कृषि-विश्वविद्यालय की स्थापना की जानी चाहिए।
2. कृषि-विश्वविद्यालयों में कृषि की शिक्षा, अनुसंधान एवं प्रसार कार्यक्रमों की उत्तम व्यवस्था होनी चाहिए।
3. कृषि-विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर-शिक्षा का उन्नयन करने के लिए योग्य एवं प्रतिभाशाली शिक्षकों की नियुक्ति की जानी चाहिए।
4. कृषि-विश्वविद्यालयों में कक्षा-शिक्षण की अपेक्षा प्रायोगिक एवं प्रयोगशाला-कार्यों पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।
5. कृषि-विश्वविद्यालयों के 25 प्रतिशत छात्रों को छात्रवृत्तियाँ दी जानी चाहिए।

6. कृषि-विश्वविद्यालयों में कृषि-शिक्षा के अध्यापकों के लिए प्रशिक्षण-केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए।
7. प्रत्येक कृषि-विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कम-से-कम 1,000 एकड़ भूमि का फार्म होना चाहिए, जिसमें से 500 एकड़ भूमि कृषि के योग्य होनी चाहिए।
8. प्रथम डिग्री-कोर्स की अवधि 10 वर्ष की विद्यालय-शिक्षा के पश्चात् 5 वर्ष की होनी चाहिए।
9. उपाधि प्रदान करने से पूर्व प्रत्येक छात्र के लिए फार्म पर 1 वर्ष का कृषि-कार्य अनिवार्य होना चाहिए।
10. केन्द्रीय अनुसंधान-केन्द्रों एवं कृषि-विश्वविद्यालयों को पारस्परिक सहयोग से स्नातकोत्तर शिक्षा के लिए उत्तम केन्द्रों का निर्माण करना चाहिए।
11. सभी कृषि-विश्वविद्यालय यथासम्भव शिक्षण-विश्वविद्यालय होने चाहिए।
12. बाह्य परीक्षाओं को समाप्त करने का यथाशक्ति प्रयास किया जाना चाहिए।

2. कृषि-कॉलेज : Agricultural Colleges—"आयोग" ने कृषि-कॉलेजों के विषय में अधोलिखित सुझाव दिए हैं :—

1. नवीन कृषि-कॉलेजों की स्थापना नहीं की जानी चाहिए, वरन् पुराने कॉलेजों में सुधार करके, उनको सुचारु रूप से संचालित किया जाना चाहिए।
2. प्रत्येक कृषि-कॉलेज के पास कम-से-कम 200 एकड़ भूमि का सुव्यवस्थित फार्म होना चाहिए।
3. कुछ कृषि-कॉलेजों में डिग्री-कोर्सों के बजाय उच्च टेक्नीशियन (Technician) स्तर के कोर्सों का आयोजन किया जाना चाहिए।
4. कृषि-कॉलेजों का प्रत्येक 5 वर्ष के पश्चात् "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" एवं "भारतीय कृषि-अनुसंधान-परिषद्" (Indian Agricultural Research Institute) द्वारा संयुक्त निरीक्षण किया जाना चाहिए।

3. कृषि-पॉलिटेक्नीक : Agricultural Polytechnics—"आयोग" [illegible] सिफारिश की है कि कृषि-शिक्षा की सुविधाओं का विस्तार करने के लिए "कृषि-पॉलिटेक्नीकों" का क्रियान्वयन किया जाना चाहिए और उनके सम्बन्ध में अ[illegible] विचार इस प्रकार लेखबद्ध किए हैं :—

1. मैट्रिकुलेशन-स्तर के बाद प्रत्येक राज्य में कृषि-पॉलिटेक्नीकों की स्थापना को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

2. पॉलिटेकनीकों को कृषि-विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध किया जाना चाहिए।
3. पॉलिटेकनीकों में अधिकतम् छात्र-संख्या 1,000 होनी चाहिए।
4. पालिटेकनीकों में कृषि की ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए, जिसे समाप्त करने के पश्चात् छात्रों को कृषि की उच्च शिक्षा-संस्थाओं में प्रवेश मिल सके।
5. पॉलिटेकनीकों में कृषकों एवं कृषि में विशेष रुचि रखने वाले व्यक्तियों के लिए सघन एवं संक्षिप्त पाठ्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए।
6. कृषि-शिक्षा की तात्कालिक माँग को पूर्ण करने के लिए ग्रामीण क्षेत्रों के निकट स्थित पॉलिटेकनीकों में कुछ समय तक कृषि की शिक्षा प्रदान करने का प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

4. विद्यालयों में कृषि शिक्षा : Agricultural Education in Schools—"आयोग" की धारणा है कि कृषि-शिक्षा को विद्यालयों की सामान्य शिक्षा का अभिन्न अंग होना चाहिए। अपनी इस धारणा के अनुसार, "आयोग" ने विद्यालयों में कृषि-शिक्षा के बारे में अधोलिखित सुझाव अंकित किए हैं —

1. ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के सब प्राथमिक विद्यालयों में कृषि-सम्बन्धी जानकारी को सामान्य शिक्षा का अनिवार्य अंग बनाया जाना चाहिए।
2. विद्यालय-स्तर पर कृषि को कार्य-अनुभव (Work Experience) का महत्त्वपूर्ण अंग बनाया जाना चाहिए।
3. अध्यापक-शिक्षा के कार्यक्रमों में कृषि एवं ग्रामीण समस्याओं को उपयुक्त स्थान दिया जाना चाहिए।

15. व्यावसायिक, प्राविधिक व इंजीनियरिंग की शिक्षा
Vocational, Technical & Engineering Education

"आयोग" का कथन है कि देश के औद्योगीकरण को सफल बनाने के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता है। अतः औद्योगीकरण की योजनाएँ बनाने वालों का यह कर्त्तव्य है कि वे विभिन्न उद्योगों के लिए प्रशिक्षित व्यक्तियों की संख्या का अनुमान लगाएँ और उनके प्रशिक्षण के लिए उपयुक्त कार्यक्रमों का निर्माण करें। इस कार्य में हाथ बँटाने के लिए, "आयोग" ने व्यावसायिक, प्राविधिक एवं इंजीनियरिंग की शिक्षा के विषय में कुछ विचार व्यक्त किए हैं, जिनकी चर्चा यथास्थान की जा रही है।

1 व्यावसायिक व प्राविधिक शिक्षा : Vocational & Technical Education—"आयोग" ने व्यावसायिक एवं प्राविधिक शिक्षा के विषय में जो विचार अंकित किए हैं, वे अग्रांकित हैं :—

1. व्यावसायिक शिक्षा का प्रसार सुसंगठित योजना के अनुसार इस प्रकार किया जाना चाहिए, जिससे 1985-86 में निम्न माध्य-

20 प्रतिशत छात्र एवं उच्चतर माध्यमिक स्तर पर 50 प्रतिशत छात्र पूर्णकालीन एवं अंशकालीन व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण कर रहे हों।

2. विद्यालय-स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा के पाठ्यक्रम अपने-आप में सम्पूर्ण होने चाहिए, ताकि छात्रों को उच्च शिक्षा की संस्थाओं में शिक्षा ग्रहण करने में किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव न हो।
3. औद्योगिक प्रशिक्षण-संस्थाओं (Industrial Training Institutes) मे सर्वेक्षण के आधार पर प्रशिक्षण की सुविधाओं का अधिक-से-अधिक विस्तार किया जाना चाहिए।
4. विद्यालय-शिक्षा समाप्त करने वाले छात्रों को व्यावसायिक एवं प्राविधिक-प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए पत्राचार-पाठ्यक्रमों, अल्पकालीन पाठ्यक्रमों एवं संक्षिप्त-सघन पाठ्यक्रमों (Short-Intensive Courses) की व्यवस्था की जानी चाहिए।
5. जूनियर टेक्निकल स्कूलों को टेक्निकल हाई स्कूलों की संज्ञा दी जानी चाहिए।
6. टेक्निकल स्कूलों एवं औद्योगिक प्रशिक्षण-संस्थाओं में व्यावहारिक कार्य पर विशेष बल दिया जाना चाहिए एवं उनको उत्पादनोन्मुखी (Production Oriented) बनाया जाना चाहिए।
7. नवीन पॉलिटेक्नीकों की स्थापना औद्योगिक क्षेत्रों में की जानी चाहिए।
8. जो पॉलिटेक्नीक—ग्रामीण क्षेत्रों के चल रहे हैं, उनमें कृषि एवं कृषि से सम्बन्धित उद्योगों की शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए।
9. पॉलिटेक्नीकों में बालिकाओं की विशेष रुचियों को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए।
10. पॉलिटेक्नीकों के शिक्षकों की साहित्यिक योग्यताओं (Academic Qualifications) में कमी की जानी चाहिए और साधारणतः उन्हीं शिक्षकों की नियुक्त किया जाना चाहिए, जो विभिन्न उद्योगों में कार्य करके, औद्योगिक अनुभव प्राप्त कर चुके हों।
11. पॉलिटेक्नीकों के होने वाले अपव्यय को समाप्त करने एवं उनको अधिक-से-अधिक उपयोगी बनाने के लिए प्रयास किए जाने चाहिए।
12. कुछ पॉलिटेक्नीकों में डिप्लोमा प्राप्त कर चुकने वाले छात्रों के लिए पोस्ट-डिप्लोमा (Post-Diploma) कोर्सों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

2. इंजीनियरिंग की शिक्षा : *Engineering Education*—"आयोग" ने इंजीनियरिंग की शिक्षा के सम्बन्ध में अग्रांकित सुझाव दिए हैं :—

1. इंजीनियरिंग के जो कॉलेज उच्च स्तर की शिक्षा प्रदान नहीं कर रहे हैं, उनमें या तो सुधार किया जाना चाहिए या उनको बन्द कर दिया जाना चाहिए।
2. इंजीनियरिंग की अग्रांकित शाखाओं का अध्ययन करने के लिए केवल योग्य एवं प्रतिभाशाली बी० एस-सी० पास विद्यार्थियों का ही चुनाव किया जाना चाहिए :—उपकरण एवं विद्युत्-अणु (Instrumentation & Electronics)।
3. इंजीनियरिंग की शिक्षा के पाठ्यक्रमों को वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए विभिन्न प्रकार का बनाया जाना चाहिए।
4. इंजीनियरिंग की शिक्षा के प्रचलित पाठ्यक्रमों में विशेषज्ञों के परामर्श के अनुसार संशोधन किया जाना चाहिए।
5. इंजीनियरिंग की शिक्षा में अग्रांकित पाठ्य-विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिए :—विमान-विद्या, नक्षत्र-विज्ञान, रासायनिक प्रौद्योगिकी (Aeronautics, Astronautics, Chemical Technology), आदि।
6. छात्रों को डिग्री-कोर्स के तृतीय वर्ष में व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए और कार्यशाला-कार्य (Workshop Practice) में उत्पादन-कार्य पर विशेष रूप से बल दिया जाना चाहिये।
7. इंजीनियरिंग की शिक्षा से सम्बन्धित शिक्षकों को नवीनतम ज्ञान से सम्पन्न करने के लिए "ग्रीष्मकालीन संस्थाओं" (Summer Institutes) की व्यवस्था की जानी चाहिए।
8 प्रतिभाशाली व्यक्तियों को शिक्षण-व्यवसाय के प्रति आकृष्ट करने के लिए शिक्षकों के वेतन-क्रमों में वृद्धि की जानी चाहिए और उनको लागू किया जाना चाहिए।
9. टेक्नॉलॉजी की संस्थाओं में उच्च अध्ययन-केन्द्रों की स्थापना की जानी चाहिए।
10 टेक्नॉलॉजी की संस्थाओं को उद्योगों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिये प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

आयोग का मूल्यांकन
Estimate of the Commission

"शिक्षा-आयोग" के सदस्यों में देश और विदेश के माने हुए विद्वान् और सुलझे हुए शिक्षा-मर्मज्ञ थे। सभी को अपने-अपने क्षेत्रों का लम्बा अनुभव था, गहरी जानकारी थी। इसीलिए, उन्होंने भारतीय शिक्षा का नख से शिख तक कायाकल्प करने के लिए अनोखे और अनुपम सुझाव दिए।

इन सुझावों में से विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं —शिक्षा का नवीन समंजन,

विज्ञान की शिक्षा पर बल, प्रौद्योगिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था, शैक्षिक अवसरों की समानता, शिक्षार्थी-सूत्र में संशोधन, प्राथमिक स्तर से निर्देशन की आवश्यकता, प्रतिभाशाली छात्रों की खोज और शिक्षकों की स्थिति में उन्नति।

"शिक्षा-आयोग" के उपरिअंकित सभी सुझाव सारगर्भित हैं, सराहना के योग्य हैं। पर यदि हम थोड़ा-सा समय निकाल कर और एकाग्रचित्त होकर, उन पर विचार करें, तो हमको यह जानने में देर नहीं लगेगी कि उनमें सरलता के बजाय जटिलता है, व्यावहारिकता के बजाय आदर्शवादिता है। अतः उनकी अभिपूर्ति असम्भव है। उनकी अभिपूर्ति के लिए इतने अपार धन की आवश्यकता है कि भारत के समान दरिद्र देश के लिए उसे जुटाना असम्भव है।

यदि हम "आयोग" के कुछ सुझावों पर अलग-अलग विचार करें, तो हमसे उनकी निरर्थकता और निस्सारता छिपी नहीं रह सकती है। उदाहरणार्थ—उसने शिक्षकों के पदों की सुरक्षा के बारे में एक शब्द भी नहीं लिखा है। उसने संस्कृत के अध्ययन को अनुपयोगी बताकर, उसके उन्मूलन का अच्छा प्रबन्ध कर दिया है। उसने धार्मिक शिक्षा को शिक्षा के सब स्तरों से बाहर निकाल कर, उसको मृत्यु के अनुमति-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए हैं। उसने भारत में अंग्रेजी को अनिश्चित काल तक बनाए रखने की सिफारिश करके, एक अन्तर्राष्ट्रीय षड्यन्त्र से नाता जोड़ लिया है।

सारांश यह है कि "आयोग" के अधिकांश सुझाव चौंकाने वाले हैं, परेशानी में डालने वाले हैं। सत्य बात तो यह है कि भारतीय परिस्थितियों से अनभिज्ञ जिन विदेशियों से भारतीय शिक्षा के विकास के लिए परामर्श लिया गया, उनसे इसी प्रकार के काल्पनिक और कंटकपूर्ण सुझावों की आशा की जा सकती थी। अतः हम केवल यह लिखकर अपने मूल्यांकन को समाप्त करते हैं कि "आयोग" के केवल दो-चार सुझाव ही क्रियान्वित करने के योग्य हैं। शेष केवल इसी योग्य हैं कि उनको कागज पर लिखा हुआ रहने दिया जाय।

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Summarize briefly the recommendations of the Education Commission on teacher education. How far are they likely to improve educational standards?
   शिक्षक-शिक्षा के सम्बन्ध में शिक्षा-आयोग की सिफारिशों का संक्षिप्त सारांश लिखिए। वे शिक्षा के स्तर में सुधार करने के लिए कहाँ तक सहायक सिद्ध हो सकती हैं?
2. Comment on the view that the Report of the Indian Education Commission of 1966 is the first serious attempt at evolving a comprehensive scheme of a national system of education in India.

इस मत की समालोचना कीजिए कि सन् 1966 के भारतीय शिक्षा-आयोग की रिपोर्ट राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली की एक व्यापक योजना का प्रथम वास्तविक प्रयास है।

3. What reforms have been suggested by the Education Commission to break down the isolation of Primary and Secondary teachers' training institutions from the academic life of the universities and the everyday problems of schools ?
प्राथमिक तथा माध्यमिक अध्यापकों की प्रशिक्षण-संस्थाओं का विश्वविद्यालयों के विद्वत्परिषद् के जीवन तथा विद्यालयों की दैनिक समस्याओं से पार्थक्य को हटाने के लिए शिक्षा-आयोग ने क्या सुधार प्रस्तुत किए हैं ?

4. Give a critical estimate of the need of vocationalization of Secondary Education in India What difficulties can arise in doing so and how can they be removed ?
भारत में माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण की आवश्यकता की समीक्षात्मक आलोचना लिखिए। ऐसा करने से क्या कठिनाइयाँ उठ सकती हैं और उनको कैसे दूर किया जा सकता है ?

5. Write briefly the recommendations of the Kothari Commission on the following —(a) Three Language Formula, (b) University Autonomy, (c) Pattern of Secondary Education, (d) Reform in Women's, Education, and (e) Improvement in University Education
अग्रलिखित पर कोठारी कमीशन की सिफारिशों को संक्षेप में लिखिए :— (अ) त्रिभाषा-सूत्र, (ब) विश्वविद्यालय-स्वाधीनता, (स) माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप, (द) स्त्री-शिक्षा में सुधार, और (य) विश्वविद्यालय-शिक्षा में उन्नति।

21

स्वतन्त्र भारत में शिक्षा

EDUCATION IN FREE INDIA

(1947-1974)

"Education in India has expanded very rapidly since the attainment of independence".—Saiyidain & Gupta.

विषय-प्रवेश

15 अगस्त, 1947 को स्वतन्त्रता की सुरभि में भारतीय शिक्षा ने करवट बदली। पराधीनता के कारण भारत में जो विष फैल गया था, उसे दूर करने और जन-चेतना को जाग्रत करके जनतन्त्र के अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति सजग करने के लिए शिक्षा को एक नवीन दिशा देने का निश्चय किया गया। इसी उद्देश्य से प्रेरित होकर, जनवरी, 1948 में भारत के शिक्षा-मंत्री ने एक अखिल-भारतीय शिक्षा-सम्मेलन का आयोजन किया।

इस अवसर पर भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने अपने उद्घाटन-भाषण में कहा :—"पराधीन भारत में जब कभी शिक्षा की योजना बनाने के लिए सम्मेलन होते थे, तब उनमें सामान्य रूप से कुछ संशोधनों के बाद प्रचलित शिक्षा-प्रणाली को स्वीकार करने की प्रवृत्ति पाई जाती थी। किन्तु, अब हमें इस प्रवृत्ति का त्याग कर देना चाहिए और शिक्षा-प्रणाली में आमूल परिवर्तन करके उसे देश की नवीन परिस्थितियों के अनुरूप ढालना चाहिए।"

पंडित नेहरू के इस भाषण से अनुप्राणित होकर देश में शिक्षा को नई दिशा देने और इसकी बहुमुखी प्रगति के लिए जो चेष्टाएँ अब तक की गई हैं, उनका संक्षिप्त विवरण आगे के पृष्ठों में प्रस्तुत है।

शिक्षा का उत्तरदायित्व
Responsibility of Education

स्वतन्त्र भारत मे शिक्षा-प्रशासन की नीति में कोई हेर-फेर नही हुआ है। जिस प्रकार 1935 के "भारत-सरकार अधिनियम" (Government of India Act) के अन्तर्गत शिक्षा का उत्तरदायित्व—प्रान्तीय सरकारो पर था, उसी प्रकार स्वतन्त्र भारत के संविधान के अनुसार यह उत्तरदायित्व—राज्य-सरकारों पर है।

इस प्रकार, यद्यपि भारत मे शिक्षा का उत्तरदायित्व मूलतः राज्य-सरकारों पर है, तथापि केन्द्रीय सरकार—शिक्षा के सम्बन्ध मे अत्यधिक जागरूक है। वह राज्य-सरकारों को शिक्षा के विषय मे आवश्यक परामर्श देती है और उनको आर्थिक सहायता प्रदान करती है। वह शिक्षा-आयोगों की नियुक्ति करके और शिक्षा की समस्याओं में विभिन्न प्रकार के प्रयोग करके राज्यों का शिक्षा के सम्बन्ध मे मार्ग-प्रदर्शन करती है। वह सब राज्यों मे "शिक्षा-सुविधाओ मे समन्वय, उच्च शिक्षा के स्तर के निर्धारण, वैज्ञानिक और तकनीकी शिक्षा-अनुसंधान, हिन्दी और सभी भारतीय भाषाओं के विकास का कार्य करती है। अलीगढ़, दिल्ली, बनारस, विश्व-भारती तथा जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालयों और संसद द्वारा निर्दिष्ट राष्ट्रीय महत्त्व की अन्य संस्थाओ के संचालन का दायित्व भी केन्द्रीय सरकार पर है।"[1] केन्द्रीय सरकार अपने इन सब दायित्वों का निर्वाह "भारतीय शिक्षा-मंत्रालय" के माध्यम से करती है।

भारतीय शिक्षा-मंत्रालय
Indian Ministry of Education

भारतीय अर्थात् केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय का प्रधान—केन्द्रीय शिक्षा-मंत्री होता है। उसका मुख्य कर्मचारी—केन्द्रीय शिक्षा-परामर्शदाता (Educational Adviser) होता है। वही शिक्षा-मंत्रालय के सचिव का भी कार्य करता है। उसका सबसे बड़ा उत्तरदायित्व यह है कि वह सम्पूर्ण देश की शिक्षा-नीति तथा प्रशासन के सम्बन्ध में शिक्षा-मंत्री को परामर्श देता है। इसीलिए, इस पद पर देश का माना हुआ शिक्षा-शास्त्री आसीन किया जाता है। इस पद पर कार्य करने वालों में सर जॉन सार्जेन्ट एवं श्री हुमायूँ कबीर जैसे महान् व्यक्ति—शिक्षा के इतिहास मे विख्यात हैं।

केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय अग्रलिखित 8 विभागों मे विभक्त है[2] :—

1. प्राथमिक तथा बुनियादी शिक्षा-विभाग।
2. माध्यमिक शिक्षा-विभाग।
3. उच्च शिक्षा तथा यूनेस्को-विभाग।

---

1. भारत, 1973, p. 74.
2. डा० श्रीधरनाथ मुखोपाध्याय भारतीय शिक्षा का इतिहास, p. 214.

4. हिन्दी-विभाग।
5. सामाजिक शिक्षा तथा समाज-कल्याण विभाग।
6. व्यायाम तथा मनोरंजन विभाग,
7. छात्रवृत्ति विभाग, तथा
8. प्रशासन-विभाग।

केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय का मुख्य कार्य—नीति-निर्धारण, निर्देशात्मक एवं सहयोगात्मक है। अतः मंत्रालय में शिक्षा-सम्बन्धी विभिन्न प्रश्नों एवं समस्याओं पर विचार-विमर्श करने के लिए अनेक परिषदें हैं, जिनमें से अग्रांकित उल्लेखनीय हैं:—(1) विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग, (2) केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार-परिषद्, (3) अखिल-भारतीय प्राथमिक शिक्षा-परिषद्, (4) अखिल-भारतीय माध्यमिक शिक्षा-परिषद्, और (5) अखिल-भारतीय प्राविधिक शिक्षा-परिषद्।

1. विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग : University Grants Commission (1953)—इसकी स्थापना 1953 में की गई थी। 1956 में संसद के एक अधिनियम के द्वारा इसे एक स्वतन्त्र संस्था (Autonomous Body) मान लिया गया है। (देखिए अध्याय 15)।

इस "आयोग" के मुख्य कार्य हैं:—(1) विश्वविद्यालयों को समुचित अनुदान देना, (2) विश्वविद्यालयों की विकास-योजनाओं को कार्यान्वित करना, (3) विश्वविद्यालयों के स्तर के सम्बन्ध में प्रतिवेदन प्रस्तुत करना, (4) विश्वविद्यालयों में परीक्षा, शिक्षण एवं अनुसंधान के मानदण्ड स्थापित करना एवं उनका पालन करवाना, (5) विश्वविद्यालय-शिक्षा की उन्नति एवं समन्वय के लिए आवश्यक क़दम उठाना, (6) विश्वविद्यालय-सम्बन्धी किसी प्रश्न या समस्या के सम्बन्ध में केन्द्र या राज्य-सरकारों को परामर्श देना, (7) शिक्षा के उच्च केन्द्रों की स्थापना करना एवं उनको विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध करना, (8) छात्रों को भ्रमण के लिए अनुदान (Travel Grants) देना, (9) छात्रवृत्तियों एवं अधिसदस्यताओं (Fellowships) के कार्यक्रमों को सम्पादित करना, (10) छात्रावासों का निर्माण करवाना, (11) शिक्षकों के वेतन में सुधार करना, और (12) अवकाश-प्राप्त शिक्षकों की सेवाओं से लाभ उठाना।[1]

2. केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार-परिषद् : Central Advisory Board of Education (1935)—इसकी स्थापना 1921 में हुई थी, परन्तु कुछ कारणवश इसे 1923 में भंग कर दिया गया था। 1935 में इसका पुनः संगठन किया गया। (देखिए अध्याय 15)।

इस "परिषद्" के मुख्य कार्य हैं:—(1) अपनी वार्षिक बैठक में सम्पूर्ण देश के शिक्षा-सम्बन्धी प्रश्नों पर विचार करना, (2) समय-समय पर शिक्षा के विशिष्ट

1. *Hindustan Year-Book*, 1974, p. 180.

इस "परिषद्" के मुख्य कार्य हैं :—(1) सम्पूर्ण देश में माध्यमिक शिक्षा की प्रगति का सर्वेक्षण करना, (2) केन्द्रीय एवं राज्य-सरकारों को माध्यमिक शिक्षा के विषय में परामर्श देना, (3) केन्द्रीय एवं राज्य-सरकारों के माध्यमिक शिक्षा के विस्तार एवं उन्नति से सम्बन्धित प्रस्तावों की परीक्षा करना, और (4) माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित शोधों एवं अनुसंधानों पर गवेषण एवं विचार-विमर्श के लिए सुझाव देना।

5. अखिल-भारतीय प्राविधिक शिक्षा-परिषद् : All-India Council for Technical Education (1945)—इसकी स्थापना 1945 में हुई थी। यह केन्द्रीय और राज्य-सरकारों को हाई-स्कूल के स्तर से ऊपर की प्राविधिक शिक्षा के संगठन और विकास के लिए परामर्श देती है।

इस "परिषद्" की सिफारिश को स्वीकार करके उत्तरी, दक्षिणी, पूर्वीय और पश्चिमी क्षेत्रों में प्रादेशिक समितियों (Regional Committees) का निर्माण किया गया है। इनके प्रधान कार्यालय क्रमशः कानपुर, मद्रास, कलकत्ता और मद्रास में हैं। ये समितियाँ अपने क्षेत्रों में स्थित प्राविधिक शिक्षा-संस्थाओं का निरीक्षण करती हैं और प्राविधिक शिक्षा की सुविधाओं में समन्वय स्थापित करती हैं।[1]

राष्ट्रीय शिक्षा-नीति

National Education Policy

भारत-सरकार ने शिक्षा के विकास और सुसंगठित राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के विषय में परामर्श देने के लिए सन् 1964 में "शिक्षा-आयोग" की नियुक्ति की। "आयोग" ने भारतीय शिक्षा के सम्पूर्ण क्षेत्र का गहन एवं विस्तृत अध्ययन किया। इस अध्ययन के परिणामस्वरूप वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि भारतीयों की कुशलताओं एवं आकांक्षाओं, धारणाओं एवं मान्यताओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन करके इस देश के रूढ़िवादी, मध्यकालीन एवं अप्रगतिशील समाज को रूपान्तरित करके आर्थिक, औद्योगिक एवं व्यावसायिक उन्नति की दिशा में उन्मुख किया जाना सम्भव है। इस क्रान्तिकारी परिवर्तन के लिए शिक्षा से अधिक उत्तम साधन और कोई नहीं है। इस सन्दर्भ में "आयोग" ने लिखा है :—"अन्य साधन सहायता दे सकते हैं और वास्तव में कभी-कभी उनका अधिक प्रत्यक्ष प्रभाव हो सकता है। किन्तु, शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली ही वह साधन है, जो सब व्यक्तियों तक पहुँच सकती है।"

"Other agencies may help, and can indeed sometimes have a more apparent impact. But the national system of education is the only instrument that can reach all the people."—*Education Commission Report*, p. 4.

1. S. N. Mukerji : *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 284.

"आयोग ने अपने प्रतिवेदन में शिक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली के विषय में जो विचार अंकित किए, उनको संसद के सदस्यों, विभिन्न दलों के प्रतिनिधियों, राज्यों के शिक्षा-मन्त्रियों और भारतीय विश्वविद्यालयों के उपकुलपतियों ने कुछ संशोधन के पश्चात् स्वीकार किए। इसी के आधार पर भारत-सरकार ने शिक्षा की राष्ट्रीय नीति को सरकारी प्रस्ताव के रूप में 24 जुलाई, 1968 को जारी किया।[1]

स्वतन्त्र भारत की इस प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा-नीति में 17 कार्यक्रमों को सम्मिलित किया गया है। इनके अंतर्गत शिक्षा के सब महत्त्वपूर्ण पक्षों, सिद्धान्तों, स्तरों एवं संरचना को स्थान दिया गया है और शिक्षा के आधारभूत लक्ष्यों एवं उद्देश्यों को भी निर्धारित किया गया है। इसमें निहित 17 कार्यक्रम अधोलिखित हैं[2] :—

1. परीक्षाओं में सुधार,
2. खेल-कूद की व्यवस्था,
3. कार्य-अनुभव एवं राष्ट्रीय सेवा,
4. शैक्षिक अवसरों में समानता की स्थापना,
5. साक्षरता एवं वयस्क-शिक्षा का प्रसार,
6. अल्पसंख्यकों की शिक्षा की व्यवस्था,
7. कृषि एवं उद्योगों के लिए शिक्षा का विकास,
8. विज्ञान एवं अनुसंधान की शिक्षा का समान स्तर,
9. अध्यापकों के वेतन, शिक्षा एवं पदस्थिति में सुधार,
10. सस्ती पाठ्यपुस्तकों के स्तर एवं उत्पादन में सुधार,
11. त्रिभाषा-सूत्र एवं प्रादेशिक भाषाओं का विकास,
12. प्रतिभाशाली छात्रों की खोज एवं उनकी प्रतिभा का अधिकतम् विकास,
13. अल्पकालीन शिक्षा एवं पत्राचार-पाठ्यक्रमों की विशाल पैमाने पर व्यवस्था,
14. 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए नि.शुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था,
15. माध्यमिक स्तर पर तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा की सुविधाओं का विस्तार,
16. उच्च शिक्षा के केन्द्रों की सुविधाओं में विस्तार और स्नातकोत्तर-स्तर पर अनुसंधान एवं पाठ्यक्रमों में सुधार, तथा

---

1. भारत, 1973, p. 74
2. *Hindustan Year-Book*, 1969, p 179.

17. शिक्षा की संरचना—10 वर्ष की सामान्य शिक्षा, 2 वर्ष की उच्चतर माध्यमिक शिक्षा एवं 3 वर्ष का प्रथम डिग्री कोर्स।

टिप्पणी—उपर्युक्त कार्यक्रमों पर राष्ट्रीय आय का 6 प्रतिशत धन व्यय करने का निश्चय किया गया है।[2]

शिक्षा का विस्तार
Expansion of Education

स्वतन्त्र भारत में शिक्षा का आश्चर्यजनक विस्तार हुआ है। स्कूल और विश्वविद्यालय-स्तर पर दर्ज नामों की संख्या कई गुना हो गई है। इंजीनियरिंग और तकनीकी संस्थाओं में प्रवेश-क्षमता सात गुना हो गई है। समग्र रूप में शिक्षा का विस्तार निम्नांकित तालिका में स्पष्ट किया गया है :—

शिक्षालय, छात्र, शिक्षक व व्यय[2]

वर्ष	शिक्षालय-संख्या	छात्र-संख्या (लाखों में)	शिक्षक-संख्या (लाखों में)	व्यय (करोड़ रुपयों में)
1950–51	2,86,860	2,55·43	8·04	114·38
1955–56	3,66,641	3,39·24	11·07	189·66
1960–61	4,72,655	4,79·64	15·08	344·38
1964–65	7,53,416	6,74·17	20·13	534·51
1965–66	7,27,263	7,05·55	21·33	622·02
1966–67	7,56,094	7,26·69	22·22	678·42
1967–68	7,93,799	7,65·82	22·50	800·84

निःशुल्क विद्यालय-शिक्षा
Free School Education

भारत में निःशुल्क विद्यालय-शिक्षा की वर्तमान स्थिति इस प्रकार है[3] :—

1. जम्मू-कश्मीर और नागालैंड केवल दो राज्यों में शिक्षा सब स्तरों पर निःशुल्क है।
2. तामिलनाडु में प्री-यूनीवर्सिटी कक्षाओं सहित सम्पूर्ण विद्यालय-शिक्षा निःशुल्क है।
3. आंध्र प्रदेश, केरल और मैसूर में माध्यमिक स्तर के अन्त तक सब शिक्षा निःशुल्क है।
4. महाराष्ट्र में प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क है। जिन बच्चों के अभिभावकों

1. भारत, 1973, p. 74.
2. *Ibid.*
3. *Hindustan Year-Book*, 1974, p. 176.

की वार्षिक आय 1,200 रुपए से कम है, उनकी शिक्षा सब स्तरों पर नि.शुल्क है।

5. गुजरात में लगभग वही स्थिति है, जो महाराष्ट्र में है।
6. राजस्थान में बालिकाओं के लिए सब शिक्षा नि.शुल्क है। बालकों के लिए केवल प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क है।
7. पंजाब, हरियाणा और मध्य-प्रदेश में प्राथमिक शिक्षा सब बच्चों के लिए नि.शुल्क है।
8. उत्तर-प्रदेश में बालिकाओं के लिए कक्षा 10 के अन्त तक शिक्षा निःशुल्क है, किन्तु बालकों के लिए केवल कक्षा 6 तक नि.शुल्क है।
9. बिहार में कक्षा 1 से कक्षा 7 तक प्राथमिक शिक्षा सब बच्चों के लिए निःशुल्क है।
10. पश्चिमी बंगाल के ग्रामीण क्षेत्रों में कक्षा 1 से कक्षा 8 तक बालिकाओं के लिए शिक्षा नि.शुल्क है। ग्रामीण क्षेत्रों में और कुछ शहरी क्षेत्रों में कक्षा 1 से कक्षा 5 तक बालकों के लिए शिक्षा नि.शुल्क है। कलकत्ता और कुछ अन्य शहरी क्षेत्रों में शिक्षा अभी नि.शुल्क नहीं है।
11. उड़ीसा में प्राथमिक शिक्षा नि.शुल्क है।
12. आसाम में कक्षा 1 से कक्षा 8 तक बालिकाओं के लिए और कक्षा 1 से कक्षा 5 तक बालकों के लिए शिक्षा नि.शुल्क है।
13. दिल्ली के संघीय क्षेत्र में प्राथमिक शिक्षा सब बच्चों के लिए नि.शुल्क है।
14. अन्य संघीय क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क है।
15. अनुसूचित जातियों और जनजातियों के बच्चों के लिए शिक्षा नि शुल्क है।

नागालैंड और हिमाचल-प्रदेश के अतिरिक्त सभी राज्यों द्वारा "अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा-अधिनियम" (Compulsory Primary Education Act) पारित कर दिया गया है, जिसके फलस्वरूप 11-14 वय-वर्ग के बच्चों में प्राथमिक शिक्षा का आशातीत प्रसार हुआ है। हम इसकी पुष्टि निम्नांकित तालिका द्वारा कर रहे हैं।

प्राथमिक शिक्षा का विस्तार[1]

वय-वर्ग	1951	1971
6–11	लगभग 182 लाख या इस वय-वर्ग के 43% बच्चे	लगभग 605 लाख या इस वय-वर्ग के 80% बच्चे
11–14	लगभग 31 लाख या इस वय-वर्ग के 13% बच्चे	लगभग 143 लाख या इस वय-वर्ग के 35% बच्चे

1. *Hindustan Year-Book*, p. 177

"स्त्री-शिक्षा की राष्ट्रीय समिति" (National Council for Women's Education) बालिकाओं में शिक्षा का प्रसार करने की विधियों के सम्बन्ध में सरकार को सुझाव एवं परामर्श देती है। साथ ही, यह बालिका-शिक्षा से सम्बन्धित संस्थाओं को प्रोत्साहित करती है।

"अखिल-भारतीय प्राथमिक शिक्षा-परिषद्" (All-India Council for Elementary Education) प्राथमिक शिक्षा को सार्वभौमिक रूप प्रदान करने के विषय में केन्द्रीय एवं राज्य-सरकारों को परामर्श देती है और कार्यक्रम भी तैयार करती है।

प्राथमिक शिक्षा के सामान्यतः दो स्तर हैं—प्राथमिक और मिडिल। किन्तु, प्राथमिक स्तर की शिक्षा को राज्यों और संघीय क्षेत्रों में अनेक विभिन्न नामों से पुकारा जाता है, जैसा कि निम्नांकित तालिका से स्पष्ट हो जायगा :—

प्राथमिक विद्यालयों की नाममाला[1]

प्राथमिक	मिडिल
कक्षा 1 से 4 या 5	कक्षा 5 से 7 या 6 से 8
प्राथमिक (पंजाब) निम्न प्राथमिक (गुजरात) जूनियर बेसिक निम्न प्रारम्भिक (मद्रास)	मिडिल (पंजाब) जूनियर हाई स्कूल (उ० प्र०) सीनियर बेसिक उच्चतर प्रारम्भिक (मद्रास)

माध्यमिक शिक्षा
Secondary Education

प्राथमिक शिक्षा की प्रगति के साथ-साथ माध्यमिक शिक्षा का भी प्रसार हुआ है। 1950-51 में माध्यमिक स्कूलों, छात्रों और शिक्षकों की संख्या क्रमशः 20,884; 52,32,009; और 21,200 थी, जबकि 1966-67 में ये संख्याएँ क्रमशः 1,08,746, 3,07,15,045 और 10,62,034 थी। 1950-51 में माध्यमिक शिक्षा पर 30·74 करोड़ रुपए खर्च हुए, जबकि 1966-67 में 252·19 करोड़ रुपए व्यय हुए।[2]

आंध्र प्रदेश, जम्मू-कश्मीर, केरल, मैसूर, नागालैंड और तमिलनाडु में माध्यमिक स्तर की शिक्षा निःशुल्क है। राजस्थान और उत्तर प्रदेश में यह शिक्षा कि[...] बालिकाओं के लिए निःशुल्क है। अनुसूचित जातियों और जनजातियों के छात्रों के लिए देश-भर में माध्यमिक स्तर तक शिक्षा निःशुल्क है।[3]

---

1. S. N. Mukerji : *Education in India, Today & Tomorrow*, P
2. *India*, 1971-72, p. 66.
3. भारत, 1973, p. 77.

भारत-सरकार ने सन् 1961 में "केन्द्रीय तिब्बती विद्यालय-प्रशासन" (Central Tibetan Schools Administration) नामक एक स्वतन्त्र संस्था की सृष्टि की। यह संस्था—तिब्बत से आने वाले शरणार्थियों के बच्चों के लिये विद्यालयों एवं अन्य प्रकार की शिक्षा-शालाओं की स्थापना एवं प्रबन्ध करती है। इस समय, यह 5 आवास विद्यालय, एक शैक्षिक एवं व्यावसायिक संस्था और 7 दिवस-विद्यालयों (Day Schools) का संचालन कर रही है।[1]

उच्च व विश्वविद्यालय-शिक्षा
Higher & University Education

भारत में माध्यमिकोत्तर (Post-Secondary) शिक्षा—कला, विज्ञान एवं व्यावसायिक कालेजों, अनुसंधान-संस्थाओं और विश्वविद्यालयों के माध्यम से दी जाती है। जिन राज्यों में जहाँ उच्चतर माध्यमिक एवं इण्टरमीडिएट-शिक्षा के बोर्ड हैं, वहाँ उत्तर-इण्टरमीडिएट (Post-Intermediate) शिक्षा का पाठ्यक्रम, परीक्षा और डिग्रियाँ प्रदान करना आदि कार्यों का निर्देशन एवं नियन्त्रण विश्वविद्यालयों के हाथों में है। इस समय देश में 86 विश्वविद्यालय और 3,604 से अधिक कॉलिज हैं।[2]

उपर्युक्त कालिजों एवं विश्वविद्यालयों के अतिरिक्त उच्च शिक्षा के लिये और भी अनेक संस्थायें हैं; यथा :—(1) बिरला इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी एण्ड साइंस, पिलानी; (2) इण्डियन एग्रीकल्चरल रिसर्च इंस्टीट्यूट, नई दिल्ली; (3) इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस, बंगलौर; (4) जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली; (5) इंडियन स्कूल ऑफ इन्टरनेशनल स्टडीज, नई दिल्ली; (6) गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरद्वार; (7) काशी विद्यापीठ, वाराणसी; (8) गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद; (9) टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, बम्बई; (10) इण्डियन स्कूल ऑफ माइन्स, धनबाद। ये संस्थाएँ 1956 के "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग अधिनियम" (University Grants Commission Act) के सन्दर्भ में विश्वविद्यालयों के समान हैं।

"अन्तर-विश्वविद्यालय-मंडल" (Inter-University Board) ने "वैज्ञानिक अनुसंधान" अध्याय में उल्लिखित अधिकांश अनुसंधान-संस्थाओं और प्रयोगशालाओं को उच्चतर अनुसंधान-केन्द्रों के रूप में मान्यता दी है। 1925 में स्थापित किये जाने वाले इस "मंडल" में विश्वविद्यालयों द्वारा प्रदत्त डिग्रियों एवं डिप्लोमाओं की मान्यता एवं अन्य समस्याओं पर विचार-विमर्श किया जाता है। इस "मंडल" का मुख्य कार्य—उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में परामर्श देना है।

---

1. *Hindustan Year-Book*, 1974, p. 178.
2. भारत 1973, p. 77 & *Hindustan Year-Book*, 1974, p. 179.

उपसंहार

स्वतन्त्र भारत में शिक्षा के सब अंगों एवं क्षेत्रों का असाधारण विस्तार एक विस्मयकारी घटना है, अवश्य की बात है। पर साथ ही यह घटना—उत्साह से उत्पन्न वाली और परेशान करने वाली भी है। इस घटना के इन दोनों पक्षों का निरूपण करते हुए, सैयदेन व गुप्ता ने लिखा है :—"स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से भारत में शिक्षा का अत्यन्त त्वरित गति से विस्तार हुआ है। सामान्य रूप से, इस संख्यात्मक वृद्धि की शिक्षण के सब स्तरों पर प्रतिकूल प्रतिक्रिया हुई है, और इसने अध्यापकों, साज-सज्जा, भवनों एवं अन्य आवश्यक सुविधाओं की श्रेष्ठता को निम्नतर बना दिया है। इसके परिणामस्वरूप, शिक्षा के लिए उपलब्ध धनराशि के अधिकांश भाग का प्रयोग शिक्षा के संख्यात्मक विस्तार के लिए और उसकी तुलना में गुणात्मक उन्नति के उपायों की उपेक्षा करने के लिए किया गया है।"

"Education in India has expanded very rapidly since the attainment of independence. The pressure of numbers at all stages of education has, generally speaking, reacted adversely on standards of instruction and tended to lower the quality of staff, equipment, buildings and other necessary amenities. It has led to the diversion of a large proportion of the limited funds available to quantitative expansion and to the comparative neglect of measures for the improvement of quality."—K. G. Saiyidain & H. C. Gupta : *Access to Higher Education in India*, p. 75.

टिप्पणी :—अधिक अध्ययन के लिए "विविध विषय" देखिए।

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Describe briefly the opportunity of free school education in India.

   भारत में निःशुल्क विद्यालय-शिक्षा के अवसर का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

2. Give a short account of the activities of the Government of India in the field of secondary education.

   माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में भारत-सरकार की गतिविधियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

3. Write short notes on :—(a) University Grants Commission, (b) Central Advisory Board of Education, and (c) National Education Policy.

   अधोलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए :—(अ) विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग, (ब) केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार-परिषद्, और (स) राष्ट्रीय शिक्षा-नीति।

22

पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा
EDUCATION UNDER FIVE-YEAR PLANS
(1951-1979)

"Under the National Programme of Minimum Needs, provisions will be made for achieving the goal of universalization of elementary education." —*Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol I

विषय-प्रवेश

शताब्दियों से पराधीनता की शृंखलाओं में बन्दी भारत ने 15 अगस्त, 1947 को मुक्त होकर स्वाधीनता की पावन वायु में साँस ली। उस समय विगत विश्वयुद्ध, देश के विभाजन और अंग्रेजों की शोषण-नीति के फलस्वरूप भारत की आर्थिक दशा इतनी असंतुलित एवं इतनी निम्न स्थिति में थी कि भारतीयों के सुख एवं सम्पन्नता की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। स्वाधीनता के चरम लक्ष्य की सफलता—जन-जन की समृद्धि में निहित थी। प्रत्येक व्यक्ति अपनी प्रतिभा का पूर्ण विकास तभी कर सकता था, जबकि उसकी आर्थिक, सामाजिक, मानसिक एवं राजनीतिक शक्तियाँ सुदृढ़ हों। साथ ही, उसके जीवन का स्तर भी ऊँचा हो, जिससे वह दरिद्रता एवं बेकारी के भयंकर अभिशापों से मुक्त हो सके।

युद्धोपरान्त-काल में संसार के अनेक सभ्य एवं समृद्ध देशों में वैभव, सम्पन्नता, समानता एवं सब को समान सुविधाएँ प्रदान करने के लिये विभिन्न प्रकार की योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही थीं। उनके उदाहरण से उत्साहित होकर भारत ने भी अपनी समस्त बिखरी हुई शक्तियों को एकत्र करने और आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक न्याय की दिशा में अग्रसर होने का निश्चय किया। [illegible]

की व्यवस्था का अनुपात बराबर ही है, परन्तु विश्वविद्यालयों की शिक्षा इतनी विस्तृत है कि बुनियादी शिक्षा उस भार को उपयोगिता की दृष्टि से ठीक से सम्भाल नहीं पा रही है। उच्च शिक्षा को अनावश्यक अधिक महत्त्व मिलने से अनेक विद्यार्थियों के व्यावहारिक ज्ञान का विकास और उपयोगिता कुंठित हो गई है, और टेकनिकल तथा व्यावसायिक शिक्षा की पर्याप्त सुविधाएँ न होने के कारण अनेक विद्यार्थियों को लाचार होकर साधारण शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है, जिसकी न तो देश को ही इतनी जरूरत है और न ही विद्यार्थियों की उस ओर रुचि ही है। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक राज्य में शिक्षा-विषयक सुविधाएँ एक-सी प्राप्त नहीं हैं। इसी प्रकार, शहरों और गाँवों में भी शिक्षा की सुविधाएँ ठीक से नहीं बाँटी गई हैं, जिससे गाँव घाटे में रह गए हैं। दूसरा भारी दोष यह है कि पुरुषों की तुलना में स्त्रियों की शिक्षा की उपेक्षा की गई है। शिक्षा-क्षेत्र में योग्य और अनुभवी शिक्षकों का भी बड़ा अभाव है और उनमें से अधिकांश अध्यापक ट्रेनिंग प्राप्त नहीं हैं।"

पहली पंचवर्षीय योजना में शिक्षा, 1951-56

Education Under First Five-Year Plan, 1951-56

"पहली पंचवर्षीय योजना" अप्रैल, 1951 में आरम्भ की गई। इस "योजना" में भारतीय शिक्षा-प्रणाली को दोष-मुक्त करने और उसे जनतन्त्रीय आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने के लिए सक्रिय पग उठाए गए। हम इस "योजना" के अन्तर्गत शिक्षा-योजना के प्रमुख अंगों का वर्णन नीचे कर रहे हैं, यथा :—

1 शिक्षा पर व्यय

Expenditure on Education

"पहली पंचवर्षीय योजना" में शिक्षा के विकास के लिए 1 अरब 69 करोड़ रुपये की धनराशि रखी गई थी। इसमें से शिक्षा के विविध क्षेत्रों पर व्यय का, जो विभाजन किया गया था, वह निम्न प्रकार है[1] :—

शिक्षा के स्तर	व्यय (करोड़ रुपयों में)
1. प्राथमिक शिक्षा	93
2. माध्यमिक शिक्षा	22
3. विश्वविद्यालय-शिक्षा	15
4. औद्योगिक व व्यावसायिक शिक्षा	23
5. समाज-शिक्षा	5
6. प्रशासन व विविध	11
योग	169

1. दूसरी पंचवर्षीय योजना, p. 468.

2. शिक्षा-योजना के उद्देश्य
Aims of Scheme of Education

"पहली पंचवर्षीय योजना" के अन्तर्गत शिक्षा-योजना के अधोलिखित उद्देश्य थे :—

1. शिक्षा-प्रणाली के विभिन्न अंगों का पुनर्संगठन करना।
2. शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षा का स्वरूप परिवर्तित करना।
3. बेसिक एवं प्राथमिक शिक्षा का विस्तार करना।
4. माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय-शिक्षा का पुनर्गठन करना।
5. प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा को देश की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाना।
6. स्त्री-शिक्षा का प्रसार करना एवं ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहन देना।
7. समाज-शिक्षा के विस्तार के लिए प्रयास करना।
8. अध्यापक-प्रशिक्षण की उपयुक्त व्यवस्था करना।
9. बेसिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण का प्रबन्ध करना।
10. शिक्षकों के वेतन और कार्य एवं सेवा की दशाओं में सुधार करना।
11. शिक्षा में पिछड़े हुए राज्यों को उदार आर्थिक सहायता देकर उनको शिक्षा के प्रसार के लिए प्रोत्साहित करना।

3. शिक्षा-योजना का कार्यक्रम
Programme of Scheme of Education

"पहली पंचवर्षीय योजना" के अन्तर्गत शिक्षा-योजना के कार्यक्रम में जिन बातों को स्थान दिया गया, उनका वर्णन नीचे किया जा रहा है; यथा :—

1. 6–11 वय-वर्ग के 60% बालकों को शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान करना।
2. 6–11 वय-वर्ग की 40% बालिकाओं को शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान करना।
3. 11–14 वय-वर्ग के कुछ बालकों एवं बालिकाओं को शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान करना।
4. माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने वाले बालकों एवं बालिकाओं की संख्या को क्रमशः 15 और 10 प्रतिशत पर पहुँचाना।
5. समाज-शिक्षा के क्षेत्र में 14 से 40 वर्ष की आयु तक के पुरुषों एवं स्त्रियों को व्यावसायिक कार्यों की शिक्षा देना।
6. उक्त पुरुषों एवं स्त्रियों के अनुपात को क्रमशः 20 और 10 प्रतिशत करना।

7. बच्चों, शिक्षकों एवं वयस्कों के लिए उपयुक्त साहित्य का उत्पादन करना।
8. निम्न और उच्च स्तरों पर छात्रों के लिए प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था करना।
9. विश्वविद्यालय-शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाना।
10. स्नातकोत्तर-शिक्षा एवं अनुसंधान-कार्य में सभी सम्भव विधियों से उन्नति करना।

4. शिक्षा-योजना की उपलब्धियाँ
Achievements of Scheme of Education

"पहली पंचवर्षीय योजना" के अन्तर्गत शिक्षा-योजना की मुख्य उपलब्धियाँ इस प्रकार थीं :—

1. बेसिक एवं प्राथमिक शिक्षा—बेसिक शिक्षा-प्रणाली का विकास; ग्रामों एवं नगरों में बेसिक स्कूलों की स्थापना; प्रचलित प्राथमिक विद्यालयों में सुधार; प्राथमिक स्कूलों का बेसिक स्कूलों में परिवर्तन, और बेसिक एवं प्राथमिक स्कूलों के शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था।

2. माध्यमिक शिक्षा—"माध्यमिक शिक्षा-आयोग" की सिफारिशों के अनुसार माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन करने का प्रयास; बहु-उद्देशीय (Multipurpose) स्कूलों की स्थापना; पुराने माध्यमिक स्कूलों का सुधार; और माध्यमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम में व्यावसायिक विषयों, कृषि-शिक्षा आदि का समावेश।

3. विश्वविद्यालय-शिक्षा—विश्वविद्यालय-शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने का प्रयास; विश्वविद्यालयों के पुस्तकालयों को आर्थिक सहायता, और अनुसंधान-कार्य के लिए विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ।

4. प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा—इंजीनियरिंग कॉलेजों की स्थापना; प्राविधिक एवं व्यावसायिक स्कूलों की सृष्टि, जूनियर बहुधंधीय स्कूलों का निर्माण; औद्योगिक स्कूलों का विस्तार, और विशेष व्यावसायिक विषयों के प्रशिक्षण की व्यवस्था।

5. समाज-शिक्षा—वयस्क-साक्षरता का विस्तार, जनता कॉलेजों की स्थापना; वयस्कों के लिए नागरिकता, स्वास्थ्य-रक्षा एवं समय के सदुपयोग की शिक्षा की व्यवस्था; वयस्कों के लिए साहित्य का निर्माण, और वयस्कों के लिए पुस्तकालयों की स्थापना।

हम "पहली पंचवर्षीय योजना" के अन्तर्गत शिक्षा-योजना की उपलब्धियों को ... की तालिका में प्रदर्शित कर रहे हैं :—

विवरण	योजना से पूर्व 1950-51	पहली योजना 1955-56
(क) विभिन्न वय वर्ग के बच्चे		
1. 6-11 वय-वर्ग का प्रतिशत	42·6	52·8
2. 11-14 " " "	12·7	16·5
3. 14-17 " " "	5·3	7·4
4. 17-23 " " "	0·8	1·4
(ख) संस्थाओं की संख्या		
1. प्राइमरी स्कूल	2,09,671	2,78,135
2. मिडिल स्कूल	13,569	21,730
3. हाईस्कूल/हायर सेकण्डरी स्कूल	7,288	10,838
4. बहुद्देशीय विद्यालय	—	255
5. प्रशिक्षण-विद्यालय	782	939
6. प्रशिक्षण-कालेज	53	107
7. कालेज	542	772
8. विश्वविद्यालय	27	32
(ग) प्रशिक्षित अध्यापक प्रतिशत		
1. प्राइमरी स्कूल	58·8	61·2
2. मिडिल स्कूल	53·3	58·5
3. हाईस्कूल/हायर सेकण्डरी स्कूल	53·8	59.7

दूसरी पंचवर्षीय योजना में शिक्षा, 1956-61
Education Under Second Five-Year Plan, 1956-61

पंचवर्षीय योजनाओं के आरम्भ और अन्त की तिथियाँ राष्ट्र के इतिहास में महत्वपूर्ण तिथियाँ हैं। पहली पंचवर्षीय योजना का अन्त मार्च, 1956 में और दूसरी पंचवर्षीय योजना का आरम्भ अप्रैल, 1956 में हुआ। शिक्षा के महत्व का उल्लेख करते हुए, "दूसरी पंचवर्षीय योजना" में कहा गया :—"आर्थिक प्रगति जिस तेजी से की जा सकती है और उससे जो लाभ उठाए जा सकते हैं, उनको निश्चित करने में शिक्षा-पद्धति का विशेष महत्व होता है। आर्थिक विकास स्वभावतः मानव-साधनों की अधिक-से-अधिक माँग करता है और जनतन्त्रीय व्यवस्था में यह ऐसे मूल्यों और अभिवृत्तियों की माँग करता है, जिनका निर्माण करने में शिक्षा का गुन ... आवश्यक तत्व है।"

1. भारत, 1973, p. 76.

"The system of education has a determining influence on the rate at which economic progress is achieved and the benefits which can be derived from it. Economic development naturally makes growing demands on human resources and in a democratic set-up, it calls for values and attitudes in the building of which the quality of education is an important element."—*Second Five-Year Plan.*

हम "दूसरी पंचवर्षीय योजना" के अन्तर्गत शिक्षा-योजना के मुख्य अंगों का विवरण उपस्थित कर रहे हैं; यथा :—

1. शिक्षा पर व्यय
Expenditure on Education

"दूसरी योजना" में शिक्षा के विकास के लिए 3 अरब 7 करोड़ रुपए की धन-राशि निर्धारित की गई थी, जबकि "पहली योजना" में यह धनराशि 1 अरब 69 करोड़ रुपए की थी। पहली और दूसरी योजना में शिक्षा के विविध क्षेत्रों पर व्यय का जो विभाजन किया गया था, वह निम्न प्रकार है[1] :—

शिक्षा के स्तर	व्यय (करोड़ रुपयों में)	
	पहली योजना 1951-56	दूसरी योजना 1956-61
1. प्राथमिक शिक्षा	93	89
2. माध्यमिक शिक्षा	22	51
3. विश्वविद्यालय-शिक्षा	15	57
4. प्रौद्योगिक व व्यावसायिक शिक्षा	23	48
5. समाज-शिक्षा	5	5
6. प्रशासन व विविध	11	57
योग	169	307

2 शिक्षा-योजना के उद्देश्य
Aims of Scheme of Education

"पहली पंचवर्षीय योजना" के अन्तर्गत शिक्षा-योजना का मुख्य उद्देश्य—शिक्षा-प्रणाली को दोषमुक्त करके उसे जनतन्त्रीय आवश्यकताओं के अनुकूल बनाना

1. दूसरी पंचवर्षीय योजना, p. 468.

था। किन्तु, इन कार्यों में पूर्ण सफलता प्राप्त न हो सकी। इसके कारण थे—इस योजना की त्रुटियाँ। इनकी ओर संकेत करते हुए और इनको स्वीकार करते हुए श्री देशमुख ने आलंकारिक भाषा में कहा था :—"तस्वीर में कुछ धब्बे हैं और धब्बों का होना स्वाभाविक भी है, क्योंकि तस्वीर बहुत बड़ी बन रही है।"

"तस्वीर" थी—शिक्षा की योजना और "धब्बे" थे—उसके दोष। योजना वास्तव में बहुत बड़ी थी और इसलिए उसमें दोषों का समावेश हो जाना स्वाभाविक बात थी। ये दोनों बातें न केवल योजना-निर्माताओं के अदम्य उत्साह की, अपितु उनकी अनुभवहीनता की भी परिचायक हैं। यदि जितने उत्साह से योजना का निर्माण किया गया था, उतने ही उत्साह से उसका कार्यान्वयन किया गया होता, तो सम्भवतः अनुभवहीनता के कारण उसमें प्रविष्ट होने वाले दोषों का निवारण हो जाता। पर समय की गतिविधियों और परिस्थितियों की परिसीमाओं ने उन दोषों का उन्मूलन नहीं होने दिया, जिसके फलस्वरूप योजना के आधारभूत उद्देश्य की प्राप्ति असम्भव हो गई। किन्तु, इससे हतोत्साहित न होकर, और अपने पिछले अनुभव से पथ-प्रदर्शित होकर योजना-निर्माताओं ने शिक्षा की दूसरी योजना तैयार की और उसके निम्नांकित उद्देश्य निर्धारित किए :—

1. बेसिक एवं प्राथमिक शिक्षा का विकास एवं प्रसार करना।
2. प्राथमिक शिक्षा के सम्पूर्ण ढाँचे का बुनियादी ढंग पर आधुनिकीकरण करना।
3. माध्यमिक शिक्षा में विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमों को लागू करके उसके स्वरूप में परिवर्तन करना।
4. कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों के शिक्षा-स्तरों में सुधार एवं उन्नति करना।
5. विश्वविद्यालय-शिक्षा को बहुमुखी बनाना।
6. प्राविधिक, औद्योगिक एवं व्यावसायिक शिक्षा में नवीन पाठ्यक्रमों को चालू करना और उनकी सुविधाओं में विस्तार करना।
7. समाज-शिक्षा का विकास करने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों को व्यावहारिक रूप प्रदान करना।
8. विज्ञान के अन्य क्षेत्रों में शिक्षा की सुविधाओं का विस्तार करना।

3. शिक्षा-योजना का कार्यक्रम

Programme of Scheme of Education

"दूसरी पंचवर्षीय योजना" के अन्तर्गत शिक्षा-योजना का अग्रांकित कार्यक्रम निश्चित किया गया :—

1. बेसिक शिक्षा का विस्तार करना।
2. माध्यमिक शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार करना।

3. प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय एव अवरोधन को रोकना।
4. प्राथमिक विद्यालयों का बेसिक विद्यालयो में परिवर्तन करना।
5. प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं को शिक्षा की अधिक सुविधाएँ प्रदान करना।
6. "माध्यमिक शिक्षा-आयोग" की सिफारिशों के अनुसार माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन करना।
7. समाज-शिक्षा का विभिन्न स्तरो पर विस्तार करना।
8. टेकनिकल कर्मचारियों की बढ़ती हुई माँग की पूर्ति करना।
9. विश्वविद्यालय एव कालिज की शिक्षा के स्तरों को ऊँचा उठाना।
10. "विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग" की सिफारिश के अनुसार उच्चतर ग्राम-शिक्षा की व्यवस्था करना।

4. शिक्षा-योजना की उपलब्धियाँ
Achievements of the Scheme of Education

"दूसरी पचवर्षीय योजना" के अन्तर्गत शिक्षा-योजना की मुख्य उपलब्धियाँ इस प्रकार थीं :—

1. बेसिक शिक्षा—बेसिक शिक्षा के उत्पादक पक्ष पर बल; कक्षा 8 तक के सम्पूर्ण बेसिक विद्यालयो की स्थापना, अध्यापको के लिए पूर्णकालीन प्रशिक्षण एवं अभिनवन पाठ्यक्रमो (Refresher Courses) की व्यवस्था; बेसिक विद्यालयो के लिए साहित्य का निर्माण, और "राष्ट्रीय बेसिक शिक्षा-परिषद्' (National Council of Basic Education) का गठन।

2 प्राथमिक शिक्षा—शिक्षा-सुविधाओं का विस्तार, पारी पद्धति (Shift System) का प्रचलन, स्थानीय निकायो को "शिक्षा-कर" (Education Cess) लगाने का अधिकार, प्राथमिक शिक्षा-पद्धति का बेसिक शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन; अपव्यय एव अवरोधन को रोकने के लिए प्रशिक्षित अध्यापको की नियुक्ति एवं शिक्षण-विधियो में सुधार; और बालिका-शिक्षा का विस्तार एव अध्यापिकाओं के अभाव की पूर्ति।

3. माध्यमिक शिक्षा—माध्यमिक शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन करने के प्रयास; बहुउद्देशीय एवं जूनियर टेकनिकल स्कूलो की स्थापना, हाई स्कूलों का उच्चतर माध्यमिक स्कूलो में परिवर्तन; माध्यमिक विद्यालयो में बालिकाओं की सख्या में वृद्धि; शिक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था; और ग्रामीण माध्यमिक स्कूलों में कृषि-शिक्षा की व्यवस्था।

4. विश्वविद्यालय-शिक्षा—विश्वविद्यालय एव कॉलेज की शिक्षा के स्तरो को ऊँचा उठाने का प्रयास; अपव्यय एवं अवरोधन को कम करने का प्रयत्न, त्रि-वर्षीय डिग्री-पाठ्यक्रम का सूत्रपात, और भवनों, पुस्तकालयों एवं प्रयोगशालाओं में सुधार।

5. प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा—पहली योजना की अवधि में स्थापित [illegible] जाने वाली शिक्षा-संस्थाओं का विकास; प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की [illegible] सुविधाओं में विस्तार; उच्चतर टेकनिकल एवं डिप्लोमा-स्तर की संस्थाओं की स्थापना; स्नातकोत्तर-पाठ्यक्रमों की व्यवस्था, और इंजीनियरिंग एवं टेकनालॉजी में अनुसंधान की व्यवस्था।

6. समाज-शिक्षा—साक्षरता के प्रतिशत में वृद्धि; साक्षरता एवं समाज-केन्द्रों की स्थापना, समाज-शिक्षा-कार्यकर्ताओं एवं संगठनकर्ताओं का प्रशिक्षण, और पुस्तकालयों एवं साहित्य-प्रकाशन की व्यवस्था।

7. उच्चतर ग्राम-शिक्षा—उच्चतर ग्राम-संस्थाओं की स्थापना; और इन संस्थाओं में उच्चतर शिक्षा की व्यवस्था।

"दूसरी पंचवर्षीय योजना" के अन्तर्गत शिक्षा-योजना की उपलब्धियों को नीचे की तालिका में स्पष्ट किया गया है[1] :—

विवरण	योजना से पूर्व 1950-51	पहली योजना 1955-56	दूसरी योजना 1960-61
(क) विभिन्न वय-वर्गों के बच्चे			
1. 6—11 वय-वर्ग का प्रतिशत	42·6	52·8	62·4
2. 11—14 " " "	12·7	16·5	22·5
3. 14—17 " " "	5·3	7·4	10·6
4. 17—23 " " "	0·8	1·4	1·8
(ख) संस्थाओं की संख्या			
1. प्राइमरी स्कूल	2,09,671	2,78,135	2,30,399
2. मिडिल स्कूल	13,596	21,730	49,663
3. हायर सेकण्डरी स्कूल	7,288	10,838	17,257
4. बहुद्देशीय विद्यालय	—	255	2,115
5. [illegible]	732	939	1,138
6. [illegible]	53	107	478
7. [illegible]	542	772	1,122
8. विश्वविद्यालय	27	32	4[illegible]
(ग) प्रशिक्षित अध्यापक प्रतिशत			
1. प्राइमरी स्कूल	53·8	61·2	64[illegible]
2. मिडिल स्कूल	53·3	58·5	66[illegible]
3. हायर सेकण्डरी स्कूल	53·3	59·7	6[illegible]

1. भारत, 1963, p. 76.

तीसरी पंचवर्षीय योजना में शिक्षा, 1961-66
Education Under Third Five-Year Plan, 1961-66

"पहली पंचवर्षीय योजना" आरम्भ होने के बाद से शिक्षा की सुविधाओं में सभी स्तरों पर प्रशंसनीय विस्तार हुआ। किन्तु, जब दृष्टि इस समस्या की विशालता, देश की जन-शक्ति का विकास करने और ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करने की आवश्यकता पर गई, जिनमें सबको आगे बढ़ने के समान अवसर मिल सकें, तब शिक्षा के विकास की प्रगति को और भी तीव्र करने का निश्चय किया गया। इस निश्चय को क्रियान्वित करने के लिए "तीसरी पंचवर्षीय योजना" के अन्तर्गत शिक्षा के लिये एक योजना तैयार की गई। हम इस योजना के प्रमुख पक्षों का दिग्दर्शन करा रहे है; यथा :—

1. शिक्षा पर व्यय
Expenditure on Education

पहली, दूसरी और तीसरी योजनाओं में शिक्षा के विविध अंगों पर व्यय का विभाजन नीचे की तालिका में स्पष्ट किया गया है[1] :—

शिक्षा के स्तर	व्यय (करोड़ रुपया में)		
	पहली योजना 1951-56	दूसरी योजना 1956-61	तीसरी योजना 1961-66
1. प्रारम्भिक शिक्षा	85	87	209
2. माध्यमिक शिक्षा	20	48	88
3. विश्वविद्यालय शिक्षा	14	45	82
4. अन्य कार्यक्रम—			
समाज शिक्षा	—	4	6
शारीरिक शिक्षा व	14		
युवक कल्याण	—	10	12
अन्य	—	10	11
5. योग	133	204	408
6. सांस्कृतिक कार्यक्रम	*	4	10
7. कुल योग	133	208	418

* पहली योजना में सांस्कृतिक कार्यक्रम पर होने वाला व्यय अन्य कार्यक्रम में सम्मिलित कर लिया गया था।

2. शिक्षा-योजना के उद्देश्य
Aims of Scheme of Education

"तीसरी पंचवर्षीय योजना" में शिक्षा-योजना के एक मुख्य उद्देश्य को इन

1. *Third Five-Year Plan*, p. 577.

शब्दों में अंकित किया गया :—"तीसरी योजना का एक मुख्य उद्देश्य—शिक्षा-सम्बन्धी प्रयास को विस्तृत एवं तीव्र बनाना और प्रत्येक परिवार को इसकी सीमा के अन्तर्गत लाना है, ताकि इस समय के बाद राष्ट्रीय जीवन के सब क्षेत्रों में शिक्षा—नियोजित विकास का केन्द्र-बिन्दु बन जाय।"

"One of the major aims of the Third Plan is to expand and intensify the educational effort and to bring every home within its fold so that, from now on, in branches of national life, education becomes the focal point of planned development."—*Third Five-Year Plan.*

उपर्युक्त के अतिरिक्त, शिक्षा-योजना के अन्य उद्देश्य इस प्रकार थे :—

1. 6 से 11 वय-वर्ग के सब बालकों एवं बालिकाओं के लिए शिक्षा की उचित व्यवस्था करना।
2. माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय-स्तरों पर विज्ञान की शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार करना।
3. प्राविधिक, प्रौद्योगिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का देश की आवश्यकताओं के अनुसार प्रसार करना।
4. सभी वर्गों के शिक्षकों को अधिक वेतन देने की समुचित व्यवस्था करना।

3. शिक्षा-योजना का कार्यक्रम
Programme of Scheme of Education

"तीसरी पंचवर्षीय योजना" के अन्तर्गत शिक्षा-योजना का कार्यक्रम इस प्रकार था :—

1. प्राथमिक शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार करना।
2. प्राथमिक विद्यालयों को बेसिक विद्यालयों में परिवर्तित करना।
3. प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण की उत्तम व्यवस्था करना।
4. माध्यमिक स्तर पर विज्ञान की शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार करना।
5. माध्यमिक विद्यालयों में विभिन्न पाठ्यक्रमों की व्यवस्था करना।
6. नवीन उच्चतर माध्यमिक स्कूलों और बहुद्देशीय विद्यालयों की स्थापना करना।
7. विश्वविद्यालय स्तर पर विज्ञान-शिक्षा की सुविधाओं में वृद्धि करना।
8. विश्वविद्यालय शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाना।
9. प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का विस्तार करने के लिए विभिन्न कार्यक्रमों को आयोजित करना।

10. वयस्क-साक्षरता एवं समाज-शिक्षा के प्रसार के लिए व्यापक कार्यक्रमों को क्रियान्वित करना।

4. शिक्षा-योजना की उपलब्धियाँ
Achievements of the Scheme of Education

"तीसरी पंचवर्षीय योजना" के अन्तर्गत शिक्षा-योजना की मुख्य उपलब्धियाँ निम्नलिखित थी :—

1. बेसिक शिक्षा—बेसिक शिक्षा-प्रणाली का विस्तार; अध्यापकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था; नवीन प्रशिक्षण-संस्थाओं में बेसिक विधि का कार्यान्वयन; और वर्तमान प्रशिक्षण-विद्यालयों की क्षमता में वृद्धि।

2. प्राथमिक शिक्षा—शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार; अपव्यय में कमी; बालिकाओं को विद्यालय जाने के लिए प्रोत्साहन; अध्यापिकाओं के लिए आवास की व्यवस्था; संक्षिप्त पाठ्यक्रमों (Condensed Courses) का आयोजन; और प्राथमिक विद्यालयों का बेसिक विद्यालयों में परिवर्तन।

3. माध्यमिक शिक्षा—छात्रों एवं छात्राओं की संख्या में वृद्धि; विज्ञान-शिक्षा की सुविधाओं में वृद्धि, विभिन्न पाठ्यक्रमों की व्यवस्था, बहुउद्देशीय विद्यालयों में सुधार; माध्यमिक स्कूलों का उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में परिवर्तन; और शिक्षा-सम्बन्धी अनुसंधान पर बल।

4. विश्वविद्यालय शिक्षा—नवीन कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों की स्थापना; विज्ञान की शिक्षा का विस्तार, प्रयोगशालाओं की सुविधाओं में वृद्धि, शिक्षकों के वेतनों में वृद्धि; पुस्तकालयों का सुधार, और स्नातकोत्तर-शिक्षा एवं अनुसन्धान-कार्य के लिए अधिक धन की व्यवस्था।

5. प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा—प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार, नवीन शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना, अल्पकालीन एवं पत्राचार-पाठ्यक्रमों की व्यवस्था, और विभिन्न व्यवसायों के लिए व्यक्तियों को प्रशिक्षण।

6. समाज-शिक्षा—साक्षरता के प्रतिशत में वृद्धि, सामुदायिक केन्द्रों का विकास; ग्रामों में वाचनालयों का निर्माण, और ग्राम-पंचायतों एवं सहकारी आन्दोलन की सुदृढ़ता।

"तीसरी पंचवर्षीय योजना" के अन्तर्गत शिक्षा-योजना की उपलब्धियों को अग्रांकित तालिका में प्रदर्शित किया गया है[1] —

---

1. भारत, 1973, p 76

इस दौरान में चौथी योजना के मसविदे को ध्यान में रखते हुए तीन वार्षिक योजनाएँ बनाई गईं। इनमें तत्कालीन परिस्थितियों का ध्यान रखा गया। इस अवधि में अर्थ-व्यवस्था की स्थिति और योजना के लिए वित्तीय साधनों की कमी से विकास परिव्यय कम रहा। तीनों वार्षिक योजनाओं में शिक्षा पर 322·4 करोड़ रुपए व्यय किए गए।

चौथी पंचवर्षीय योजना में शिक्षा, 1969-74
Education Under Fourth Five-Year Plan, 1969-74

"चौथी पंचवर्षीय योजना" का कार्यकाल अप्रैल, 1969 से मार्च, 1974 तक था। इस "योजना" में शिक्षा, स्वास्थ्य और समाज-सेवाओं के प्रति विशेष ध्यान दिया गया। शिक्षा के प्रति विशेष ध्यान दिये जाने का कारण "योजना" में इस प्रकार अंकित किया गया[1] :—"यह सच है कि पिछली तीन योजनाओं के दौरान में भारत में शिक्षा के सभी स्तरों पर नामांकन बहुत अधिक बढ़ा है। फिर भी, संख्या के बढ़ने के साथ-साथ शिक्षा-स्तर गिर गया है। भारतीय शिक्षा-पद्धति विकास के अनुकूल नहीं हो सकी है, विशेषकर प्राथमिक व उच्चतर शिक्षा का स्तर पर्याप्त उन्नत नहीं है। व्यावसायिक शिक्षा व कृषि-शिक्षा पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है। लड़कियों को शिक्षा आज भी लड़कों के मुकाबले बहुत पिछड़ी हुई है। प्राथमिक स्तर पर बच्चों के नामांकन में स्थिरता आ गई है और कुछ छोड़कर चले जाते हैं। विश्वविद्यालय-स्तर पर काफी बच्चे असफल हो जाते हैं और तीसरी श्रेणी में पास होते हैं।"

"चौथी पंचवर्षीय योजना" में शिक्षा के उपर्युक्त दोषों को दूर करने और उसे देश के आर्थिक विकास के अनुकूल बनाने के लिए, शिक्षा की योजना तैयार की गई। हम इस योजना के प्रमुख अंगों का वर्णन प्रस्तुत कर रहे हैं, यथा :—

1. शिक्षा पर व्यय
Expenditure on Education

"चौथी पंचवर्षीय योजना" में शिक्षा-सम्बन्धी सुविधाओं का विस्तार करने के लिए 1210 करोड़ रुपये की व्यय-व्यवस्था की गई। पहली तीन योजनाओं में शिक्षा पर कुल जितना धन व्यय किया गया, "चौथी योजना" में उससे 20 प्रतिशत अधिक धन की व्यय-व्यवस्था की गई। प्रस्तावित व्यय-व्यवस्था का वितरण नीचे दिया जा रहा है[2] :—

1. चौथी पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), p 221.
2. चौथी पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), p. 231.

विवरण	व्यय (करोड़ रुपयों में)
1. प्राथमिक शिक्षा	322
2. माध्यमिक शिक्षा	243
3. विश्वविद्यालय-शिक्षा	175
4. अध्यापक-शिक्षा	92
5. प्राविधिक शिक्षा	253
6. समाज-शिक्षा	64
7. सांस्कृतिक कार्यक्रम	15
8. विविध (सामान्य शिक्षा)	46
योग	1, 210

2. शिक्षा-योजना के उद्देश्य
Aims of Scheme of Education

"चौथी पंचवर्षीय योजना" के अन्तर्गत शिक्षा-योजना के निम्नांकित उद्देश्य निर्धारित किए गए :—

1. शिक्षा के स्तर, अवधि, गुणवत्ता एवं विविधता पर विशेष ध्यान देना।
2. 1975-76 तक 6 से 14 वर्ष की आयु तक के सब बालकों एवं बालिकाओं को शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान करना।
3. देश के सब बालकों एवं बालिकाओं के लिए 8 वर्ष की अनिवार्य एवं सार्वभौमिक शिक्षा का प्रबन्ध करना।
4. अनिवार्य एवं सार्वभौमिक शिक्षा को जन-शिक्षा का आधार बनाना।
5. प्रत्येक नागरिक को 14 वर्ष की आयु तक शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक होना और उसे यह शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार होना।
6. 14 वर्ष की आयु के उपरान्त नागरिकों को जीवन के विभिन्न कार्यों के लिए प्रशिक्षण देना।
7. शिक्षा के प्रत्येक स्तर के पश्चात् व्यक्तियों के लिए कुछ रोजगारों के द्वार खोलना।

3. शिक्षा-योजना का कार्यक्रम
Programme of Scheme of Education

"चौथी पंचवर्षीय योजना" के अन्तर्गत शिक्षा-योजना के कार्यक्रम में अग्रलिखित बातों को स्थान दिया गया[1] :—

1. शिक्षा-पद्धति की वर्तमान कमियों को दूर करना।

1. चौथी पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), pp. 221-222.

2. शिक्षा-पद्धति का आर्थिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार विस्तार करना।
3. शिक्षा-पद्धति का आर्थिक एवं सामाजिक विकास की बढ़ती हुई माँगों से प्रभावशाली सम्बन्ध स्थापित करना।
4. पहली तीन योजनाओं में तीव्र प्रसार के फलस्वरूप शिक्षा-पद्धति पर पड़ने वाले आन्तरिक दबावों को हटाना।
5. शिक्षा के सब स्तरों में सुधार करना और उनमें होने वाले अपव्यय को रोकना।
6. प्राविधिक कार्यकर्ताओं के प्रशिक्षण को उच्च प्राथमिकता देना।
7. प्राथमिक स्तर पर अग्रलिखित बातों पर विशेष बल देना :—सर्वत्र नि:शुल्क शिक्षा की व्यवस्था; सर्वत्र शिक्षा के स्वरूप में समानता; अपव्यय की समाप्ति; और पाठ्यक्रम में सुधार।
8. माध्यमिक स्तर पर अग्रांकित बातों की ओर विशेष ध्यान देना :—शिक्षा के स्तर में सुधार; व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था, विज्ञान की शिक्षा का विस्तार; विविध पाठ्यक्रमों का आयोजन; उच्च माध्यमिक स्कूलों का उच्चतर माध्यमिक स्कूलों में परिवर्तन; और बहुद्देशीय विद्यालयों की सुदृढ़ता।
9. विश्वविद्यालय-स्तर पर आगे लिखी बातों पर जोर देना :—शिक्षा का पुनर्गठन; शिक्षा के स्तर का उन्नयन; कला एवं वाणिज्य के छात्रों में कमी; कृषि, विज्ञान, प्राविधिक एवं चिकित्सा-शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार, विज्ञान-शिक्षा, स्नातकोत्तर-शिक्षा एवं अनुसंधान-कार्य के लिए विशेष सुविधाएँ, पत्राचार-पाठ्यक्रमों की व्यवस्था; और निम्न श्रेणी के कॉलेजों और नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना पर प्रतिबन्ध।
10. शिक्षण-स्तर में सुधार करने के लिए शिक्षकों के प्रशिक्षण की अधिक उत्तम व्यवस्था करना और उनकी योग्यताओं एवं वेतनों में वृद्धि करना।
11. शिक्षण-विधियों एवं पाठ्यक्रमों से सम्बन्धित अनुसंधान-कार्यों को और अधिक सघन बनाना।
12. वयस्क-शिक्षा के विस्तार एवं आर्थिक विकास के साधन के रूप में साक्षरता पर बल देना।
13. विभिन्न भारतीय भाषाओं में पुस्तकों के प्रकाशन को और अधिक प्रोत्साहन देना।
14. अनुसूचित एवं आदिम जातियों के बच्चों की शिक्षा के लिए विशेष प्रबन्ध करना।

15. शिक्षा को जनसाधारण के लिए सुलभ बनाने की दृष्टि से ऋण-छात्रवृत्तियों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि करना।
16. हाई स्कूल की शिक्षा समाप्त करने वाले छात्रों को प्राविधिक, व्यावसायिक एवं नौकरी-पेशा-सम्बन्धी विषयों की ओर मोड़ना।
17. कम व्यय करके शिक्षण-विधियों में सुधार करने के लिए अग्रांकित बातों पर बल देना :—बड़ी शिक्षा-संस्थाओं को प्रोत्साहन; अल्पकालीन पाठ्यक्रमों एवं पत्राचार-पाठ्यक्रमों की सुविधाओं में विस्तार करना; और भवनों, पुस्तकालयों एवं प्रयोगशालाओं का अधिक समय तक प्रयोग।
18. अग्रांकित कार्यों के लिए स्थानीय साधन जुटाना :—विद्यालय एवं समुदाय में निकट सम्बन्ध की स्थापना; विद्यालयों के बच्चों के लिए दोपहर के भोजन का प्रबन्ध, विद्यालयों के लिए इमारतों का निर्माण; और विद्यालयों में सुधार करने के लिए कार्यक्रमों का विकास।

4. शिक्षा-योजना की उपलब्धियाँ

Achievements of the Scheme of Education

"चौथी पंचवर्षीय योजना" के अन्तर्गत शिक्षा की कुछ उल्लेखनीय उपलब्धियाँ इस प्रकार थीं[1] :—

1. प्राथमिक शिक्षा—शिक्षा की सुविधाओं में पर्याप्त विस्तार; निर्धारित संख्या में छात्रों को शिक्षा की सुविधाएँ देने के लक्ष्य की अप्राप्ति; शिक्षा की उन्नति के लिए अनेक सुधार-योजनाओं का कार्यान्वयन, और राज्य-सरकारों द्वारा कुछ चुने हुए क्षेत्रों में अपव्यय एवं अवरोधन को रोकने के लिए योजनाओं का कार्यान्वयन।

2. माध्यमिक शिक्षा—शिक्षा की सुविधाओं में पर्याप्त विस्तार; निर्धारित संख्या में छात्रों को शिक्षा की सुविधाएँ देने के लक्ष्य की अप्राप्ति, पाठ्यक्रम एवं परीक्षा-प्रणाली में सुधार, और बालिकाओं को माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहन।

3. विश्वविद्यालय-शिक्षा—शिक्षा की सुविधाओं में आशा से अधिक विस्तार, निर्धारित संख्या से अधिक छात्रों द्वारा शिक्षा की प्राप्ति, क्षेत्रीय भाषाओं में पुस्तकों के प्रकाशन के लिए राज्यों को आर्थिक सहायता; उच्च अध्ययन-केन्द्रों की स्थापना; स्नातकोत्तर-शिक्षा एवं अनुसन्धान-कार्य की उन्नति एवं विस्तार; और कॉलेजों को अपनी शिक्षा में सुधार करने के लिए आर्थिक सहायता।

4. विज्ञान की शिक्षा—विद्यालयों में विज्ञान की शिक्षा की उन्नति, विज्ञान की शिक्षा प्रदान करने की सुविधाओं में वृद्धि, विज्ञान के शिक्षकों के प्रशिक्षण की उत्तम व्यवस्था, और सब प्रशिक्षण-संस्थाओं एवं कुछ चुने हुए स्कूलों को उपकरण प्रदान करके, विज्ञान की शिक्षा में उन्नति करने का प्रयास।

1. *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. II, pp. 191-192.

5. *अन्य उपलब्धियाँ*—कृषकों को शिक्षा की सुविधाएँ, 100 जिलों में साक्षरता का प्रसार; बालकों की संख्या के अनुपात में बालिकाओं की संख्या में कम वृद्धि, राष्ट्रीयकरण की जाने वाली पाठ्य-पुस्तकों के मुद्रण के लिए तीन मुद्रणालयों की स्थापना, अहिन्दी क्षेत्रों में उच्चतर प्राथमिक, उच्च माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों में हिन्दी के शिक्षकों की नियुक्ति के लिए आर्थिक सहायता, और शिक्षा का समुदाय से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए एवं युवकों को राष्ट्रीय विकास के कार्यक्रमों में भाग लेने का अवसर देने के लिए 100 "नेहरू युवक-केन्द्रों" की स्थापना।

"चौथी पंचवर्षीय योजना" के अन्तर्गत शिक्षा-योजना की वास्तविक उपलब्धियों का अभी तक प्रकाशन नहीं किया गया है। "भारत", 1973 (p. 76) में उनका जो विवरण दिया गया है, उसको पृष्ठ 302 पर तालिका में स्थान दिया गया है।

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना 1974-1979
Fifth Five-Year Plan, 1974-1979

"पाँचवीं पंचवर्षीय योजना" 1 अप्रैल, 1974 से क्रियान्वित की गई है। इसमें शिक्षा के सभी अंगों के सम्बन्ध में नीतियाँ निर्धारित की गई हैं, जिनमें से उल्लेखनीय हैं :—भाषा का विकास, पुस्तकों का उत्पादन, कला एवं संस्कृति, शिक्षा एवं रोजगार, और युवकों से सम्बन्धित कार्यक्रम एवं समस्याएँ। "योजना" के अन्तर्गत जिस शिक्षा-योजना में इन नीतियों को लेखबद्ध किया गया है, हम उसके मुख्य अंगों का वर्णन आपके अवलोकनार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं; यथा :—

1 शिक्षा पर व्यय
Expenditure on Education

"पाँचवीं पंचवर्षीय योजना" में शिक्षा पर 1726 करोड़ रुपए व्यय करने की व्यवस्था की गई है। प्रस्तावित व्यय-व्यवस्था इस प्रकार है[1] :—

विवरण	व्यय (करोड़ रुपयों में)
1. प्राथमिक शिक्षा	743
2. माध्यमिक शिक्षा	241
3. विश्वविद्यालय-शिक्षा	337
4. समाज-शिक्षा	35
5. सांस्कृतिक कार्यक्रम	35
6. अन्य शैक्षिक कार्यक्रम	171
सामान्य शिक्षा पर कुल व्यय	1 562
7. प्राविधिक शिक्षा	164
शिक्षा पर कुल व्यय	1,726

1. *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol II, p 207

विवरण	योजना से पूर्व 1950-51	पहली योजना 1955-56	दूसरी योजना 1960-61	तीसरी योजना 1965-66	1970-71 (अस्थायी)	चौथी योजना 1973-74 (लक्ष्य)
(क) विभिन्न वय-वर्ग के बच्चे का प्रतिशत						
1. 6-11 वय-वर्ग का प्रतिशत	42·6	52·8	62·4	76·7	80·3	85·3
2. 11-14 „ „ „	12·7	16·5	22·5	30·8	34·1	41·3
3. 14-17 „ „ „	5·3	7·4	10·6	16·2	24·4	24·0
4. 17-23 „ „ „	0·8	1·4	1·8	2·7	3·7	3·8
(ख) संस्थाओं की संख्या						
1. प्राइमरी स्कूल	2,09,671	2,78,135	2,30,399	3,91,064	4,04,418	—
2. मिडिल स्कूल	13,596	21,730	49,663	75,798	88,587	—
3. हाई/हायर सेकण्डरी स्कूल	7,288	10,838	17,257	27,477	35,773	—
4. बहुद्देशीय विद्यालय	—	255	2,115	2,386	2,625	—
5. प्रशिक्षण-विद्यालय	782	939	1,138	601	822	—
6. प्रशिक्षण-कालेज	53	107	478	1,272	843	—
7. कालेज	542	772	1,122	1,785	2,792	—
8. विश्वविद्यालय	27	32	45	64	86	—
(ग) प्रशिक्षित अध्यापक प्रतिशत						
1. प्राइमरी स्कूल	58·8	61·2	64·1	70·5	82·8	—
2. मिडिल स्कूल	53·3	58·5	66·5	76·9	83·0	—
3. हाई/हायर सेकण्डरी स्कूल	53·8	59·7	64·1	68·5	79·6	—

2. शिक्षा-योजना के उद्देश्य
Aims of Scheme of Education

पिछले दो दशकों में नियोजित विकास के फलस्वरूप शिक्षा का अत्यधिक विकास हुआ है। कुछ बातों में इसका विकास उचित दिशा में हुआ है। फिर भी, प्रचलित शिक्षा-प्रणाली में अनेक कमियाँ हैं, जिनमें से कुछ हमको अतीत से विरासत के रूप में मिली हैं। 'पाँचवीं पंचवर्षीय योजना" में शिक्षा की संरचना (Structure) में परिवर्तन करके, इन कमियों को दूर करने का प्रयास किया जायगा। "पाँचवीं पंचवर्षीय योजना" के अनुसार :—"पाँचवीं योजना में मानव एवं आर्थिक साधनों के बंधनों की सीमाओं में शिक्षा की संरचना में कुछ आवश्यक परिवर्तन करने का प्रयास किया जायगा।"

"The Fifth Plan seeks to introduce certain essential changes in the educational structure within the constraints of human and financial resources."—*Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. II, p. 192.

उपर्युक्त तथ्य को ध्यान में रख कर "पाँचवीं पंचवर्षीय योजना" के अन्तर्गत शिक्षा-योजना के निम्नांकित 4 मुख्य उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं :—

1. सामाजिक न्याय का विकास करने के लिए शिक्षा के अवसरों में समानता स्थापित करना।
2. शिक्षा का विकास की आवश्यकताओं एवं रोजगारों से सम्बन्ध स्थापित करना।
3. शिक्षा-संस्थाओं में प्रदान की जाने वाली शिक्षा की गुणात्मक उन्नति करना।
4. शिक्षा का सामाजिक वातावरण अर्थात् आर्थिक एवं सामाजिक विकास के कार्यों से सम्बन्ध स्थापित करना।

3. शिक्षा-योजना का कार्यक्रम
Programme of Scheme of Education

उपरिअंकित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए 'पाँचवीं पंचवर्षीय योजना" के अन्तर्गत शिक्षा-योजना के कार्यक्रम में निम्नांकित बातों का ध्यान दिया गया है[1] —

1. अवसर की समानता : Equality of Opportunity — सामाजिक न्याय का विकास करने के लिए शिक्षा के अवसरों में समानता की स्थापना की जायगी। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए अग्रांकित कार्य किए जायेंगे —(1) प्राथमिक एवं वयस्क शिक्षा पर अधिक बल, (2) पिछड़े हुए वर्गों को शिक्षा प्राप्त करने में सहायता देने के लिए छात्रवृत्तियों की व्यवस्था, (3) जनजातियों के बच्चों के लिए सावास आश्रम-

1. *Drafth Fifth Five-Year Plan*, Vol II, pp 193-200.

…द्यालयों (Residential Ashram Schools) की स्थापना; (4) ग्रामीण क्षेत्रों एवं नगरों की गन्दी बस्तियों के विद्यालयों में सुधार; और (5) जीवन में समय से पहले प्रवेश करने वाले व्यक्तियों की उन्नति करने में सहायता देने के लिए अनौपचारिक शिक्षा (Informal Education) की व्यवस्था।

2. रोजगार एवं विकास से सम्बन्ध : Linkage with Employment & Development—शिक्षा का रोजगारों एवं विकास की आवश्यकताओं से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए, अग्रलिखित उपायों का प्रयोग किया जायगा :—(1) पाठ्यक्रम में सुधार; (2) माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण; (3) उपयुक्त शिक्षण-विधियों का प्रयोग करके, छात्रों में उचित दृष्टिकोणों का विकास; (4) विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में व्यावसायिक विषयों का समावेश; और (5) व्यावसायिक शिक्षा एवं जनबल (Manpower) में घनिष्ठ सम्बन्ध की स्थापना।

3. शिक्षा की गुणात्मक उन्नति : Quality Improvement of Education—शिक्षा-संस्थाओं में प्रदान की जाने वाली शिक्षा की गुणात्मक उन्नति करने के लिए आगे लिखे कदम उठाए जायेंगे :—(1) पाठ्यक्रम एवं परीक्षा-प्रणाली में सुधार; (2) शिक्षण की प्रणालियों एवं सीखने की विधियों में सुधार; (3) शिक्षण-प्रशिक्षण में सुधार, (4) पाठ्य-पुस्तकों का समुन्नयन; (5) अनुसंधान-कार्य की समुन्नति; (6) उच्च अध्ययन-केन्द्रों को अधिक शक्तिशाली बनाने का प्रयास; और (7) प्रतिभाशाली विद्यार्थियों के लिए छात्रवृत्तियों का आयोजन।

4. सामाजिक वातावरण से सम्बन्ध : Linkage with Social Environment—शिक्षा का सामाजिक वातावरण से सम्बन्ध स्थापित करने के लिए अग्रगामी विधियाँ अपनाई जायेंगी :—(1) सब स्तरों के पाठ्यक्रमों में समाज-सेवा का अनिवार्य स्थान; (2) सब स्तरों के पाठ्यक्रमों का व्यावहारिक प्रयोग एवं सामाजिक उपयोग की स्थिति पर आधार; (3) छात्रों के चरित्र का निर्माण; (4) छात्रों के दृष्टिकोण का विस्तार; और (5) छात्रों में सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना का विकास।

5. प्राथमिक शिक्षा : Primary Education—पाँचवीं योजना में प्राथमिक शिक्षा को और उच्च प्राथमिकता दी गई है। अतः शिक्षा के अन्य अंगों की तुलना में इस पर सबसे अधिक धन अर्थात् 743 करोड़ रुपए व्यय करने का निश्चय किया गया है। लक्ष्य यह है कि इस योजना के अन्त तक 6–11 वय-वर्ग के 97 प्रतिशत और 11-14 वय-वर्ग के 47 प्रतिशत बच्चों को शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान की जायँ। इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए विद्यालयों की स्थापना इस प्रकार की जायगी कि किसी बच्चे के निवास-स्थान से प्राथमिक स्कूल 1·5 किलोमीटर से और मिडिल स्कूल 5 किलोमीटर से अधिक दूर न हो। जनजातियों के बच्चों को प्राथमिक शिक्षा की सुविधा प्रदान करने के लिए आवास आश्रम-स्कूलों की स्थापना का प्रस्ताव है।

6. माध्यमिक शिक्षा : Secondary Education—माध्यमिक शिक्षा के विषय में दो मुख्य प्रस्ताव हैं। पहला, माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण किया जायगा, ताकि छात्रों में इस शिक्षा को प्राप्त करने के पश्चात् किसी व्यवसाय में प्रवेश करने की योग्यता उत्पन्न हो जाय। दूसरा, माध्यमिक शिक्षा का देश की आर्थिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया जायगा।

7. विश्वविद्यालय-शिक्षा : University Education—विश्वविद्यालय-शिक्षा से सम्बन्धित उल्लेखनीय कार्य हैं :—विश्वविद्यालय-शिक्षा के अवांछनीय विस्तार पर प्रतिबंध; चयनात्मक प्रवेश-प्रणाली का प्रयोग करके केवल योग्य छात्रों का उच्च शिक्षा के लिए चयन; प्रतिभाशाली एवं पिछड़े हुए वर्गों के विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ देने की व्यवस्था; परीक्षाओं में सुधार; सामाजिक विज्ञानों (Social Sciences) में अनुसंधान-कार्य को प्रोत्साहन; वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान-कार्यों की सुविधाओं में विस्तार; और पाठ्यक्रमों में व्यावसायिक विषयों को स्थान देकर, छात्रों में किसी व्यवसाय में प्रवेश करने की योग्यता की उत्पत्ति।

8. शिक्षा का समान स्वरूप : Uniform Pattern of Education—राष्ट्रीय शिक्षा-नीति के अनुसार सम्पूर्ण देश में शिक्षा को समान स्वरूप देने का निश्चय किया गया है। इस शिक्षा की अवधि 15 वर्ष की होगी—10 वर्ष की प्राथमिक एवं निम्न माध्यमिक शिक्षा, 2 वर्ष की उच्चतर माध्यमिक शिक्षा, और 3 वर्ष का प्रथम डिग्री कोर्स, अर्थात् 10+3+2।

9. समाज-शिक्षा : Social Education—समाज-शिक्षा के कार्यक्रम में तीन मुख्य बातें हैं; यथा :—शिक्षा-संस्थाओं को वयस्क-शिक्षा के लिए उत्तरदायी बनाना; समाज-शिक्षा का वयस्कों के कार्यों से सम्बन्ध स्थापित करना, और समाज-शिक्षा का प्राथमिक शिक्षा, कृषि-विस्तार, सहकारिता और स्वास्थ्य एवं परिवार-नियोजन से सम्बन्ध स्थापित करना।

उपसंहार

भारतवासियों की सहयोग-भावना, व्यवस्थित नागरिक जीवन एवं सामान्य जनता के सामाजिक कार्यों में बुद्धिमत्ता के साथ भाग लेने की योग्यता पर ही लोकतंत्र-राज्य की सफलता निर्भर है। इसलिए, यह अत्यन्त आवश्यक है कि शिक्षा ऐसी हो कि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों को अधिकारों से अधिक महत्त्व देने लगे और आलोचनात्मक चिन्तन करने एवं ठीक तरह से सोचने-विचारने की उसकी आदत पड़ जाय। इसके अतिरिक्त, यह भी उतना ही आवश्यक है कि शिक्षा ऐसी हो कि प्रत्येक व्यक्ति—समाज का उत्पादक सदस्य बने और देश की बहुमुखी प्रगति में योग दे। इन्हीं लक्ष्यों को सामने रखकर भारत ने चार पंचवर्षीय योजनाओं का कार्यान्वयन किया जा चुका है और पाँचवीं का आरम्भ कर दिया गया है।

यह सत्य है कि उपरिकथित लक्ष्यों की अभी तक प्राप्ति नहीं हो पाई है। किन्तु, हमें यह स्वीकार करने में संकोच नहीं करना चाहिए कि शिक्षा अपने लक्ष्यों की ओर अविराम गति से अग्रसर हो रही है। बेसिक शिक्षा की व्यवस्था, पाठ्यक्रमों में व्यावसायिक शिक्षा का समावेश, विज्ञान पर आधारित शिक्षा, शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार, ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा प्राप्त करने के अवसर, स्त्रियों एवं पिछड़ी जातियों की शिक्षा का विस्तार, शैक्षिक अवसरों की समानता और प्राविधिक एवं औद्योगिक शिक्षा-संस्थाओं की स्थापना ने शिक्षा के कलेवर में आमूल परिवर्तन कर दिया है। परिणामतः उसने कुछ सीमा तक व्यक्ति को समाज का उत्पादक सदस्य बना दिया है और उसमें अपने देश की प्रगति में योग देने की कुछ क्षमता भी उत्पन्न कर दी है।

इस प्रकार, पिछली योजनाओं के दौरान में शिक्षा के पुनर्गठन के लिए जो प्रयासपूर्ण उद्योग किए गए हैं, उनके फलस्वरूप उसका उचित दिशा में विकास हो रहा है और उसकी तस्वीर पहले से बहुत बदल गई है। पर इस तस्वीर में अभी कुछ धब्बे [illegible] दिखाई दे रहे हैं। उदाहरणार्थ—शिक्षा की गुणात्मक उन्नति नहीं हुई है और उसका स्तर गिर गया है। सामान्य रूप से, बालकों की शिक्षा की भाँति बालिकाओं की शिक्षा का विस्तार नहीं हुआ है। देश के कुछ भागों में बालकों एवं बालिकाओं—दोनों की शिक्षा अब भी बहुत पिछड़ी हुई दशा में है। प्राविधिक एवं औद्योगिक शिक्षा-संस्थाओं में भवन, शिक्षकों और उपकरणों का अभाव है। सर्वोपरि, भारतीय संविधान के एक नीति-निर्देशक सिद्धान्त के अनुसार 14 वर्ष तक के बालकों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था नहीं हो पाई है।

शिक्षा में उपरिकथित एवं अन्य त्रुटियों की उपस्थिति के लिए योजना-निर्माताओं पर दोषारोपण करना नितान्त अन्यायपूर्ण है। इसका कारण यह है कि योजनाओं के दौरान में समय-समय पर ऐसी अप्रत्याशित एवं आकस्मिक बाधाएँ उपस्थित हुईं, जिन पर नियंत्रण प्राप्त करना मानव-शक्ति से परे की बात थी। उदाहरण के लिए, युद्ध का प्रकोप, वस्तुओं के मूल्यों में अधिक एवं असाधारण वृद्धि, दो वर्षों के लगातार सूखे, भारत-चीन-युद्ध और उसके उपरान्त भारत-पाकिस्तान-युद्ध ने देश की आर्थिक स्थिति और वित्त-व्यवस्था को इतना जर्जर बना दिया कि शिक्षा [illegible] करने के लिए धन उपलब्ध न हो सका।

किन्तु, [illegible] शिक्षा के [illegible] में [illegible] योजना-निर्माताओं ने चौथी योजना का प्रारूप तैयार किया है। [illegible] होकर, शिक्षा के [illegible] अधिक महत्त्वपूर्ण [illegible] प्राथमिक शिक्षा का प्रसार [illegible] योजना-निर्माताओं ने इस प्रकार

वाक्यबद्ध किया है :—"न्यूनतम आवश्यकताओं के राष्ट्रीय कार्यक्रम के अन्तर्गत 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों को अपने घरों से निकटतम सम्भव स्थानों पर प्राथमिक शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान की जायेंगी।"

"Under the National Programme of Minimum Needs, facilities for elementary education for children up to the age of 14 will be provided at the nearest possible places from their homes."

—*Draft Fifth Five-Year Plan* (Adapted), Vol. I, p. 87.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Describe briefly the achievements in the field of education under the First Five-Year Plan.
   पहली पंचवर्षीय योजना में शिक्षा के क्षेत्र की उपलब्धियों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
2. Write a critical note on "Education in India under the Second Five-Year Plan."
   अग्रलिखित पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए :—"दूसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत भारत में शिक्षा।"
3. What efforts were made for the development of Primary, Secondary, and University Education under the Third Five-Year Plan ?
   तीसरी पंचवर्षीय योजना के कार्यकाल में प्राथमिक, माध्यमिक, और विश्वविद्यालय-शिक्षा के विकास के लिए क्या कार्य किए गए ?
4. Give an account of the failures and achievements in the field of education under the Fourth Five-Year Plan.
   चौथी पंचवर्षीय योजना की अवधि में शिक्षा के क्षेत्र में असफलताओं एवं उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।
5. "The Fifth Five-Year Plan seeks to introduce certain essential changes in the educational structure." What are *these changes and how will they be introduced ?*
   "पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में शिक्षा की संरचना में कुछ आवश्यक परिवर्तन किये जायेंगे।" ये परिवर्तन क्या हैं और इनको किस प्रकार किया जायगा ?

भारतीय शिक्षा की समस्याएँ

PROBLEMS OF INDIAN EDUCATION

23

प्राथमिक शिक्षा

PRIMARY EDUCATION

"Why does not the nation move ? First educate the nation. Even for social reforms, the first duty is to educate the people."—*Swami Vivekananda*

विषय-प्रवेश

प्रत्येक राष्ट्र के जीवन में प्राथमिक शिक्षा—प्रथम प्राथमिकता की वस्तु है। यह पहली सीढ़ी है, जिसे सफलतापूर्वक पार करके ही कोई राष्ट्र अपने अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचता है। राष्ट्रीय जीवन के साथ जितना घनिष्ठ सम्बन्ध प्राथमिक शिक्षा का है, उतना माध्यमिक या उच्च शिक्षा का नहीं है। राष्ट्रीय विचारधारा एवं चरित्र का निर्माण करने में जितना महत्त्वपूर्ण स्थान इसका है, उतना किसी दूसरी सामाजिक, राजनीतिक या शैक्षणिक गतिविधि का नहीं है। इसका सम्बन्ध किसी विशेष व्यक्ति या वर्ग से न होकर, देश की पूरी जनसंख्या से होता है। इसका हर कदम पर हर व्यक्ति के जीवन से सम्पर्क होता है।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि सब व्यक्तियों की शिक्षा अथवा जनसाधारण की शिक्षा ही राष्ट्रीय प्रगति का मूलाधार है। इस शिक्षा की अवहेलना करने के कारण भारत का पतन हुआ। अतः इसका उत्थान करके ही हमारे देश का उत्थान हो सकता है। इस प्रसंग में स्वामी विवेकानन्द के अग्रांकित वाक्य सत्य से भरपूर हैं :—'मेरे विचार से जनसाधारण की अवहेलना महान् राष्ट्रीय पाप है और हमारे पतन के कारणों में से एक है। सब राजनीति उस समय तक विफल रहेगी, जब तक कि भारत में जनसाधारण को एक बार फिर भली प्रकार शिक्षित नहीं कर दिया जायगा।"

"I consider that the great national sin is the neglect of the masses, and that is one of the causes of our downfall. No amount of politics would be of any avail until the masses in India are once more well educated."—Swami Vivekananda : *Works*, Vol. V, p. 152.

प्राथमिक शिक्षा के इस संक्षिप्त परिचय के पश्चात् हम उसके इतिहास पर विहंगम दृष्टिपात कर रहे हैं।

प्राथमिक शिक्षा—अनिवार्यता से पूर्व
Primary Education Before Compulsion

अनिवार्यता से पूर्व प्राथमिक शिक्षा का इतिहास दो स्पष्ट कालों में विभाजित किया जा सकता है :—इंगलिश ईस्ट इंडिया कम्पनी का शासन-काल और ब्रिटिश पार्लियामेन्ट का शासन-काल। हम इन दोनों कालों में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति और प्रगति का वर्णन करने से पूर्व उस समय भारत में प्रचलित देशी शिक्षा (Indigenous Education) की व्यवस्था का संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं; यथा :—

1. देशी शिक्षा-व्यवस्था—1757 में प्लासी के युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् इंगलिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के व्यापारियों के भाग्य ने पलटा खाया और वे इस देश के विशाल भूभाग पर शासक के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। इस घटना के लगभग एक शताब्दी उपरान्त, अर्थात् 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में अंग्रेजों द्वारा की जाने वाली जाँच से ज्ञात होता है कि भारत में हिन्दुओं और मुसलमानों के बच्चों को शिक्षा प्रदान करने के लिए पाठशालाओं और मकतबों का जाल बिछा हुआ था।

उदाहरणार्थ—इतिहासकार मिल (Mill) के अनुसार, 1822 में मद्रास के प्रत्येक गाँव में एक पाठशाला स्कूल था।[1] बम्बई के गवर्नर की कौंसिल के सदस्य, प्रेन्डरगास्ट (Prendergast) के मतानुसार, 1832 में बम्बई में ऐसा कोई भी ग्राम नहीं था, जिसमें कम-से-कम एक प्राथमिक विद्यालय न हो।[2] एडम (Adam) की "प्रथम रिपोर्ट" (First Report) के आधार पर बसु ने लिखा है कि 1835 के लगभग बंगाल और बिहार में एक लाख प्राथमिक स्कूल थे।[3] उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त (आधुनिक पंजाब) की सरकार की 1843 की रिपोर्ट के अनुसार अनेक ग्रामों में प्राथमिक स्कूल थे।[4]

1. James Mill : *History of British India*, Vol. I, p. 562.
2. G. L. Prendergast's Evidence of 1832.
3. A. N. Basu : *Education in Modern India*, p. 5.
4. S. N. Mukerji : *History of Education in India*, p. 43.

2. कम्पनी का शासन-काल (1757-1858)—1757 से 1858 तक के लगभग 100 वर्ष के शासन-काल में इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने हितों की पूर्ति और अपने नवविजित प्रदेशों के निवासियों की सद्भावना प्राप्त करने के उद्देश्य से उच्च शिक्षा के लिए कलकत्ता मदरसा, बनारस संस्कृत कॉलिज, पूना संस्कृत कॉलिज आदि की स्थापना तो की, पर प्राथमिक शिक्षा के प्रति कोई रुचि प्रकट नहीं की। इस शिक्षा के सम्बन्ध में केवल दो अंग्रेज प्रशासकों के नाम उल्लेखनीय हैं। पहला नाम है—भारत के गवर्नर-जनरल, लार्ड डलहौजी (Dalhousie) का, जिसने 1854 में बंगाल में प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की। दूसरा नाम है—*पश्चिमोत्तर प्रान्त के गवर्नर, जेम्स टॉमसन (James Thomason)* का, जिसे भारत में प्राथमिक शिक्षा का जन्मदाता माना जाता है। उसी के प्रयास के फलस्वरूप इस प्रान्त में 1851 में "हलकाबन्दी स्कूलों की प्रणाली" (Circle School System) आरम्भ हुई, जिसके अन्तर्गत प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की गई।

किन्तु, डलहौजी और टॉमसन के प्राथमिक शिक्षा-सम्बन्धी कार्य—भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले देश के लिए सागर में दो बूँदों के समान थे। जहाँ तक कम्पनी की शिक्षा-नीति का प्रश्न था, उसने धन-लोलुपता के वशीभूत होकर और अपने नव-स्थापित राज्य को चिरस्थायी बनाने के उद्देश्य से, प्रचलित देशी विद्यालयों को, जो अति प्राचीन काल से भारतीय शिक्षा और संस्कृति के केन्द्र थे, धनाभाव की दुसाध्य समस्या में उलझाकर समय से पहले ही काल के गाल में पहुँचा दिया। अंग्रेजों ने यह किस प्रकार किया, इसका वर्णन—बेलेरी जिले के अंग्रेज कलक्टर, कैम्पबेल (Campbell) से सुनिए[1]—'इस जिले में 533 शिक्षा-संस्थाएँ हैं, पर मुझे शर्म के साथ कहना पड़ता है कि अब इनमें से किसी को भी सरकारी अनुदान नहीं मिलता है। सरकारी आय का वह अधिकांश भाग, जो पहले शिक्षा-संस्थाओं को अनुदान के रूप में दिया जाता था, अब अज्ञानता फैलाने के लिए प्रयोग किया जाता है।"

1813 के "आज्ञा-पत्र" (Charter) ने कम्पनी पर भारतीयों की शिक्षा का उत्तरदायित्व रखा और उसको उनकी शिक्षा के लिए कम-से-कम एक लाख रुपए प्रति वर्ष व्यय करने का आदेश दिया। यद्यपि यह धनराशि अत्यन्त अल्प थी, फिर भी कम्पनी ने अगले दस वर्षों तक भारतीयों की शिक्षा के लिए इसका उपयुक्त प्रयोग नहीं किया। व्यापारियों की कम्पनी का प्रमुख लक्ष्य—धन का अर्जन करना था, न कि शिक्षा-प्रसार के निष्प्रयोजन कार्य पर उसे व्यय करना। अतः उसने कम धन व्यय करके शिक्षा-प्रसार के कार्य को सम्पन्न करने के लिए "निस्यन्दन-सिद्धान्त"

1. Report of Mr A. D. Campbell, the Collector of Bellary, submitted to the President of Board of Revenue, Fort St.__ orge, in August, 1823.

...ltration Theory) का अनुसरण किया। 1854 के "वुड के आदेश-पत्र" (Wood's Despatch) में कम्पनी की इस नीति पर क्षोभ व्यक्त किया गया और ...सहायता-अनुदान-प्रणाली का प्रचलन करके प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में वृद्धि करने का सुझाव दिया गया। पर यह सुझाव कागज पर ही लिखा रह गया, ...आर्थिक धन-राशि के अभाव के, कम्पनी के भारत-स्थित कर्मचारियों ने इस सुझाव को केवल सुझाव कहकर टाल दिया।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम अपने निष्कर्ष को डा० एस० एन० मुकर्जी के शब्दों में व्यक्त कर सकते हैं[1] :—"कम्पनी के शासन-काल में प्राथमिक शिक्षा की अवहेलना की गई और कम-से-कम प्रारम्भिक काल में निश्चित रूप से उपेक्षा की गई।"

3. पार्लियामेन्ट का शासन-काल (1858-1905)—नवम्बर, 1858 में ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने कम्पनी के शासन का अन्त करके, रानी विक्टोरिया को भारत की सम्राज्ञी घोषित किया। इस नवीन शासन-व्यवस्था में लार्ड स्टैनले (Stanley) ने "भारत-मंत्री" (Secretary of State for India) का पद ग्रहण किया। उसने 1859 में भारतीय शिक्षा के सम्बन्ध में एक आदेश-पत्र जारी किया, जिसे "स्टैनले का आदेश-पत्र" (Stanley's Despatch) कहा जाता है। इस "आदेश-पत्र" में उसने भारत-सरकार को प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व ग्रहण करने का आदेश दिया और उसके व्यय की पूर्ति के लिए अनिवार्य स्थानीय कर लगाने का परामर्श दिया।

स्टैनले के "आदेश-पत्र" ने प्राथमिक शिक्षा को नवजीवन प्रदान किया और उसने विस्तार के युग में प्रवेश किया। किन्तु, दुर्भाग्य से कुछ ही वर्षों के बाद, 1882 के "भारतीय शिक्षा-आयोग" (Indian Education Commission) ने उसकी गति अवरुद्ध कर दिया। इसका कारण यह था कि "आयोग" की सिफारिश को स्वीकार करके, सरकार ने प्राथमिक शिक्षा के उत्तरदायित्व को स्थानीय संस्थाओं [illegible] अपना पल्ला छुड़ाया। धनाभाव की समस्या से उलझी हुई स्थानीय संस्थाओं से प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए धन-प्राप्ति की आशा करना व्यर्थ था। इसका परिणाम यह हुआ कि प्राथमिक शिक्षा की प्रगति में शिथिलता आ गई और देश के अधिकांश बच्चे शिक्षा प्राप्त करने से वंचित रह गए।

अतएव, हम कह सकते हैं कि ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के शासन-काल के आरम्भिक वर्षों में सरकार ने प्राथमिक शिक्षा के प्रति उदारता का परिचय दिया [illegible] एक महत्वपूर्ण [illegible] 1882 में उसे स्थानीय संस्थाओं को सौंपकर सरकार ने अपने [illegible] प्राथमिक शिक्षा से [illegible] उत्तरदायित्व से [illegible]

1. Dr. S. N. Mukerji: *Education in India, Today & Tomorrow*, p.

को अबाध गति से प्रवाहित होने में योग दिया और उसका विकास दिन दूना, रात चौगुना होता चला गया।

किन्तु, विकास निरन्तर गतिशील रहने वाली प्रक्रिया नहीं है। उसमें स्थिरता आना प्रकृति का नियम है। प्राथमिक शिक्षा भी इस नियम का अपवाद न बन सकी। उसका विकास 1931 में अवरुद्ध हो गया और वह 1937 तक स्थिरता की दशा में पड़ी करवटें बदलती रही। इसके दो मुख्य कारण थे। पहला, 1931 से 1937 तक की अवधि, विश्वव्यापी आर्थिक अवसाद (Economic Depression) की अवधि थी, जिसका भारत पर भी प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। अतः भारत को अनिवार्य शिक्षा की व्यय-पूर्ण योजनाओं को स्थगित करना पड़ा। दूसरा, "हर्टॉग समिति" (1929) का प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में एक सुझाव यह था कि उसे वास्तव में हितप्रद बनाने के लिए, उसकी संख्यात्मक वृद्धि पर अंकुश लगा दिया जाय और प्राथमिक विद्यालयों को ठोस बना कर (Consolidation) उसकी गुणात्मक उन्नति की जाय। सरकार ने जनता के घोर विरोध के बावजूद "समिति" के इस सुझाव को स्वीकार करके निम्न श्रेणी के प्राथमिक विद्यालयों को तोड़ दिया और प्राथमिक शिक्षा के विस्तार पर प्रतिबंध लगा दिया।

वर्षों से स्थिरता की दशा में पड़ी हुई प्राथमिक शिक्षा को 1935 के "भारत-सरकार-अधिनियम" से गतिशीलता का वरदान प्राप्त हुआ। इस अधिनियम के अनुसार "प्रान्तीय स्वशासन" की स्थापना हुई और 6 प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने सत्तारूढ़ होकर प्राथमिक शिक्षा के विकास को सम्भव बनाया। उन्होंने अपने प्रान्तों की स्थानीय संस्थाओं को उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता देकर अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का प्रसार करने का प्रयत्न किया। उन्होंने ग्रामों में प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की और बालिकाओं को प्राथमिक शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान कीं। इस प्रकार, कांग्रेसी मंत्रिमंडलों का संरक्षण एवं प्रोत्साहन प्राप्त होने पर प्राथमिक शिक्षा ने अपने विकास के पथ एक बार फिर अवरोधमुक्त अभियान आरम्भ किया।

स्वतंत्र भारत में अनिवार्य शिक्षा

Compulsory Education in Free India

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् प्राथमिक शिक्षा ने अपने विकास के स्वर्णिम युग में प्रवेश किया। संसार के सभी प्रगतिशील देशों के समान भारत ने भी बालकों एवं बालिकाओं को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने के अपने उत्तरदायित्व को स्वीकार किया। इसीलिए, "संविधान-सभा" (Constituent Assembly) ने, जिसे देश का संविधान तैयार करने का कार्य सौंपा गया था, अग्रांकित शब्दों में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को राज्य का एक नीति-निर्देशक सिद्धान्त घोषित किया :—"राज्य इस संविधान के कार्यान्वित किए जाने के समय से दस वर्ष के अन्दर सब बच्चों के लिये, जब तक वे

चौदह वर्ष की आयु पूर्ण नहीं कर लेंगे, निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की चेष्टा करेगा।"

"The State shall endeavour to provide within a period of ten years from the commencement of this Constitution, for free and compulsory education for all children until they complete the age of fourteen years."—Article 45 of the *Constitution Adopted by Free India on* January 26, 1950.

भारत-सरकार के निर्णय के अनुसार, प्राथमिक शिक्षा—बेसिक प्रकार की होगी और सरकार इस शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाने के लिए 1950 से ही प्रयत्नशील है। वह राज्य-सरकारों को सम्पूर्ण व्यय का 34 प्रतिशत वार्षिक सहायता-अनुदान के रूप में देती है। शेष व्यय के $\frac{3}{4}$ भाग से अधिक की पूर्ति राज्य-सरकारों द्वारा, $\frac{1}{4}$ की स्थानीय संस्थाओं द्वारा और बाक़ी की अन्य स्रोतों से की जाती है।[1] पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत भी प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए विपुल धन-राशियाँ व्यय की गई हैं। इन प्रयासों के फलस्वरूप अब तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की जो प्रगति हुई है, उसे अधोअंकित तालिका में दर्शाया गया है[2] :—

अनिवार्य शिक्षा की प्रगति

विवरण	1950-51	1960-61	1970-71 अस्थायी
6-11 वय-वर्ग की कुल जनसंख्या का %	42 6	62·4	80·3
11-14 ,, ,, ,, ,,	12 7	22 6	34·1

समस्याएँ व उनके समाधान
Problems & Their Solutions

1950 के भारतीय संविधान के एक नीति-निर्देशक सिद्धान्त के अनुसार 14 *वर्ष तक के बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था 10 वर्ष के अन्दर* हो जानी चाहिए थी। किन्तु, यह लक्ष्य न तो अभी तक प्राप्त किया गया है और न निकट भविष्य में इसके प्राप्त किए जाने की आशा ही है। इन दोनों विषयों में "चौथी पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा" में योजना-निर्माताओं ने अपनी धारणा का

1. S. N. Mukerji *Education In India, Today & Tomorrow*, p 69.
2. भारत, 1973, p. 76.

को अबाध गति से प्रवाहित होने में योग दिया और उसका विकास दिन दूना, रात चौगुना होता चला गया।

किन्तु, विकास निरन्तर गतिशील रहने वाली प्रक्रिया नहीं है। उसमें स्थिरता आना प्रकृति का नियम है। प्राथमिक शिक्षा भी इस नियम का अपवाद न बन सकी। उसका विकास 1931 में अवरुद्ध हो गया और वह 1937 तक स्थिरता की दशा में पड़ी करवटें बदलती रही। इसके दो मुख्य कारण थे। पहला, 1931 से 1937 तक की अवधि, विश्वव्यापी आर्थिक अवसाद (Economic Depression) की अवधि थी, जिसका भारत पर भी प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। अतः भारत को अनिवार्य शिक्षा की व्यय-पूर्ण योजनाओं को स्थगित करना पड़ा। दूसरा, "हर्टाग समिति" (1929) का प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में एक सुझाव यह था कि उसे वास्तव में हितप्रद बनाने के लिए, उसकी संख्यात्मक वृद्धि पर अंकुश लगा दिया जाय और प्राथमिक विद्यालयों को ठोस बना कर (Consolidation) उसकी गुणात्मक उन्नति की जाय। सरकार ने जनता के घोर विरोध के बावजूद "समिति" के इस सुझाव को स्वीकार करके निम्न श्रेणी के प्राथमिक विद्यालयों को तोड़ दिया और प्राथमिक शिक्षा के विस्तार पर प्रतिबंध लगा दिया।

वर्षों से स्थिरता की दशा में पड़ी हुई प्राथमिक शिक्षा को 1935 के "भारत-सरकार-अधिनियम" से गतिशीलता का वरदान प्राप्त हुआ। इस अधिनियम के अनुसार "प्रान्तीय स्वशासन" की स्थापना हुई और 6 प्रान्तों में कांग्रेसी मंत्रिमंडलों ने सत्तारूढ़ होकर प्राथमिक शिक्षा के विकास को सम्भव बनाया। उन्होंने अपने प्रान्तों की स्थानीय संस्थाओं को उदारतापूर्वक आर्थिक सहायता देकर अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का प्रसार करने का प्रयत्न किया। उन्होंने ग्रामों में प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की और बालिकाओं को प्राथमिक शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान कीं। इस प्रकार, कांग्रेसी मंत्रिमंडलों का संरक्षण एवं प्रोत्साहन प्राप्त होने पर प्राथमिक शिक्षा ने अपने विकास के पथ एक बार फिर अवरोधमुक्त अभियान आरम्भ किया।

स्वतंत्र भारत में अनिवार्य शिक्षा

Compulsory Education in Free India

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् प्राथमिक शिक्षा ने अपने विकास के स्वर्णिम युग में प्रवेश किया। संसार के सभी प्रगतिशील देशों के समान भारत ने भी बालकों एवं बालिकाओं को निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने के अपने उत्तरदायित्व को स्वीकार किया। इसीलिए, "संविधान-सभा" (Constituent Assembly) ने, जिसे देश का संविधान तैयार करने का कार्य सौंपा गया था, अग्रांकित शब्दों में निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा को राज्य का एक नीति-निर्देशक सिद्धान्त घोषित किया :—"राज्य इस संविधान के कार्यान्वित किए जाने के समय से दस वर्ष के अन्दर सब बच्चों के लिये, जब तक वे

चौदह वर्ष की आयु पूर्ण नहीं कर लेंगे, निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने की चेष्टा करेगा।"

"The State shall endeavour to provide within a period of ten years from the commencement of this Constitution, for free and compulsory education for all children until they complete the age of fourteen years."—Article 45 of the *Constitution Adopted by Free India on* January 26, 1950.

भारत-सरकार के निर्णय के अनुसार, प्राथमिक शिक्षा—बेसिक प्रकार की होगी और सरकार इस शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाने के लिए 1950 से ही प्रयत्नशील है। वह राज्य-सरकारों को सम्पूर्ण व्यय का 34 प्रतिशत वार्षिक सहायता-अनुदान के रूप में देती है। शेष व्यय के ½ भाग से अधिक की पूर्ति राज्य-सरकारों द्वारा, ⅕ की स्थानीय संस्थाओं द्वारा और बाकी की अन्य स्रोतों से की जाती है।[1] पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत भी प्राथमिक शिक्षा के विस्तार के लिए विपुल धन-राशियाँ व्यय की गई हैं। इन प्रयासों के फलस्वरूप अब तक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की जो प्रगति हुई है, उसे अधोअंकित तालिका में दर्शाया गया है[2] :—

अनिवार्य शिक्षा की प्रगति

विवरण	1950-51	1960-61	1970-71 अस्थायी
6-11 वय-वर्ग की कुल जनसंख्या का %	42 6	62·4	80·3
11-14 " " " "	12 7	22 6	34·1

समस्याएँ व उनके समाधान
Problems & Their Solutions

1950 के भारतीय संविधान के एक नीति-निर्देशक सिद्धान्त के अनुसार 14 वर्ष तक के बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था 10 वर्ष के अन्दर हो जानी चाहिए थी। किन्तु, यह लक्ष्य न तो अभी तक प्राप्त किया गया है और न निकट भविष्य में इसके प्राप्त किए जाने की आशा ही है। इन दोनों विषयों में "चौथी पंचवर्षीय योजना की रूपरेखा" में योजना-निर्माताओं ने अपनी धारणा का

1. S. N. Mukerji *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 69
2. भारत, 1973, p. 76.

अग्रांकित शब्दों में स्पष्टीकरण किया है :—"विद्यालय जाने वाले बच्चों की संख्या में जो वृद्धि हुई है, वह प्रशंसनीय है। पर हम अब भी अपने संविधान के उस निर्देश को पूरा करने में असमर्थ हैं, जिसके अनुसार 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा दी जायगी। यह लक्ष्य 1981 से पहले प्राप्त नहीं हो सकता है, ऐसी आशा है।"

"In spite of the appreciable rise in the number of children going to school, we will still be far from fulfilling the Constitutional directive of free and compulsory education for all children up to the age of 14. The goal is not expected to be achieved before 1981."—*Fourth Five-Year Plan, A Draft Outline*, p. 313.

संवैधानिक नीति-निर्देशक सिद्धान्त द्वारा निर्धारित लक्ष्य अब तक प्राप्त क्यों नहीं हुआ है और निकट भविष्य में प्राप्त क्यों नहीं होगा ? इसका कारण है—प्राथमिक शिक्षा के प्रसार-पथ में उपस्थित होने वाली समस्याएँ एवं कठिनाइयाँ। हम इन समस्याओं एवं कठिनाइयों और इनके समाधान एवं निवारण की विधियों पर निम्नांकित पंक्तियों में प्रकाश डाल रहे हैं :

1. समस्या—शिक्षा की दोषपूर्ण नीति : Faulty Policy of Education—1950 में क्रियान्वित किए जाने वाले भारतीय संविधान की 45वीं धारा के माध्यम से यह घोषणा की गई थी कि सरकार 10 वर्ष की अवधि में 6 से 14 वर्ष की आयु तक के सब बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा को निःशुल्क एवं अनिवार्य बनाने का प्रयास करेगी। इस लक्ष्य की प्राप्ति में सहायता लेने के लिए "अखिल-भारतीय प्राथमिक शिक्षा-परिषद्" (All India Council for Elementary Education, 1957) का निर्माण किया गया, केन्द्रीय सरकार द्वारा राज्य-सरकारों को वार्षिक सहायता-अनुदान दिया गया और पिछली चार पंचवर्षीय योजनाओं में प्राथमिक शिक्षा पर 593·74 करोड़ रुपए व्यय किए गए।[1] किन्तु, इन सब प्रयासों के बावजूद 20 वर्ष के पश्चात् भी 6-11 वय-वर्ग के 80·3 प्रतिशत बच्चों को और 11-14 वय-वर्ग के 34·1 प्रतिशत बच्चों को ही शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान की जा सकी हैं।[2] 20 वर्ष के उपरान्त भी निर्धारित लक्ष्य तक न पहुँचने का आधारभूत कारण है—केन्द्रीय सरकार की दोषपूर्ण नीति।

सरकार की नीति दोषपूर्ण इसलिए है, क्योंकि वह वास्तविकता पर आधारित न होकर आदर्शवादिता पर अवलम्बित है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त भारत-सरकार ने बेसिक शिक्षा-प्रणाली को राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली के रूप में स्वीकार किया। इसने प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चों के लिए बेसिक शिक्षा को आदर्श

1. भारत, 1973, p. 75.
2. भारत, 1973, p. 76.

माना। अतः उसने "पहली पंचवर्षीय योजना" में ही प्राथमिक विद्यालयों को बेसिक विद्यालयों में परिवर्तित करने का कार्यक्रम आरम्भ कर दिया। किन्तु, "दूसरी योजना" की अवधि में ही उसको इस बात का अनुभव हो गया कि भारत जैसे विशाल देश में बेसिक शिक्षा-प्रणाली को प्रचलित करने में बहुत अधिक समय लगेगा। अतः सरकार ने "तीसरी पंचवर्षीय योजना की प्रारम्भिक रूपरेखा" (p. 98) में यह घोषित किया:—"पूरी तरह से विकसित बुनियादी विद्यालयों को चलाने की दिशा में प्रगति होने में बहुत समय लगेगा।"

बहुत समय क्यों लगेगा? इसके कारण स्पष्ट हैं। प्राथमिक विद्यालयों को बेसिक विद्यालयों में परिवर्तित करने के लिए साज-सज्जा, प्रशिक्षित अध्यापकों और विशाल धनराशि की आवश्यकता है। इन तीनों चीज़ों को भारत जैसे निर्धन देश के लिए अल्प समय में जुटाना असम्भव है, आधारहीन आशा है। यह जानते हुए भी सरकार अपने आदर्श के पीछे दौड़ रही है, जो मृग-मारीचिका के समान आगे बढ़ता चला जा रहा है। इस बात का ज्ञान होने पर भी सरकार प्राथमिक शिक्षा पर व्यय किए जाने वाले अधिकांश धन को, उसे बेसिक शिक्षा का रूप प्रदान करने में व्यय कर रही है। इस प्रकार, सरकार अपने आदर्श के वशीभूत होकर, भारतीय संविधान में लिखित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उचित कदम न उठा कर, अपने उत्तरदायित्व की स्पष्ट अवहेलना कर रही है।

समाधान—शिक्षा की निश्चित नीति Definite Policy of Education—इस समस्या का समाधान करने के लिए यह परम आवश्यक है कि सरकार अपनी आदर्शवादी नीति को अलविदा देकर, निश्चित नीति का अनुसरण करे। उसे इस बात का अनुभव हो चुका है कि प्राथमिक विद्यालयों को विकसित बुनियादी विद्यालयों का रूप प्रदान करने में बहुत अधिक समय लगेगा। अतः यह समझ में नहीं आता है कि वह इस कार्यक्रम को क्यों जारी रखना चाहती है और इसको जारी रखकर देश के सब बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा को निकट भविष्य में किस प्रकार सुलभ बना सकती है? अनुभव बताता है कि पहले एक कार्य को पूर्ण कर लीजिए, फिर दूसरे को आरम्भ कीजिए।

अतः सरकार को अपनी वर्तमान दोषपूर्ण नीति का परित्याग करके, निश्चित नीति का निर्माण करने में लेशमात्र भी संकोच नहीं करना चाहिए। उसकी सर्वोत्तम नीति यही हो सकती है कि वह पहले 6-14 वय वर्ग के सब बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करे। जब वह अपने इस लक्ष्य को प्राप्त कर ले, तब प्राथमिक शिक्षा को बेसिक शिक्षा का रूप प्रदान करने या प्राथमिक विद्यालयों को बेसिक विद्यालयों में रूपान्तरित करने का कार्य आरम्भ करे। यदि सरकार ने इस निश्चित नीति का अनुसरण नहीं किया, तो वह "पाँचवीं पंचवर्षीय योजना" में 743 करोड़ रुपए व्यय करके भी निर्दिष्ट लक्ष्य को प्राप्त करने में अनिवार्यतः विफल होगी।

2. शिक्षा का दोषपूर्ण प्रशासन : Faulty Administration of Education—भारत में शिक्षा—राज्य का विषय है और अधिकांश राज्यों में प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व—नगरपालिकाओं, ज़िला-परिषदों आदि स्थानीय संस्थाओं पर है। केन्द्रीय सरकार—आर्थिक सहायक के रूप में प्राथमिक शिक्षा का केवल आंशिक उत्तरदायित्व वहन करती है। इस व्यवस्था के फलस्वरूप प्राथमिक शिक्षा के प्रशासन में 4 मुख्य दोष प्रकट हो गए हैं; यथा :—

पहला, सब स्थानीय संस्थाएँ अपनी-अपनी इच्छा के अनुसार प्राथमिक शिक्षा का प्रशासन करती हैं। परिणामतः देश में प्राथमिक शिक्षा के प्रशासन में विचित्र बहुरूपता परिलक्षित होती है। इसके अतिरिक्त, कुछ स्थानीय संस्थाओं ने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने की दिशा में प्रशंसनीय कार्य किया है और कुछ इस दिशा में एक-दो क़दम ही उठा पाई हैं। इस प्रसंग में "कोठारी कमीशन" ने लिखा है :—"निर्धन क्षेत्रों की स्थानीय संस्थाओं के ऊपर बहुधा अपूर्ण कार्य का सबसे अधिक भार है।"

"It is the poorer areas that often have the heavist load of the unfinished task to carry."—*Kothari Commission Report*, p. 165.

दूसरा, भारत की लगभग सभी स्थानीय संस्थाएँ अपनी अयोग्यता, अकर्मण्यता एवं अकिंचनता के लिये कुख्यात हैं। या तो वे ऋण-ग्रस्त हैं या दरिद्रता के दावानल में प्रज्ज्वलित होकर क्षीणकाय बन चुकी हैं। ऐसी संस्थाओं से प्राथमिक शिक्षा के सुप्रशासन की बात सोचना व्यर्थ है। ये संस्थाएँ इस शिक्षा के व्यय की पूर्ति के लिए स्थानीय कर लगाकर इसकी उत्तम व्यवस्था कर सकती हैं और विस्तार भी। किन्तु, इन संस्थाओं के पदलोलुप सदस्य आगामी निर्वाचन में पदविहीन होने की आशंका से इस कार्य में अग्रणी बनने के बजाय दो क़दम पीछे ही रहते हैं। इन परिस्थितियों में स्थानीय संस्थाओं द्वारा प्राथमिक शिक्षा के उत्तम प्रशासन के लिये धन जुटाया जाना सर्वथा असम्भव है।

तीसरा, स्थानीय संस्थाओं के सदस्य अपनी लोकप्रियता में अभिवृद्धि करने के लिए अपने निर्वाचन-क्षेत्रों में नवीन प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना तो कर देते हैं, पर धनाभाव के कारण विद्यालय-निरीक्षकों की संख्या में वृद्धि नहीं कर पाते हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि जिस अनुपात में विद्यालयों की संख्या बढ़ी है, उस अनुपात में निरीक्षकों की संख्या नहीं बढ़ी है। ऐसी स्थिति में विद्यालयों का उपयुक्त निरीक्षण न होना और परिणामस्वरूप उनके प्रशासन में शिथिलता एवं अनियमितता का प्रवेश हो जाना स्वाभाविक है।

चौथा, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के अधिनियमों का निर्माण परतन्त्र भारत में हुआ था। उस समय की और नव भारत की परिस्थितियों में आकाश-पाताल का अन्तर है। किन्तु, अधिनियमों में किसी प्रकार का संशोधन न किए जाने के कारण

आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं करता है, और स्थानीय पर्यावरण से सम्बन्धित न होने के कारण उपयोगी नहीं है।

समाधान—पाठ्यक्रम में सुधार : Reform in Curriculum—प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में सुधार करने के लिए दो सुझाव दिये जा सकते हैं। पहला, सुझाव यह है कि प्राथमिक शिक्षा को बेसिक शिक्षा का रूप प्रदान किया जाय। यही कारण है कि भारत-सरकार ने प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम को दोषमुक्त करने और उसकी गुणात्मक उन्नति करने के लिए प्राथमिक शिक्षा को बेसिक शिक्षा का रूप प्रदान करने का निश्चय किया है। इससे वांछित लक्ष्य की प्राप्ति तो हो सकती है, पर बेसिक शिक्षा की योजना इतनी व्ययपूर्ण है कि न तो उसे अभी तक सम्पूर्ण देश में क्रियान्वित किया जा सका है और न निकट भविष्य में किये जाने की आशा की जा सकती है।

इस परिस्थिति में हमारा दूसरा सुझाव यह है कि जब तक बेसिक शिक्षा की योजना सम्पूर्ण देश में क्रियान्वित न हो जाय, तब तक प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में स्थानीय आवश्यकताओं के अनुसार किसी उपयोगी शिल्प या हस्तकार्य को स्थान दिया जाय। इसी बात को ध्यान में रखकर "कोठारी कमीशन" ने अग्रांकित दो विचार व्यक्त किए हैं :—(1) निम्न प्राथमिक स्तर पर छात्रों को उन कार्यों में भाग लेना चाहिए, जिनसे उनकी रचनात्मक एवं उत्पादन-कुशलता का विकास हो। (2) उच्च प्राथमिक स्तर पर छात्रों को साधारण कलाओं एवं शिल्पों से सम्बन्धित कार्य करने चाहिए। अपने इन विचारों के आधार पर "कोठारी-कमीशन" ने निम्न और उच्च प्राथमिक स्तरों पर "कार्य-अनुभव" (Work Experience) और "समाज-सेवा" (Social Service) को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किए जाने का सुझाव दिया है।[1]

4. समस्या—प्राकृतिक कठिनाइयाँ : Natural Difficulties—अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के प्रसार में प्राकृतिक कठिनाइयाँ विकट समस्या उपस्थित कर रही हैं। इन कठिनाइयों का सम्बन्ध मुख्यतः ग्रामीण क्षेत्रों से है, जिनमें भारत की 80 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या निवास करती है।[2] राजस्थान के रेतीले प्रदेश में [illegible]नसंख्या कम होने के कारण ग्राम एक-दूसरे से पर्याप्त दूरी पर स्थित हैं। यही [illegible] काश्मीर, [illegible], अल्मोड़ा, हिमाचल-प्रदेश आदि कम जनसंख्या वाले प्रदेशों [illegible] की जा सकती है। इनके अतिरिक्त, आसाम, मध्य-प्रदेश [illegible] क्षेत्र हैं, [illegible] घने वनों से आच्छादित हैं और जहाँ [illegible] सुदूर ग्रामों में निवास करती है। [illegible] इयों के कारण आवागमन के [illegible] इयाँ उक्त प्रदेशों की भौगोलिक

स्थिति के अनुसार वर्षा, शीत एवं ग्रीष्म ऋतुओं में इन मार्गों पर अपने भयंकरतम रूप में प्रकट होती हैं। कम जनसंख्या वाले इन प्रदेशों के प्रत्येक ग्राम में प्राथमिक विद्यालय नहीं है। अतः अभिभावक इन संकटपूर्ण मार्गों से अपने बच्चों को जीवन के लिए अर्थहीन एवं अनुपयोगी ज्ञान का अर्जन करने के लिए दूसरे ग्राम-विद्यालयों को भेजकर अपने और अपने बच्चों के प्राणों को विपत्ति में फँसाना विवेकपूर्ण कार्य नहीं समझते हैं।

समाधान—कुछ सुझाव : Some Suggestions—प्राकृतिक कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने और उनकी उपस्थिति में बच्चों को प्राथमिक शिक्षा की सुविधा प्रदान करने के लिए तीन सुझाव दिए जा सकते हैं। पहला, आवागमन के सुरक्षित मार्गों का निर्माण करके और यातायात के सुविधाजनक साधनों को उपलब्ध बना कर, उपरिअंकित कठिनाइयों को पराभूत किया जा सकता है। भारत जैसे भू-रचना वाले देश में यह कार्य असुगम अवश्य है, पर असम्भव नहीं है। इसका प्रमाण यह है कि पिछली चार पंचवर्षीय योजनाओं में सड़कों का निर्माण करके अनेक दूरस्थ ग्रामों को एक-दूसरे से सम्बद्ध कर दिया गया है। ऐसी आशा है कि "पाँचवीं पंचवर्षीय योजना" की समाप्ति तक 1,500 व्यक्तियों की जनसंख्या वाले सब ग्रामों का सड़कों के द्वारा एक-दूसरे से सम्बन्ध स्थापित कर दिया जायगा।[1] अतः हम कह सकते हैं कि अनेक ग्रामों के बालकों को विद्यालयों को जाने की सुविधा प्राप्त हो जायगी।

दूसरा, क्योंकि बालक—प्राथमिक शिक्षा का आरम्भ 6 वर्ष की आयु में कर देता है, इसलिए यह आवश्यक है कि प्राथमिक विद्यालय उसके ग्राम के निकट हो। सरकार इस दिशा में सक्रिय कदम उठाने का निश्चय कर चुकी है। 'पाँचवीं पंचवर्षीय योजना" में यह प्रस्ताव अंकित किया गया है कि नवीन प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना इस प्रकार की जायगी कि किसी भी बालक के निवास स्थान से प्राथमिक विद्यालय 1·5 किलोमीटर से अधिक दूर नहीं होगा।[2]

तीसरा, जब तक प्राथमिक विद्यालयों की उपर्युक्त योजना पूर्ण न हो जाय, तब तक जिन ग्रामों में प्राथमिक विद्यालय नहीं है, उनके बच्चों की शिक्षा का भार सरकार द्वारा किसी स्थानीय व्यक्ति को सौंप दिया जाय।

5. समस्या—राजनीतिक कठिनाइयाँ : Political Difficulties—शिक्षा—प्रजातन्त्र की आधारशिला है। शिक्षा ही प्रजातन्त्र के निवासियों को उत्तम नागरिक बना सकती है। उत्तम नागरिक बनकर ही वे अपने कर्त्तव्यों का सफलता से पालन और अपने अधिकारों का विवेक से उपभोग करके, अपने देश को प्रगति के प्रशस्त पथ पर अग्रसर कर सकते हैं।

---

1. *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol II, p. 177.
2. *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol I, p. 88.

भारत भी प्रजातन्त्र देश है। अतः उसके निवासियों को भी उत्तम नागरिक बनाने के लिए कम-से-कम प्राथमिक स्तर तक की शिक्षा अनिवार्य है। इस तथ्य से भली-भाँति अवगत होने के बावजूद भी भारत-सरकार अभी तक उनकी शिक्षा पर अपने पूर्ण ध्यान को केन्द्रित नहीं कर पाई है। इसका कारण यह है कि सत्ता-हस्तान्तरण के समय से लेकर आज तक वह किसी-न-किसी जटिल समस्या में उलझी रही है; यथा :—देश के विभाजन से उत्पन्न होने वाली आर्थिक असंतुलन की समस्या, शरणार्थियों की समस्या, रजवाड़ों की समस्या, काश्मीर की समस्या, विभिन्न भाषा-भाषी राज्यों की समस्या, मुद्रा-अवमूल्यन से उत्पन्न होने वाली समस्या, वस्तुओं के मूल्यों में असाधारण वृद्धि से उत्पन्न होने वाली समस्या और भारत-चीन एवं भारत-पाकिस्तान युद्धों से उत्पन्न होने वाली समस्याएँ।

एक के उपरान्त दूसरी और कभी-कभी दो या दो से अधिक एक साथ उपस्थित होने वाली इन समस्याओं ने स्वतन्त्रता-प्राप्ति से आज तक सरकार के धन एवं ध्यान पर अपना एकमात्र अधिकार रखा है। यही कारण है कि सरकार—अनिवार्य शिक्षा के प्रसार को अपना पुनीत कर्त्तव्य मान कर भी इसको सम्पन्न करने के लिए समय नहीं निकाल पाई है।

समाधान—सरकार का पूर्ण ध्यान : **Full Attention of Government**—हमने उपर्युक्त पंक्तियों में जिन राजनीतिक कठिनाइयों का उल्लेख किया है, वे सत्य हैं, सर्वविदित हैं। राजनीतिक कठिनाइयाँ प्रत्येक देश के समक्ष रहती हैं और भारत के सम्मुख भी रहेंगी। इतना ही नहीं, यह भी सम्भव है कि भावी राजनीतिक कठिनाइयाँ और भी अधिक पेचीदा हों। यह भी सम्भव है कि उनसे देश की एक या अनेक आर्थिक, सामाजिक या व्यावसायिक समस्याएँ संयुक्त हों। पर इसका अभिप्राय यह तो नहीं है कि सरकार उनका निराकरण करने में ही व्यस्त रहे और देश के किसी अन्य कार्य के प्रति ध्यान न दे। यदि इन कठिनाइयों एवं समस्याओं का निराकरण करना सरकार का कर्त्तव्य है, तो अपने देश के नागरिकों को सुशिक्षित बनाकर, उनकी और उनके समाज की उन्नति करना भी उसका कर्त्तव्य है। अतः सरकार द्वारा जन-शिक्षा की उपेक्षा किए जाने का कारण समझ में आना कुछ कठिन प्रतीत होता है।

यदि सरकार उक्त राजनीतिक कठिनाइयों की उपस्थिति में बड़े-बड़े बाँध बना सकती है, बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर सकती है और पंचायती राज की स्थापना कर सकती है, तो शिक्षा-प्रसार के कार्य के प्रति उदासीन क्यों रही है? कारण, जैसा कि सैयदैन ने लिखा है, यही ठीक जान पड़ता है :—"भारत की राजनीतिक स्थिति अनिवार्य शिक्षा-योजना का अविलम्ब कार्यान्वयन चाहती है, पर देश के राजनीतिज्ञ इसके लिए पर्याप्त उत्सुक नहीं हैं।"

"While the political situation demands the immediate introduction of the scheme of compulsory education, the politicians are

not keen enough to take it up."—K. G. Saiyidain : *Compulsory Education in India*, p. 111.

सरकार का संचालन करने वाले राजनीतिज्ञ अपने इस अवयव को सुगम में तभी बदल सकते हैं, जब वे शिक्षा के प्रति आज और अभी से अपना पूर्ण ध्यान दें।

6. समस्या—धन का अभाव : Dearth of Money—प्राथमिक विद्यालयों के समक्ष धन के अभाव की समस्या प्रति क्षण अपने विकराल रूप में मुँह फाड़े खड़ी रहती है। इसके दो आधारभूत कारण हैं। पहला यह है कि स्थानीय संस्थाओं में से अधिकांश, जिन पर प्राथमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व है, स्वयं धनाभाव के गहरे गर्त में पड़ी हुई हैं। दूसरा यह है कि भारत-सरकार ने प्राथमिक शिक्षा का दायित्व स्वयं ग्रहण नहीं किया है। वह इस जनतन्त्रीय सिद्धान्त को, कि जन-शिक्षा का उत्तरदायित्व देश की सरकार पर होता है, जीवित रखने के लिए थोड़ी-सी जीवन-रक्षक, धन-औषधि समय-समय पर देती रहती है।

उक्त कथन की पुष्टि करने के लिए तथ्यों का बाहुल्य है। उदाहरणार्थ—अंग्रेजों की विदेशी सरकार, जो इस देश की साक्षरता की विरोधी थी, प्राथमिक शिक्षा पर होने वाले कुल व्यय का 30 प्रतिशत भार वहन करती थी। हमारी राष्ट्रीय सरकार ने इस धनराशि को 30 प्रतिशत से 34 प्रतिशत करके अपनी उदार-हृदयता को सिद्ध किया है।[1] इतना ही नहीं, भारत-सरकार अन्य देशों की सरकारों की तुलना में शिक्षा पर सबसे कम धन व्यय करती है। जबकि रूस अपनी राष्ट्रीय आय का 7%, जापान 6%, अमरीका 4·7% और इंगलैंड 4 5% शिक्षा पर व्यय करते हैं, भारत लगभग 2 3% करता है। इस बात पर दुःख प्रकट करते हुए, डा० एस० एन० मुकर्जी ने लिखा है :—"इस समय भारत अपनी राष्ट्रीय आय का लगभग 2 3 प्रतिशत शिक्षा पर व्यय करता है। यह प्रतिशत अत्यन्त अल्प है।"

"India spends about 2 3 per cent of her national income on education today This is too meagre a percentage."—Dr. S. N. Mukerji : *Education in India, Today & Tomorrow*, p 98.

धनाभाव की ऐसी संकीर्ण स्थिति में सम्पूर्ण भारत में अनिवार्य शिक्षा का प्रसार न होना, एक अनिवार्य निष्कर्ष है।

समाधान—कुछ सुझाव Some Suggestions—हार्दिक इच्छा एवं प्रयास से बड़ी-बड़ी मुश्किलें आसान हो जाती हैं। उनकी तुलना में धनाभाव की मुश्किल कहीं ज्यादा आसान है। अतः इसे हल करने के 6 आसान तरीके हैं; जैसे :—

1 *Education in the Eighteenth Year of Freedom*, p. 15.

पहला, भारत-सरकार को अपनी सब योजनाओं में से थोड़ी-थोड़ी बचत करके, प्राथमिक शिक्षा पर किए जाने वाले व्यय में वृद्धि करनी चाहिए।

दूसरा, इस समय प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा पर सरकार के व्यय का अनुपात 1 : 5 है।[1] सरकार को जनशिक्षा की गम्भीरता को समझकर, इस अनुपात को 5 : 1 कर देना चाहिए।

तीसरा, सरकार जिस धन का उपयोग प्राथमिक विद्यालयों को बेसिक विद्यालयों में परिवर्तित करने के लिए कर रही है, उसका प्रयोग पहले अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए करना चाहिए।

चौथा, दिनकर देसाई का सुझाव है कि चीन, रूस, मिस्र, जापान, जर्मनी एवं आस्ट्रेलिया के समान भारत में भी प्राथमिक शिक्षा के निम्न स्तर की अवधि—5 वर्ष के बजाय 4 वर्ष की कर दी जानी चाहिए और इस प्रकार बचने वाले धन से नवीन प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना की जानी चाहिए।[2]

पाँचवाँ, इस समय भारत की लगभग 55 करोड़ जनसंख्या में 14 वर्ष की आयु तक के बच्चे 42 प्रतिशत हैं।[3] बच्चों की इस अति विशाल संख्या के लिए सरकार अपनी सम्पूर्ण आर्थिक शक्ति का प्रयोग करके भी अल्प समय में अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था कदापि नहीं कर सकती है। अतः यह आवश्यक है कि जनता इस कार्य में सरकार का हाथ बटाए। जनता ने भारत-चीन और भारत-पाकिस्तान युद्धों के दौरान में जिस तत्परता और जिस आत्म-त्याग का परिचय दिया है, उसका एक अंश भी यदि उसमें अनिवार्य शिक्षा के प्रति हो, तो भारत के किसी भी बच्चे का जीवन शिक्षा के अभाव के कारण उतना हीन, अनाकर्षक एवं अरुचिकर नहीं रह जायगा, जितना कि आज है।

छठवाँ, भारत-सरकार को विदेशी शासकों की प्राथमिक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति करने की नीति का कुछ समय के लिए परित्याग कर देना चाहिए और इससे बचने वाले धन को सामान्य प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए प्रयोग करना चाहिए। इस सम्बन्ध में उसे गोखले के अग्रांकित वाक्य को अपने निर्देशक-सूत्र के रूप में स्वीकार करना चाहिए :—"शिक्षा की गुणात्मक उन्नति महत्त्वपूर्ण अवश्य है, पर उस पर बल तभी दिया जाना चाहिए, जब निरक्षरता का अन्त हो जाय।"

"The quality of education is a matter of importance that comes only after illiteracy has been abolished."—Gokhale's *Speeches*, p. 65.

7. समस्या—प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव : **Dearth of Trained**

---

1. Gunnar Myrdal : *Asian Drama*, Vol. III, p. 1666.
2. Dinker Desai : *Primary Education in India*, pp. 30-32.
3. *India*, 1974, p. 9.

Teachers—अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए प्रशिक्षित अध्यापकों की वांछित संख्या उपलब्ध न होने के कारण एक जटिल समस्या उपस्थित हो गई है। यह समस्या—छात्र-संख्या में निरन्तर होने वाली वृद्धि के कारण और भी अधिक जटिल हो गई है।

"कोठारी कमीशन" ने 1985-86 तक प्राथमिक स्तर पर छात्र-संख्या की सम्भावित वृद्धि की तालिका दी है और यह सुझाव दिया है कि इस स्तर पर शिक्षक एवं छात्रों का अनुपात 1 : 50 होना चाहिए।[1] इन दोनों बातों के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि भविष्य में प्रतिवर्ष 2.4 लाख अतिरिक्त शिक्षकों की आवश्यकता पड़ेगी। प्राथमिक विद्यालयों में कार्य करने वाले शिक्षकों में से 3 प्रतिशत या तो अवकाश ग्रहण कर लेते हैं या अध्यापन-कार्य छोड़ देते हैं। इस प्रकार, देश को भविष्य में प्रति वर्ष 3.26 अतिरिक्त शिक्षकों की आवश्यकता पड़ेगी।[2]

1965 के एक सर्वेक्षण के अनुसार सम्पूर्ण देश में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए 28 लाख प्रशिक्षित अध्यापकों की आवश्यकता है।[3] किन्तु, सरकार के अथक् प्रयास के बावजूद भी चौथी पंचवर्षीय योजना के अन्त में केवल 20.2 लाख प्रशिक्षित अध्यापक ही उपलब्ध हुए।[4] इस प्रकार, 1974 में सम्पूर्ण देश में प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य बनाने के लिए लगभग 8 लाख शिक्षकों का अभाव है। यदि हम इनमें लगभग 3 लाख प्रति वर्ष के हिसाब से अतिरिक्त शिक्षकों को और जोड़ दें, तो यह अभाव बढ़कर 35 लाख हो जाता है। इस प्रकार, ऐसा प्रतीत होता है कि प्राथमिक शिक्षा के लिए प्रशिक्षित अध्यापकों की वांछित संख्या उपलब्ध होना असम्भव है, और इसलिए सम्पूर्ण देश में अनिवार्य शिक्षा का कार्यक्रम भी पूर्ण होना असम्भव है।

प्राथमिक विद्यालयों के लिए शिक्षकों के अभाव का सर्वप्रथम कारण यह है कि उनका वेतन इतना अल्प है कि नवयुवक—अध्यापक-कार्य के प्रति आकृष्ट नहीं होते हैं, और यदि किन्हीं परिस्थितियों-वश हो भी जाते हैं, तो अधिक आर्थिक लाभ का पद प्राप्त होने पर अध्यापन-कार्य से सदैव के लिए मुँह मोड़ लेते हैं।

नगरों की अपेक्षा ग्रामों के विद्यालयों में शिक्षकों का अधिक अभाव है। इसका कारण यह है कि नगरों में अतिरिक्त धनोपार्जन एवं मनोरंजन के जो साधन सुलभ होते हैं, उनके ग्रामों में कभी भूल कर भी दर्शन नहीं होते हैं। अतः नगर में अतिरिक्त धन का अर्जन करने वाला, सायंकाल के समय राष्ट्रीय राजपथ पर

1. *Kothari Commission Report*, p. 161.
2. S. N. Mukerji . *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 100
3. *The Eighteenth Year of Freedom*, p. 97.
4. *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. II, p. 198

स्वच्छंदता से विचरण करने वाला या किसी सिनेमाघर में चित्रों एवं संगीत से अपने नेत्रों एवं कानों को तृप्त करने वाला नवयुवक शिक्षक—ग्राम में जाकर धूल फाँकने और आनन्दविहीन जीवन व्यतीत करने के लिए किसी भी शर्त पर तैयार नहीं होता है। यही कारण है कि नगरों की अपेक्षा ग्रामों में शिक्षकों का तिगुना अभाव है। एक सर्वेक्षण के अनुसार, ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में शिक्षकों का अनुपात—2 : 6 है।[1]

अध्यापकों की तुलना में अध्यापिकाओं का अधिक अभाव है एवं ग्रामों में और भी अधिक है। नगरों में इस अभाव का मुख्य कारण—अल्प वेतन है और ग्रामों में निवास-स्थान की असुविधा।

समाधान—अध्यापकों की पूर्ति : Supply of Teachers—अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव अवश्य है, पर यह अभाव कृत्रिम है, क्योंकि यह उनके प्रति समाज की उदासीनता का परिणाम है। आज का समाज यह विस्मृत कर चुका है कि ज्ञान की जिस ज्योति की सुरक्षा करने का भार उन्हें सौंपा गया है, उसे वे जलाए रखने का प्रयत्न करते हैं, ताकि वे उस ज्योति को मन्द किए बिना अपने उत्तराधिकारियों के हाथों में सौंप सकें। यदि हमारा समाज इस सनातन सत्य को गाँठ में बाँध ले, तो अग्रांकित उपायों को अपना कर शिक्षकों की पूर्ति अत्यन्त सरलता से की जा सकती है।

पहला, शिक्षकों के वेतन में पर्याप्त वृद्धि करके, अध्यापन-कार्य को आकर्षक बनाया जाय। सरकार ने इस दिशा में क़दम उठाया है और "कोठारी कमीशन" की सिफ़ारिश को मान्यता प्रदान करके प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों का न्यूनतम वेतन 150 रुपए मासिक कर दिया है।[2] किन्तु, वस्तुओं के मूल्यों में बड़ी तेजी से जो असाधारण वृद्धि हो रही है, उसे देखते हुए यह वेतन अत्यन्त अल्प है। अतः आधुनिक समय में जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार इसमें तत्काल वृद्धि की जानी अनिवार्य है। शिक्षकों का वर्तमान वेतन कितना अल्प है, इसका शब्द-चित्र सैयदैन के अग्रांकित वाक्य में देखिए[3]—"अपने प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों को अक्सर हम उतना भी नहीं देते हैं, जितना कि पैसे वाले लोग अपने घर के नौकरों को देते हैं।"

दूसरा, ग्रामीण क्षेत्रों के प्राथमिक विद्यालयों में उन्हीं क्षेत्रों में निवास करने वाले पुरुषों एवं स्त्रियों की नियुक्ति की जाय और उनको शहरी क्षेत्रों के अध्यापकों से अधिक वेतन दिया जाय। अध्यापिकाओं को निवास की विशेष सुविधाएँ दी जायँ। यदि आवश्यक हो, तो उनको भत्ता भी दिया जाय और कम शैक्षिक योग्यता होने पर भी नियुक्त कर दिया जाय।

1. *Second All-India Educational Survey*, p. 135.
2. *Kothari Commission Report*, p. 51.
3. के० जी० सैयदैन : शिक्षा की पुनर्रचना, p. 118.

स्वच्छंदता से विचरण करने वाला या किसी सिनेमाघर में चित्रों एवं संगीत से अपने नेत्रों एवं कानों को तृप्त करने वाला नवयुवक शिक्षक—ग्राम में जाकर धूल फांकने और आनन्दविहीन जीवन व्यतीत करने के लिए किसी भी शर्त पर तैयार नहीं होता है। यही कारण है कि नगरों की अपेक्षा ग्रामों में शिक्षकों का तिगुना अभाव है। एक सर्वेक्षण के अनुसार, ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में शिक्षकों का अनुपात—2 : 6 है।[1]

अध्यापकों की तुलना में अध्यापिकाओं का अधिक अभाव है एवं ग्रामों में और भी अधिक है। नगरों में इस अभाव का मुख्य कारण—अल्प वेतन है और ग्रामों में निवास-स्थान की असुविधा।

समाधान—अध्यापकों की पूर्ति : Supply of Teachers—अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए प्रशिक्षित अध्यापकों का अभाव अवश्य है, पर यह अभाव कृत्रिम है, क्योंकि यह उनके प्रति समाज की उदासीनता का परिणाम है। आज का समाज यह विस्मृत कर चुका है कि ज्ञान की जिस ज्योति की सुरक्षा करने का भार उन्हें सौंपा गया है, उसे वे जलाए रखने का प्रयत्न करते हैं, ताकि वे उस ज्योति को मन्द किए बिना अपने उत्तराधिकारियों के हाथों में सौंप सकें। यदि हमारा समाज इस सनातन सत्य को गांठ में बांध ले, तो अग्रांकित उपायों को अपना कर शिक्षकों की पूर्ति अत्यन्त सरलता से की जा सकती है।

पहला, शिक्षकों के वेतन में पर्याप्त वृद्धि करके, अध्यापन-कार्य को आकर्षक बनाया जाय। सरकार ने इस दिशा में क़दम उठाया है और "कोठारी कमीशन" की सिफ़ारिश को मान्यता प्रदान करके प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों का न्यूनतम वेतन 150 रुपए मासिक कर दिया है।[2] किन्तु, वस्तुओं के मूल्यों में बड़ी तेजी से जो असाधारण वृद्धि हो रही है, उसे देखते हुए यह वेतन अत्यन्त अल्प है। अतः आधुनिक समय में जीवन की आवश्यकताओं के अनुसार इसमें तत्काल वृद्धि की जानी अनिवार्य है। शिक्षकों का वर्तमान वेतन कितना अल्प है, इसका शब्द-चित्र सैयदैन के अग्रांकित वाक्य में देखिए[3]—"अपने प्राथमिक स्कूलों के अध्यापकों को अक्सर हम उतना भी नहीं देते हैं, जितना कि पैसे वाले लोग अपने घर के नौकरों को देते हैं।"

दूसरा, ग्रामीण क्षेत्रों के प्राथमिक विद्यालयों में उन्हीं क्षेत्रों में निवास करने वाले पुरुषों एवं स्त्रियों की नियुक्ति की जाय और उनको शहरी क्षेत्रों के अध्यापकों से अधिक वेतन दिया जाय। अध्यापिकाओं को निवास की विशेष सुविधाएँ दी जायें। यदि आवश्यक हो, तो उनको भत्ता भी दिया जाय और कम शैक्षिक योग्यता होने पर भी नियुक्त कर दिया जाय।

1. *Second All-India Educational Survey*, p. 135.
2. *Kothari Commission Report*, p. 51.
3. के० जी० सैयदैन : शिक्षा की पुनर्रचना, p. 118.

उधर बिखरे हुए ग्रामों में निवास करने वाले बच्चों के लिए प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करना—ये दोनों ही कार्य दुष्कर प्रतीत होते हैं। किन्तु, प्राथमिक विद्यालयों के निर्माण के लिए सरकार ने जितनी धनराशि निर्धारित की है, उसको निम्नांकित योजना के अनुसार व्यय करके विद्यालय-स्थापना की दिशा में हितकर कार्य किया जा सकता है।

प्राथमिक विद्यालयों की स्थापना ऐसे केन्द्रीय ग्रामों में की जाय, जहाँ से अन्य ग्राम कम-से-कम दूरी पर हों। इस प्रकार के ग्रामों में स्थापित किए जाने वाले विद्यालयों में अन्य ग्रामों के बच्चे सुगमता से पहुँच कर ज्ञान का अर्जन कर सकते हैं। भारत-सरकार ने इस दिशा में निर्णायक क़दम उठाया है। उसने निर्णय किया है कि पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में विद्यालयों का निर्माण इस विधि से किया जायगा कि किसी भी बालक के ग्राम से प्राथमिक विद्यालय 1-5 किलोमीटर और मिडिल स्कूल 5 किलोमीटर से अधिक दूर नहीं होगा। सरकार को आशा है कि इस योजना के पूर्ण होने पर 6-11 वय-वर्ग के 97 प्रतिशत और 11-14 वय-वर्ग के 47 प्रतिशत बच्चों को शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा मिल जायगी।[1]

9. समस्या—विद्यालयों के भवन : Buildings of Schools—विद्यालयों की स्थापना से बहुत-कुछ सम्बद्ध विद्यालय-भवनों की समस्या है। सम्पूर्ण देश में सरकार और स्थानीय संस्थाओं द्वारा विद्यालयों के लिए विशेष रूप से निर्मित किए जाने वाले भवन केवल इतने हैं, जिनमें 50 प्रतिशत छात्र विद्या का अर्जन कर सकते हैं।[2] शेष विद्यालय विभिन्न राज्यों में विभिन्न स्थानों में चल रहे हैं। कुछ राज्यों में इनका संचालन मन्दिरों, गाँवों की चौपालों, किराए के मकानों और धनी पुरुषों के निवास-स्थानों के थोड़े-से भागों में किया जा रहा है। कुछ राज्य ऐसे भी हैं, जिनमें डेरों, झोंपड़ियों, खुले स्थानों या वृक्षों के नीचे शिक्षण-कार्य किया जा रहा है।[3]

उपरिलिखित सभी स्थान—विद्यालयों के लिए सर्वथा अनुपयुक्त हैं। इसके कारण स्पष्ट हैं। अनेक विद्यालयों में शीत, वर्षा एवं उष्णता से किसी प्रकार की सुरक्षा नहीं है। लगभग सभी विद्यालयों में वायु, प्रकाश एवं स्थान का अभाव है। कुछ विद्यालय दूषित अथवा कोलाहलपूर्ण वातावरण में स्थित हैं। खेल का मैदान तो सम्भवतः किसी भी विद्यालय में नहीं है। इस प्रकार के विद्यालयों में लगभग 6 घंटे प्रतिदिन व्यतीत करने वाले बच्चे अपने स्वास्थ्य से हाथ धो बैठते हैं और बहुधा ऐसे रोगों के चंगुल में फँस जाते हैं, जो आजीवन उनके कष्ट का कारण

1. *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. I, p. 88.
2. S. N. Mukerji : *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 105.
4. *Education in India*, 1958-59, Vol. I, p. 7.

तीसरा, जनता का सहयोग प्राप्त करके भी विद्यालय-भवनों के अभाव की बहुत-कुछ पूर्ति की जा सकती है। यदि सरकार—ग्राम-निवासियों को शिक्षण की सब सामग्री प्रदान कर दे, तो पहले शिक्षण-कार्य खुले स्थानों या वृक्षों के नीचे आरम्भ किया जा सकता है। उसके पश्चात् सरकार—भूमि एवं भवन-निर्माण की सामग्री की व्यवस्था करके, ग्राम-निवासियों को विद्यालय-भवन का निर्माण करने के लिए प्रोत्साहित कर सकती है। स्वर्गीय मौलाना अबुल कलाम आज़ाद का सरकार को यह परामर्श था :—"हमें ग्राम-निवासियों से अपील करनी चाहिए कि यदि हम उनके लिए भवन-निर्माण-सामग्री की व्यवस्था कर दें, तो वे अपने निवास करने के गृहों के समान विद्यालय-भवनों का निर्माण करें।"

"We should appeal to villagers that if we supply them with the raw material, they should build school houses of the same pattern as the houses in which they live."—Late Maulana Abul Kalam Azad : *Schools for All*, p. 15.

10. समस्या—अपव्यय व अवरोधन : Wastage & Stagnation—प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन की भीषण समस्या है। "कोठारी कमीशन" के अनुसार :—निम्न प्राथमिक स्तर पर बालकों एवं बालिकाओं की शिक्षा में अपव्यय क्रमशः 56% एवं 62% है और उच्च प्राथमिक स्तर पर यह अनुपात क्रमशः 24% एवं 34% है।[1] इसी प्रकार, जैसा कि "कोठारी कमीशन" के प्रतिवेदन में अंकित है[2] :—अवरोधन, बालकों की कक्षा 1 में 40·3%, कक्षा 4 में 21·7% और कक्षा 8 में 13·2% है। बालिकाओं की इन तीन कक्षाओं में अवरोधन क्रमशः 47·1%, 25·6% और 16·4% है।

समाधान—कुछ सुझाव : Some Suggestions—अपव्यय एवं अवरोधन का निवारण करने के लिए अग्रांकित उपायों का प्रयोग किया जा सकता है :—(1) पाठ्यक्रम में सुधार, (2) परीक्षा-प्रणाली में सुधार, (3) शिक्षा-व्यवस्था में सुधार, (4) विद्यालय के अन्दर और बाहर के वातावरण में सुधार, (5) अभिभावकों की शिक्षा, (6) उत्तम विद्यालयों की व्यवस्था, (7) शिक्षण-विधियों की रोचकता, (8) सामाजिक समस्याओं का समाधान, (9) छात्रों के स्वास्थ्य की उन्नति, और (10) शिक्षा एवं जीवन में उचित सम्बन्ध की स्थापना।

टिप्पणी—अधिक अध्ययन के लिए "अपव्यय व अवरोधन" अध्याय देखिए।

11. समस्या—भाषाओं का बाहुल्य : Multiplicity of Languages—अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के विस्तार में भाषाओं का बाहुल्य असाधारण अवरोध उपस्थित कर रहा है। 'भारत", 1973 (p. 17) के अनुसार :—हमारे देश में

1. *Kothari Commission Report*, p. 157.
2. *Kothari Commission Report*, p. 156.

826 भारतीय एवं ग़ैर-भारतीय भाषाएँ और 1,652 बोलियाँ (मातृभाषाएँ) बोली जाती हैं। देश के प्रशासकों तथा शिक्षाविदों के समक्ष समस्या यह है कि इतनी विभिन्न भाषाओं एवं बोलियों का प्रयोग करने वाले बालकों एवं बालिकाओं को किस भाषा के माध्यम से शिक्षा दी जाय ?

भारतीय संविधान में जिन 15 भाषाओं को मान्यता प्रदान की गई है, वे इस देश के अधिकांश निवासियों द्वारा बोली जाती हैं। अतः उनको शिक्षा का माध्यम बनाने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं है। किन्तु, शेष 811 भाषाओं को इस पद पर आसीन करना सम्भव नहीं है। इसके अतिरिक्त, एक अन्य कठिनाई यह है कि भारत में ऐसी अनेक जातियाँ हैं, जिनका न तो कोई साहित्य है और न कोई बोली। इनमें उल्लेखनीय हैं :—अनुसूचित एवं आदिम जातियाँ (Scheduled Castes & Tribes), जिनकी संख्या क्रमशः 6·44 करोड़ और 3·01 करोड़ है[1], और निरधिसूचित आदिम जातियाँ (Denotified Tribes), जिनकी संख्या 40 लाख है।[2] ये सभी जातियाँ पिछड़ी हुई हैं और इनमें अभी तक शिक्षा का बहुत कम प्रसार हुआ है।

समाधान—विशिष्ट विद्यालय : Special Schools—भारत के जिन भूभागों में आदिम, अनुसूचित एवं पिछड़ी हुई जातियाँ निवास करती हैं, उनमें अनिवार्य शिक्षा का प्रसार करने का सर्वोत्तम उपाय है—विशिष्ट विद्यालयों की स्थापना। भारत सरकार इन विद्यालयों की स्थापना का कार्य उत्साहपूर्वक कार्य कर रही है, 6,000 से अधिक विद्यालयों एवं छात्रावासों का निर्माण कर चुकी है, और इनमें अध्ययन करने वाले छात्रों को पुस्तकों, लेखन-सामग्री आदि की सुविधाएँ भी प्रदान कर रही है।[3]

उक्त सुविधाओं के अतिरिक्त, छात्रवृत्तियों की भी व्यवस्था है। अनुसूचित जातियों के योग्य विद्यार्थियों को और अनुसूचित आदिम जातियों के प्रत्येक आवेदन-कर्ता को मैट्रिकोत्तर छात्रवृत्तियाँ दी जाती हैं। सन् 1973 तक इन दोनों जातियों के विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियाँ देने में 80 करोड़ रुपए से अधिक व्यय किये जा चुके हैं।[4]

12. समस्या—प्रेरणा का अभाव : Lack of Incentive—अनिवार्य शिक्षा के विस्तार में बाधा उपस्थित करने वाली अन्तिम समस्या है—प्रेरणा का अभाव। यह सर्वविदित तथ्य है कि ग्रामीण जनता निर्धन है और प्रत्येक ग्राम में प्राथमिक

1. *India*, 1971-72, p. 129.
2. *Fourth Five-Year Plan, A Draft Outline* p. 383
3. *India*, 1971-72, p. 135.
4. भारत, 1973, p. 133.

विद्यालय नहीं है। निर्धन अभिभावक अपने बालकों को अपने ग्रामों के विद्यालयों में भी शिक्षा प्राप्त करने के लिए कुछ ही समय के लिए भेजते हैं, या बिल्कुल नहीं भेजते हैं। जहाँ तक उनको अन्य ग्रामों के विद्यालयों में भेजने का प्रश्न है, इसकी ये अभिभावक कभी कल्पना भी नहीं करते हैं।

इसका कारण यह है कि बालकों को विद्यालय जाने में और अभिभावकों को उनको भेजने में दो विभिन्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। बालक प्रातः-काल भोजन करके अपने गृहों से चलते हैं और सायंकाल को वापिस आने पर ही भोजन के दर्शन करते हैं। इसका उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। निर्धन अभिभावकों को अपने बालकों की पुस्तकों, लेखन-सामग्री एवं शिक्षा-सम्बन्धी अन्य व्यय का भार वहन करना पड़ता है। ऐसी परिस्थिति में न तो बालक—विद्यालय जाने के लिए उत्सुक रहते हैं और न अभिभावक उनको भेजने के लिए।

समाधान—सहायक सेवाएँ : Ancillary Services—उल्लिखित समस्या का समाधान करने के लिए विद्यालयों में सहायक सेवाओं की व्यवस्था की जानी अनिवार्य है। इन सेवाओं में निःशुल्क मध्याह्न भोजन, पाठ्य-पुस्तकों, लेखन-सामग्री, चिकित्सा आदि को स्थान दिया जाना चाहिए। ये सेवाएँ या सुविधाएँ ऐसी प्रबल प्रेरक शक्तियों का कार्य करेंगी कि स्वयं बालक—विद्यालय जाने का आग्रह करेंगे और अभिभावक उन्हें भेजने के लिए तत्पर रहेंगे।

सहायक सेवाओं के महत्त्व से भली-भाँति परिचित होने के कारण सरकार ने पिछली पंचवर्षीय योजनाओं में इनके लिए पृथक् धनराशियाँ निर्धारित की थीं और पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में 112 करोड़ रुपए मध्याह्न भोजन पर एवं लगभग 160 करोड़ रुपए अन्य सहायक सेवाओं पर व्यय करने का निश्चय किया है।[1]

UNIVERSITY QUESTIONS

1. What, in your opinion, are the major problems of compulsory primary education in India ? What suggestions can you offer to tackle them ?
   आपके विचारानुसार भारत में अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की मुख्य समस्याएँ क्या हैं ? उनके समाधान के लिए आप क्या सुझाव दे सकते हैं ?
2. What are the main difficulties in the way of progress of free and compulsory education in India ? What suggestions has the Kothari Commission given to remove them ?

---

1. *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. II, p. 207.

भारत में नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा की उन्नति के मार्ग में मुख्य कठिनाइयाँ क्या हैं ? कोठारी आयोग ने उनको सुलझाने के लिए क्या प्रस्ताव दिए हैं ?

3. "Our primary schools today are no more than mere sheep-yards." Comment critically giving reasons. Also give your suggestions in the light of the recommendations made from time to time by the various Education Commissions to improve the conditions of the Primary Schools in our country.

"हमारे प्राथमिक शिक्षा के विद्यालय केवल भेड़-बकरियों के बाड़े जैसे बनकर रह गए हैं।" इस कथन की आलोचनात्मक विवेचना कारणों सहित कीजिए। देश में प्राथमिक शिक्षा की इस दुर्दशा के सुधार हेतु, विभिन्न शिक्षा-आयोगों द्वारा समय-समय पर दिए गए सुझावों के सन्दर्भ में अपने सुझाव दीजिए।

4. The target of free and compulsory education for all children up to the age of fourteen years as laid down in the Constitution of India has not been achieved as yet. What are the general causes which impede the progress in this direction ? What would you suggest to achieve the target mentioned ?

भारतीय संविधान में उल्लिखित प्रत्येक बालक एवं बालिका को चौदह वर्ष की आयु तक नि:शुल्क तथा अनिवार्य शिक्षा देने का लक्ष्य अभी तक पूरा नहीं हो सका है। इस दिशा में उन्नति को अवरुद्ध करने वाले सामान्य कारण क्या हैं ? उल्लिखित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आपके क्या सुझाव हैं ?

5. Write short notes on —(a) Gokhale's Bill, (b) Early efforts for compulsory education in India, and (c) Importance of Ancillary Services in Primary Schools

अग्रलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए —(अ) गोखले का विधेयक, (ब) भारत में अनिवार्य शिक्षा के प्रारम्भिक प्रयास और (स) प्राथमिक विद्यालयों में सहायक सेवाओं का महत्त्व।

24

माध्यमिक शिक्षा

SECONDARY EDUCATION

"If you want to feel the generations rushing to waste like rapids—yes like rapids—you should put your heart and mind into a private school."

—**H. G. Wells.**

विषय-प्रवेश

सैयदैन के शब्दों में[1] :—"सारे संसार के शैक्षणिक क्षेत्रों में माध्यमिक शिक्षा के आम ढर्रे के प्रति गहरा असंतोष रहा है और वे काफ़ी समय से यह अनुभव करते रहे हैं कि इसकी आमूल पुनर्रचना तत्काल आवश्यक है। यद्यपि प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में बहुत-से बहुमूल्य परिवर्तन हुए हैं और स्वयं हमारे देश में बुनियादी शिक्षण-पद्धति ने इसकी समस्याओं के प्रति एक बिल्कुल ही नया रवैया अपनाया है, पर माध्यमिक शिक्षा अभी कुछ समय पहले तक कुल मिलाकर गतिहीन तथा अपरिवर्तित रही है।"

हमारे देश में माध्यमिक शिक्षा गतिहीन तथा अपरिवर्तित क्यों रही है और उसमें गतिशीलता तथा परिवर्तनशीलता का उदय, क्यों एवं कैसे समाविष्ट हुआ ?—इन तथ्यों की जानकारी प्रदान करने के लिए हम अधोलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत माध्यमिक शिक्षा के इतिहास पर विहंगम दृष्टिपात कर रहे हैं; यथा :—

---

1. के० जी० सैयदैन : शिक्षा की पुनर्रचना, पृ० 165-166.

माध्यमिक शिक्षा—स्वतन्त्रता से पूर्व
Secondary Education Before Independence

हम स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीय शिक्षा के इतिहास में उन सीमा-चिह्नों का क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं, जिन्होंने हमारे देश में माध्यमिक शिक्षा का सूत्रपात करके, उसके प्रसार में योग दिया एवं समय-समय पर उसके स्वरूप, संगठन आदि में परिवर्तन करने का प्रयास किया।

1. माध्यमिक शिक्षा का सूत्रपात—माध्यमिक शिक्षा को आधुनिक युग की देन स्वीकार किया जाता है। वैदिक-युगीन एवं मध्ययुगीन शिक्षा-व्यवस्था में शिक्षा के केवल दो ही स्तर थे—प्राथमिक एवं उच्च। भारत में माध्यमिक शिक्षा का सूत्रपात करने का श्रेय—यूरोपीय मिशनरियों को प्राप्त है। उन्होंने 18वीं शताब्दी के अन्त में इस देश के कुछ भागों में माध्यमिक स्कूलों की स्थापना की। उनके उदात्त उदाहरण से प्रेरणा प्राप्त करके, 19वीं शताब्दी के आरम्भ में कतिपय राष्ट्र-प्रेमी भारतीयों ने उनके चरण-चिह्नों का अनुगमन करके, माध्यमिक विद्यालयों की स्थापना का कार्य आरम्भ किया। डा० एस० एन० मुकर्जी के अनुसार[1] :—"माध्यमिक स्कूलों की स्थापना का एक मुख्य उद्देश्य—धनी भारतीयों की अपने अंग्रेज शासकों की भाषा को सीखने की माँग की पूर्ति करना था।"

2. माध्यमिक शिक्षा की प्रारम्भिक अवस्था—माध्यमिक शिक्षा को अपनी प्रारम्भिक अवस्था में भारत के अंग्रेज शासकों से समय-समय पर प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, जिसके फलस्वरूप उसने प्रगति के पथ पर अपनी यात्रा आरम्भ की। उसे यह प्रोत्साहन निम्नांकित 4 रूपों में प्राप्त हुआ —

(i) 1830 में कम्पनी के संचालकों ने अपने एक पत्र द्वारा फोर्ट सेन्ट जार्ज (मद्रास) के गवर्नर को यह आदेश दिया कि प्रशासन-कार्य में भारतीयों की सहायता प्राप्त करने के लिए उनको अंग्रेजी की शिक्षा प्रदान की जाय।[2]

(ii) 1835 में लार्ड विलियम बैंटिक ने मैकॉले के "विवरण-पत्र" को स्वीकार करके, यह निश्चय किया कि शिक्षा पर व्यय किया जाने वाला सम्पूर्ण धन, अंग्रेजी भाषा के माध्यम से चलाई जाने वाली कक्षाओं में अंग्रेजी की शिक्षा प्रदान करने के लिए व्यय किया जायगा।[3]

---

1. S. N. Mukerji : *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 111.
2. Letter from the Court of Directors to the Governor in Council of Fort St. George, September 29, 1830.
3. Gunnar Myrdal : *Asian Drama*, Vol. III, pp. 1938-39.

(iii) 1837 में अंग्रेजी को न्यायालय की भाषा बना दिया गया।

(iv) 1844 में लार्ड हार्डिंज ने अंग्रेजी शिक्षा-प्राप्त भारतीयों के लिए कम्पनी की नौकरियों के द्वार खोल दिए।

कम्पनी की इन नीतियों एवं निश्चयों के फलस्वरूप भारतीयों को अंग्रेजी की शिक्षा देने के लिए सन् 1852 तक सम्पूर्ण भारत में 32 मान्यता-प्राप्त स्कूलों का निर्माण हो गया।

3. 1854 का वुड का आदेश-पत्र—इस "आदेश-पत्र" में माध्यमिक शिक्षा से सम्बन्धित निम्नांकित 3 मुख्य बातें थीं :—

(i) "आदेश-पत्र" में यह घोषणा की गई कि भारत के निवासियों को यूरोप के लेखकों की पुस्तकों और वहाँ के निवासियों द्वारा अर्जित किए जाने वाले ज्ञान से परिचित कराया जाय। इस घोषणा ने माध्यमिक शिक्षा के प्रसार में प्रशंसनीय योग दिया।

(ii) "आदेश-पत्र" ने विद्यालयों को आर्थिक सहायता देने के लिए "सहायता-अनुदान-प्रणाली" को प्रचलित करने का सुझाव दिया। इस सुझाव ने नवीन माध्यमिक स्कूलों की स्थापना को प्रोत्साहन दिया।

(iii) "आदेश-पत्र" ने मद्रास, बम्बई और कलकत्ता में विश्वविद्यालय स्थापित किए जाने की आज्ञा दी। ये विश्वविद्यालय 1857 में स्थापित कर दिए गए और इनको मेट्रीकुलेशन की परीक्षा लेने का अधिकार दे दिया गया। इस अधिकार ने माध्यमिक शिक्षा पर विश्वविद्यालयों का पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर दिया। वे अपने हित को ध्यान में रखकर माध्यमिक स्कूलों के पाठ्यक्रम, शिक्षा के माध्यम आदि के सम्बन्ध में नीति का निर्धारण करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि माध्यमिक शिक्षा में दो दोष प्रकट हो गए। वह स्वतः पूर्ण इकाई नहीं रह गई और उसका एकमात्र उद्देश्य—छात्रों को विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने के लिए तैयार करना हो गया।

4. 1882 का हंटर कमीशन—इस कमीशन ने माध्यमिक शिक्षा को अत्यधिक साहित्यिक होने के दोष से मुक्त करने के लिए विभिन्न पाठ्यक्रमों (Diversified Courses) का सुझाव दिया। इसने यह विचार व्यक्त किया कि हाई स्कूल की शिक्षा को दो भागों में विभक्त कर दिया जाय :—'अ' कोर्स एवं 'ब' कोर्स ('A' Course & 'B' Course)। 'अ' कोर्स का उद्देश्य—छात्रों को विश्वविद्यालयों में प्रवेश पाने के लिए तैयार करना हो। 'ब' कोर्स का उद्देश्य—छात्रों को व्यावसायिक एवं असाहित्यिक कार्यों के लिए तैयार करना हो। कमीशन के सुझाव एवं विचार के प्रति न तो सरकार ने ध्यान दिया और न जनता ने। फलतः माध्यमिक शिक्षा का अपने पूर्व रूप में प्रसार होता रहा और उस पर विश्वविद्यालयों का प्रभुत्व यथावत् बना रहा।

कि निम्न माध्यमिक कक्षाओं में अंग्रेजी के अध्ययन पर बल न दिया जाय और हाई स्कूल तक की सब कक्षाओं में भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय।

9. 1944 की सार्जेन्ट रिपोर्ट—इस रिपोर्ट में माध्यमिक शिक्षा का पुनर्गठन करने के लिए 3 अत्यन्त उपयोगी सुझाव दिए गए :—(i) हाई स्कूलों में केवल असाधारण योग्यता के विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाय; (ii) प्रवेश प्राप्त करने वाले विद्यार्थी के लिए 14 वर्ष की आयु तक शिक्षा ग्रहण करना अनिवार्य कर दिया जाय; और (iii) साहित्यिक एवं प्राविधिक (Academic & Technical)—दोनों प्रकार के हाई स्कूलों की स्थापना की जाय। यदि इन सुझावों को क्रियान्वित कर दिया गया होता, तो आज माध्यमिक शिक्षा का स्वरूप ही भिन्न होता।

उपर्युक्त विवरण इस बात का साक्षी है कि स्वतन्त्रता से पूर्व माध्यमिक शिक्षा को रूपान्तरित करने और उसे वास्तविक जीवन के लिए उपयोगी बनाने के विचार से समय-समय पर आयोगों, समितियों आदि के द्वारा बहुमूल्य सुझाव दिए गए। किन्तु, विदेशी सरकार की उदासीनता के कारण न तो वह समय एवं परिस्थितियों के अनुकूल बनी और न उसके स्वरूप में ही कोई विशेष परिवर्तन हुआ। सन् 1943 में इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए, हैम्पटन ने लिखा :—"थोड़े-से महत्त्वपूर्ण अपवादों के अलावा आज का भारतीय हाई-स्कूल वैसा ही है, जैसा कि वह 1904 में था, पर उससे थोड़ा-सा अवश्य भिन्न है, जैसा कि वह बहुत समय पहले 1884 में था।"

"The Indian high school with a few notable exceptions is much the same today as it was in 1904, but little changed from what it was as far back as 1884."—H. V. Hampton : *The Education System*, "Secondary Education", 1943, p. 31.

माध्यमिक शिक्षा—स्वतंत्रता के पश्चात्
Secondary Education After Independence

स्वतंत्र भारत में नियुक्त की जाने वाली निम्नांकित समिति एवं आयोगों ने माध्यमिक शिक्षा को गतिशील बनाने और उसको देश की परिस्थितियों के अनुकूल बनाने की चेष्टा की है :—

(1) 1948 की ताराचन्द समिति (Tarachand Committee)—इस समिति ने माध्यमिक शिक्षा को जीवनोपयोगी बनाने के लिए यह सुझाव दिया कि बहु-उद्देशीय माध्यमिक स्कूलों की स्थापना की जाय।

(2) 1948-49 का राधाकृष्णन् कमीशन—इस कमीशन ने भारतीय शिक्षा-प्रणाली में माध्यमिक शिक्षा को सबसे निर्बल कड़ी बताया और उसमें सुधार किए जाने पर बल दिया। स्वयं "कमीशन" के शब्दों में :—"हमारी शिक्षा-व्यवस्था में

माध्यमिक और उच्च । जब तक शिक्षा का विभाजन इन तीन स्तरों में नहीं किया जायगा, तब तक माध्यमिक शिक्षा की सीमाएँ अनिश्चित रहेंगी और उसमें किसी भी प्रकार का सुधार किया जाना असम्भव होगा ।

4. समस्या—धन का अभाव : Dearth of Money—माध्यमिक शिक्षा की गुणात्मक उन्नति के मार्ग में धनाभाव ने प्रायः एक अजेय अवरोध उपस्थित कर दिया है । भारत के अधिकांश माध्यमिक स्कूल धनाभाव के कारण अपने छात्रों का शारीरिक, मानसिक एवं चारित्रिक विकास करने में पूर्णतया असफल होते हैं । धनाभाव का मुख्य कारण यह है कि ये स्कूल बहुत-कुछ छात्रों से प्राप्त होने वाले शुल्क से चलते हैं । 25 प्रतिशत से अधिक व्यक्तिगत माध्यमिक स्कूलों को सरकार से किसी प्रकार की आर्थिक सहायता प्राप्त नहीं होती है ।[1] सरकार की आर्थिक सहायता के अभाव में किसी भी स्कूल का कुशलतापूर्वक कार्य करना असम्भव है । यह सहायता इसलिए और अधिक आवश्यक है, क्योंकि स्कूलों को राज्य द्वारा छात्रों के लिए अधिक-से-अधिक पाठ्य-विषयों की शिक्षा और सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यों की व्यवस्था करने के लिए बाध्य किया जाता है । जब तक इन कार्यों के लिए स्कूलों को सहायता-अनुदान के रूप में सरकार से पर्याप्त धन नहीं मिलेगा, तब तक उनमें कार्य-क्षमता का अभाव अनिवार्य रूप से बना रहेगा ।

समाधान—निश्चित आर्थिक नीति Definite Financial Policy—माध्यमिक स्कूलों की धनाभाव की समस्या का समाधान करने के लिए केन्द्रीय एवं राज्य-सरकारों द्वारा निश्चित आर्थिक नीति का अनुसरण किया जाना आवश्यक है । इस सम्बन्ध में "अन्तर्राष्ट्रीय टीम"[2] और 'माध्यमिक शिक्षा-आयोग'[3] के निम्नलिखित सुझाव लाभप्रद सिद्ध हो सकते हैं —

1. केन्द्रीय सरकार को कुछ सीमा तक माध्यमिक शिक्षा का उत्तरदायित्व ग्रहण करना चाहिए और इस शिक्षा के पुनर्गठन के लिए आर्थिक सहायता देनी चाहिए ।
2. केन्द्रीय सरकार एवं राज्य-सरकारों को पारस्परिक सहयोग से अपनी आर्थिक नीतियों का निर्माण करना चाहिए ।
3. विद्यालयों को अपनी गुणात्मक उन्नति करने के लिए सरकार से समय-समय पर अतिरिक्त सहायता-अनुदान मिलना चाहिए ।

5. समस्या—निर्देशन का अभाव : Absence of Guidance—भारत के अनेक माध्यमिक स्कूलों में निर्देशन का अभाव है । इन स्कूलों में निर्देशन न केवल

1. S. N. Mukerji, *op. cit.*, p. 159.
2. *Report of the International Team*, pp 105-121.
3. *Secondary Education Commission Report*, p. 227.

छात्रों की दृष्टि से, वरन् शिक्षकों एवं प्रधानाचार्यों की दृष्टि से भी आवश्यक है। छात्रों की दृष्टि से इसलिए आवश्यक है, क्योंकि अपरिपक्व मस्तिष्क वाले होने के कारण वे अपनी क्षमताओं के अनुकूल पाठ्यविषयों का चयन करने में असमर्थ होते हैं। त्रुटिपूर्ण चयन का परिणाम होता है—परीक्षा में उनकी असफलता और असफलता—अपव्यय का कारण बनती है। जहां तक शिक्षकों एवं प्रधानाचार्यों का प्रश्न है, निर्देशन उनको अपने छात्रों की अभिरुचियों एवं योग्यताओं का ज्ञान प्रदान करता है, जिससे सम्पन्न होकर वे उनकी शैक्षिक प्रगति में अधिक योग दे सकते हैं।

समाधान—निर्देशन की व्यवस्था : **Provision for Guidance**—"माध्यमिक शिक्षा-आयोग" की सिफ़ारिश के अनुसार, भारत के 13 राज्यों में निर्देशन-सेवाओं (Guidance Services) की व्यवस्था कर दी गई है, जिनसे लगभग 3,000 माध्यमिक स्कूलों के छात्र, शिक्षक एवं प्रधानाचार्य लाभान्वित हो रहे हैं।[1] "*India*", 1974 (p. 50) के अनुसार, इस समय भारत में हाई और हायर सेकण्डरी स्कूलों की संख्या 35,773 से अधिक है। अतः हम कह सकते हैं कि अब तक छात्रों को निर्देशन प्रदान करने की दिशा में जो कार्य किया गया है, वह केवल नाममात्र के लिए है। आवश्यकता इस बात की है कि भारत के प्रत्येक हाई और हायर सेकण्डरी स्कूल के छात्रों के लिए निर्देशन-सेवाओं को सुलभ बनाया जाय। "कोठारी-कमीशन" ने इस बात पर बल देते हुए लिखा है :—"अन्तिम लक्ष्य—सब माध्यमिक स्कूलों में पर्याप्त निर्देशन-सेवाओं को आरम्भ करना होना चाहिए।"

"The ultimate objective should be to introduce adequate guidance services in all secondary schools."—*Kothari Commission Report*, p. 239.

6. समस्या—व्यावसायीकरण का अभाव : **Absence of Vocationalization**—"कोठारी-कमीशन" ने अपना प्रतिवेदन अग्रांकित वाक्यों से आरम्भ किया है :—'इस समय भारत के भाग्य का निर्माण उसके अध्ययन-कक्षों में हो रहा है। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी पर आधारित आज के विश्व में शिक्षा ही व्यक्तियों की सम्पन्नता, समृद्धि एवं सुरक्षा के स्तर को निश्चित करती है।"

"The destiny of India is now being shaped in her classrooms. In a world based on scienc and technology, it is education that determines the level of prosperity, welfare, and security of the people."—*Kothari Commission Report*, p. 1.

हमारे देश की सम्पन्नता, समृद्धि एवं सुरक्षा का दायित्व निस्सन्देह रूप से आज की पीढ़ी पर है और वह इस दायित्व को तभी पूर्ण कर सकती है, जब शिक्षा-

1. S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 153.

नष्ट नहीं किया जायगा, तो युग की बदलती हुई मान्यताओं के बीच हमारा देश, जो विश्व के प्रगतिशील देशों की तुलना में अब भी सैकड़ों वर्ष पीछे है, और पीछे रह जायगा। भारत को इस दयनीय दशा से उद्धार करने और उसे प्रगति की दौड़ में पीछे न रहने देने के लिए, "कोठारी-कमीशन" का परामर्श है :—"हम उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण की आवश्यकता पर विशेष रूप से बल देते हैं।"

"We must emphatize particularly the need to vocationalize higher secondary education."—*Kothari Commission Report*, p. 34.

"कोठारी-कमीशन" ने माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण पर बल क्यों दिया है? इसका मुख्य कारण यह है कि माध्यमिक स्कूलों में विभिन्न व्यवसायों की शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त, छात्र या तो स्वयं किसी व्यवसाय को स्वतन्त्र रूप में कर सकते हैं, या किसी व्यावसायिक फर्म में प्रवेश करके अपनी जीविका का सरलता से अर्जन कर सकते हैं। इससे न केवल उनका, वरन् भारत की औद्योगिक एवं व्यावसायिक फर्मों का और अन्ततोगत्वा देश का भी हित होगा। स्वतन्त्र भारत औद्योगीकरण की दिशा में अग्रसर होने के लिए कटिबद्ध है। देश में कितने ही उद्योगों एवं फैक्ट्रियों की स्थापना हो चुकी है और निरन्तर होती जा रही है। इन सबका उद्देश्य—भारत के उत्पादन में वृद्धि करना है, ताकि उसे अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए विदेशियों के सामने हाथ न फैलाना पड़े। किन्तु, उत्पादन में वृद्धि करने की एक आवश्यक शर्त है—कुशल कार्यकर्ताओं की प्राप्ति, जिनको शिक्षा का व्यावसायीकरण करके तैयार किया जाता है। इसी बात को ध्यान में रख कर, "कोठारी कमीशन" ने व्यावसायीकरण द्वारा शिक्षा एवं उत्पादन में सम्बन्ध स्थापित करने का सुझाव दिया है। "कमीशन" के शब्दों में :—"माध्यमिक विद्यालय-स्तर पर विशेष रूप से शिक्षा का व्यावसायीकरण करके, शिक्षा एवं उत्पादन में सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है।"

"The link between education and productivity can be forged through vocationalization of education, especially at the secondary school level."—*Kothari Commission Report*, p. 6.

समाधान—व्यावसायीकरण की व्यवस्था : **Provision for Vocationalization**—उपर्युक्त पंक्तियों में माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण के विषय में जो विचार व्यक्त किए गए हैं, उनसे स्पष्ट हो जाता है कि छात्रों की जीवन-सम्बन्धी और देश की उद्योग-सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण किया जाना परम आवश्यक है। इस तथ्य की ओर जनता एवं सरकार का ध्यान आकृष्ट करते हुए, "कोठारी कमीशन" ने लिखा है :—"माध्यमिक शिक्षा को बड़े पैमाने पर व्यावसायिक बनाया जाय और 1986 तक व्यावसायिक

पाठ्यक्रमों को अध्ययन करने वाली छात्र-संख्या को निम्न माध्यमिक स्तर पर सम्पूर्ण छात्र-संख्या का 20 प्रतिशत और उच्चतर माध्यमिक स्तर पर सम्पूर्ण छात्र-संख्या का 50 प्रतिशत कर दिया जाय।"

"Secondary education should be vocationalized in a large measure and enrolments in vocational courses raised to 20 per cent of total enrolment at the lower secondary stage and 50 per cent of total enrolment at the higher secondary stage by 1968."—*Kothari Commission Report*, p. 634.

उक्त लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए, "कमीशन" ने अनेक सुझाव दिए हैं; यथा :—

1. निम्न माध्यमिक स्तर · Lower Secondary Stage—जो छात्र, कक्षा 7 या 8 के पश्चात् अपना अध्ययन समाप्त कर देते हैं, उनको व्यावसायिक शिक्षा की निम्नलिखित सुविधाएँ प्रदान की जायँ :—

1. औद्योगिक प्रशिक्षण-संस्थाओ (Industrial Training Institutes) मे प्रवेश करने की आयु को कम करके 14 वर्ष कर दिया जाय।
2. टेकनिकल स्कूलो मे चलाए जाने "अन्तिम पाठ्यक्रमों" (Terminal Courses) मे अधिक-से-अधिक विस्तार किया जाय।
3. छात्रों के लिए कृषि-शिक्षा एवं अल्पकालीन शिक्षा की व्यवस्था की जाय।

2. उच्चतर माध्यमिक स्तर · Higher Secondary Stage—इस स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा की निम्नलिखित सुविधाएँ प्रदान की जायँ :—

1. पॉलीटेकनीको मे पूर्णकालीन पाठ्यक्रमों का सचालन किया जाय।
2. उद्योगो मे अल्पकालीन, पूर्णकालीन एव व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय।
3. औद्योगिक प्रशिक्षण-सस्थाओ के पाठ्यक्रमो मे विस्तार किया जाय।
4. पत्राचार-पाठ्यक्रमो (Correspondence Courses) द्वारा विभिन्न व्यवसायो की शिक्षा देने का कार्य शीघ्रातिशीघ्र आरम्भ किया जाय।

हमे इस बात की आशा है कि "कोठारी कमीशन" के सुझावों को क्रियात्मक रूप प्रदान करके, माध्यमिक शिक्षा का व्यावसायीकरण किया जा सकता है, जिससे उन अनेक समस्याओ का शमन हो सकता है, जो इस समय विकराल रूप धारण किए हुए हैं। किन्तु, माध्यमिक शिक्षा को व्यावसायिक रूप प्रदान करने के लिए धन की आवश्यकता है, जिसकी पूर्ति केवल सरकार द्वारा ही की जा सकती है। अतः यह आवश्यक है कि व्यावसायिक विषयों की शिक्षा का आयोजन करने के लिए, केन्द्रीय

1. *Kothari Commission Report*, pp. 173-174.

सरकार द्वारा राज्य-सरकारों को आर्थिक सहायता दी जाय। इस सम्बन्ध में "कोठारी कमीशन" ने संयुक्त राज्य अमरीका में व्यावसायीकरण के लिए संघीय अनुदानों की चर्चा की है। इन अनुदानों ने ही उस देश में माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण को सम्भव बनाया। अतः भारत-सरकार को संयुक्त-राज्य-अमरीका" के उदाहरण से शिक्षा ग्रहण करने का परामर्श देते हुए, "कोठारी कमीशन" ने लिखा है :—"संयुक्त राज्य अमरीका में माध्यमिक विद्यालयों के व्यावसायीकरण के लिए संघीय अनुदानों ने ही माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण को प्रोत्साहित किया। यह अनुभव भारत के लिए महत्त्वपूर्ण पाठ है।"

"It was the federal grants for vocationalization in secondary schools that stimulated the vocationalization of secondary education in the U. S. A. and this experience has a valuable lesson for India."—*Kothari Commission Report*, p. 174.

7. समस्या—सामुदायिक जीवन का अभाव : Absence of Community Life—कुछ थोड़े-से माध्यमिक स्कूलों के अतिरिक्त शेष सभी में सामुदायिक जीवन का पूर्ण अभाव है। उनमें पर्यटन, खेल-कूद, शारीरिक व्यायाम और सामाजिक, सांस्कृतिक एवं विनोदात्मक कार्यों का कभी भूल कर भी आयोजन नहीं किया जाता है। परिणामतः न तो छात्रों में पारस्परिक सम्पर्क स्थापित हो पाता है और न उनमें आत्मीयता एवं घनिष्ठता की ही अभिवृद्धि होती है। इस प्रकार, हाई स्कूल—औद्योगिक उत्पादन-केन्द्रों के समान हैं, जिनका एकमात्र उद्देश्य—विशाल पैमाने पर मैट्रीकुलेशन-परीक्षा-पास छात्रों का उत्पादन करना है। वे छात्रों की जन्मजात क्षमताओं एवं व्यक्तित्व के विकास में लेशमात्र योग नहीं देते हैं। इससे क्षुब्ध होकर, सर पी० सी० रे ने लिखा है :—"क्या हम अपने बालकों को मनुष्यों का रूप प्रदान कर रहे हैं? क्या हम उनको परीक्षा के लिए थोड़े-से सम्भव प्रश्नों के उत्तरों को बताने के अलावा और कुछ बता रहे हैं? क्या हम वास्तव में उनमें चिन्तन-शक्ति का और आत्म-सहायता एवं आत्म-निर्भरता के गुणों का विकास करने का प्रयत्न कर रहे हैं?"

"Are we making men of our youths? Are we after all giving them any more than the answers to a few hundred probable questions? Are we really striving to develop in then the power of thinking, self-help and self-reliance?—Sir P. C. Ray. Quoted by S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 161.

सर पी० सी० रे की आलोचना कटु अवश्य है, पर उसमें सत्य कूट-कूट कर भरा हुआ है। माध्यमिक स्कूलों का कार्य केवल छात्रों को सम्भव प्रश्नों के उत्तर बताना ही नहीं है। उनका कार्य यह भी है कि वे छात्रों को सुसंगठित जीवन व्यतीत

भारत-सरकार के शिक्षा-सचिव, के० जी० सैयदैन के उपरिअंकित विचारों में पूर्ण सत्य का आभास पाकर, भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति, डा० ज़ाकिर हुसेन ने माध्यमिक स्कूलों के विषय में सरकार की यह नीति घोषित की :—"हमारी समस्त शिक्षा-संस्थाएँ—क्रियाशील सामुदायिक केन्द्र होंगी।"

"All over institutions will be communities at work."—Dr. Zakir Husain's Radio Broadcast, published in *The Future of Education : A Symposium.*

8. समस्या—दोषपूर्ण पाठ्यक्रम : **Defective Curriculum**—लगभग एक शताब्दी पूर्व निर्मित किया जाने वाला पाठ्यक्रम अब भी सम्पूर्ण देश के लगभग सभी माध्यमिक स्कूलों में प्रचलित है। समयानुकूल न होने के कारण उसकी उपयोगिता नष्ट हो गई है और उसमें अनेक गम्भीर दोष प्रकट हो गए हैं। "माध्यमिक शिक्षा-आयोग" के अनुसार, उनका उल्लेख अग्रांकित क्रम में किया जा सकता है[1] :—

1. पाठ्यक्रम—पुस्तकीय एवं सैद्धान्तिक है।
2. पाठ्यक्रम—नीरस, बोझिल एवं परम्परागत है।
3. पाठ्यक्रम—संकुचित एवं एकमार्गीय (Unilateral) है।
4. पाठ्यक्रम—किशोरों की विभिन्न रुचियों एवं आवश्यकताओं को पूर्ण नहीं करता है।
5. पाठ्यक्रम पर परीक्षा का पूर्ण प्रभुत्व है।
6. पाठ्यक्रम में प्राविधिक एवं व्यावसायिक विषयों का अभाव है।
7. पाठ्यक्रम का छात्रों के वातावरण और वास्तविक एवं सामाजिक जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है।

पाठ्यक्रम के उपर्युक्त दोषों के कारण छात्रों का जो अहित होता है, उस पर प्रकाश डालते हुए, "माध्यमिक शिक्षा-आयोग" ने लिखा है :—"जब छात्र, स्कूल छोड़ते हैं, तब वे समाज से असामंजस्यता का अनुभव करते हैं और वे उसमें अपने स्थान को विश्वास एवं कुशलता से ग्रहण नहीं कर पाते हैं।"

"When students pass out of school, they feel ill adjusted and cannot take their place confidently and competently in the community."—*Secondary Education Commission Report*, p. 18.

समाधान—विविध व व्यावसायिक पाठ्यक्रम : **Diversified & Vocational Courses**—पाठ्यक्रम के दोषों का निवारण इस बात को ध्यान में रखकर किया जा सकता है कि सब बालकों के लिए समान पाठ्यक्रम नहीं हो सकता है। उसमें विभिन्न वर्गों के छात्रों की अभिवृत्तियों, अभिरुचियों एवं भावी आवश्यकताओं के अनुसार पाठ्य-विषयों का समावेश किया जाना आवश्यक है। साथ ही, यह भी आवश्यक है

1. *Secondary Education Commission Report*, p. 61.

"For nearly half a century, the examination has been recognized as one of the worst features of Indian Education."
—*Radhakrishnan Commission Report*, p. 328.

परीक्षा को एक निकृष्टतम तत्त्व समझे जाने का कारण है, उसमें दोषों की प्रचुरता। इन दोषों में सर्वप्रमुख दोष यह है कि सम्पूर्ण माध्यमिक शिक्षा पर मेट्रीकुलेशन परीक्षा का अखंड आधिपत्य है। प्रत्येक हाई और हायर सेकण्डरी स्कूल की कार्य-क्षमता, प्रत्येक अध्यापक की शिक्षण-दक्षता और प्रत्येक छात्र की बौद्धिक योग्यता की केवल एक ही कसौटी है—परीक्षा। जहाँ तक छात्रों का सम्बन्ध है, यह कसौटी उनके लिए अभिशाप बन गई है, क्योंकि इसने उनमें अपराध की प्रवृत्ति को इतना सबल बना दिया है कि वे परीक्षा में उत्तीर्ण होने के लिए किसी भी प्रकार का अनुचित कार्य करने में रंचमात्र भी संकोच नहीं करते हैं।

"माध्यमिक शिक्षा-आयोग" ने परीक्षा के उपर्युक्त दोष की ओर शिक्षाविदों का ध्यान आकृष्ट किया है। उसका मत है कि बाह्य एवं आन्तरिक, दोनों परीक्षाओं का एकमात्र उद्देश्य—छात्रों की मानसिक एवं साहित्यिक उपलब्धियों की जाँच करना है। वे छात्रों के विकास के अन्य पक्षों की जाँच नहीं करती हैं, और यदि करती हैं, तो अप्रत्यक्ष एवं अविश्वसनीय रूप में। "आयोग" ने इसे परीक्षा का अत्यन्त प्राचीन एवं संकुचित कार्य बताया है। उसका कहना है कि 20वीं शताब्दी में परीक्षा के अर्थ और विस्तार में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया है। उसका कार्य केवल छात्रों के मानसिक एवं साहित्यिक विकास की ही जाँच करना नहीं है, वरन् उनके चतुर्मुखी विकास की भी जाँच करना है।

"माध्यमिक शिक्षा-आयोग" ने बलपूर्वक घोषित किया है कि वर्तमान परीक्षा-प्रणाली द्वारा छात्रों के मानसिक एवं साहित्यिक उपलब्धियों की माप में विश्वसनीयता का अभाव है। इसका कारण यह है कि प्रचलित निबन्धात्मक प्रकार के प्रश्नों के मूल्यांकन में परीक्षक के मनोभाव का मूर्धन्य स्थान है। अतः उसके द्वारा प्रदान किए जाने वाले अंकों को विश्वसनीय नहीं माना जा सकता है। इन तर्कों के आधार पर, "माध्यमिक शिक्षा-आयोग" ने अपने निष्कर्ष को अग्रांकित वाक्य में लेखबद्ध किया है :—"उचित रूप से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस समय ली जाने वाली परीक्षाओं की विधि हमको विद्यार्थियों की मानसिक उपलब्धियों का भी ठीक-ठीक मूल्यांकन करने में सहायता नहीं देती है।"

"It may be fairly inferred that as at present conducted, examinations do not help us to evaluate correctly even the intellectual attainments of the pupils."—*Secondary Education Commission Report*, p. 118.

समाधान—परीक्षा-प्रणाली में परिवर्तन : Change in Examination System—"माध्यमिक शिक्षा-आयोग" द्वारा इंगित किए जाने वाले परीक्षा-प्रणाली

के दोषों से चिन्तित होकर, भारत-सरकार ने उनका निवारण करने का निर्णय किया। इस उद्देश्य से, उसने 1958 में "केन्द्रीय परीक्षा-यूनिट" (Central Examination Unit) की नियुक्ति की। इस "यूनिट" के प्रशिक्षित मूल्यांकन अधिकारियों ने मूल्यांकन की नवीन धारणा के अनुसार परीक्षा-प्रणाली में परिवर्तन किए जाने का प्रस्ताव प्रस्तुत किया।

मूल्यांकन की नवीन धारणा के अनुसार, मूल्यांकन की विधियाँ ऐसी होनी चाहिए, जिनसे छात्रों के बहुमुखी विकास के सम्बन्ध में पूर्णतया सत्य प्रमाण उपलब्ध हों। यह तभी सम्भव है, जब ये विधियाँ—विश्वसनीय वस्तुपरक एवं व्यावहारिक (Reliable, Objective & Practicable) हों। मूल्यांकन की इस नवीन धारणा की व्याख्या करते हुए, "कोठारी कमीशन" ने लिखा है :—"मूल्यांकन निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। यह शिक्षा की सम्पूर्ण प्रणाली का अभिन्न अंग है एवं शिक्षा के उद्देश्यों से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। यह छात्र की अध्ययन की आदतों एवं अध्यापक की शिक्षण-विधियों पर अत्यधिक प्रभाव डालता है। इस प्रकार, मूल्यांकन न केवल शैक्षिक उपलब्धि के मापन में, अपितु उसमें सुधार करने में भी सहायता देता है।"

"Evaluation is a continuous process, forms an integral part of the total system of education, and is intimately related to educational objectives It exercises a great influence on the pupil's study habits and the teacher's methods of instruction, and thus helps not only to measure educational achievement, but also to improve it."
—*Kothari Commission Report*, p 243

"मुदालियर कमीशन" ने अपने परिपक्व अनुभव एवं "कोठारी कमीशन" ने मूल्यांकन की नवीन धारणा के आधार पर समकालीन माध्यमिक परीक्षा-प्रणाली में परिवर्तन करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए हैं —

1. माध्यमिक शिक्षा के सम्पूर्ण पाठ्यक्रम की समाप्ति के पश्चात् केवल एक सार्वजनिक परीक्षा ली जाय।
2. परीक्षा में वस्तुनिष्ठ प्रकार के प्रश्न पूछे जायें और वे पाठ्यक्रम के अधिक-से-अधिक क्षेत्र पर आधारित किए जायें।
3. आन्तरिक जाँचों (Internal Assessments) को व्यापक बना कर, उनके द्वारा छात्रों के सभी पक्षों का मूल्यांकन किया जाय।
4. बाह्य एवं आन्तरिक परीक्षाओं में छात्रों की उपलब्धियों का मूल्यांकन—अंकों में न किया जाकर, प्रतीकों (Symbols) में किया जाय।
5. बाह्य परीक्षाओं द्वारा छात्रों की उपलब्धियों का अन्तिम मूल्यांकन करते समय, आन्तरिक जाँचों और नियतकालिक जाँचों (Periodical Tests) को उचित महत्त्व दिया जाय।

10. समस्या—शिक्षण का निम्न स्तर : Low Standrda of Teaching—वर्तमान माध्यमिक शिक्षा की एक विकट समस्या—शिक्षण का निम्न स्तर है। पिछले कुछ वर्षों से माध्यमिक शिक्षा की संरचना (Pattern) को नवीन स्वरूप प्रदान करने के लिए, उसका पुनर्गठन किया जा रहा है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसके उद्देश्यों, पाठ्यविषयों एवं कार्यक्रमों में अनेक परिवर्तन किए गए हैं। परिणामतः आज के माध्यमिक स्कूल 10 या 15 वर्ष पहले के माध्यमिक स्कूल नहीं हैं। उनको अनेक नवीन कार्य एवं उत्तरदायित्व सौंपे गए हैं। उनकी सफलता मुख्यतः दो बातों पर निर्भर है—उपयुक्त शिक्षण-विधियां एवं उत्साही शिक्षक।

जहां तक शिक्षण-विधियों का प्रश्न है, वे सर्वथा अनुपयुक्त हैं। इसका कारण यह है कि प्रचलित शिक्षण-विधियां केवल कुछ सीमा तक छात्रों का मानसिक विकास करती हैं। वे निर्जीव, नीरस एवं अमनोवैज्ञानिक होने के कारण न तो छात्रों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व पर प्रतिक्रिया करती हैं और न उनके समस्त गुणों का विकास करने में सहायता देती हैं। जहां तक उत्साही शिक्षकों का प्रश्न है, उनकी उपलब्धि की सुदूर भविष्य में भी आशा नहीं है। इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए "माध्यमिक-शिक्षा-आयोग" ने लिखा है :—"हमें इस बात से अत्यधिक दुःख हुआ कि शिक्षकों की सामाजिक स्थिति, वेतन और कार्य की दशाएँ अत्यन्त असंतोषजनक हैं। वास्तव में, हमारा सामान्य विचार यह है कि समग्र रूप में उनकी स्थिति पहले से बहुत अधिक खराब है।"

We were painfully impressed by the fact that the social status, the salaries, and the general service conditions of teachers are far from satisfactory. In fact, our general impression is that on the whole their position today is even worse than it was in the past."
—*Secondary Education Commission Report*, p. 126.

समाधान—कुछ सुझाव : Some Suggestions—वर्तमान माध्यमिक स्कूलों में शिक्षण-स्तर को समुन्नत बनाने के लिए दो सुझाव दिए जा सकते हैं—शिक्षण की विधियों एवं शिक्षक की स्थिति में सुधार। शिक्षण-विधियों के सुधार के सम्बन्ध में "माध्यमिक शिक्षा-आयोग" ने जो सुझाव दिए हैं, वे प्रशंसनीय हैं और उनकी प्रमुख विशेषताएँ निम्नांकित हैं :—

1. शिक्षण-विधियों में "क्रिया-पद्धति" (Activity Method) एवं "योजना-पद्धति" (Project Method) का प्रमुख स्थान होना चाहिए।
2. शिक्षण-विधियों को छात्रों को व्यक्तिगत प्रयासों से ज्ञान का अर्जन करने और उसे प्रयोग करने का अवसर देना चाहिए।
3. शिक्षण-विधियों को छात्रों में कार्य को प्रेम, कुशलता, ईमानदारी और पूर्ण रूप से करने की शक्तिशाली इच्छा उत्पन्न करनी चाहिए।

Education Policy) में यह स्पष्ट कर दिया है कि माध्यमिक स्तर पर छात्रों के लिए 3 भाषाओं का अध्ययन अनिवार्य है। ये भाषाएँ इस प्रकार हैं[1] :—

1. हिन्दी-भाषी राज्यों में—हिन्दी, अंग्रेजी और एक आधुनिक भारतीय भाषा, जिसमें दक्षिण की कोई भाषा होनी चाहिए।

2. अहिन्दी-भाषी राज्यों में—हिन्दी, क्षेत्रीय भाषा और अंग्रेजी।

"मुदालियर" और "कोठारी" आयोगों के अनुसार, माध्यमिक स्तर पर छात्रों को भाषाओं के अतिरिक्त लगभग 7 और विषयों का अध्ययन करना अनिवार्य है। इस प्रकार, 3 भाषाओं सहित कुल विषयों की संख्या लगभग 10 हो जाती है। माध्यमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र साधारणतः 11-17 वय-वर्ग के होते हैं। इस वय-वर्ग के बच्चों के लिए 10 विषयों का पाठ्यक्रम निस्संदेह रूप से अत्यधिक बोझिल है। अतः उनमें अन्य विषयों के साथ-साथ भाषाओं की संख्या में भी कमी की जानी आवश्यक है।

समाधान—दो भाषाओं का अध्ययन : Study of Two Languages—माध्यमिक शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की आयु एवं आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए, उचित तो यही जान पड़ता है कि उनके लिए दो भाषाओं का अध्ययन बहुत काफी है। तीन भाषाओं के अध्ययन के दो दुष्परिणाम हो सकते हैं। या तो वे इनका अधूरा अध्ययन करें, या इनका पूर्ण अध्ययन करने के लिए अन्य विषयों का अधूरा अध्ययन करें। ये दोनों ही बातें स्पष्ट रूप से उनके हित के प्रतिकूल हैं। दो भाषाओं का अध्ययन निम्नलिखित प्रकार से निर्धारित किया जाना चाहिए :—

1. हिन्दी-भाषी राज्यों में—हिन्दी और एक आधुनिक भारतीय भाषा।

2. अहिन्दी-भाषी राज्यों में—मातृभाषा और हिन्दी।

हम सरकार के इस विचार से सहमत नहीं हैं कि 3 भाषाओं में से एक अंग्रेजी होनी चाहिए। हाँ, यदि छात्र चाहें, तो वैकल्पिक विषय के रूप में अंग्रेजी का अध्ययन कर सकते हैं। यह हम स्वीकार करते हैं कि अंग्रेजी—विश्व की महत्त्वपूर्ण भाषा है, पर हम यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं कि माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों के लिए अंग्रेजी का अध्ययन अनिवार्य होना चाहिए। सम्भवतः इसकी पृष्ठभूमि में यह धारणा है कि अंग्रेजी का अध्ययन न करने से भारत, औद्योगिक या अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में पीछे रह जायगा। पर यह धारणा निराधार है। रूस, जर्मनी [illegible]र जापान के उदाहरण [illegible] सामने हैं, जहाँ अंग्रेजी का गौण स्थान है। फिर भी, [illegible] किसी दृष्टि से [illegible] किसी भी देश से पीछे नहीं हैं।

[illegible] उपर्युक्त विवे[illegible] [illegible]र हम कह सकते [illegible] कि माध्यमिक विद्यालयों के [illegible] अंग्रेजी [illegible] [illegible] और [illegible] के लिए केवल दो भाषाओं

[illegible] Education, dated

[illegible]

India ? What changes will you like to introduce in this system, keeping in view our present demands ?
भारत की वर्तमान माध्यमिक शिक्षा-प्रणाली में तात्कालिक एवं उग्र परिवर्तनों की आवश्यकता क्यों है ? इस प्रणाली को हमारी वर्तमान आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने के लिए आप क्या परिवर्तन करना चाहेंगे ?

3. Secondary Education in India is said to be excessive in quantity and defective in quality. Discuss the reforms that you would like to introduce in Secondary Education.
भारत की माध्यमिक शिक्षा को संख्या में अत्यधिक, और गुण में दोषपूर्ण कहा जाता है। उन सुधारों को बताइए, जिनको आप माध्यमिक शिक्षा में करना चाहेंगे ?

4. Comment critically on the need of vocationalization of secondary education in India. What difficulties may arise in doing so and how can they be removed ?
भारत में माध्यमिक शिक्षा के व्यावसायीकरण की आवश्यकता पर समीक्षात्मक आलोचना लिखिए। ऐसा करने में क्या कठिनाइयाँ उठ सकती हैं और उनको कैसे दूर किया जा सकता है ?

25

उच्च (विश्वविद्यालय) शिक्षा
HIGHER (UNIVERSITY) EDUCATION

"There is a general feeling in India that the situation in higher education is unsatisfactory and even alarming."—*Kothari Commission Report*

विषय-प्रवेश

भारत मे उच्च शिक्षा की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। वैदिक काल मे "आश्रम" एव "गुरुकुल", उच्च शिक्षा के केन्द्र थे, जहाँ छात्रो को निश्चित समय तक अध्ययन करना पड़ता था। बौद्ध-काल मे अनेक "मठो" एव "विहारों" मे उच्च शिक्षा की अत्यन्त सुन्दर व्यवस्था थी। इस काल मे नालन्द, तक्षशिला और विक्रमशिला के समान अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के अनेक विश्वविद्यालय थे, जहाँ सुदूर देशों के छात्र—अध्ययन करने के लिए आते थे। मध्य-युग मे मुसलमानो ने दिल्ली, आगरा, अजमेर, लखनऊ आदि अनेक स्थानो पर उच्च अध्ययन के लिए "मदरसो" का निर्माण किया।

आधुनिक भारत मे दिखाई देने वाली उच्च शिक्षा की व्यवस्था—अंग्रेजो की देन है और उसका हमारे देश की प्राचीन परम्परा से कोई सम्बन्ध नहीं है। ब्रिटिश-काल मे उच्च शिक्षा की इस नवीन व्यवस्था का विकास किस प्रकार हुआ और हमारे देश मे उसकी वर्तमान स्थिति क्या है?—हम इसका वर्णन निम्नांकित पंक्तियों में प्रस्तुत कर रहे हैं।

उच्च शिक्षा का विकास

Development of Higher Education

आधुनिक भारत में उच्च शिक्षा के विकास का अध्ययन 4 स्पष्ट चरणों में किया जा सकता है; यथा[1] :—

1. कॉलेजों का युग : Era of Colleges.
2. प्रथम विश्वविद्यालयों का युग : Era of First Universities.
3. नवीन विश्वविद्यालयों का युग : Era of New Universities.
4. स्वतन्त्रता का युग : Era of Independence.

1. कॉलेजों का युग : Era of Colleges, 1757-1857—सन् 1751 में प्लासी के युद्ध के पश्चात् जब इस देश पर अंग्रेजों का राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित हुआ, तब यहाँ की उच्च शिक्षा अत्यन्त अस्त-व्यस्त दशा में थी। अंग्रेजों ने भारत के हिन्दू एवं मुसलमान शासकों के समान यहाँ के निवासियों के लिए उच्च शिक्षा की व्यवस्था करना अपना कर्त्तव्य समझा। इस दिशा में सबसे पहला क़दम वारेन हेस्टिंग्ज ने उठाया, जिसने उच्च शिक्षा के लिए "कलकत्ता मदरसा" का निर्माण किया।

"कलकत्ता मदरसा" के निर्माण के उपरान्त 1857 तक उच्च शिक्षा के अनेक कॉलेजों की सृष्टि की गई, जिनमें उल्लेखनीय हैं :—बनारस संस्कृत कॉलेज; हिन्दू कॉलेज, कलकत्ता; क्रिश्चियन कॉलेज, मद्रास; पचयप्पा कॉलेज, मद्रास, और आगरा कॉलेज। इस काल में व्यावसायिक कॉलेजों का भी शिलान्यास किया गया, जिनमें अधिक महत्त्वपूर्ण थे :—कलकत्ता मेडिकल कॉलेज; बम्बई मेडिकल कॉलेज; और रुड़की इंजीनियरिंग कॉलेज। सन् 1857 में सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत में 27 कॉलेज थे, जिनमें से 23 सामान्य शिक्षा के, 3 चिकित्सा-शास्त्र के और 1 इंजीनियरिंग का कॉलेज था।[2]

2. प्रथम विश्वविद्यालयों का युग : Era of First Universities, 1857-1916—सन् 1854 के "वुड के आदेश-पत्र" (Wood's Despatch) के सुझाव के अनुसार 1857 में लन्दन-विश्वविद्यालय के आदर्श पर मद्रास, बम्बई और कलकत्ता में विश्वविद्यालयों का शिलान्यास किया गया। उस समय लन्दन-विश्वविद्यालय केवल परीक्षा लेने का कार्य करता था। अतः इन तीनों विश्वविद्यालयों का कार्य भी इसी क्षेत्र तक सीमित रहा। इन्हीं विश्वविद्यालयों के ढंग पर 1882 में पंजाब विश्वविद्यालय की और 1887 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की स्थापना की गई।

ये दोनों विश्वविद्यालय शिक्षण के भवनों में स्थित थे और शिक्षण-कार्य से

1. S. N. Mukerji : *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 173.
2. Nurullah & Naik : *History of Education in India*, p. 278.

की गई :—मैसूर विश्वविद्यालय, 1916; बनारस हिन्दू-विश्वविद्यालय, 1916; और पटना विश्वविद्यालय, 1917।

विश्वविद्यालय-शिक्षा का अगला सीमा-चिह्न—1917 का "कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग" (Calcutta University Commission) है। इस "आयोग" ने उक्त "प्रस्ताव" की नीति का समर्थन करते हुए, नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना की सिफ़ारिश की। इस सिफ़ारिश के परिणामस्वरूप 1947 तक अग्रांकित विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई :—उस्मानिया विश्वविद्यालय, 1918; ढाका विश्वविद्यालय, 1920; अलीगढ़ विश्वविद्यालय, 1921, लखनऊ विश्वविद्यालय, 1921; दिल्ली विश्वविद्यालय, 1922; नागपुर विश्वविद्यालय, 1923; आंध्र विश्वविद्यालय, 1926; आगरा विश्वविद्यालय, 1927; अन्नामलई विश्वविद्यालय, 1929; ट्रावनकोर विश्वविद्यालय, 1937; उत्कल विश्वविद्यालय, 1943, सागर विश्वविद्यालय, 1946; और राजपूताना विश्वविद्यालय, 1947।

4. स्वतन्त्रता का युग : **Era of Independence, 1947-1974**—स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् विश्वविद्यालयों की संख्या में आश्चर्यजनक वृद्धि हुई है। इस समय भारत में 90 विश्वविद्यालय हैं; यथा[1] :—

(1) आगरा, (2) अलीगढ़, (3) इलाहाबाद, (4) आंध्र प्रदेश, कृषि, हैदराबाद, (5) आंध्र, वाल्टेयर, (6) अन्नामलई, तमिलनाडु, (7) आसाम, कृषि, जोरहाट, (8) अवधेश प्रतापसिंह, रीवा, (9) बनारस, (10) बंगलौर, (11) बरहामपुर, गंजम, (12) भागलपुर, बिहार, (13) भोपाल, (14) बिहार, मुजफ्फरपुर, (15) बम्बई, (16) बर्दवान, पश्चिमी बंगाल, (17) कलकत्ता, (18) कालीकट, केरल, (19) कोचीन, (20) दिल्ली, (21) डिब्रूगढ़, (22) गोहाटी, (23) गोविन्द वल्लभ, कृषि, पन्तनगर, (24) गोरखपुर, (25) गुजरात, आयुर्वेद, (26) गुजरात, अहमदाबाद, (27) गुजरात, कृषि, अहमदाबाद, (28) गुरु नानक, अमृतसर, (29) हरियाणा, कृषि, हिसार, (30) हिमाचल प्रदेश, शिमला, (31) इन्दिरा कला संगीत, खैरागढ़, (म० प्र०), (32) इन्दौर, (33) जबलपुर, (34) जादवपुर, कलकत्ता, (35) जम्मू, (36) जवाहरलाल नेहरू, कृषि, जबलपुर, (37) जवाहरलाल नेहरू, नई दिल्ली, (38) जीवाजी, ग्वालियर, (39) जोधपुर, (40) कल्याणी, पश्चिमी बंगाल, (41) कामेश्वरसिंह, दरभंगा, (42) कानपुर, (43) कर्नाटक, धारवाड़, (44) कश्मीर, श्रीनगर, (45) केरल, त्रिवेन्द्रम, (46) केरल, कृषि, त्रिचूर, (47) कोंकण, कृषि, दापोली, (48) कुरुक्षेत्र, (49) लखनऊ, (50) मद्रास, (51) मदुराई, (52) मगध, बुद्ध गया, (53) महाराजा सयाजीराव, बड़ौदा, (54) महात्मा फुले, कृषि, राहुरी, (55) मराठवाड़ा, औरंगाबाद, (56) मराठवाड़ा, कृषि, परभणी,

1. *India*, 1974, pp. 407–409.

के अन्तर्गत आस-पास के अनेक कॉलिज होते हैं और प्रत्येक कॉलिज—विश्वविद्यालय-स्तर की शिक्षा प्रदान करता है। भारत में इस प्रकार के कुल 4 विश्वविद्यालय हैं; यथा :—दिल्ली विश्वविद्यालय, इन्दौर विश्वविद्यालय, बम्बई विश्वविद्यालय और बंगलोर विश्वविद्यालय।

भारत में विश्वविद्यालय-शिक्षा की प्रगति को निम्नांकित तालिका में स्पष्ट किया गया है :—

विश्वविद्यालय-शिक्षा की प्रगति[1]

विवरण	1950-51	1955-56	1960-61	1965-66	1970-71 अस्थायी
1. विश्वविद्यालय-स्तर पर कला, विज्ञान व वाणिज्य के कुल छात्र (लाखों में)	3·6	6·3	8·9	14·9	25·1
2. कला, विज्ञान (अनुसंधान संस्थाओं सहित) व वाणिज्य कॉलिजों की संख्या	542	772	1,222	1,788	2,792
3. विश्वविद्यालयों की संख्या	27	32	45	64	86

समस्याएँ व उनके समाधान
Problems & Their Solutions

उच्च शिक्षा के सम्बन्ध में एक विशेष बात यह है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से उसका संख्यात्मक विकास अत्यन्त त्वरित गति से हुआ है। साथ ही, दूसरी विशेष बात यह है कि उसका विकास आदि से अन्त तक अनियोजित रहा है। परिणामतः शिक्षा का स्तर गिर गया है, छात्रों में ज्ञानार्जन की अभिलाषा नष्ट हो गई है, शिक्षित व्यक्तियों के समक्ष बेरोजगारी की समस्या उपस्थित हो गई है, और सर्वोपरि यह शिक्षा—देश की वर्तमान एवं भावी आवश्यकताओं को पूर्ण करने में असमर्थ हो गई है। अतः जैसा कि 'कोठारी कमीशन' ने लिखा है :—"भारत में सामान्य भावना यह है कि उच्च शिक्षा की स्थिति असंतोषजनक एवं भयप्रद भी है।"

"There is a general feeling in India that the situation in higher education is unsatisfactory and even alarming."—*Kothari Commission Report*, p. 278.

1. *India*, 1974, p. 50.

उच्च शिक्षा के प्रति इस सामान्य भावना के कारण हैं, उसमें परिलक्षित होने वाली बहुरंगी समस्याएँ। हम कुछ प्रमुख समस्याओं एवं उनके समाधान के उपायों की निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत चर्चा कर रहे हैं।

(1) समस्या—उद्देश्यहीनता : *Aimlessness*—*हमारी उच्च शिक्षा की* उद्देश्यहीनता एक सर्वविदित तथ्य है। जमाना बदल गया है, देश की परिस्थितियाँ बदल गई हैं, पर भेद का विषय है कि उच्च शिक्षा का जो उद्देश्य—भारत के अंग्रेज शासकों ने अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए निर्धारित किया था, वह स्वतन्त्रता-प्राप्ति के वर्षों बाद भी अपने पुरातन रूप में उच्च शिक्षा पर अपना अखंड साम्राज्य स्थापित किए हुए है। परतंत्र भारत में इस उद्देश्य के वास्तविक स्वरूप का वर्णन गन्नार मिरडल के अग्रांकित शब्दों में पढ़िए '—"विश्वविद्यालयों की उपाधियाँ, सरकारी नौकरियों के लिए पासपोर्ट थीं। शिक्षा—विद्यार्थियों को नौकरी के लिए, न कि *जीवन के लिए तैयार करने के सीमित उद्देश्य से प्रदान की जाती थी।"*

"University degrees were the passports to government service. Education was imparted with the limited object of preparing pupils to join the service and not for life."—Gunnar Myrdal : *Asian Drama*, Vol. III, p. 1641

जिस प्रकार उच्च शिक्षा—परतंत्र भारत में व्यक्ति को जीवन के लिए तैयार नहीं करती थी, उसी प्रकार स्वतन्त्र भारत में भी नहीं करती है। इसकी पुष्टि में हुमायूँ कबीर के अग्रलिखित शब्दों का अवलोकन कीजिए[1] —"बहुत बार यह कहा *गया है कि विश्वविद्यालयों में जो शिक्षा दी जाती है, वह व्यक्ति को व्यावहारिक जीवन के लिए तैयार नहीं करती है।"*

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों के आधार पर हम कह सकते हैं कि वर्षों से उच्च शिक्षा का केवल एक ही उद्देश्य है—विश्वविद्यालय की उपाधि से अलंकृत होकर, कोई सरकारी या ग़ैर-सरकारी नौकरी प्राप्त करना। किन्तु, छात्रों द्वारा प्राप्त की जाने वाली उपाधियों में श्रेणियों का अन्तर होता है, उनके द्वारा अध्ययन किए जाने वाले विषयों में अन्तर होता है, और सर्वोपरि बड़े आदमियों तक उनकी पहुँच में अन्तर होता है। इन सब बातों का परिणाम होता है—थोड़े-से छात्रों का सरकारी *या ग़ैर-सरकारी पदों पर नियुक्त हो जाना और अधिकांश का बेरोज़गारों के विशाल* समूह में सम्मिलित होना।

इस उद्देश्यहीन शिक्षा का सबसे दूषित प्रभाव ग्रामों से नगरों में अध्ययन करने के लिए आने वाले छात्रों पर पड़ता है। इस प्रभाव के सजीव चित्र के दर्शन हुमायूँ कबीर के अग्रांकित शब्दों में कीजिए[2] .—"विश्वविद्यालय, गाँवों से योग्य और

---

1. हुमायूँ कबीर : स्वतन्त्र भारत में शिक्षा, p. 135.
2. हुमायूँ कबीर : पूर्वोक्त पुस्तक, p. 135

नहार युवकों को शहरों में खींच लाते हैं, परन्तु इस प्रकार गांवों को जो हानि हो
ती है, उससे शहरों को लाभ हो जाता हो, यह बात नहीं है। गांव के छोटे-से
माज में नेता बनने के बजाय—जो कि वे बड़ी आसानी से बन सकते थे—वे शहर
की अज्ञात जनसंख्या के हताश और कटु भावना से भरे सदस्य-मात्र बन जाते हैं।"

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि हमारे विश्वविद्यालयों की उद्देश्यहीन शिक्षा, हमारे देश एवं नवयुवकों के जीवन पर कुठाराघात कर रही है। विश्वविद्यालयों की सोद्देश्य शिक्षा ही राष्ट्र के वैभव और उनके निवासियों की बौद्धिक, नैतिक एवं आध्यात्मिक श्रेष्ठता की निर्धारक शक्ति है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर डा० आर० के० सिंह ने लिखा है:—"देश का वैभव, विश्वविद्यालय से सम्बद्ध होता है। दूषित विश्वविद्यालय सम्पूर्ण राष्ट्र को दूषित कर देता है।"

"The prosperity of the country is linked up with the university. A vicious university is like a contaminated fountain which is bound to imperil the health of those who drink from it."—Dr. R. K. Singh : *Our Universities*, p. 9.

समाधान—शिक्षा के वांछनीय उद्देश्य : Desirable Aims of Education—
विश्वविद्यालयों की उद्देश्यहीन शिक्षा ने देश और उसके नागरिकों को इतना विकृत
कर दिया है कि इस शिक्षा के वांछनीय एवं उपयुक्त उद्देश्य शीघ्रातिशीघ्र निर्धारित
किए जाने चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया गया, तो राष्ट्र की सम्पन्नता और उसके
निवासियों के कल्याण की लम्बी-लम्बी बातें करना गल्प-संग्रह की विषय-सामग्री हो
जायगी। राधाकृष्णन् कमीशन ने ठीक ही लिखा है:—"विश्वविद्यालय अपनी प्राची
पद्धति से आबद्ध नहीं रह सकते हैं। समाज की बढ़ती हुई जटिलता और उसक
बदलती हुई संरचना के कारण विश्वविद्यालयों को अपने उद्देश्यों में परिवर्तन कर
आवश्यक हो गया है।"

"The universities cannot persist in the old pattern. W
the increasing complexity of society and its shifting pattern, univ
sities have to change their objectives."—*Radhakrishnan Commis
Report*, pp. 5-6.

अपने इस विश्वास के आधार पर "राधाकृष्णन् कमीशन" ने विश्ववि
शिक्षा के अनेक उद्देश्य निर्धारित किए हैं। "कोठारी कमीशन" ने भी विश्ववि
शिक्षा को भारतवासियों के जीवन, आकांक्षाओं एवं आवश्यकताओं के अनुकूल
के विचार से इस शिक्षा के उद्देश्यों की चर्चा की है। यदि हम इन दोनों कमी
उद्देश्यों का विश्लेषण करें, तो हमें उनकी शब्दावली में तो अन्तर मिलेगा,
में नहीं। वस्तुतः "कोठारी कमीशन" के उद्देश्यों के "राधाकृष्णन् कमी

उद्देश्यों का समावेश हो गया है। अतः हम कह सकते हैं कि "कोठारी कमीशन" द्वारा निर्धारित किए जाने वाले उच्च शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य सर्वथा वांछनीय हैं[1] :-

1. नवीन ज्ञान की खोज और विकास करना।
2. राष्ट्रीय चेतना का विकास करने का सतत प्रयास करना।
3. सत्य की खोज के लिए उत्साह एवं निर्भयता से कार्य करना।
4. शिक्षा का प्रसार करके, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अन्तर को कम करना।
5. शिक्षा का प्रसार करके, समानता एवं सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित करना।
6. जीवन के समस्त क्षेत्रों में नेतृत्व करने के लिए उचित प्रकार के व्यक्ति प्रदान करना।
7. प्रतिभाशाली नवयुवकों की खोज करके, उनकी प्रतिभाओं एवं क्षमताओं का पूर्ण विकास करना।
8. प्राचीन ज्ञान एवं प्राचीन विश्वासों की नवीन खोजों एवं नवीन आवश्यकताओं के प्रकाश में व्याख्या करना।
9. समाज को कला, कृषि, विज्ञान, चिकित्सा, प्रौद्योगिकी एवं अन्य अनेक व्यवसायों के लिए योग्य एवं प्रशिक्षित स्त्री और पुरुष प्रदान करना।
10. छात्रों एवं शिक्षकों में और उनके माध्यम से समाज में "अच्छे जीवन" (Good Life) के लिए आवश्यक मान्यताओं एवं दृष्टिकोणों का विकास करना।

स्वाधीन भारत में उच्च शिक्षा के उपर्युक्त उद्देश्यों के औचित्य के सम्बन्ध में मत-विभिन्नता नहीं हो सकती है। भारतीय विश्वविद्यालयों को मानवता एवं सहिष्णुता की शिक्षा देनी चाहिए। उनको नवीन विचारों, सत्य एवं विवेक की खोज करनी चाहिए। उनको भारतवासियों को उच्चतर उद्देश्यों की ओर अग्रसर करना चाहिए। उनको राष्ट्र को सशक्त, सम्पन्न और प्रगतिशील बनाना चाहिए। इन कार्यों को करके विश्वविद्यालयों की उच्च शिक्षा अपने को सफल एवं सार्थक कहने की अधिकारिणी हो सकती है और तभी स्वर्गीय जवाहरलाल नेहरू की यह आशा पूर्ण हो सकती है।—"यदि विश्वविद्यालय अपने कर्तव्यों का समुचित रूप में पालन करें, तो राष्ट्र एवं जनता का कल्याण हो सकता है।"

"If the universities discharge their duties adequately, then it is well with the nation and the people."—**Jawaharlal Nehru's** *Convocation Address to the University of Allahabad*, 1947.

2. समस्या—छात्र-अनुशासनहीनता : Student Indiscipline—उच्च शिक्षा

1. *Kothari Commission Report*, pp. 274-275.

की सम्भवतः सबसे विकराल समस्या—छात्र-अनुशासनहीनता की है। यह कहना पूर्णतया युक्तियुक्त होगा कि इस समस्या की जननी—आधुनिक उच्च शिक्षा है, जिसकी छत्रछाया में यह दिन-प्रति-दिन भीमकाय रूप धारण करती चली जा रही है और नित्य नूतन आकृति में प्रकट हो रही है।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति प्रोफ़ेसर एन० के० सिद्धान्त ने एक अध्ययन के आधार पर 7 प्रकार के अनुशासनहीन कार्यों का उल्लेख किया है[1]:—(1) उच्छृंखल व्यवहार, (2) सामान्य दुर्व्यवहार, (3) यौन-सम्बन्धी दुर्व्यवहार, (4) परीक्षा में दुर्व्यवहार, (5) स्वाधिकारों का दुरुपयोग, (6) धन-सम्बन्धी अनियमितता और (7) चोरी एवं सेंधमारी।

यह अनुशासनहीनता के कार्यों की अन्तिम सूची नहीं है, अपितु बानगी-मात्र है। इन कार्यों की संख्या में इतनी अधिक वृद्धि हो गई है कि किसी भी सूची को पूर्ण नहीं कहा जा सकता है। अकारण हड़तालें, अनावश्यक प्रदर्शन, पुलिस से झगड़ा, बल का अनुचित प्रयोग, छोटी-छोटी बातों के लिए अनशन, कक्षाओं से बहिर्गमन, परीक्षाओं का बहिष्कार, शिक्षकों के साथ अभद्र व्यवहार, सार्वजनिक स्थानों में मारपीट, कालिजों के भवनों एवं रजिस्ट्रारों के कार्यालयों का अग्निहोम, परीक्षा में अनुचित साधनों का खुलेआम प्रयोग, छात्र-संघों के पदाधिकारियों द्वारा अपने अधिकारों का दुरुपयोग, युवतियों का अपहरण और उनके साथ बलात्कार—ये सब प्रतिदिन देखे और सुने जाने वाले छात्र-अनुशासनहीनता के कुछ नमूने हैं।

यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि उच्च शिक्षा की संस्थाओं में अनुशासनहीनता की समस्या उत्तरोत्तर अधिक-ही-अधिक जटिल होती जा रही है। इसीलिए, "भारतीय विश्वविद्यालय प्रशासन" ने यह मत प्रकट किया है:—"उच्च शिक्षा के केन्द्रों में अनुशासन बनाये रखने की समस्या प्रतिदिन अधिक गम्भीर होती जा रही है।"

"The problem of maintaining discipline in the seats of higher education is assuming greater importance every day."—*Indian University Administration*, p. 98.

समाधान—कुछ सुझाव : Some Suggestions—छात्र-अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान करने के लिए उसके कारणों से अवगत होना आवश्यक है। "कोठारी कमीशन" ने कुछ कारणों का उल्लेख किया है, जो संक्षिप्त होते हुए भी विस्तृत हैं; यथा[2] :—

1. N. K. Sidhanta : *The Problem of Discipline in Indian Universities*, p. 4.
2. *Kothari Commission Report*, pp. 296-297.

1. छात्रों का अनिश्चित भविष्य ।
2. छात्रों एवं शिक्षकों मे पारस्परिक सम्पर्क का अभाव ।
3. अनेक शिक्षकों मे विद्वता का अभाव एवं छात्रो की समस्याओं मे उ अरुचि ।
4. अनेक पाठ्यविषयो का यान्त्रिक एवं असतोषजनक स्वरूप ।
5. शिक्षा-सस्थाओ मे छात्रों की विशाल संख्या ।
6. शिक्षा-सस्थाओ मे शिक्षण एव सीखने की अपर्याप्त सुविधाएँ ।
7. शिक्षा-सस्थाओ के अध्यक्षो मे दृढ़ता, कल्पना एव कुशलता का अभाव ।
8. शिक्षा-सस्थाओ के कार्य में राजनीतिक दलो का हस्तक्षेप ।
9. कुछ कालेजो एव विश्वविद्यालयो मे शिक्षकों की पारस्परिक राजनीति ।
10 देश के सार्वजनिक जीवन मे अनुशासन का अभाव ।
11. वयस्को मे अनुशासन का निम्न स्तर ।
12 वयस्को मे नागरिक चेतना एव सच्चरित्रता का अभाव ।

इसके अतिरिक्त, अनुशासनहीनता के कुछ कारण और भी हैं; यथा :— (1) दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली, (2) अपूर्ण एव कीमती पुस्तकें, (3) परिवार का दूषित वातावरण, (4) शिक्षा-सस्थाओ का दूषित वातावरण, (5) नैतिक शिक्षा का अभाव, (6) शिक्षकों मे नेतृत्व की भावना का अभाव, (7) शिक्षा-सस्थाओ मे सामुदायिक कार्यों का अभाव, और (8) निर्देशन एव परामर्श सेवाओ का अभाव ।

अनुशासनहीनता के कारणो का निवारण करने और छात्रों मे अनुशासन की भावना उत्पन्न करने के लिए समय-समय पर विभिन्न आयोगो, शिक्षाविदो आदि के द्वारा बहुमूल्य सुझाव दिए गए हैं । हम उनकी चर्चा निम्नांकित पंक्तियों मे कर रहे हैं ।

(i) उपकुलपतियों का सुझाव—सन् 1969 मे भारतीय विश्वविद्यालयो के "उपकुलपतियो के सम्मेलन" (Vice-Chancellors' Conference) मे यह सुझाव दिया गया कि छात्रो को समय-समय पर राष्ट्रीय विकास के कार्यक्रमो, धर्म-निरपेक्षता, राष्ट्रीय एकीकरण, संविधान एव नागरिकता का परिचय दिया जाना चाहिए । यह परिचय उनमे देश के प्रति निष्ठा उत्पन्न करेगा, जिसके फलस्वरूप उनकी अनुशासनप्रियता मे वृद्धि होगी ।

"It is desirable that student is exposed to and acquainted ...ith national development programmes, secularism, national ...egration, the Constitution, and citizenship."—*Vice-Chancellors' ...nference*, 1969.

(ii) भारतीय विश्वविद्यालय-प्रशासन का सुझाव—"भारतीय विश्वविद्यालय-...सन" (Indian University Administration) के अनुसार, अनुशासनहीनता

की समस्या का समाधान करने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि तरुण छात्रों की क्रियाओं को स्वस्थ दिशाओं में मोड़ा जाय। यह तभी सम्भव है, जब उनके लिए अतिरिक्त शैक्षिक सुविधाओं का आयोजन किया जाय; यथा :—खेल-कूद, छात्रावासों में सामुदायिक जीवन, भोजनालयों का छात्रों द्वारा प्रबन्ध, वाद-विवाद एवं गोष्ठियाँ। परन्तु, शर्त यह है कि इन सब कार्यों में शिक्षक अग्रणी हों।

"The best way of solving the problem of indiscipline is to divert the activities of young students into healthy channels including sports, games, co-operative living in hostels, self-management of messes, debates and symposia. However, the lead in all these matters should be given by the teachers themselves."—*Indian University Administration*, p. 98.

(iii) राधाकृष्णन् कमीशन का सुझाव—"राधाकृष्णन् कमीशन" के विचारानुसार, अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान करने के लिए नैतिक शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है। यह शिक्षा निश्चय रूप से उनके चरित्र का निर्माण कर सकती है। क्योंकि यह शिक्षा—श्रेष्ठ साहित्य एवं श्रेष्ठ पुस्तकों में निहित रहती है, इसलिए छात्रों को उनका अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए। इस सदर्भ में "कमीशन" ने लिखा है :—"श्रेष्ठ साहित्य, श्रेष्ठतम भावना को जाग्रत करता है और उच्चतम आदर्श एवं आकांक्षा को बढ़ावा देता है। अतः श्रेष्ठ पुस्तकों का अध्ययन, जो हममें आशा का संचार करती है, विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में अनिवार्य है।"

"Great literature sets fire to the highest emotion, and promotes the highest ideal and aspiration. A study of great books that fill us with hope is essential in University course."—*Radhakrishnan Commission Report*, p. 301.

(iv) कोठारी कमीशन के सुझाव—"कोठारी कमीशन" ने छात्र-अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान करने के लिए, बहुत से सुलझे हुए सुझाव दिए हैं, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं[1] :—

1. शिक्षा एवं प्रशासन से सम्बन्धित सब कमियों को दूर किया जाना चाहिए।
2. शिक्षा के सब स्तरों एवं सब संस्थाओं में सुधार किया जाना चाहिए।
3. अध्यापक एवं छात्रों की समस्त समितियों में निकट सम्बन्ध होने चाहिए।

1. *Kothari Commission Report*, p. 297.

4. उच्च शिक्षा की सब संस्थाओं द्वारा छात्रों को निर्देशन एवं परामर्श दिए जाने का कार्य किया जाना चाहिए।

5 छात्रों में स्व-अनुशासन (Self-Discipline) एवं सकारात्मक अनुशासन (Positive Discipline) की भावनाओं का विकास किया जाना चाहिए।

6 छात्रों एवं शिक्षकों में पारस्परिक प्रेम एवं सम्मान पर आधारित एक-दूसरे का साथी होने की भावना का विकास किया जाना चाहिए।

7 सम्पूर्ण विश्वविद्यालय-जीवन को एक माना जाना चाहिए। अतः छात्रों, शिक्षकों एवं प्रशासन के मध्य विभेदीकरण के सब प्रयासों का अन्त किया जाना चाहिए।

8 प्रत्येक विश्वविद्यालय की सभा एवं साहित्यिक परिषद् (Court & Academic Council) में छात्रों के प्रतिनिधि होने चाहिए, ताकि वे अपने दायित्वों को समझ सकें और आवश्यकता पड़ने पर अपनी माँगों को प्रस्तुत कर सकें।

9 प्रत्येक कॉलेज एवं प्रत्येक विश्वविद्यालय के प्रत्येक विभाग में छात्रों एवं शिक्षकों की संयुक्त समितियाँ (Joint Committees) होनी चाहिए। इन समितियों की बैठकों में छात्रों की सभी समस्याओं पर विचार किया जाना चाहिए और उनका समाधान खोजने का प्रयत्न किया जाना चाहिए।

10. विश्वविद्यालय के उपकुलपति एवं कॉलेज के प्रिंसिपल की अध्यक्षता में एक केन्द्रीय समिति (Central Committee) का निर्माण किया जाना चाहिए। इस समिति में छात्रों एवं शिक्षकों—दोनों के प्रतिनिधि उचित अनुपात में होने चाहिए। यह समिति न केवल छात्रों की जटिलतम समस्याओं का समाधान करने में सफल होगी, अपितु छात्रों एवं शिक्षकों में निकट सम्पर्क भी स्थापित करेगी।

11 अनुशासनहीनता के चाहे जो भी कारण हों, छात्रों की इस प्रवृत्ति का दमन करना और उनको सभ्य व्यक्ति बनाना शिक्षा का सर्वप्रथम कार्य है। "आयोग" के शब्दों में —'शिक्षा चाहे और कुछ करे या न करे, उसे कम-से-कम युवकों एवं युवतियों में सभ्य व्यवहार के मानदण्डों को सीखने और प्रयोग करने की क्षमता उत्पन्न करने का प्रयास अवश्य करना चाहिए।"

"Whatever else education may or may not aim at doing, it should at least strive to enable young men and women to learn and practise civilized norms of behaviour."—*Education Commission Report*, p. 297

उपर्युक्त सुझावों का सतर्कता से अध्ययन करने के पश्चात् हम कह सकते हैं कि अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान करने के लिए 8 उपाय विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं; यथा :— (1) उच्च शिक्षा के समस्त दोषों का निवारण, (2) नैतिक शिक्षा की व्यवस्था, (3) निर्देशन एवं परामर्श की व्यवस्था, (4) छात्र-क्रियाओं एवं छात्र-कल्याण सेवाओं की व्यवस्था, (5) अतिरिक्त शैक्षिक सुविधाओं का आयोजन, (6) छात्रों एवं शिक्षकों में निकट सम्पर्क, (7) छात्रों में स्व-अनुशासन की भावना का विकास, और (8) विश्वविद्यालयों की सभाओं एवं साहित्यिक परिषदों में छात्रों का प्रतिनिधित्व।

ये उपाय, अनुशासनहीनता की समस्या का समाधान करने में श्लाघनीय योग दे सकते हैं। किन्तु, केवल उपाय ही पर्याप्त नहीं हैं। आवश्यकता इस बात की है कि छात्र, शिक्षक, समाज, सरकार, अभिभावक एवं राजनीतिक दल— सभी संयुक्त रूप से इस समस्या का उन्मूलन करने के लिए हार्दिक प्रयास करें। इसका कारण यह है कि अनुशासनहीनता का दायित्व किसी एक पर न होकर सब पर है, एकपक्षीय न होकर बहुपक्षीय है। हम अपने इस विचार की पुष्टि में "शिक्षा-आयोग" के अग्रांकित शब्दों को उद्धृत कर सकते हैं :—"यह स्मरण रखना आवश्यक है कि अनुशासनहीनता का उत्तरदायित्व एकपक्षीय नहीं है—यह केवल छात्रों या अभिभावकों या शिक्षकों या राज्य-सरकारों या राजनैतिक दलों का उत्तरदायित्व नहीं है—वरन् बहुपक्षीय है। इन सब का इस उत्तरदायित्व में भाग है।"

"It is necessary to remember that the responsibility for the situation is not unilateral—it is not merely that of the students or parents or teachers or State Governments or the political parties—but multilaternal. All of them share it."—*Education Commission Report* p. 297.

3. निर्देशन व परामर्श का अभाव : Absence of Guidance & Counselling—उच्च शिक्षा की संस्थाओं में निर्देशन एवं परामर्श-सेवाओं का प्राय: पूर्ण अभाव है। अतः छात्र अपनी स्वयं की इच्छा से, अपने अभिभावकों के दबाव से, या किसी अनुभवहीन व्यक्ति के परामर्श से पाठ्य-विषयों का चयन करते हैं। इस प्रकार का चयन अनेक छात्रों के समक्ष संकटपूर्ण स्थिति उपस्थित कर देता है। पाठ्य-विषयों का थोड़ा-सा अध्ययन ही उनको स्पष्ट संकेत देने लगता है कि वे उनकी रुचियों के अनुकूल नहीं हैं, या उन पर अधिकार प्राप्त करने की उनमें क्षमता नहीं है, या वे उनके भावी जीवन की आवश्यकताओं के अनुकूल नहीं हैं।

इन बातों का पहला दुष्परिणाम होता है—परीक्षा में असफलता और दूसरा दुष्परिणाम होता है—जीवन में असफलता। इस प्रकार, निर्देशन एवं परामर्श-सेवाओं के अभाव के कारण अनेक छात्रों को अपने भावी जीवन में पग-पग पर निराशा एवं निष्फलता के थपेड़ों का शिकार बनना पड़ता है।

समाधान—निर्देशन व परामर्श की व्यवस्था : *Provision of Guidance & Counselling*—छात्रों की भावी सफलता एवं सम्पन्नता के लिए यह परम आवश्यक है कि निर्देशन एव परामर्श-सेवाओं को उच्च शिक्षा का अविभाज्य अंग बनाया जाए। ये सेवाएँ प्रत्येक कॉलिज और प्रत्येक विश्वविद्यालय के प्रत्येक छात्र को उपलब्ध होनी चाहिए। ये सेवाएँ ही उसकी रुचियों एवं आवश्यकताओं, उसकी क्षमताओं एव शैक्षिक योग्यताओं का अध्ययन करके, उसे उपयुक्त एवं उपयोगी पाठ्य-विषयों का चयन करने में सहायता दे सकती हैं। इतना ही नहीं, ये सेवाएँ उसकी आर्थिक, वैयक्तिक एव पारिवारिक उलझनों को सुलझाने में भी उसकी सहायता कर सकती हैं।

अत यह आवश्यक है कि उच्च शिक्षा की सब संस्थाओं मे निर्देशन एवं परामर्श-सेवाओं की उत्तम व्यवस्था की जानी चाहिए। ये सेवाएँ—छात्रों को संस्थाओं मे प्रवेश करने के समय से लेकर उनको छोड़ने के समय तक और उसके पश्चात् भी *सुलभ होनी चाहिए।*

"कोठारी कमीशन" ने इस बात पर दुःख प्रकट किया है कि हमारी उच्च शिक्षा की सस्थाओं मे निर्देशन एव परामर्श-सेवाओं का एक भी चिह्न दृष्टिगोचर नहीं होता है। उसने सिफारिशें की है कि सभी सस्थाओं मे इन सेवाओं की यथाशीघ्र स्थापना की जानी चाहिए। उसका सुझाव है कि प्रत्येक 1,000 छात्रों वाली संस्था मे *एक परामर्शदाता (Counsellor) होना चाहिए और यदि संस्थाओं मे छात्र-संख्या* कम है, तो दो या अधिक सस्थाओ के लिए एक परामर्शदाता हो सकता है। निर्देशन एव परामर्श-कार्यक्रम को अनिवार्य बनाते हुए, "कोठारी कमीशन" ने लिखा है :—
"निर्देशन एव परामर्श का कार्यक्रम, जो छात्रों को पाठ्यक्रमों का चयन करने और उनकी संवेगात्मक एव मनोवैज्ञानिक समस्याओं को सुलझाने मे सहायता देता है, उच्च शिक्षा का अभिन्न अंग होना चाहिए।"

"A guidance and counselling programme, which would assist the students in the choice of courses and help in dealing with emotional and psychological problems, should be an integral part of higher education."—*Kothari Commission Report* pp 294-95

"कोठारी कमीशन" के सुझाव की उपयोगिता को स्वीकार करके, दिल्ली और बनारस जैसे कुछ विश्वविद्यालयों ने अपने छात्रो के लिए निर्देशन एव परामर्श का कार्यक्रम आरम्भ कर दिया है। *अन्य विश्वविद्यालयों* मे भी इस कार्यक्रम का सूत्रपात किया जाना आवश्यक है।

4. समस्या—दोषपूर्ण पाठ्यक्रम Defective Curriculum—स्वतन्त्र भारत में उच्च शिक्षा का इतना अधिक प्रसार हुआ है कि वह शिक्षा की समस्त उपलब्ध सीमाओं को पार कर गया है। शिक्षा-प्रसार के नाम मे कुछ स्थानों मे कमठ समाज-सेवकों ने और अन्य स्थानों मे धनार्जन के लिए लालायित लोगों ने थोड़ी-सी भूमि

पर कुछ कमरे खड़े करके, उनको कालेजों की संज्ञा दे दी है। नवीन विश्वविद्यालयों की स्थापना और पुराने विश्वविद्यालयों के क्षेत्राधिकारों में न्यूनता होने के कारण इन नाममात्र के कालेजों को मान्यता प्राप्त करने में किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ा है। इन सब कॉलेजों के पाठ्यक्रमों में प्रायः वही विषय हैं, जिनके शिक्षण के लिए न तो विशेष सुविधाओं की आवश्यकता है और न विशेष साज-सज्जा की; यथा :—इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, इत्यादि।

शिक्षा-विस्तार के लिए इन कॉलेजों की स्थापना की सराहना अवश्य की जा सकती है, पर इनमें प्रचलित पाठ्यक्रमों की नहीं। इसका कारण यह है कि ये पाठ्यक्रम अनेक दोषों से परिपूर्ण हैं; यथा :—कठोरता, विविधता एवं व्यावसायिक विषयों का अभाव, पाठ्यविषयों की छात्रों एवं समाज के लिए अनुपयोगिता और अध्ययन के विषयों की सीमित संख्या। अतः छात्रों को अपनी रुचियों के अनुसार, विषयों का चयन करने का कोई अवसर प्राप्त नहीं होता है। फलस्वरूप, उनकी क्षमताएँ कुंठित हो जाती है और उनका मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है।

यदि हम समग्र रूप में उच्च शिक्षा की संस्थाओं के पाठ्यक्रमों पर दृष्टिपात करें, तो हमें उनका रूप बहुत-कुछ वही मिलता है, जो उक्त कॉलेजों के पाठ्यक्रमों का है। अन्तर केवल इतना है कि कुछ शिक्षा-संस्थाओं में अध्ययन के विषय अधिक हैं। वास्तविकता यह है कि यद्यपि आज के भारत की आवश्यकताएँ, पराधीन भारत की आवश्यकताओं से सर्वथा भिन्न हैं, तथापि पाठ्यक्रमों में कोई विशेष अन्तर परिलक्षित नहीं होता है। उनमें अब भी वही घिसे-पिटे विषय हैं, जो आज से लगभग 50 वर्ष पहले थे।

अतः हम कह सकते हैं कि हमारी उच्च शिक्षा की संस्थाओं के पाठ्यक्रम दोषपूर्ण हैं और आधुनिक भारत के लिए नितान्त निरर्थक हैं। इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए, "राधाकृष्णन् कमीशन" ने लिखा है :—"जो पाठ्यक्रम वैदिक काल में उपयोगी था, उसे 20वीं शताब्दी में बिना परिवर्तन किए प्रयोग नहीं किया जा सकता है।"

"A curriculum which had validity in the Vedic period cannot continue unaltered in the 20th century."—*Radhakrishnan Commission Report*, p. 44.

समाधान—पाठ्यक्रम में सुधार : Reform in Curriculum—"राधाकृष्णन् कमीशन" के विचार से सहमत होने के कारण "कोठारी कमीशन" ने उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में परिवर्तन एवं सुधार करने के लिए निम्नांकित सुझाव दिए हैं[1] :—

1. *Kothari Commission Report*, p. 652.

1. उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम को विद्यालय-पाठ्यक्रम से कठोरतापूर्वक सम्बद्ध नहीं किया जाना चाहिए।
2. स्नातक-पूर्व स्तर पर पाठ्यक्रम उससे अधिक लचीला होना चाहिए, जितना कि इस समय है।
3. उक्त स्तर पर छात्रों को पाठ्य-विषयों का चयन करने के लिए अधिक स्वतन्त्रता प्रदान की जानी चाहिए।
4. उक्त स्तर पर सामान्य, विशिष्ट एवं आनर्स पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जानी चाहिए।
5. स्नातकोत्तर स्तर पर पाठ्यक्रमों को परिवर्तित करके अधिक लचीला बनाया जाना चाहिए।

पाठ्यक्रम मे सुधार करने के लिए, "कोठारी कमीशन" का सबसे महत्त्वपूर्ण सुझाव यह है कि शिक्षा का देश एवं व्यक्तियों की आवश्यकताओं से सम्बन्ध स्थापित किया जाना चाहिए। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, "कमीशन" ने पाठ्यक्रम मे कार्य-अनुभव, व्यावसायिक विषयों और कृषि, विज्ञान एव प्राविधिक शिक्षा को स्थान दिए जाने का सुझाव प्रस्तुत किया है।

भारत-सरकार ने "कमीशन" के सुझाव को स्वीकार करके, उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम मे सुधार करने के लिए "पाँचवीं पंचवर्षीय योजना" मे अग्रांकित कार्यक्रमों को स्थान देने का निश्चय किया है[1] —

1. *व्यावसायिक पाठ्यक्रमो को प्रचलित करके, स्नातकों की रोजगार-सम्बन्धी योग्यता मे वृद्धि करना।*
2. उच्च शिक्षा के प्रत्येक पाठ्यक्रम का व्यावहारिक समस्याओं एवं सामाजिक उपयोगिता से सम्बन्ध स्थापित करना।
3. पाठ्यक्रम को लचीला बनाकर, छात्रों को अधिक पाठ्य-विषयों में से अपनी रुचियों के अनुकूल विषयों का चयन करने की स्वतन्त्रता प्रदान करना।

5. **समस्या—दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली Defective System of Examination**—कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों मे प्रचलित परीक्षा-प्रणाली मुख्यतः निबन्धात्मक प्रकार की है। निबन्धात्मक प्रश्न सम्पूर्ण पाठ्य विषय पर आधारित न होकर, उसके केवल एक अंश पर आधारित होते हैं। अतः वर्तमान परीक्षा-पद्धति में वैधता, वस्तुनिष्ठता एव विश्वसनीयता का पूर्ण अभाव है। इसके अतिरिक्त, इस पद्धति मे बाह्य परीक्षाओं का शीर्षस्थ स्थान है और कक्षा-कार्य एवं आन्तरिक परीक्षाओं को तनिक भी महत्त्व नही दिया जाता है।

---

1. *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol II p 199.

हमारी उच्च शिक्षा में दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली की समस्या लगभग एक शताब्दी से विद्यमान है। यह समस्या इतनी त्रासपूर्ण है कि कोई भी छात्र साल-भर चैन की नींद नहीं सो पाता है, क्योंकि वह जानता है कि वर्ष के अन्त में होने वाली अन्तिम बाह्य परीक्षा उसके लिए विष की पोटली बन सकती है। दिल दहलाने वाली इस भयावह परीक्षा ने अनेक आयोगों और समितियों के ध्यान को अपनी ओर बरबस खींचा है। सन् 1902 में "भारतीय विश्वविद्यालय-आयोग" ने इसके विषय में यह मत व्यक्त किया :—"भारत में विश्वविद्यालय-शिक्षा का महानतम् दोष यह है कि शिक्षण, परीक्षा के अधीन है, न कि परीक्षा, शिक्षण के।"

"The greatest evil from which university education in India suffers is that teaching is subordinated to examination, and not examination to teaching."—*Report of the Indian University Commission.*

सन् 1949 में "विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग" ने यह विचार प्रकट किया :—"यदि हमसे विश्वविद्यालय-शिक्षा में केवल एक बात के बारे में सुझाव देने के लिए कहा जाय, तो यह सुझाव—परीक्षाओं के सम्बन्ध में होगा।"

"If we are to suggest one single reform in university education, it should be that of examination."—*Report of the University Education Commission*, p. 328.

समाधान—परीक्षा-प्रणाली में सुधार : Reform in Examination System—उच्च शिक्षा में प्रयोग की जाने वाली परीक्षा-प्रणाली को दोषमुक्त करने के लिए समय-समय पर जो सुझाव दिए गए हैं, उनका संक्षिप्त वर्णन दृष्टव्य है; यथा :—

1. राधाकृष्णन् कमीशन के सुझाव—इस "कमीशन" के मुख्य सुझाव निम्नलिखित हैं[1] :—

1. शिक्षा-मंत्रालय को मूल्यांकन की वैज्ञानिक विधियों का कार्य आरम्भ करना चाहिए।
2. अन्तिम परीक्षा में छात्रों की योग्यता का मूल्यांकन करते समय उनके द्वारा किए जाने वाले कक्षा-कार्य पर अवश्य ध्यान दिया जाना चाहिए।
3. प्रत्येक विषय के लिए निर्धारित सम्पूर्ण अंकों में से एक-तिहाई अंक कक्षा-कार्य के लिए होने चाहिए।
4. स्नातक-पूर्व स्तर पर छात्रों की परीक्षा प्रत्येक वर्ष के अन्त में स्वतः

1. *Radhakrishnan Commission Report*, pp. 337-338.

पूर्ण इकाइयों (Self-Contained Units) के रूप में दी जानी चाहिए।

5. स्नातकोत्तर-स्तर पर सत्र-परीक्षाओं को अन्तिम परीक्षा का अनिवार्य अंग बनाया जाना चाहिए।
6. प्रत्येक विश्वविद्यालय में परीक्षकों का एक स्थायी बोर्ड होना चाहिए, जिसे विश्वविद्यालय और उससे सम्बद्ध कॉलिजों के शिक्षकों को वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं की योजनाएँ बनाने में सहायता देनी चाहिए।

2. कोठारी कमीशन के सुझाव—परीक्षा-सुधार के सम्बन्ध में "कोठारी कमीशन" के सुझाव इस प्रकार हैं[1] :—

1. सब शिक्षण-विश्वविद्यालयों में बाह्य परीक्षाओं का स्थान शिक्षकों के आन्तरिक एवं क्रमिक मूल्यांकन (Internal & Continuous Evaluation) को दिया जाना चाहिए।
2. सब सम्बद्धीकरण विश्वविद्यालयों में बाह्य परीक्षाओं की पूर्ति करने के लिए आन्तरिक जाँचों (Internal Assessments) की पद्धति प्रारम्भ की जानी चाहिए।
3. विश्वविद्यालयों के शिक्षकों को मूल्यांकन की नवीन एवं उन्नत विधियों से परिचित कराया जाना चाहिए।

उल्लिखित आयोगों के सुझावों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। दोनों ने बाह्य परीक्षाओं के महत्त्व को कम करने का प्रयास किया है। इसके अतिरिक्त, दोनों ने आन्तरिक परीक्षाओं एवं मूल्यांकन की नवीन विधियों के प्रयोग पर बल दिया है।

3. विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग के सुझाव—"शिक्षा-मंत्रालय" ने "राधाकृष्णन् कमीशन" के सुझाव को स्वीकार करके, "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" (University Grants Commission) से मूल्यांकन की नवीन विधियों एवं परीक्षा-प्रणाली में सुधार करने के उपायों के सम्बन्ध में अपना परामर्श देने को कहा। "आयोग" ने इन कार्यों को सम्पन्न करने के लिए अपने कुछ सदस्यों की एक "समिति" नियुक्त की। इस "समिति" ने सन् 1962 में अपना प्रतिवेदन प्रस्तुत किया, जिसमें परीक्षा में सुधार करने के लिए निम्नलिखित मुख्य सुझाव दिए गए[2] :—

1. विश्वविद्यालयों की बाह्य परीक्षाओं में कमी की जाय।

---

1. *Kothari Commission Report*, pp 648-49
2. *Report of the U G C's Committee on Examination Reforms*, 1962

2. छात्रों की प्रगति का मूल्यांकन करने के लिए, उनके शिक्षकों द्वारा प्रगति-परीक्षाओं (Continuous Assessments) का कार्य आरम्भ किया जाय।
3. शिक्षण-कार्य में व्याख्यानों के अतिरिक्त विचार-गोष्ठियों (Seminars), ट्यूटोरियल-कार्य (Tutorial Work) आदि का भी प्रयोग किया जाय।
4. ट्यूटोरियल कक्षाओं में छात्रों द्वारा किए जाने वाले कार्य का नियमित रूप से मूल्यांकन किया जाय, मूल्यांकन को लिखित रूप में रखा जाय और अन्तिम परीक्षा में उसको महत्त्व दिया जाय।

भारत-सरकार इन सुझावों को मान्यता प्रदान कर चुकी है और इनकी पृष्ठभूमि में कार्य आरम्भ हो चुका है। "पाँचवीं पंचवर्षीय योजना" के अनुसार :—"परीक्षा-सुधार का कार्यक्रम, जो विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" द्वारा आरम्भ किया जा चुका है, पाँचवीं योजना में और तेजी से किया जायगा।"

"The programme of examination reform, already started by the University Grants Commission, will be speeded up during the Fifth Plan."—*Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. II, p. 199.

6. समस्या—अपव्यय : Wastage—हमारे देश में उच्च शिक्षा के स्तर पर "अपव्यय" की समस्या अत्यन्त गम्भीर है। इसकी गम्भीरता का अनुमान "राधाकृष्णन् कमीशन" के अग्रांकित शब्दों से सहज ही लगाया जा सकता है :—"सार्वजनिक धन का प्रति वर्ष अति महान् अपव्यय हो रहा है। किन्तु, इससे भी अधिक दुःख की बात यह है कि सार्वजनिक धन की इस महान् हानि के प्रति उतनी ही उदासीनता है, जितनी कि छात्रों एवं उनके अभिभावकों के समय, शक्ति तथा धन के नाश, और उनकी आशाओं एवं अभिलाषाओं पर भयंकर हिमपात के प्रति।"

"A deplorable wastage of public funds goes on year after year but what is worse, there is an unconcerned complacency about this serious loss of public funds on the one hand, and waste of time, energy and funds of students and their parents, besides terrible frustration of their hopes and aspirations on the other."—*Radhakrishnan Commission Report*, p. 86.

डा० एस० एन० मुकर्जी ने उच्च शिक्षा में अपव्यय के कुछ आँकड़े इस प्रकार दिए हैं[1] :—डिग्री कोर्स के प्रथम वर्ष में जितने छात्र प्रवेश लेते हैं, उनमें से 50 प्रतिशत से अधिक बी० ए०, बी० कॉम० और बी० एस-सी० की परीक्षाओं में

1. Dr. S. N. Mukerji : *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 195.

अनुत्तीर्ण होते हैं। स्नातकोत्तर-स्तर पर 20 से 30 प्रतिशत तक छात्र, परीक्षाओं में असफल होते हैं। इस प्रसंग में डा० देशमुख के अग्रांकित वाक्य को उद्धृत करना असंगत प्रतीत नहीं होता है :—"भारत में विश्वविद्यालय-शिक्षा में अपव्यय की मात्रा संसार में सबसे अधिक है।"

"The degree of wastage in India of university education is the highest in the world."—Dr. C. D. Deshmukh, Chairman of the U. G. C. in 1960.

उच्च शिक्षा में होने वाले इस महान् अपव्यय के प्रमुख कारण इस प्रकार हैं :—(1) शिक्षण का निम्न स्तर, (2) छात्रों की आर्थिक कठिनाइयाँ, (3) छात्रावासों की सुविधा का अभाव, (4) योग्य शिक्षकों का अभाव, (5) उपयुक्त शिक्षण-सुविधाओं का अभाव, और (6) अयोग्य छात्रों का उच्च शिक्षा की संस्थाओं में प्रवेश।

समाधान—कुछ सुझाव · Some Suggestions—उच्च शिक्षा की परिधि में से अपव्यय की भयावह समस्या को निष्कासित करने के लिए निम्नांकित उपायों को प्रयोग में लाया जा सकता है :—

1. परीक्षा-प्रणाली को परिवर्तित एवं दोषमुक्त किया जाय।
2. बाह्य परीक्षाओं की तुलना में आन्तरिक परीक्षाओं को अधिक महत्व दिया जाय।
3. परीक्षाओं में असफल होने वाले छात्रों के लिए पुनः परीक्षा एवं पुनः मूल्यांकन की व्यवस्था की जाय।
4. पाठ्यक्रमों में छात्रों की अभिरुचियों एवं अभिवृत्तियों के अनुसार अधिक विषयों को स्थान दिया जाय और उनको व्यावहारिक रूप प्रदान किया जाय।
5. "सार्जेन्ट-रिपोर्ट" के अनुसार, हाई स्कूल की परीक्षा में सफल होने वाले विद्यार्थियों में 15 में से केवल 1 को उच्च शिक्षा ग्रहण करने की अनुमति दी जाय।
6. "केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार-बोर्ड" (CABE) के अनुसार, केवल उन्हीं छात्रों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने की आज्ञा दी जाय, जिनके लिए यह शिक्षा भविष्य में आवश्यक है।[1]
7. "कोठारी कमीशन" के अनुसार, "चयनात्मक प्रवेश-प्रणाली (System of Selective Admissions) का प्रयोग करके, केवल योग्यतम् विद्यार्थियों को ही उच्च शिक्षा की संस्थाओं में प्रवेश दिया जाय।

7. समस्या—शिक्षा में विशिष्टीकरण Specialization in Education—विश्वविद्यालय-स्तर पर शिक्षा में विशिष्टीकरण आरम्भ हो जाता है। दूसरे शब्दों

1. *Times of India*, January 19, 1959

में, छात्रों को विभिन्न विषयों का विशेष अध्ययन करने की सुविधा प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार का अध्ययन उनको कुछ विशेष विषयों में दक्षता प्रदान करता है। किन्तु, साथ ही इस अध्ययन से उनका दृष्टिकोण असंतुलित एवं अव्यावहारिक हो जाता है। अत: विशिष्टीकरण के विरुद्ध आम शिकायत यह है कि विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करके निकलने वाले छात्रों में शिष्टता, संतुलन एवं व्यावहारिकता का अभाव होता है, जो प्रत्येक शिक्षित व्यक्ति के चरित्र के प्रमुख लक्षण होने चाहिए।

छात्रों के चरित्र में उपर्युक्त दोषों का समावेश क्यों हो जाता है, इसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए, के०जी० सैयदैन ने लिखा है :—"विशिष्टीकरण में एक प्रकार की संकीर्णता एवं अकाल्पनिकता होती है। इसका परिणाम यह होता है कि विज्ञान के छात्रों को कला एवं कविता और सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं का कोई ज्ञान नहीं होता है और आर्ट्स के छात्रों को इस बात का ज्ञान नहीं होता है कि विज्ञान एवं वैज्ञानिक विधियों से उस विश्व को, जिसमें वे निवास कर रहे हैं, किस प्रकार परिवर्तित कर दिया गया है।"

"There is a certain narrow, unimaginative type of specialisation which results in the science students being complacently ignorant of art and poetry, and social and political problems, and art students having no appreciation of how science and the scientific technique have transformed the world in which they are living."—K. G. Saiyidain : *Education, Culture and Social Order*, p. 163.

समाधान—सामान्य शिक्षा की व्यवस्था : Provision of General Education—विशिष्टीकरण से उत्पन्न होने वाले दोषों का निराकरण करने के लिए यह आवश्यक है कि छात्रों द्वारा अर्जित किए जाने वाले विभिन्न अनुभवों एवं ज्ञान के विभिन्न अंगों में सामंजस्य एवं अन्तर्सम्बन्ध हो। जब तक यह नहीं होगा, तब तक उनके दृष्टिकोणों एवं मानसिक शक्तियों का संतुलित विकास असम्भव होगा। इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में "सामान्य शिक्षा" को स्थान दिया जाय।

"सामान्य शिक्षा" के अन्तर्गत विज्ञान, इतिहास, समाजशास्त्र, राजनीतिशास्त्र, भारतीय संस्कृति आदि सभी विषयों का सामान्य ज्ञान आ जाता है। अत: यह शिक्षा सभी छात्रों को लाभान्वित करेगी। यह शिक्षा कला एवं साहित्य के छात्रों को विज्ञान के विषयों का, और विज्ञान के छात्रों को कला एवं साहित्य के विषयों का ज्ञान प्रदान करेगी। फलस्वरूप, उनको अपने अध्ययन-काल में उन सब बातों का ज्ञान प्राप्त हो जायगा, जो प्रत्येक शिक्षित पुरुष एवं स्त्री के लिए आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त, "सामान्य शिक्षा"—विशिष्टीकरण से उत्पन्न होने वाली

संकीर्णता को दूर करके, छात्रों की समस्त मानसिक शक्तियों का संतुलित विकास करेगी। यह शिक्षा उनमें जीवन के प्रति उन मान्यताओं एवं दृष्टिकोणों का विकास करेगी, जो उनको वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन व्यतीत करने में अपूर्व सहायता देंगे। अतः वे अपने जीवन में सफलता प्राप्त करेंगे और सुयोग्य नागरिकों के रूप में अपने देश की सेवा करेंगे।

उपरिअंकित तथ्यों से सुपरिचित होने के कारण "राधाकृष्णन् कमीशन" ने यह सुझाव दिया है कि विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में "सामान्य शिक्षा" को सम्मिलित किया जाय।[1] इस सुझाव को स्वीकार करके भारत के 15 विश्वविद्यालयों ने अपने छात्रों को "सामान्य शिक्षा" प्रदान करने का कार्य आरम्भ कर दिया है। ये विश्वविद्यालय हैं :—अलीगढ़, आंध्र, बनारस, बड़ौदा, जादवपुर, कर्नाटक, केरल, मैसूर, पूना, राजस्थान, सागर, एम० एन० डी० टी०, श्री वेंकटेश्वर, उत्कल एवं विश्वभारती।[2]

8 समस्या—शिक्षा का माध्यम : Medium of Instruction—उच्च शिक्षा में शिक्षा के माध्यम के प्रश्न ने एक अत्यन्त जटिल समस्या उपस्थित कर दी है। इसके दो मुख्य कारण हैं। पहला, अंग्रेजी अति दीर्घ काल से माध्यम के पद पर प्रतिष्ठित है। दूसरा, भारतीय संविधान में हिन्दी को राष्ट्र-भाषा घोषित किया गया है और 14 अन्य भाषाओं को मान्यता प्रदान की गई है। ऐसी स्थिति में, देश के प्रशासकों के समक्ष समय-समय पर यह समस्या उपस्थित हुई है कि उच्च शिक्षा का माध्यम—अंग्रेजी, हिन्दी या कोई अन्य भाषा होनी चाहिए?

इस समस्या का समाधान करने के लिए भारत-सरकार ने 1956 में 'भाषा-आयोग" (Language Commission) की नियुक्ति की। "आयोग" ने यह निर्णय किया कि सभी उच्च शिक्षा के माध्यम के रूप में हिन्दी द्वारा अंग्रेजी का स्थान ग्रहण किया जाना असम्भव है। अतः कम-से-कम 1965 तक अंग्रेजी को ही शिक्षा का माध्यम रखा जाय।

1966 में "कोठारी कमीशन" ने "राधाकृष्णन् कमीशन" की सिफ़ारिश को दोहराते हुए, इस बात पर बल दिया कि विश्वविद्यालय-स्तर पर क्षेत्रीय भाषाओं (Regional Languages) को शिक्षा का माध्यम बनाया जाय। साथ ही, उसने यह सुझाव भी दिया कि इन भाषाओं को 10 वर्ष की अवधि में शिक्षा के माध्यम के रूप में ग्रहण कर लिया जाय।[3] किन्तु, श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ने इस सुझाव को यह कह कर तिरस्कृत किया[4] —"यदि हम चाहते हैं कि भारत पृथक् द्वीपों

1. *Radhakrishnan Commission Report*, p 138.
2. *Report on General Education*, p 4
3. *Kothari Commission Report*, p. 649.
4. *C. Rajagopalachari : The Pitfalls of Fourteen Regional Languages, The Hindustan Times*, August 28, 1967.

में विभाजित न हो, तो अंग्रेजी के स्थान पर 14 क्षेत्रीय भाषाओं को स्थापित करना राष्ट्र के लिए बहुत खराब सौदा होगा।"

श्री राजगोपालाचार्य के विरोध के बावजूद भी भारत-सरकार के तत्कालीन शिक्षा-मन्त्री, डा० त्रिगुण सेन ने यह घोषणा की कि उच्च शिक्षा की सब संस्थाओं में क्षेत्रीय भाषाओं को 5 वर्ष की अवधि में शिक्षा का माध्यम बना दिया जाय।[1] किन्तु, अंग्रेजी के उपासकों द्वारा इस घोषणा का इतना जबर्दस्त विरोध किया गया कि अपनी असाधारण दृढ़ता के बावजूद भी डा० सेन उसका सामना न कर सके और उनको अपना त्याग-पत्र देना पड़ा।

शिक्षा के माध्यम के प्रश्न पर अब भी विवाद चल रहा है। इस प्रश्न को लेकर शिक्षाविदों के दो दल बन गए हैं। एक दल अंग्रेजी का समर्थक है और दूसरा—क्षेत्रीय भाषाओं का।

समाधान—शिक्षा का माध्यम, क्षेत्रीय भाषाएँ : **Regional Languages as Medium of Instruction**—शिक्षा के माध्यम की समस्या का समाधान करने का केवल एक उपाय है। वह यह कि क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के पद पर प्रतिष्ठित किया जाय। इसका मुख्य कारण यह है कि व्यक्ति अपनी ही मातृभाषा में दूसरों के विचारों को भली-भाँति समझ सकता है और अपने विचारों को प्रकट कर सकता है।

अतः यह आवश्यक है कि प्रत्येक क्षेत्र के व्यक्तियों की मातृभाषा अर्थात् क्षेत्रीय भाषा को न केवल उच्च शिक्षा के स्तर पर, वरन् सब स्तरों पर शिक्षा का माध्यम बनाया जाय। हमारे राष्ट्रीय नेताओं—टैगोर, नेहरू और गांधीजी का अपने देशवासियों को यही परामर्श था। सम्भवतः इस परामर्श की उपयोगिता से ही प्रभावित होकर "राधाकृष्णन् कमीशन", "कोठारी कमीशन", "भावात्मक एकता-समिति" (Emotional Integration Committee), उपकुलपतियों के सम्मेलन (1967) और भारत-सरकार ने क्षेत्रीय भाषाओं को ही माध्यम के रूप में स्वीकार किया है। यही कारण है कि भारतीय विश्वविद्यालयों में क्षेत्रीय भाषाओं को माध्यम बनाने का कार्यक्रम प्रारम्भ कर दिया गया है। इस समय 35 विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम—क्षेत्रीय भाषाएँ है और 17 विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर-स्तर पर भी क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग किया जा सकता है।"[2]

इस स्थान पर अंग्रेजी के सम्बन्ध में दो शब्द लिख देना सम्भवतः अप्रासंगिक न होगा। यदि हम क्षेत्रीय भाषाओं के मोह में फँसकर, अंग्रेजी से सदैव के लिए अपना नाता तोड़ देंगे, तो यह हमारी बड़ी भयंकर भूल होगी। उच्च शिक्षा की

1. *Times of India*, July 20, 1967.
2. S. N. Mukerji : *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 518.

संस्थाओं में छात्रों को क्षेत्रीय भाषाओं के साथ-साथ अंग्रेजी का अध्ययन करने के लिए भी प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इसका अध्ययन करने से उनके ज्ञान में वृद्धि होगी और फलस्वरूप शिक्षा के स्तर का उन्नयन होगा। हमें अंग्रेजी को दासता का प्रतीक मान कर न तो उससे घृणा करनी चाहिए और न उसे अपने देश की सीमाओं से बाहर निकालने का उद्योग करना चाहिए। इस सम्बन्ध में हमें डा० राधाकृष्णन् के ये शब्द सदैव स्मरण रखने चाहिए :—"हमने भले ही अंग्रेजों को अपने देश से निकाल दिया है, पर उनकी भाषा को नहीं निकाला है, और अंग्रेजी पर केवल अंग्रेजों का ही एकमात्र अधिकार नहीं है।"

We might have banished Englishmen, but not their language, and English is not the monopoly of Englishmen."—Dr. S. Radhakrishnan, *Times of India*, September 6, 1967.

9. समस्या—छात्र-संख्या में वृद्धि · Increase in Number of Students—गत वर्षों में उच्च शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों की संख्या में अति तीव्र गति से वृद्धि हुई है। 1950-51 में विश्वविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या 3 6 लाख, 1960-61 में 8 9 लाख और 1970-71 में लगभग 25·1 लाख थी।[1] भारत ऐसे सीमित साधनों वाले देश के लिए छात्रों की इस निरन्तर बढ़ती हुई संख्या के लिए शिक्षा की सुविधाएँ सुलभ बनाना असम्भव है।

"कोठारी कमीशन" का विचार है कि यदि छात्र-संख्या में इसी गति से वृद्धि होती रही, तो 1985 86 में देश को जितने शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता होगी, उससे उनकी संख्या दूनी होगी।[2] छात्र-संख्या की यह वृद्धि—देश के समस्त शिक्षित व्यक्तियों की बेरोजगारी की दु साध्य समस्या उपस्थित कर देगी।

इस प्रकार, छात्र-संख्या की वृद्धि से दो गम्भीर समस्याएँ सम्बद्ध हैं .—छात्रों की बढ़ती हुई संख्या के लिए शिक्षा की सुविधाओं की व्यवस्था और शिक्षित व्यक्तियों के लिए रोजगारों की व्यवस्था। "कोठारी कमीशन" ने इन दोनों समस्याओं का समाधान असम्भव बताते हुए लिखा है :—"हमारे देश की अर्थ-व्यवस्था न तो इस पैमाने पर उच्च शिक्षा के विस्तार के लिए धन जुटा सकती है और न उसमें लाखों स्नातकों के लिए उपयुक्त रोजगारों की व्यवस्था करने की क्षमता है।"

"An economy like ours can neither have the funds to expand higher education on this scale, nor the capacity to find suitable employment for the millions of graduates."—*Kothari Commission Report*, p 305

---

1. *India*, 1974, p. 50.
2. *Kothari Commission Report*, p. 305.

में विभाजित न हो, तो अंग्रेजी के स्थान पर 14 क्षेत्रीय भाषाओं को स्थापित करना राष्ट्र के लिए बहुत खराब सौदा होगा।"

श्री राजगोपालाचार्य के विरोध के बावजूद भी भारत-सरकार के तत्कालीन शिक्षा-मन्त्री, डा० त्रिगुण सेन ने यह घोषणा की कि उच्च शिक्षा की सब संस्थाओं में क्षेत्रीय भाषाओं को 5 वर्ष की अवधि में शिक्षा का माध्यम बना दिया जाय।[1] किन्तु, अंग्रेजी के उपासकों द्वारा इस घोषणा का इतना जबर्दस्त विरोध किया गया कि अपनी असाधारण दृढ़ता के बावजूद भी डा० सेन उनका सामना न कर सके और उनको अपना त्याग-पत्र देना पड़ा।

शिक्षा के माध्यम के प्रश्न पर अब भी विवाद चल रहा है। इस प्रश्न को लेकर शिक्षाविदों के दो दल बन गए हैं। एक दल अंग्रेजी का समर्थक है और दूसरा—क्षेत्रीय भाषाओं का।

समाधान—शिक्षा का माध्यम, क्षेत्रीय भाषाएँ : Regional Languages as Medium of Instruction—शिक्षा के माध्यम की समस्या का समाधान करने का केवल एक उपाय है। वह यह कि क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के पद पर प्रतिष्ठित किया जाय। इसका मुख्य कारण यह है कि व्यक्ति अपनी ही मातृभाषा में दूसरों के विचारों को भली-भाँति समझ सकता है और अपने विचारों को प्रगट कर सकता है।

अतः यह आवश्यक है कि प्रत्येक क्षेत्र के व्यक्तियों की मातृभाषा अर्थात् क्षेत्रीय भाषा को न केवल उच्च शिक्षा के स्तर पर, वरन् सब स्तरों पर शिक्षा का माध्यम बनाया जाय। हमारे राष्ट्रीय नेताओं—टैगोर, नेहरू और गाँधीजी का अपने देशवासियों को यही परामर्श था। सम्भवतः इस परामर्श की उपयोगिता से ही प्रभावित होकर "राधाकृष्णन् कमीशन", "कोठारी कमीशन", "भावात्मक एकता-समिति" (Emotional Integration Committee), उपकुलपतियों के सम्मेलन (1967) और भारत-सरकार ने क्षेत्रीय भाषाओं को ही माध्यम के रूप में स्वीकार किया है। यही कारण है कि भारतीय विश्वविद्यालयों में क्षेत्रीय भाषाओं को माध्यम बनाने का कार्यक्रम प्रारम्भ कर दिया गया है। "इस समय 35 विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम—क्षेत्रीय भाषाएँ हैं और 17 विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर-स्तर पर भी क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग किया जा सकता है।"[2]

इस स्थान पर अंग्रेजी के सम्बन्ध में दो शब्द लिख देना सम्भवतः अप्रासंगिक न होगा। यदि हम क्षेत्रीय भाषाओं के मोह में फँसकर, अंग्रेजी से सदैव के लिए अपना नाता तोड़ देंगे, तो यह हमारी बड़ी भयंकर भूल होगी। उच्च शिक्षा की

1. *Times of India*, July 20, 1967.
2. S. N. Mukerji : *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 518.

में विभाजित न हो, तो अंग्रेजी के स्थान पर 14 क्षेत्रीय भाषाओं को स्थापित करना राष्ट्र के लिए बहुत खराब सौदा होगा।"

श्री राजगोपालाचार्य के विरोध के बावजूद भी भारत-सरकार के तत्कालीन शिक्षा-मन्त्री, डा० त्रिगुण सेन ने यह घोषणा की कि उच्च शिक्षा की सब संस्थाओं में क्षेत्रीय भाषाओं को 5 वर्ष की अवधि में शिक्षा का माध्यम बना दिया जाय।[1] किन्तु, अंग्रेजी के उपासकों द्वारा इस घोषणा का इतना जबर्दस्त विरोध किया गया कि अपनी असाधारण दृढ़ता के बावजूद भी डा० सेन उसका सामना न कर सके और उनको अपना त्याग-पत्र देना पड़ा।

शिक्षा के माध्यम के प्रश्न पर अब भी विवाद चल रहा है। इस प्रश्न को लेकर शिक्षाविदों के दो दल बन गए हैं। एक दल अंग्रेजी का समर्थक है और दूसरा—क्षेत्रीय भाषाओं का।

समाधान—शिक्षा का माध्यम, क्षेत्रीय भाषाएँ : Regional Languages as Medium of Instruction—शिक्षा के माध्यम की समस्या का समाधान करने का केवल एक उपाय है। वह यह कि क्षेत्रीय भाषाओं को शिक्षा के माध्यम के पद पर प्रतिष्ठित किया जाय। इसका मुख्य कारण यह है कि व्यक्ति अपनी ही मातृभाषा में दूसरों के विचारों को भली-भाँति समझ सकता है और अपने विचारों को प्रकट कर सकता है।

अतः यह आवश्यक है कि प्रत्येक क्षेत्र के व्यक्तियों की मातृभाषा अर्थात् क्षेत्रीय भाषा को न केवल उच्च शिक्षा के स्तर पर, वरन् सब स्तरों पर शिक्षा का माध्यम बनाया जाय। हमारे राष्ट्रीय नेताओं—टैगोर, नेहरू और गांधीजी का अपने देशवासियों को यही परामर्श था। सम्भवतः इस परामर्श की उपयोगिता से ही प्रभावित होकर "राधाकृष्णन् कमीशन", "कोठारी कमीशन", "भावात्मक एकता-समिति" (Emotional Integration Committee), उपकुलपतियों के सम्मेलन (1967) और भारत-सरकार ने क्षेत्रीय भाषाओं को ही माध्यम के रूप में स्वीकार किया है। यही कारण है कि भारतीय विश्वविद्यालयों में क्षेत्रीय भाषाओं को माध्यम बनाने का कार्यक्रम प्रारम्भ कर दिया गया है। इस समय 35 विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम—क्षेत्रीय भाषाएँ हैं और 17 विश्वविद्यालयों में स्नातकोत्तर-स्तर पर भी क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग किया जा सकता है।"[2]

इस स्थान पर अंग्रेजी के सम्बन्ध में दो शब्द लिख देना सम्भवतः अप्रासंगिक न होगा। यदि हम क्षेत्रीय भाषाओं के मोह में फँसकर, अंग्रेजी से सदैव के लिए अपना नाता तोड़ देंगे, तो यह हमारी बड़ी भयंकर भूल होगी। उच्च शिक्षा की

1. *Times of India*, July 20, 1967.
2. S. N. Mukerji : *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 518.

समाधान—कुछ सुझाव : Some Suggestions—छात्रों की बढ़ती हुई संख्या से उत्पन्न होने वाली उपर्युक्त समस्याओं का समाधान करने के लिए, "कोठारी कमीशन" ने 3 सुझाव दिए हैं, यथा :—

1. चयनात्मक प्रवेश-प्रणाली का प्रयोग।
2. स्नातक-पूर्व स्तर पर कला एवं वाणिज्य की कक्षाओं में छात्र-संख्या की वृद्धि पर अंकुश।
3. स्नातक-पूर्व स्तर पर कृषि, शिक्षण और इंजीनियरिंग की शिक्षा की व्यवस्था।

जहाँ तक दूसरे और तीसरे सुझाव का प्रश्न है, शिक्षा-मर्मज्ञों में किसी प्रकार का मतभेद नहीं है। परन्तु, पहले सुझाव के सम्बन्ध में उनमें मतैक्यता नहीं है। कुछ शिक्षा-विशेषज्ञों ने "चयनात्मक प्रवेश-प्रणाली" का जोरदार विरोध करते हुए कहा है कि प्रजातन्त्र की सुदृढ़ता की दृष्टि से नवयुवकों की उच्च शिक्षा पर प्रतिबन्ध लगाना सर्वथा अनुचित है। उनके विपरीत, इस "प्रणाली" के समर्थकों ने इसके पक्ष में 2 अकाट्य तर्क दिए हैं। पहला, उच्च शिक्षा में होने वाले विशाल अपव्यय को रोकने और इस शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए "चयनात्मक प्रवेश-प्रणाली" का प्रयोग किया जाना आवश्यक है। दूसरा, उच्च शिक्षा की संस्थाओं में उन्हीं छात्रों को प्रवेश दिया जाना चाहिए, जिनमें उसे प्राप्त करने की योग्यता है और जिनके लिए वह जीवन में उपयोगी सिद्ध हो।

"चयनात्मक प्रवेश-प्रणाली" को "केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड" और "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" के भूतपूर्व अध्यक्ष, डा० देशमुख का पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ है। डा० देशमुख ने इस "प्रणाली" का देश के लिए शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता एवं उपलब्ध-आर्थिक साधनों के आधार पर समर्थन करते हुए कहा है :—"यदि उच्च शिक्षा के लिए उपलब्ध सीमित साधनों की अपव्यय से रक्षा की जानी है, तो विश्वविद्यालयों में छात्रों को चयन के आधार पर ही प्रवेश दिया जाना चाहिए।"

"Admission to universities should be on a Selective Basis if the limited resources available for higher education are not to be frittered away."—Dr. C. D Deshmukh, Chairman, U. G. C. 1960.

10. समस्या—शिक्षा का निम्न स्तर : Low Standard of Education—हमें बहुधा यह सुनाई देता है कि आज की शिक्षा से पहले की शिक्षा कहीं ज्यादा अच्छी थी। पहले बी० ए० पास व्यक्ति बहुत अच्छी अंग्रेजी लिखता और बोलता था, पर आज के एम० ए० पास व्यक्ति को न तो अंग्रेजी आती है और न हिन्दी। इससे सिद्ध होता है कि हमारे देश में उच्च शिक्षा का स्तर पहले से बहुत अधिक गिर गया

समाधान—कुछ सुझाव : Some Suggestions—छात्रों की बढ़ती हुई संख्या से उत्पन्न होने वाली उपर्युक्त समस्याओं का समाधान करने के लिए, "कोठारी कमीशन" ने 3 सुझाव दिए हैं, यथा :—

1. चयनात्मक प्रवेश-प्रणाली का प्रयोग।
2. स्नातक-पूर्व स्तर पर कला एवं वाणिज्य की कक्षाओं में छात्र-संख्या की वृद्धि पर अंकुश।
3. स्नातक-पूर्व स्तर पर कृषि, शिक्षण और इंजीनियरिंग की शिक्षा की व्यवस्था।

जहाँ तक दूसरे और तीसरे सुझाव का प्रश्न है, शिक्षा-मर्मज्ञों में किसी प्रकार का मतभेद नहीं है। परन्तु, पहले सुझाव के सम्बन्ध में उनमें मतैक्यता नहीं है। कुछ शिक्षा-विशेषज्ञों ने "चयनात्मक प्रवेश-प्रणाली" का जोरदार विरोध करते हुए कहा है कि प्रजातन्त्र की सुदृढ़ता की दृष्टि से नवयुवकों की उच्च शिक्षा पर प्रतिबन्ध लगाना सर्वथा अनुचित है। उनके विपरीत, इस "प्रणाली" के समर्थकों ने इसके पक्ष में 2 अकाट्य तर्क दिए हैं। पहला, उच्च शिक्षा में होने वाले विशाल अपव्यय को रोकने और इस शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए "चयनात्मक प्रवेश-प्रणाली" का प्रयोग किया जाना आवश्यक है। दूसरा, उच्च शिक्षा की संस्थाओं में उन्हीं छात्रों को प्रवेश दिया जाना चाहिए, जिनमें उसे प्राप्त करने की योग्यता है और जिनके लिए वह जीवन में उपयोगी सिद्ध हो।

"चयनात्मक प्रवेश-प्रणाली" को "केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड" और "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" के भूतपूर्व अध्यक्ष, डा० देशमुख का पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ है। डा० देशमुख ने इस "प्रणाली" का देश के लिए शिक्षित व्यक्तियों की आवश्यकता एवं उपलब्ध-आर्थिक साधनों के आधार पर समर्थन करते हुए कहा है :— "यदि उच्च शिक्षा के लिए उपलब्ध सीमित साधनों की अपव्यय से रक्षा की जानी है, तो विश्वविद्यालयों में छात्रों को चयन के आधार पर ही प्रवेश दिया जाना चाहिए।"

"Admission to universities should be on a Selective Basis if the limited resources available for higher education are not to be frittered away."—Dr. C. D. Deshmukh, Chairman, U. G. C., 1960.

10. समस्या—शिक्षा का निम्न स्तर : Low Standard of Education—हमें बहुधा यह सुनाई देता है कि आज की शिक्षा से पहली शिक्षा कहीं ज्यादा अच्छी थी। पहले बी० ए० पास व्यक्ति बहुत अच्छी अंग्रेजी लिखना और बोलना था, पर आज के एम० ए० पास व्यक्ति को न तो अंग्रेजी आती है और न हिन्दी। इससे सिद्ध होता है कि हमारे देश में उच्च शिक्षा का स्तर पहले से बहुत अधिक गिर गया

है। इस पर चिन्ता प्रकट करते हुए, आयंगर ने लिखा है :—"हमारे ज्ञान या शिक्षण का स्तर वैसे तो कभी भी ऊँचा नहीं था, पर अब तो वह तीव्र गति से नीचे की ओर जा रहा है।"

"Our standards whether in scholarship or teaching never very high or exacting, are now fast racing to the bottom."—K. R. Y. Iyengar : *A New Deal for Our Universities*, p. 29.

वस्तुतः जब किसी वस्तु का स्तर एक बार गिरना आरम्भ हो जाता है, तब वह फिर अपने पुराने स्तर पर नहीं पहुँच पाती है। यही बात उच्च शिक्षा के विषय में कही जा सकती है। इसका स्तर वर्षों से निरन्तर गिरता चला जा रहा है, और इसलिए इसका अपनी पूर्व स्थिति को पुनः प्राप्त करना असम्भव प्रतीत होता है। इसका कारण बताते हुए, डा० मुकर्जी ने लिखा है :—"शिक्षा का स्तर एक बार गिर जाने पर फिर ऊँचा नहीं उठता है, क्योंकि उस पर ग्रेशम का नियम लागू हो जाता है।"

"Academic standards once lowered are not retrievable, and Gresham's law is applicable to them" - S N. Mukerji : *Administration of Education in India*, p 231

समाधान—कुछ सुझाव Some Suggestions—यद्यपि डा० मुकर्जी के अनुसार, उच्च शिक्षा को अपने पूर्व स्तर पर नहीं पहुँचाया जा सकता है, पर यदि इस कार्य को धैर्य, लगन और परिश्रम से किया जाय, तो इसमें सफलता अवश्य प्राप्त हो सकती है। इसी विश्वास से बल प्राप्त करके, शिक्षा-स्तर के गिरावट के प्रमुख कारणों और उनके निवारण के उपायों की चर्चा की जा रही है, यथा :—

1. कारण—प्रवेश-नीति में असमानता—शिक्षा-स्तर के गिरावट का पहला कारण—विश्वविद्यालयों की प्रवेश-नीति में असमानता है। उदाहरणार्थ—आन्ध्र और अन्नामलाई विश्वविद्यालयों में "प्री-यूनीवर्सिटी क्लास" में प्रवेश की न्यूनतम आयु $14\frac{1}{2}$ वर्ष है। दिल्ली, बड़ोदा और गुजरात में यह आयु 15 वर्ष है। मद्रास, कर्नाटक, कुरुक्षेत्र और जादवपुर विश्वविद्यालयों में "त्रिवर्षीय डिग्री पाठ्यक्रम' में प्रवेश की न्यूनतम आयु $15\frac{1}{2}$ वर्ष है।

प्रवेश-नीति में समानता न होने के कारण अपरिपक्व अवस्था वाले छात्रों को विश्वविद्यालयों में प्रवेश मिल जाता है। इसका प्रत्यक्ष प्रभाव—शिक्षा के स्तर पर पड़ता है और वह गिर जाता है।

उपचार—प्रवेश-नीति में समानता—शिक्षा-स्तर का उन्नयन करने के लिए सब विश्वविद्यालयों में प्रवेश-नीति का समान होना आवश्यक है। उनमें केवल परिपक्व अवस्था वाले छात्रों को ही प्रवेश दिया जाना चाहिए। "केन्द्री[illegible]

recommends the pattern of 5+3+4, meaning five years of primary education, followed by 3 years of junior or lower secondary and 4 years of higher secondary stage."—The All-India Secondary Teachers' Federation, Seminar on Secondary Education, 1962.

1963-64 में होने वाले राज्यों के "शिक्षा-मंत्रियों के सम्मेलन" ने 11 वर्षीय विद्यालय-शिक्षा के विचार को अस्वीकार किया। 1966 में "कोठारी-कमीशन" ने 12 वर्ष की विद्यालय-शिक्षा का अनुमोदन किया (7 वर्ष की प्राथमिक शिक्षा और 5 वर्ष की माध्यमिक शिक्षा)।

12 वर्षीय विद्यालय-शिक्षा की योजना पर इतना अधिक बल दिए जाने के बावजूद भी अनेक राज्यों में इस योजना की प्रत्यक्ष अवहेलना की जा रही है। फलतः मानसिक परिपक्वता से पूर्व ही छात्रों को विश्वविद्यालयों में प्रवेश मिल जाता है। इन छात्रों में उच्च अध्ययन की क्षमता का विकास नहीं हो पाता है। परिणामतः शिक्षा का स्तर गिर जाता है।

उपचार—12 वर्षीय विद्यालय-शिक्षा-योजना का कार्यान्वयन—सब राज्यों में 12 वर्षीय विद्यालय-शिक्षा की योजना का अनिवार्य रूप से कार्यान्वयन किया जाना चाहिए। भारत-सरकार द्वारा यह नियम बना दिया जाना चाहिए कि 12 वर्ष की विद्यालय-शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों को ही विश्वविद्यालयों में प्रवेश दिया जाय। इन छात्रों की मानसिक शक्तियों का पर्याप्त विस्तार हो जाता है। अतः उनको विभिन्न विषयों का उच्च अध्ययन करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होगी। फलस्वरूप, शिक्षा-स्तर के गिरावट की आशंका समाप्त हो जायगी।

5. कारण—शिक्षण का निम्न स्तर—शिक्षा-स्तर के गिरावट का सर्वप्रधान कारण—शिक्षण का निम्न स्तर है। इसका उत्तरदायित्व मुख्यतः अध्यापकों पर है, जो कक्षा-शिक्षण में व्याख्यान-विधि के अतिरिक्त भूल कर भी किसी अन्य विधि का प्रयोग नहीं करते हैं। पर आखिर वे इस विधि का प्रयोग करते क्यों हैं? इसका एकमात्र कारण है—इस विधि की सरलता। यह देखा गया है कि प्रत्येक अध्यापक अपने सेवा-काल के शुरू के प्रारम्भिक वर्षों में परिश्रम करके, अपने व्याख्यानों को तैयार कर लेता है। तदुपरान्त, वह उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन या नवीनीकरण किए बिना अवकाश ग्रहण करने के समय तक उनको कक्षा में दोहराता रहता है। शिक्षण की सबसे सरल विधि है। इसका प्रयोग करके, शिक्षक अपनी शक्ति, समय एवं परिश्रम की बचत करता है और आराम से अपने दिन गुजारता है।

व्याख्यान-विधि किसी समय उपयोगी थी, पर अब इसकी उपयोगिता नष्ट हो चुकी है। इसका कारण सेमुअल जॉनसन के शब्दों में सुनिए :—"व्याख्यान किसी समय लाभप्रद थे, पर अब जबकि सब व्यक्ति पढ़ सकते हैं और पुस्तकें इतनी विशाल संख्या में हैं, व्याख्यान अनावश्यक हो गये हैं।"

"Lectures were once useful, but now when all can read, and books are so numerous, lectures are unnecessary."—Samual Johnson. Quoted in Boswell's *Life of Johnson*.

छात्रों की दृष्टि से व्याख्यान-विधि की जितनी कड़ी निन्दा की जाय, उतनी ही कम है। वे या तो निष्क्रिय श्रोताओं के समान कक्षा में बैठे रहते हैं, या चुपचाप बाहर खिसक कर मनोरंजन की खोज करते हैं। दोनों प्रकार के छात्रों को अध्यापक के व्याख्यानों से रंचमात्र भी लाभ नहीं होता है। अतः उनके ज्ञान की वृद्धि की *आशा करना व्यर्थ है, पर उनके शैक्षिक स्तर के गिरावट की आशा करना व्यर्थ* नहीं है।

उपचार—शिक्षण में सुधार—"शिक्षा-आयोग" ने शिक्षण में सुधार किए जाने पर बल देते हुए लिखा है :—"उच्च शिक्षा में किए जाने वाले सबसे अधिक आवश्यक सुधारों में से एक यह है कि शिक्षण में सुधार किया जाय।"

"One of the most important reforms needed in higher education is to improve teaching."—*Education Commission Report*, p. 286.

"शिक्षा-आयोग" ने शिक्षण में सुधार करने के लिए अनेक महत्वपूर्ण उपायों का उल्लेख किया है, यथा :—औपचारिक कक्षा-कार्य के समय में कमी, बचने वाले समय का ट्यूटोरियल कार्य एवं विचार-गोष्ठियों में प्रयोग, छात्रों द्वारा स्वतन्त्र अध्ययन, छात्रों की रटने की प्रवृत्ति का दमन, छात्रों को मौलिक चिन्तन एवं समस्या-समाधान के लिए प्रोत्साहन, प्रयोगशाला-कार्य पर बल, उत्तम पुस्तकालयों की व्यवस्था, छात्रों द्वारा पुस्तकालयों का अधिक प्रयोग, इत्यादि।

केरल विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति डा० के० सी० राजा का एक प्रशंसनीय सुझाव यह है कि कॉलिजों और विश्वविद्यालयों में प्रथम बार नियुक्त किए जाने वाले शिक्षकों के लिए सेवा-पूर्व प्रशिक्षण (Pre Service Training) की व्यवस्था की जाय। इस प्रशिक्षण में उनको अपने विभागों के संचालन, शिक्षण की उपयोगी विधियों और अपने छात्रों को ज्ञान-प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित करने के विविध उपायों से अवगत कराया जाय। इस प्रशिक्षण की आवश्यकता बताते हुए, डा० राजा ने कहा —"यह धारणा अनुचित प्रतीत होती है कि एम० ए० की परीक्षा में प्रथम या द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण होने वाले व्यक्ति में अपने विषय की शिक्षा देने की पर्याप्त योग्यता होती है। उसे सेवा-पूर्व प्रशिक्षण की आवश्यकता है।"

"The assumption that a man with a first or second class M. A in his own subject is adequately equipped for teaching that subject seems hardly justified He needs pre service training "—Dr. K. C. Raja "The Changing University", *A Symposium, Educational Quarterly*, December, 1962, p. 219.

recommends the pattern of 5+3+4, meaning five years of primary education, followed by 3 years of junior or lower secondary and 4 years of higher secondary stage."—The All-India Secondary Teachers' Federation, Seminar on Secondary Education, 1962.

1963-64 में होने वाले राज्यों के "शिक्षा-मंत्रियों के सम्मेलन" ने 11 वर्षीय विद्यालय-शिक्षा के विचार को अस्वीकार किया। 1966 में "कोठारी-कमीशन" ने 12 वर्ष की विद्यालय-शिक्षा का अनुमोदन किया (7 वर्ष की प्राथमिक शिक्षा और 5 वर्ष की माध्यमिक शिक्षा)।

12 वर्षीय विद्यालय-शिक्षा की योजना पर इतना अधिक बल दिए जाने के बावजूद भी अनेक राज्यों में इस योजना की प्रत्यक्ष अवहेलना की जा रही है। फलतः मानसिक परिपक्वता से पूर्व ही छात्रों को विश्वविद्यालयों में प्रवेश मिल जाता है। इन छात्रों में उच्च अध्ययन की क्षमता का विकास नहीं हो पाता है। परिणामतः शिक्षा का स्तर गिर जाता है।

उपचार—12 वर्षीय विद्यालय-शिक्षा-योजना का कार्यान्वयन—सब राज्यों में 12 वर्षीय विद्यालय-शिक्षा की योजना का अनिवार्य रूप से कार्यान्वयन किया जाना चाहिए। भारत-सरकार द्वारा यह नियम बना दिया जाना चाहिए कि 12 वर्ष की विद्यालय-शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों को ही विश्वविद्यालयों में प्रवेश दिया जाय। इन छात्रों की मानसिक शक्तियों का पर्याप्त विस्तार हो जाता है। अतः उनको विभिन्न विषयों का उच्च अध्ययन करने में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं होगी। फलस्वरूप, शिक्षा-स्तर के गिरावट की आशंका समाप्त हो जायगी।

5. कारण—शिक्षण का निम्न स्तर—शिक्षा-स्तर के गिरावट का सर्वप्रधान कारण—शिक्षण का निम्न स्तर है। इसका उत्तरदायित्व मुख्यतः अध्यापकों पर है, जो कक्षा-शिक्षण में व्याख्यान-विधि के अतिरिक्त भूल कर भी किसी अन्य विधि का प्रयोग नहीं करते हैं। पर आखिर वे इस विधि का प्रयोग करते क्यों हैं? इसका एक-मात्र कारण है—इस विधि की सरलता। यह देखा गया है कि प्रत्येक अध्यापक अपने सेवा-काल के थोड़े से प्रारम्भिक वर्षों में परिश्रम करके, अपने व्याख्यानों को तैयार कर लेता है। तदुपरान्त, वह उनमें किसी प्रकार का परिवर्तन या नवीनीकरण किए बिना अवकाश ग्रहण करने के समय तक उनको कक्षा में दोहराता रहता है। शिक्षण की कितनी सरल विधि है। इसको प्रयोग करके, शिक्षक अपनी शक्ति, समय एवं परिश्रम की बचत करता है और आराम से अपने दिन गुजारता है।

व्याख्यान-विधि किसी समय उपयोगी थी, पर अब इसकी उपयोगिता नष्ट हो चुकी है। इसका कारण सेमुअल जॉनसन के शब्दों में सुनिए :—"व्याख्यान किसी समय लाभप्रद थे, पर अब जबकि सब व्यक्ति पढ़ सकते हैं और पुस्तकें इतनी विशाल संख्या में हैं, व्याख्यान अनावश्यक हो गये हैं।"

"Lectures were once useful, but now when all can read, and books are so numerous, lectures are unnecessary."—Samual Johnson. Quoted in Boswell's *Life of Johnson*.

छात्रों की दृष्टि से व्याख्यान-विधि की जितनी कड़ी निन्दा की जाय, उतनी ही कम है। वे या तो निष्क्रिय श्रोताओं के समान कक्षा में बैठे रहते हैं, या चुपचाप बाहर खिसक कर मनोरंजन की खोज करते हैं। दोनों प्रकार के छात्रों को अध्यापक के व्याख्यानों से रत्तीमात्र भी लाभ नहीं होता है। अतः उनके ज्ञान की वृद्धि की आशा करना व्यर्थ है, पर उनके मानसिक स्तर के गिरावट की आशा करना व्यर्थ नहीं है।

उपचार—शिक्षण में सुधार—"शिक्षा-आयोग" ने शिक्षण में सुधार किए जाने पर बल देते हुए लिखा है —"उच्च शिक्षा में किए जाने वाले सबसे अधिक आवश्यक सुधारों में से एक यह है कि शिक्षण में सुधार किया जाय।"

"One of the most important reforms needed in higher education is to improve teaching."—*Education Commission Report*, p. 286.

"शिक्षा-आयोग" ने शिक्षण में सुधार करने के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण उपायों का उल्लेख किया है, यथा —औपचारिक कक्षा-कार्य के समय में कमी, बचने वाले समय का ट्यूटोरियल कार्य एवं विचार-गोष्ठियों में प्रयोग, छात्रों द्वारा स्वतन्त्र अध्ययन, छात्रों की रटने की प्रवृत्ति का दमन, छात्रों को मौलिक चिन्तन एवं समस्या-समाधान के लिए प्रोत्साहन, प्रयोगशाला-कार्य पर बल, उत्तम पुस्तकालयों की व्यवस्था, छात्रों द्वारा पुस्तकालयों का अधिक प्रयोग, इत्यादि।

केरल विश्वविद्यालय के भूतपूर्व उपकुलपति डा० के० सी० राजा का एक प्रशंसनीय सुझाव यह है कि कालिजों और विश्वविद्यालयों में प्रथम बार नियुक्त कि जाने वाले शिक्षकों के लिए सेवा-पूर्व प्रशिक्षण (Pre Service Training) व्यवस्था की जाय। इस प्रशिक्षण में उनको अपने विभागों के सञ्चालन, शिक्षण उपयोगी विधियों और अपने छात्रों को ज्ञान-प्राप्ति के लिए प्रोत्साहित करने के वि उपायों से अवगत कराया जाय। इस प्रशिक्षण की आवश्यकता बताते हुए, डा० ने कहा :—"यह धारणा अनुचित प्रतीत होती है कि एम० ए० की परीक्षा में या द्वितीय श्रेणी में उत्तीर्ण होने वाले व्यक्ति में अपने विषय की शिक्षा देने पर्याप्त योग्यता होती है। उसे सेवा-पूर्व प्रशिक्षण की आवश्यकता है।"

"The assumption that a man with a first or second M. A in his own subject is adequately equipped for teachin subject seems hardly justified He needs pre service trainin Dr. K C Raja "The Changing University", *A Symposium*, nal *Quarterly*, December, 1962, P 219

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Write a brief commentary on the development of University Education in India since 1947. Do you think the development satisfactory ? If not, suggest ways to improve our university education.

   भारतवर्ष में सन् 1947 ई० से अब तक विश्वविद्यालय-शिक्षा के विकास पर एक संक्षिप्त आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए। क्या इस विकास को आप संतोषजनक समझते हैं ? यदि नहीं, तो हमारी विश्वविद्यालय-शिक्षा को समुन्नत करने के लिए सुझाव दीजिए।

2. What are the main defects of University Education in India ? What reforms have been suggested by the Kothari Commission of 1964 to improve University Education ?

   भारत में विश्वविद्यालय-शिक्षा के प्रमुख दोष क्या हैं ? 1964 के कोठारी आयोग ने विश्वविद्यालय-शिक्षा को उन्नत बनाने के लिए किन सुधारों का सुझाव दिया है ?

3. "There has been the 'Open-door' policy of admissions to Colleges and Universities for higher education in our country which has led to an overproduction of graduates". Discuss this statement enlightening upon the various problems that have cropped up due to the policy. Also discuss the suggestions or recommendations of the Kothari Commission to meet this growing heavy rush for admissions to Higher Education.

   "हमारे देश के महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा के लिए प्रवेश हेतु खुले द्वार की नीति रही है जिससे स्नातकों की भारी भीड़ को जन्म मिला है।" इस कथन की विवेचना इस नीति के कारण उत्पन्न हुई विविध समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए कीजिए। यह भी बताइए कि उच्च शिक्षा में प्रवेश पाने हेतु इस निरन्तर बढ़ती हुई भीड़ की समस्या के विषय में कोठारी आयोग ने क्या सुझाव दिए हैं ?

26

शिक्षक-शिक्षा (प्रशिक्षण)

TEACHER EDUCATION (TRAINING)

"Investment in teacher-education can yield very rich dividends, because the financial resources required are small when measured against the resulting improvements in the education of millions."—*Kothari Commission Report.*

विषय-प्रवेश

भारत में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण संसार में शिक्षण को एक उदात्त व्यवसाय माना गया है। मानव-इतिहास की श्रेष्ठतम् विभूतियों ने इस व्यवसाय को अपनाया है। समस्त युगों के समस्त धार्मिक नेताओं और समाज-सुधारकों ने इस व्यवसाय को अंगीकार करके, इसके गौरव में अभिवृद्धि की है। बुद्ध, ईसा, गांधी, सुकरात, मुहम्मद, कन्फ्यूशियस—ये सभी सच्चे अर्थ में मानव-जाति के शिक्षक थे। उन्होंने अपने समय के सामान्य व्यक्तियों द्वारा जीवन में स्वीकार किए जाने वाले मानदण्डों का साहस और ईमानदारी से विश्लेषण किया और उनको उच्चतर जीवन के आदर्श एवं कल्पना से परिचित कराया। उनकी महानता इस बात में है कि वे अपनी इस कल्पना को साकार बनाने में तन-मन से जुटे रहे और उन्होंने इस कार्य में विलीन होकर, स्वयं अपने व्यक्तित्व की गहराइयों में लोकोत्तर शक्तियाँ खोज निकालीं।

हमारे इस युग के शिक्षक भी इन महात्माओं के चरण-चिह्नों का अनुगमन *करके, अपने देश एवं राष्ट्र के लिए अधिक उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकते* हैं। इसीलिए, आज के शिक्षक को बालकृष्ण जोशी का यह परामर्श है :—'शिक्षक को अपने को केवल श्रमजीवी नहीं समझना चाहिए, जिसका कार्य 10 बजे आरम्भ

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Write a brief commentary on the development of University Education in India since 1947. Do you think the development satisfactory ? If not, suggest ways to improve our university education.
   भारतवर्ष में सन् 1947 ई० से अब तक विश्वविद्यालय-शिक्षा के विकास पर एक संक्षिप्त आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए। क्या इस विकास को आप संतोषजनक समझते हैं ? यदि नहीं, तो हमारी विश्वविद्यालय-शिक्षा को समुन्नत करने के लिए सुझाव दीजिए।
2. What are the main defects of University Education in India ? What reforms have been suggested by the Kothari Commission of 1964 to improve University Education ?
   भारत में विश्वविद्यालय-शिक्षा के प्रमुख दोष क्या हैं ? 1964 के कोठारी आयोग ने विश्वविद्यालय-शिक्षा को उन्नत बनाने के लिए किन सुधारों का सुझाव दिया है ?
3. "There has been the 'Open-door' policy of admissions to Colleges and Universities for higher education in our country which has led to an overproduction of graduates". Discuss this statement enlightening upon the various problems that have cropped up due to the policy. Also discuss the suggestions or recommendations of the Kothari Commission to meet this growing heavy rush for admissions to Higher Education.
   "हमारे देश के महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा के लिए प्रवेश हेतु खुले द्वार की नीति रही है जिसने स्नातकों की भारी भीड़ को जन्म दिया है।" इस कथन की विवेचना इस नीति के कारण उत्पन्न हुई विविध समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए कीजिए। यह भी बताइए कि उच्च शिक्षा में प्रवेश चाहने हेतु इस निरन्तर बढ़ती हुई भीड़ की समस्या के विषय में कोठारी आयोग ने क्या सुझाव दिए हैं ?

26

शिक्षक-शिक्षा (प्रशिक्षण)

TEACHER EDUCATION (TRAINING)

"Investment in teacher-education can yield very rich dividends, because the financial resources required are small when measured against the resulting improvements in the education of millions."—*Kothari Commission Report.*

विषय-प्रवेश

भारत में ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण समाज में शिक्षण को एक उदात्त व्यवसाय माना गया है। मानव-इतिहास की श्रेष्ठतम् विभूतियों ने इस व्यवसाय को अपनाया है। समस्त युगों के समस्त धार्मिक नेताओं और समाज सुधारकों ने इस व्यवसाय को अंगीकार करके, इसके गौरव में अभिवृद्धि की है। बुद्ध, ईसा, गांधी, सुकरात, मुहम्मद, कनफ्यूशियस—ये सभी सच्चे अर्थ में मानव-जाति के शिक्षक थे। उन्होंने अपने समय के सामान्य व्यक्तियों द्वारा जीवन में स्वीकार किए जाने वाले मानदण्डों का साहस और ईमानदारी से विश्लेषण किया और उनको उच्चतर जीवन के आदर्श एवं कल्पना से परिचित कराया। उनकी महानता इस बात में है कि वे अपनी इस कल्पना को साकार बनाने में तन-मन से जुटे रहे और उन्होंने इस कार्य में विलीन होकर, स्वयं अपने व्यक्तित्व की गहराइयों से लोकोत्तर शक्तियाँ खोज निकालीं।

हमारे इस युग के शिक्षक भी इन महात्माओं के चरण-चिह्नों का अनुगमन करके, अपने देश एवं राष्ट्र के लिए अधिक उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर सकते हैं। इसीलिए, आज के शिक्षक को बालकृष्ण जोशी का यह परामर्श है :—'शिक्षक को अपने को केवल श्रमजीवी नहीं समझना चाहिए, जिसका कार्य 10 बजे आरम्भ

होता है और 4 बजे समाप्त होता है, जब वह अपने पैरों की धूल झाड़कर, जीविका प्रदान करने वाली विद्यालय रूपी फैक्ट्री से बाहर जा सकता है।"

"A teacher must not regard himself as a mere wage-earner, whose job begins at 10 a. m. and ends at 4 p. m, when he can shake the dust off his feet and walk out of the bread-giving factory."
—S. Balakrishna Joshi : *Education in Practice*, p. 100.

शिक्षण के उदात्त व्यवसाय के विषय में इन थोड़े-से शब्दों के बाद हम शिक्षक-शिक्षा के उद्भव एवं विकास का वर्णन प्रस्तुत कर रहे हैं।

शिक्षक-शिक्षा का उद्भव व विकास
Origin & Development of Teacher-Education

स्वतन्त्र भारत में जिसे "शिक्षक-शिक्षा" की संज्ञा दी गई है, उसे उससे पूर्व "शिक्षक-प्रशिक्षण" कहा जाता था। शिक्षक-प्रशिक्षण का उद्भव प्राचीन भारत में माना जाता है। उस समय से आज तक इसका विकास 4 अस्पष्ट चरणों में हुआ है; यथा[1] :—

1. छात्राध्यापक-पद्धति : Pupil-Teacher System.
2. शिष्यता-पद्धति : System of Apprenticeship.
3. शिक्षक-प्रशिक्षण : Teacher-Training.
4. शिक्षक-शिक्षा : Teacher-Education.

हम निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत शिक्षक-शिक्षा और शिक्षक-प्रशिक्षण के उद्भव एवं विकास पर विहंगम दृष्टिपात कर रहे हैं।

प्राचीन काल में शिक्षक-प्रशिक्षण

हमें "महाभारत" के समान प्राचीन ग्रंथों में शिक्षक के गुणों एवं सफल शिक्षण-विधियों का वर्णन तो मिलता है, पर शिक्षक-प्रशिक्षण का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। किन्तु, इसका अभिप्राय यह कदापि नहीं है कि प्राचीन भारत में शिक्षक-प्रशिक्षण की कोई व्यवस्था थी ही नहीं। वस्तुतः उस सुदूर अतीत में भी शिक्षक-प्रशिक्षण की पद्धति प्रचलित थी। हम अपने इस कथन की पुष्टि निम्नांकित वर्णन से कर रहे हैं।

प्राचीन भारत में शिक्षा केवल उच्च वर्गों के व्यक्तियों तक ही सीमित थी। अतः सामान्य रूप से शिक्षकों के पास कम छात्रों का होना स्वाभाविक था। ऐसी स्थिति में वे अपने छात्रों के प्रति व्यक्तिगत ध्यान देते थे और उनकी सम्पूर्ण शिक्षा उनके शिक्षकों के व्यक्तिगत निर्देशन में होती थी। परन्तु, कुछ शिक्षकों की ख्याति

1. S. N. Mukerji : *Education in India, Today & Tomorrow*, pp. 362 & 365.

एवं कुशलता के कारण उनके पास ज्ञानार्जन के लिए इतने अधिक छात्र आते थे कि उनके लिए प्रत्येक छात्र का व्यक्तिगत रूप से निर्देशन करना असम्भव था। अतः वे शिक्षण-कार्य में छात्रों की सहायता एवं सहयोग प्राप्त करते थे। ये छात्र—शिक्षण-कार्य किस प्रकार करते थे, इस विषय में डा० श्रीधरनाथ मुखोपाध्याय ने लिखा है[1] :—"आचार्य या गुरु सबसे ऊपर के वर्गों के छात्रों को पढ़ाते थे। ये विद्यार्थी अपने से निम्न वर्ग के छात्रों को सिखाते थे, और वे अपने से नीचे वालों को।"

आचार्य—शिक्षण-कार्य के लिए जिन विद्यार्थियों का चयन करते थे, वे अपनी कक्षाओं में सबसे अग्रिम अथवा योग्यतम् होते थे। ये अग्रिम छात्र—"पिति-आचार्य" (Pitti-Acharya) कहलाते थे। वे अपने गुरु के आदेशों के अनुसार निम्न कक्षाओं के छात्रों को शिक्षा देते थे और उनकी प्रगति एवं व्यवहार के सम्बन्ध में समय-समय पर गुरुजी को सूचना देते थे। यदि गुरु जी किसी कार्यवश विद्यालय नहीं आते थे, तो भी अधिकांश छात्रों की शिक्षा का कार्य विधिवत् चलता रहता था।

उच्च कक्षाओं के अग्रिम छात्रों या नायकों (Monitors) द्वारा निम्न कक्षाओं के छात्रों को शिक्षा देने की यह प्रणाली—"कक्षा-नायकीय पद्धति" (Monitorial System) कहलाती थी। इस पद्धति में शिक्षा-सिद्धान्त नामक विषय का कोई स्थान नहीं था। किन्तु, जिन नायकों को शिक्षण कार्य सौंपा जाता था, उनको कुछ समय के पश्चात् शिक्षण-विधियों एवं विद्यालय-संचालन का पर्याप्त व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त हो जाता था। अतः उन्हें स्वतन्त्र रूप से अध्यापन-कार्य करने में किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव नहीं होता था।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि प्राचीन भारत में शिक्षण-प्रशिक्षण में सैद्धान्तिक ज्ञान का कोई स्थान नहीं था। इसके विपरीत, उसमें व्यावहारिक शिक्षण (Practical Teaching) की प्रधानता थी और "करके सीखना" (Learning by Doing) विधि को अपनाया जाता था। प्राचीन भारत में इसी को शिक्षक-प्रशिक्षण का अप्रत्यक्ष आरम्भ माना जाता है।

मुस्लिम काल में शिक्षक प्रशिक्षण

भारत में मुस्लिम काल को शैक्षणिक अंधकार का युग माना जाता था। इस काल में अकबर के अतिरिक्त और किसी भी मुसलमान शासक ने शिक्षा में विशेष रुचि की अभिव्यक्ति नहीं की। लगभग सभी मुस्लिम शासकों के दो प्रमुख उद्देश्य थे—इस्लाम धर्म का प्रचार करना और हिन्दुओं को मुसलमान बनाना। अतः मुस्लिम काल में शिक्षक-प्रशिक्षण नाम की कोई योजना नहीं थी।

---

1. डा० श्रीधरनाथ मुखोपाध्याय : भारतीय शिक्षा का इतिहास (आधुनिक काल), p. 4.

वस्तुतः भारत में वैदिक काल से लेकर 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक शिक्षक-प्रशिक्षण की यदि कोई विधि थी, तो वह "कक्षा-नायकीय पद्धति" थी, जिसे "छात्राध्यापक पद्धति" (Pupil-Teacher System) भी कहा जाता है।

शिक्षक-प्रशिक्षक के प्रारम्भिक प्रयास

भारत में शिक्षक-प्रशिक्षण के क्षेत्र में डेन मिशनरियों ने पथ-प्रदर्शक का कार्य किया। उन्होंने सन् 1716 में ट्रानक्यूबर में शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए सर्वप्रथम नार्मल स्कूल स्थापित किया, जहाँ के प्रशिक्षित शिक्षकों को प्राथमिक विद्यालयों में नियुक्त किया जाता था। तदुपरान्त, उन्होंने सन् 1793 में सीरामपुर में एक और नार्मल स्कूल की सृष्टि की। उनके उत्कृष्ट उदाहरण से प्रभावित होकर, मद्रास, बम्बई और कलकत्ता की "शिक्षा परिषदों" (Educational Societies) ने प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिए प्रशिक्षण-संस्थाओं का निर्माण किया। इन प्रशिक्षण-संस्थाओं और डेन मिशनरियों के नार्मल स्कूलों में प्राचीन काल से चली आने वाली और कम खर्चीली "छात्राध्यापक-पद्धति" (Pupil-Teacher System) का प्रयोग किया जाता था।

जिस समय भारत में शिक्षक-प्रशिक्षण का उपर्युक्त कार्यक्रम चल रहा था, उस समय सन् 1787 में डा० एण्ड्रयू बेल (Dr. Andrew Bell) मद्रास नगर में अंग्रेजों द्वारा संचालित "मद्रास सैनिक अनाथालय" नामक बालकों के विद्यालय का सुपरिन्टेन्डेन्ट नियुक्त हुआ। उसने अपने विद्यालय में "कक्षा-नायकीय" अर्थात् "छात्राध्यापक-पद्धति" का प्रयोग किया। इंगलैंड लौटने पर उसने वहाँ इस पद्धति का प्रचार किया। इससे प्रभावित होने के कारण वहाँ के शिक्षा-मर्मज्ञों ने इसका समर्थन किया। फलस्वरूप, सन् 1801 से 1845 तक इंगलैंड के प्राथमिक स्कूलों में इस पद्धति का प्रचलन रहा।

इस पद्धति के अनेक नामकरण हुए हैं; यथा—मद्रास-पद्धति, मानीटर-पद्धति, लैंकास्ट्रियन पद्धति, ग्लासगो-पद्धति, पेस्टॉलाजी-पद्धति, इत्यादि। यह पद्धति कम-खर्चीली होने के साथ-साथ अल्प समय में शिक्षकों के अभाव की पूर्ति के लिए अमोघ औषधि थी। यह पद्धति—भारत में चिरकाल से प्रचलित "कक्षा-नायकीय पद्धति" ही का परिमार्जित एवं रूपान्तरित स्वरूप थी। अतः हम कह सकते हैं कि भारत ने विश्व के अनेक देशों को शिक्षक-प्रशिक्षण की प्रथम विधि प्रदान की।

ब्रिटिश-काल में शिक्षक-प्रशिक्षण, 1801-1882

ब्रिटिश-काल में सन् 1801 से 1882 तक गैर-सरकारी संगठनों ने शिक्ष[क-]प्रशिक्षण के लिए श्लाघनीय कार्य किया। परन्तु, उनका यह कार्य—प्राथ[मिक] विद्यालयों के लिए शिक्षकों के प्रशिक्षण तक ही सीमित था।

सन् 1815 में बम्बई की "देशी शिक्षा-परिषद्" (Native Educa[tion] Society) ने 24 शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया और उनको प्राथमिक विद्यालयों

शिक्षा-स्तर को ऊँचा उठाने के लिए प्रान्त के विभिन्न भागों में प्रबन्धकों (Organisers) के रूप में भेजा।

सन् 1819 में बंगाल में "कलकत्ता-विद्यालय-परिषद्" (Calcutta School Society) का निर्माण हुआ। इस "परिषद्" ने "छात्राध्यापक-पद्धति" के अनुसार शिक्षक-प्रशिक्षण का कार्य आरम्भ किया। सन् 1825 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संचालकों ने इस "परिषद्" के कार्य को बल प्रदान करने के लिए 500) रु० मासिक सहायता-अनुदान देने की घोषणा की।

सन् 1826 में मद्रास के गवर्नर, सर टॉमस मुनरो (Sir Thomas Munro) के प्रस्ताव के अनुसार, मद्रास नगर में शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए "केन्द्रीय स्कूल" (Central School) की सृष्टि की गई।

उक्त अवधि में गैर-सरकारी संगठनों के कार्य से अनुप्राणित होकर, ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने भी शिक्षकों के प्रशिक्षण की दिशा में कुछ कदम उठाए। उदाहरणार्थ—बम्बई में शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिए "नार्मल कक्षाएँ" (Normal Classes) प्रारम्भ की गईं। 1849 में कलकत्ता में एक नार्मल स्कूल स्थापित किया गया और अगले 10 वर्षों में बंगाल के विभिन्न भागों में नार्मल स्कूलों का शिलान्यास किया गया। उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त में आगरा, मेरठ और बनारस में क्रमशः 1852, 1856 और 1857 में नार्मल स्कूलों की सृष्टि की गई।

1854 के "वुड के आदेश-पत्र" (Wood's Despatch) ने इस बात पर बल दिया कि प्रत्येक प्रान्त में शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए ट्रेनिंग स्कूलों और कक्षाओं का शीघ्र ही शिलान्यास किया जाय। "आदेश-पत्र" में कम्पनी के संचालकों ने यह इच्छा व्यक्त की कि छात्रों को प्रशिक्षण-काल में छात्रवृत्तियाँ एवं शिक्षकों को उत्तम वेतन देकर, शिक्षा के व्यवसाय को आकर्षक बनाने की चेष्टा की जाय।[1]

किन्तु, कम्पनी के भारत-स्थित अंग्रेज कर्मचारियों ने संचालकों के आदेश के प्रति विशेष ध्यान नहीं दिया और यत्र-तत्र केवल कुछ प्रशिक्षण-संस्थाओं की स्थापना कर दी। उनकी इस अवहेलना पर खेद प्रकट करते हुए, सर्वप्रथम भारत-सचिव (Secretary of State for India) लार्ड स्टेनले (Lord Stanley) ने 1859 के अपने "आदेश-पत्र" में लिखा[2] — "कम्पनी के संचालकों ने जिस सीमा तक प्रशिक्षण-विद्यालयों की स्थापना का विचार प्रकट किया था, उस सीमा तक यह कार्य नहीं किया गया है।"

लार्ड स्टेनले ने अपने "आदेश-पत्र" में शिक्षक-प्रशिक्षण की सुविधाओं का विस्तार करने और प्रशिक्षण-संस्थाओं को सहायता-अनुदान दिए जाने का आदेश दिया। भारत के अंग्रेज प्रशासकों ने सत्ता-हस्तान्तरण के पश्चात् भारतीय प्रशासन

1. *Wood's Despatch*, Para 67.
2. *Stanley's Despatch*, Para 41

के सर्वोच्च अधिकारी, लार्ड स्टेनले के आदेश की अवज्ञा करने का साहस नहीं था। अतः उन्होंने शिक्षक-प्रशिक्षण की सुविधाओं का विस्तार करने में अदम्य उत्साह का परिचय दिया। फलस्वरूप, 1881-82 तक सम्पूर्ण देश में 106 नार्मल स्कूलों की स्थापना हो गई। इन स्कूलों में प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले पुरुषों एवं स्त्रियों की संख्या 3,886 थी और इनका वार्षिक व्यय लगभग 4 लाख रुपए था।[1]

1801 से 1882 तक स्थापित की जाने वाली प्रशिक्षण-संस्थाओं का लक्ष्य केवल प्राथमिक विद्यालयों के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित करना था। इस अवधि में शिक्षकों का वेतन अति न्यून था। अतः प्रशिक्षण-संस्थाओं में केवल प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति ही प्रवेश लेते थे। उनके पाठ्यक्रम विभिन्न प्रान्तों में विभिन्न थे। इन पाठ्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य—छात्राध्यापकों को केवल उन विषयों का ज्ञान प्रदान करना था, जिनकी उनको शिक्षकों के रूप में अपने विद्यार्थियों को शिक्षा देने की आवश्यकता थी।

इन प्रशिक्षण-संस्थाओं में छात्रों को प्रशिक्षण देने के लिए प्रारम्भ में "कक्षा-नायकीय पद्धति" अथवा "छात्राध्यापक-पद्धति (Pupil Teacher System) का प्रयोग किया। किन्तु, कुछ समय के पश्चात् "शिष्यता-पद्धति" (System of Apprenticeship) का अनुसरण किया जाने लगा। इस पद्धति में छात्र को एक निश्चित अवधि के लिए किसी अनुभवी शिक्षक का शिष्य बना दिया जाता था। बम्बई प्रान्त में यह अवधि 3 वर्ष की थी और इस अवधि में प्रत्येक छात्र को 3) रु० से 5) रु० तक मासिक छात्रवृत्ति मिलती थी। इस अवधि में शिक्षण का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त कर लेने के पश्चात् छात्रों को कुछ समय तक "जिला ट्रेनिंग कॉलेज" (District Training College) में प्रशिक्षण दिया जाता था। उसके पश्चात् ही उनको पूर्ण रूप से प्रशिक्षित माना जाता था और उनको प्राथमिक विद्यालयों में प्रशिक्षित शिक्षकों के रूप में नियुक्त होने का अधिकार प्राप्त हो जाता था।

उक्त अवधि की एक अन्य विशेषता—महिलाओं के प्रशिक्षण के लिए नार्मल स्कूलों की स्थापना थी। इनकी स्थापना का श्रेय—इंगलैंड की विदुषी, मिस मेरी कारपेन्टर (Miss Mary Carpenter) को था, जिसने इस अवधि में अनेक बार भारत पधार कर, महिला-नार्मल स्कूलों के निर्माण के लिए व्यक्तिगत रूप से अथक प्रयास किए। 1881-82 में इन स्कूलों की संख्या 15 थी।[2]

जहाँ तक माध्यमिक स्कूलों के लिए शिक्षकों के प्रशिक्षण का सम्बन्ध था, इस ओर अति अल्प ध्यान दिया गया। 1882 तक सम्पूर्ण देश में केवल दो प्रशिक्षण संस्थाओं का शिलान्यास हुआ—1856 में मद्रास में "गवर्नमेंट नार्मल स्कूल" का

1. *Hunter Commission Report*, 134.
2. S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 366.

और 1877 में "लाहौर ट्रेनिंग स्कूल" था। इन संस्थाओं में स्नातकों और उप-स्नातकों—दोनों को एक ही कक्षा में प्रवेश दिया जाता था। इनमें प्रदान किया जाने वाला प्रशिक्षण निम्न कोटि का था, क्योंकि छात्राध्यापकों को शिक्षण के अभ्यास एवं सिद्धान्तों से अवगत नहीं कराया जाता था। कुछ समय के उपरान्त मद्रास के नार्मल स्कूल में शिक्षण के अभ्यास का प्रबन्ध कर दिया गया था।[1]

ब्रिटिश-काल में शिक्षक-प्रशिक्षण, 1882-1947

ब्रिटिश-काल में 1882 तक शिक्षकों को किसी प्रकार का वास्तविक प्रशिक्षण प्राप्त नहीं होता था और उनको शिक्षण का कोई व्यावहारिक ज्ञान नहीं होता था। शिक्षक-प्रशिक्षण की वास्तविक आवश्यकता का अनुभव—"हंटर कमीशन" की सिफारिशों के फलस्वरूप किया गया। उसके उपरान्त 1904 और 1913 के सरकारी प्रस्तावों, *सैडलर कमीशन, हर्टॉग-समिति आदि ने शिक्षक प्रशिक्षण के विषय में* नवीन एवं उपयोगी सुझाव प्रस्तुत किए, जिनके फलस्वरूप शिक्षक-प्रशिक्षण का उत्तरोत्तर विकास होता चला गया। हम इन कमीशनों की रिपोर्टों, प्रस्तावों आदि में शिक्षक-प्रशिक्षण के सम्बन्ध में प्रकट किए जाने वाले विचारों का विवेचन उपस्थित कर रहे हैं; यथा :—

1. *हण्टर कमीशन, 1882* —"*हण्टर कमीशन*" अथवा "*भारतीय शिक्षा-आयोग*" ने प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण के विषय में निम्नलिखित सुझाव दिए[2] —

1. प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए नार्मल स्कूलों की स्थापना इस प्रकार की जाय कि वे सम्पूर्ण देश के प्राथमिक विद्यालयों की माँग की पूर्ति कर सकें।
2. प्रत्येक विद्यालय-निरीक्षक के क्षेत्र में कम-से-कम एक नार्मल स्कूल का निर्माण किया जाय।
3. नार्मल स्कूलों को सफल बनाने के लिए, विद्यालय निरीक्षकों द्वारा उनमें रुचि ली जाय और उनके कुशल संचालन का प्रबंध किया जाय।
4. माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण के लिए ट्रेनिंग स्कूलों और ट्रेनिंग कॉलिजों की स्थापना इस प्रकार की जाय कि वे सम्पूर्ण देश में फैल जायँ।
5. *स्नातकों एवं उपस्नातकों के लिए विभिन्न प्रकार के प्रशिक्षण एवं* पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जाय।

"हण्टर कमीशन" के सुझावों के फलस्वरूप नार्मल स्कूलों, ट्रेनिंग स्कूलों और ट्रेनिंग कॉलिजों की आशातीत वृद्धि हुई। साथ ही, सभी स्तरों के शिक्षकों के प्रशिक्षण

---

1. *Stanley's Despatch*, Para 23
2. *Hunter Commission Report*, Paras 2 & 3.

का स्पष्ट चित्र उभर कर सामने आ गया। उनकी सैद्धान्तिक शिक्षा के लिए विभिन्न एवं निश्चित पाठ्यक्रमों का निर्माण किया गया और शिक्षण-अभ्यास का वह कार्यक्रम आरम्भ किया गया, जो आज की प्रशिक्षण-संस्थाओं में दृष्टिगोचर होता है।

"हण्टर कमीशन" के सुझावों के परिणामस्वरूप 19वीं शताब्दी के अन्त तक 133 नार्मल स्कूलों, 50 ट्रेनिंग स्कूलों और 6 ट्रेनिंग कॉलेजों (मद्रास, लाहौर, कुरसांग, जबलपुर, इलाहाबाद और राजमुन्दरी) की स्थापना की गई।[1]

2. **शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव, 1904**—इस "प्रस्ताव" ने शिक्षक-प्रशिक्षण के समस्त पक्षों की समुचित व्यवस्था पर बल दिया और निम्नांकित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया[2] :—

1. भारतीय शिक्षा-सेवा (Indian Educational Service) में योग्य, अनुभवी एवं उच्च प्रशिक्षण-प्राप्त व्यक्तियों की ही नियुक्ति की जाय।
2. माध्यमिक स्कूलों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वाले ट्रेनिंग कॉलेजों की साज-सज्जा को कला-महाविद्यालयों (Arts Colleges) की साज-सज्जा से कम महत्त्व न दिया जाय।
3. स्नातकों एवं उपस्नातकों के लिए प्रशिक्षण की अवधि क्रमशः 1 वर्ष और 2 वर्ष निश्चित की जाय।
4. प्रशिक्षण के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों में निकट सम्बन्ध स्थापित किया जाय।
5. प्रत्येक ट्रेनिंग कॉलेज से एक उत्तम "अभ्यासात्मक स्कूल" (Practising School) सम्बद्ध किया जाय।
6. ट्रेनिंग कॉलेजों और माध्यमिक स्कूलों में सम्बन्ध स्थापित किया जाय, ताकि प्रशिक्षित शिक्षक सीखी हुई विधियों का व्यावहारिक प्रयोग कर सकें।

उपरिवर्णित सिद्धान्तों ने शिक्षक-प्रशिक्षण-आन्दोलन में नवीन शक्ति का संचार कर दिया और उनको मूर्त रूप दिए जाने पर चार महत्त्वपूर्ण परिणाम दृष्टिगोचर हुए :—(1) प्रशिक्षण-संस्थाओं की संख्या में वृद्धि, (2) स्नातकों एवं उपस्नातकों के लिए पृथक् पाठ्यक्रमों का आयोजन, (3) स्नातकों एवं उपस्नातकों के प्रशिक्षण के लिए क्रमशः 1 वर्ष और 2 वर्ष का कार्यक्रम, और (4) प्रत्येक प्रशिक्षण-संस्था से अभ्यासात्मक स्कूल की संलग्नता।

3. **लार्ड कर्ज़न की शिक्षा-नीति**—विद्या-प्रेमी लार्ड कर्ज़न ने शिक्षा के प्रसार के लिए प्रान्तीय सरकारों को सहायता-अनुदान देने की प्रथा आरम्भ की।

---

1. S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 368.
2. *Government Resolution on Educational Policy*, 1904, Para 39

इस प्रथा के फलस्वरूप 5 वर्ष की अवधि में 5 ट्रेनिंग कॉलिजों का शिलान्यास हुआ; यथा :—(1) एस० टी० कॉलिज, बम्बई, 1906; (2) डेविड हेयर ट्रेनिंग कॉलिज, कलकत्ता, 1908, (3) पटना ट्रेनिंग कालेज, 1908; (4) ढाका ट्रेनिंग कॉलिज, 1910, और (5) स्पेन्स ट्रेनिंग कॉलिज, जबलपुर, 1911।

4 शिक्षा-नीति सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव, 1913—इस "प्रस्ताव" ने अग्रांकित नीति निर्धारित करके, शिक्षक-प्रशिक्षण के विकास में अतिशय योग दिया :— 'शिक्षा की आधुनिक प्रणाली में किसी भी शिक्षक को उस समय तक शिक्षण-कार्य करने की अनुमति प्रदान न की जाय, जब तक कि उसके पास तत्सम्बन्धी प्रमाण पत्र न हो।"

"Under modern system of education, no teacher should be allowed to teach without a certificate that he has qualified to do so."—*Government Resolution on Educational Policy*, 1913, p 51.

5 सैडलर कमीशन, 1919—"सैडलर कमीशन" अथवा "कलकत्ता-विश्वविद्यालय-आयोग" ने शिक्षक-प्रशिक्षण के विषय में अधोलिखित सुझाव देकर, उसकी विकास-प्रक्रिया को तीव्रता प्रदान की —

1. प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या में वृद्धि की जाय।
2. प्रशिक्षण-सम्बन्धी शोध-कार्य की व्यवस्था की जाय।
3. प्रत्येक विश्वविद्यालय में शिक्षा-विभाग की स्थापना की जाय।
4. इन्टर और बी० ए० के पाठ्यक्रमों में शिक्षा विषय को सम्मिलित किया जाय।
5. प्रयोगात्मक कार्य के लिए प्रत्येक ट्रेनिंग कॉलिज में "प्रदर्शन स्कूल" (Demonstration School) सम्बद्ध किया जाय।

6. हर्टाग-समिति, 1929—इस "समिति" ने प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण में सुधार करने के लिए अनेक उपयोगी सुझाव दिए, यथा :—

1. शिक्षकों की सामान्य शिक्षा के स्तर का उन्नयन किया जाय।
2. शिक्षक-प्रशिक्षण की अवधि में वृद्धि की जाय।
3. प्रशिक्षण-संस्थाओं में योग्य एवं कुशल शिक्षकों की नियुक्ति की जाय और उनकी संख्या में पर्याप्त वृद्धि की जाय।
4. विद्यालयों में कार्य करने वाले शिक्षकों के लिए शिक्षा-सम्मेलनों एवं अभिनवन पाठ्यक्रमों के कार्यक्रम आरम्भ किए जायँ।
5. योग्य व्यक्तियों को शिक्षण-कार्य के प्रति आकर्षित करने के लिए, शिक्षकों की कार्य करने की दशाओं में सुधार किया जाय।

उपरिलिखित आयोगों, प्रस्तावों और समिति के सुझावों के परिणामस्वरूप शिक्षक-प्रशिक्षण की दशा एवं सुविधाओं में क्रमशः उन्नति होती चली गई। सन्

1947 में अर्थात् स्वतंत्रता से पूर्व भारत में 3 प्रकार की प्रशिक्षण-संस्थाएँ थीं; यथा :—

1. नार्मल स्कूल : Normal Schools—इनमें प्राथमिक विद्यालयों के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाता था। इनमें प्रशिक्षण की अवधि 2 वर्ष की थी और मिडिल पास व्यक्तियों को प्रवेश दिया जाता था। सन् 1941 में पुरुष एवं महिला नार्मल स्कूलों की संख्या क्रमश: 346 एवं 236 थी और उनमें अध्ययन करने वाले छात्रों एवं छात्राओं की संख्या क्रमश: 22,435 एवं 8,896 थी।[1]

2. माध्यमिक प्रशिक्षण-विद्यालय : Secondary Training Schools—इनमें मिडिल स्कूलों के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाता था। इनमें प्रशिक्षण की अवधि 1 या 2 वर्ष की थी और हाईस्कूल एवं इन्टर पास व्यक्तियों को प्रवेश दिया जाता था। सन् 1947 में ट्रेनिंग स्कूलों एवं उनमें अध्ययन करने वाले छात्रों की संख्या क्रमश: 649 एवं 38,773 थी।[2]

3. प्रशिक्षण महाविद्यालय : Training Colleges—इनमें हाई स्कूलों के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाता था। इनमें प्रशिक्षण की अवधि 1 वर्ष की थी और स्नातकों एवं परस्नातकों को प्रवेश दिया जाता था। सन् 1947 में ट्रेनिंग कॉलिजों एवं उनमें अध्ययन करने वाले छात्रों की संख्या क्रमश: 51 एवं 3,262 थी।[3]

स्वतन्त्र भारत में शिक्षक-शिक्षा

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से भारतीय शिक्षा अपने विस्तार के मार्ग पर अति द्रुत गति से अग्रसर हो रही है। फलस्वरूप, शिक्षा के अनेक क्षेत्रों के लिए प्रशिक्षित शिक्षकों की माँग में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। सम्भवत: इसीलिए हमारे देश की शिक्षा की पुनर्रचना में शिक्षक-प्रशिक्षण को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है, उसकी कमियों और गुणात्मक उन्नति के उपायों को इंगित करने के लिए शिक्षा आयोगों की नियुक्ति की गई है, उसे सफल एवं सार्थक बनाने के लिए विविध कार्यक्रमों का समारम्भ किया गया है, और उसकी धारणा में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया गया है। हम इन सब बातों का विवेचन यथास्थान उपस्थित कर रहे हैं।

शिक्षक-शिक्षा की नवीन धारणा
New Concept of Teacher-Education

स्वतन्त्रता से पूर्व शिक्षक-प्रशिक्षण की अद्वितीय संख्यात्मक और गुणात्मक

1. डा० महेशचन्द्र सिंघल : भारतीय शिक्षा की वर्तमान समस्याएँ, p. 240.
2. NCERT : *Indian Year-Book of Education*, 1964.
3. NCERT : *The Second National Survey of Secondary Teacher Education in India*, p. 14.

उन्नति हुई। किन्तु, उसे प्रशिक्षण के क्षेत्र में आविर्भूत होने वाले नवीन विचारों के अनुकूल बनाने का कोई प्रयास नहीं किया गया। परिणामस्वरूप, उसका स्वरूप संकुचित हो गया। अतः स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् देश के शिक्षाशास्त्रियों एवं राजनीतिज्ञों ने "शिक्षक-प्रशिक्षण" को नवीन रूप प्रदान करके, उसको अधिक व्यापक बनाया और उसको "शिक्षक-शिक्षा" (Teacher-Education) का नया जामा पहिनाया।

"शिक्षक-शिक्षा" की इस नवीन धारणा के निर्माण में निम्नलिखित कारकों ने विशेष योग दिया[1] —

1. अमरीका के प्रसिद्ध शिक्षा-महारथी, किलपेट्रिक के अनुसार :—"सर्कस में काम करने वाले नटों और पशुओं को प्रशिक्षण दिया जाता है, पर शिक्षकों को शिक्षा दी जाती है।"

   "One *trains* circus performers and animals, but one *educates* teachers "— W. H Kilpatrick.

2. स्वतन्त्रता से पूर्व प्रशिक्षण द्वारा शिक्षक में जिन धारणाओं और व्यवहार के प्रतिमानों का निर्माण किया जाता था, उनकी उपयोगिता—स्वतन्त्र भारत के लिए नष्ट हो गई थी।
3. शिक्षक-प्रशिक्षण की धारणा में परिवर्तन करके ही उसे भारत की जनतन्त्रीय मान्यताओं के अनुकूल बनाया जा सकता था।
4. स्वतन्त्र भारत में शिक्षक-शिक्षा के दार्शनिक एवं व्यावहारिक सिद्धान्तों का निर्माण, भारतीय शिक्षाशास्त्रियों द्वारा न, कि विदेशियों द्वारा किया जा रहा था। अतः इसकी धारणा में परिवर्तन किया जाना आवश्यक था।
5. स्वतन्त्र भारत में शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में सुधार करने के लिए प्रशिक्षण में सुधार किया जाना अनिवार्य था। अतः शिक्षक को प्रशिक्षण देने के बजाय उसे शिक्षा देने की आवश्यकता थी।
6. बेसिक शिक्षा की नवीन विचारधारा के अनुसार, शिक्षक को छात्रों एवं समुदाय की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। अतः शिक्षक को प्रशिक्षण के बजाय शिक्षा दी जानी आवश्यक है।
7. शिक्षक-प्रशिक्षण की विचारधारा में सम्पूर्ण जगत् में अति तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है। इस विचारधारा के अनुसार, शिक्षक-प्रशिक्षण की तुलना में शिक्षक-शिक्षा अधिक व्यापक है।
8. शिक्षक-शिक्षा—जीवन के सब क्षेत्रों को प्रभावित करती है एवं बालकों

1. S. N. Mukerji *op. cit.*, p 371.

के दैनिक जीवन से सम्बन्धित है। अतः केवल कक्षा-शिक्षण का प्रशिक्षण—शिक्षक को अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह करने के लिए पूर्ण रूप से तैयार नहीं कर सकता है।

9. "राधाकृष्णन् कमीशन" ने शिक्षक-प्रशिक्षण की धारणा में यह कह कर परिवर्तन करने की आवश्यकता पर बल दिया :—"सच्ची शिक्षा केवल कुछ पाठों को पढ़ना और स्मरण करना ही नहीं है, वरन् जीवन-यापन एवं उद्देश्यपूर्ण कार्यों में भाग लेना भी है।"

"A real education is not so much a matter of lessons to be learnt and memorized as of a life to be lived and purposeful activities to be shared."—*Radhakrishnan Commission Report*, p. 215.

शिक्षा-आयोग व शिक्षक-शिक्षा
Education Commissions & Teacher-Education

स्वतन्त्र भारत में शिक्षक-शिक्षा के विस्तार एवं सुधार के विषय में अग्रांकित आयोगों के विचार एवं सुझाव सराहनीय हैं :—

1. राधाकृष्णन् आयोग—इस "आयोग" ने शिक्षक-शिक्षा के विषय में निम्नांकित विचार प्रकट किए हैं :—

1. प्रशिक्षण-संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में सुधार किया जाना चाहिए।
2. शिक्षा-सिद्धान्त (Theory of Education) के पाठ्यक्रम लचीले और स्थानीय वातावरण के अनुकूल होने चाहिए।
3. पुस्तकीय ज्ञान की अपेक्षा कक्षा-शिक्षण के अभ्यास पर अधिक बल दिया जाना चाहिए।
4. शिक्षण के अभ्यास के लिए केवल उपयुक्त विद्यालयों का ही चयन किया जाना चाहिए।
5. छात्राध्यापकों के कार्य का मूल्यांकन करने में उनकी शिक्षण की सफलता पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।
6. प्रशिक्षण-संस्थाओं के अधिकांश अध्यापकों को विद्यालयों में पढ़ा चुकने का पर्याप्त अनुभव होना चाहिए।
7. प्रशिक्षण-संस्थाओं के अध्यापकों द्वारा मौलिक कार्य—अखिल-भारतीय स्तर पर किया जाना चाहिए।
8. एम० एड० डिग्री प्राप्त करने के लिए केवल उन्हीं व्यक्तियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जिन्हें कुछ वर्षों का शिक्षण का अनुभव हो।

2. मुदालियर आयोग—इस "आयोग" ने शिक्षक-शिक्षा के सम्बन्ध में अधोलिखित सुझाव दिए हैं[1] :—

1. प्रशिक्षण-संस्थाएँ केवल दो प्रकार की होनी चाहिए :—(i) माध्यमिक शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों के लिए। इनकी प्रशिक्षण की अवधि 1 वर्ष की होनी चाहिए। (ii) स्नातकों के लिए। इनकी प्रशिक्षण की अवधि अभी 1 वर्ष की होनी चाहिए, पर कुछ समय के उपरान्त 2 वर्ष की कर दी जानी चाहिए।
2. छात्राध्यापकों को एक या एक से अधिक अतिरिक्त पाठ्य-क्रियाओं (Extra-Curricular Activities) में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
3. छात्राध्यापकों से किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाना चाहिए और उनको प्रशिक्षण-काल में राज्य द्वारा उपयुक्त छात्रवृत्तियाँ (Stipends) दी जानी चाहिए।
4. ट्रेनिंग कॉलिजों में अभिनवन पाठ्यक्रमों (Refresher Courses), विशेष विषयों में संक्षिप्त-सघन पाठ्यक्रमों (Short Intensive Courses), कार्यशालाओं में व्यावहारिक प्रशिक्षण (Practical Training in Workshops) और व्यावसायिक सम्मेलनों (Professional Conferences) की नियमित रूप से व्यवस्था की जानी चाहिए।
5. विद्यालयों में कार्य करने वाले अप्रशिक्षित शिक्षकों को प्रशिक्षण-काल के लिए पूर्ण वेतन पर अवकाश दिया जाना चाहिए।
6. अध्यापिकाओं के अभाव की पूर्ति करने के लिये अल्पकालीन प्रशिक्षण-पाठ्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए।

3. कोठारी आयोग—इस "आयोग" ने शिक्षक-शिक्षा के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिए हैं, यथा[2] —

1. पत्र-व्यवहार द्वारा शिक्षा एवं अल्पकालीन प्रशिक्षण की सुविधाओं में विस्तार किया जाना चाहिए।
2. सब प्रशिक्षण-संस्थाओं में "प्रसार-सेवा-विभाग" (Extension Service Department) का निर्माण किया जाना चाहिए।
3. सब राज्यों में "सघन कॉलिजों" (Comprehensive Colleges) की स्थापना की जानी चाहिए और उनमें शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।
4. प्रशिक्षण संस्थाओं में छात्राध्यापकों से किसी प्रकार का शुल्क नहीं

1. *Mudaliar Commission Report*, p. 194
2. *Kothari Commission Report*, pp. 622-623

लिया जाना चाहिए और उनको ऋण एवं छात्रवृत्तियों के रूप में आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था की जानी चाहिए।

5. विद्यालयों में कार्य करने वाले अप्रशिक्षित शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिए केन्द्रीय स्थानों पर "ग्रीष्मकालीन संस्थाओं" (Summer Institutes) की योजना आरम्भ की जानी चाहिए।
6. शिक्षक-शिक्षा के सब स्तरों पर कार्यक्रमों एवं पाठ्यक्रमों को उन आधारभूत उद्देश्यों को ध्यान में रखकर दोहराया जाना चाहिए, जिनके लिए अध्यापकों को तैयार किया जा रहा है।
7. प्रत्येक राज्य में "शिक्षक-शिक्षा की राज्य-परिषद्" (State Board of Teacher Education) का निर्माण किया जाना चाहिए, जिस पर सब क्षेत्रों एवं सब स्तरों के प्रशिक्षण का उत्तरदायित्व होना चाहिए।

शिक्षक-शिक्षा का विस्तार
Expansion of Teacher-Education

"पांचवीं पंचवर्षीय योजना" के अनुसार[1] :—"चौथी पंचवर्षीय योजना" के अन्त तक लगभग 23·8 प्रशिक्षित शिक्षक थे (20·2 लाख प्राथमिक विद्यालयों में 3·6 लाख माध्यमिक स्कूलों में)। "पांचवीं पंचवर्षीय योजना" के अन्त में यह संख्या बढ़कर लगभग 30·4 लाख हो जायगी। पूर्वी भाग के अतिरिक्त देश के सब भागों में प्रशिक्षण-सुविधाओं का इतना पर्याप्त विस्तार हो गया है कि प्रशिक्षित शिक्षकों की पर्याप्त संख्या उपलब्ध है।

स्वतन्त्र भारत में शिक्षक-शिक्षा का विस्तार निम्नांकित तालिका में स्पष्ट किया गया है :—

शिक्षक-शिक्षा का विस्तार[2]

विवरण	1950-51	1960-61	1970-71 अस्थायी
ट्रेनिंग स्कूलों की संख्या	782	1,138	832
ट्रेनिंग कॉलिजों की संख्या	53	478	833
प्रशिक्षित शिक्षक %			
प्राइमरी स्कूल	58·8	64·1	82·9
मिडिल स्कूल	53·3	66·5	84·9
हाई/हायर सेकण्डरी स्कूल	53·8	64·1	81·2

1. *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. II, p. 198.
2. *India*, 1974, p. 50.

प्रशिक्षण-संस्थाओं के प्रकार
Types of Training Institutions

डा० एस० एन० मुकर्जी के अनुसार[1] :—मोटे तौर पर इस समय हमारे देश में निम्नलिखित 8 प्रकार की शिक्षक-प्रशिक्षण संस्थाएँ हैं :—

1. पूर्व-प्राथमिक प्रशिक्षण संस्थाएँ : Pre-Primary Training Institutions.
2. नार्मल या प्राथमिक प्रशिक्षण-विद्यालय : Normal or Primary Training Schools
3. उपस्नातकों के लिए माध्यमिक प्रशिक्षण—विद्यालय : Secondary Training Schools for Undergraduates.
4. स्नातकों के लिए प्रशिक्षण-महाविद्यालय : Training Colleges for Graduates
5. शिक्षा के प्रादेशिक कॉलेज : Regional Colleges of Education.
6. शिक्षा के राज्य-संस्थान : State Institutes of Education.
7. पत्राचार-पाठ्यक्रम-केन्द्र Correspondence Course Centres.
8. विशेषज्ञ-प्रशिक्षण-केन्द्र : Training Centres for Specialists.

1. पूर्व-प्राथमिक प्रशिक्षण-संस्थाएँ—इनमें पूर्व-प्राथमिक स्कूलों के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाता है। इनमें प्रशिक्षण की अवधि 1 वर्ष की है, पर गुजरात और महाराष्ट्र ऐसे कुछ राज्यों में 2 वर्ष की है। इनमें हाई स्कूल और अपर प्राइमरी पास व्यक्तियों को प्रवेश दिया जाता है। 1965-66 में इनकी संख्या 59 थी।[2]

पूर्व-प्राथमिक प्रशिक्षण-संस्थाओं में विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रम हैं, यथा —नर्सरी, मांटेसरी, किंडरगार्टन, पूर्व-बेसिक, हैपी एजूकेशन आदि। हमारे देश में यह प्रशिक्षण अभी अपनी शैशवावस्था में है। इसीलिए, इस प्रशिक्षण की संस्थाओं की संख्या अत्यन्त अल्प है। ये संस्थाएं 2 प्रकार की हैं —राजकीय और स्वसंचालित (Private)। अधिकांश संस्थाएँ स्वसंचालित हैं और उनको राज्यों से सहायता-अनुदान प्राप्त होता है।

2. नार्मल या प्राथमिक प्रशिक्षण विद्यालय—इनमें प्राथमिक विद्यालयों के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाता है। इनमें सह-शिक्षा प्रचलित नहीं है। अतः पुरुषों और स्त्रियों के लिए पृथक् प्रशिक्षण-संस्थाएँ हैं। ये संस्थाएँ—राज्य-सरकारों, स्थानीय बोर्डों, व्यक्तिगत प्रबन्धकों आदि के द्वारा संचालित की जाती हैं। 1965-66 में इन संस्थाओं की कुल संख्या 1,604 [illegible] 1,177 पुरुषों के लिए

---

1. S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 372
2. IATE : *Teacher Training Institutions in India*, p. 9

और 427 महिलाओं के लिए थीं। इनमें से 923 संस्थाएँ सरकारी थीं और शेष गैर-सरकारी थीं।[1]

इस समय भारत में 2 प्रकार के प्राथमिक विद्यालय हैं :—बुनियादी और गैर-बुनियादी। इसलिए इन विद्यालयों के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण देने के लिए दो प्रकार की प्रशिक्षण-संस्थाएँ भी हैं :—

(1) नार्मल स्कूल—इनमें हाई स्कूल पास छात्रों को गैर-बुनियादी स्कूलों के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है और प्रशिक्षण के पश्चात् उनको "सीनियर टीचर्स सर्टिफिकेट" प्रदान किया जाता है।

(2) बेसिक ट्रेनिंग स्कूल—इनमें अपर प्राइमरी छात्रों को बुनियादी स्कूलों के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है और प्रशिक्षण के पश्चात् उनको "बेसिक टीचर्स सर्टिफिकेट" प्रदान किया जाता है।

दोनों प्रकार की संस्थाओं में प्रशिक्षण की अवधि 2 वर्ष की है। 1964-65 में सम्पूर्ण देश में 448 बुनियादी और 153 गैर-बुनियादी प्रशिक्षण-संस्थाएँ थीं।[2] बुनियादी और गैर-बुनियादी का अन्तर समाप्त होता जा रहा है, क्योंकि सम्पूर्ण देश में प्राथमिक शिक्षा को बेसिक रूप प्रदान करने का निश्चय कर लिया है।

3. उपस्नातकों के लिए माध्यमिक प्रशिक्षण-विद्यालय—इनमें मिडिल स्कूलों के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाता है। इनमें प्रशिक्षण की अवधि कुछ राज्यों में 1 वर्ष की और कुछ में 2 वर्ष की है। इनमें उपस्नातकों अर्थात् हाई स्कूल एवं इन्टर पास व्यक्तियों को प्रवेश दिया जाता है। 1964-65 में सम्पूर्ण देश में इन प्रशिक्षण-विद्यालयों की संख्या 630 थी।[3]

माध्यमिक प्रशिक्षण-विद्यालयों में अध्ययन करने वाले सफल छात्रों को विश्वविद्यालयों या राज्य के शिक्षा-विभागों द्वारा सर्टिफिकेट या डिप्लोमा दिए जाते हैं, जिनके विभिन्न राज्यों में विभिन्न नाम हैं। उदाहरणार्थ—बड़ौदा, बम्बई, गुजरात, कर्नाटक और पूना विश्वविद्यालय 1 वर्ष के प्रशिक्षण के बाद "T. D." (Teachers' Diploma) देते हैं। सागर, नागपुर और जबलपुर विश्वविद्यालय 2 वर्ष के प्रशिक्षण के बाद "Dip. T." (Diploma in Teaching) देते हैं। उड़ीसा राज्य का शिक्षा-विभाग 2 वर्ष के प्रशिक्षण के बाद "C. T." (Certificate of Teaching) देता है। महाराष्ट्र राज्य का शिक्षा-विभाग 1 वर्ष के प्रशिक्षण के बाद "S. T. C." (Secondary Teachers' Certificate) देता है।

4. स्नातकों के लिए प्रशिक्षण-महाविद्यालय—इनमें हाई स्कूलों और हायर सेकण्डरी स्कूलों के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जाता है। इनमें प्रशिक्षण की

1. S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 375.
2. *Education in India*, 1964-65, Vol. I, p. 287.
3. *Education in India*, 1964-65, Vol. I, p. 287.

अवधि 1 वर्ष की है और स्नातकों एवं परास्नातकों को प्रवेश दिया जाता है। इनमें सहशिक्षा प्रचलित है, किन्तु पुरुषों एवं महिलाओं के लिए पृथक् प्रशिक्षण-संस्थाएँ भी हैं। इनमें अध्ययन करने वाले छात्राध्यापकों को बी० टी० या बी० एड० की उपाधि, डिप० एड० या डिप्लोमा या एल० टी० का प्रमाण-पत्र दिया जाता है। इनका संचालन—राज्यों के शिक्षा-विभागों या विश्वविद्यालयों द्वारा किया जाता है। कुछ प्रशिक्षण-महाविद्यालय स्वतंत्र इकाइयाँ हैं और कुछ प्रशिक्षण-कक्षाएँ—कालेजों एवं विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत शिक्षा-विभाग हैं। 1965-66 में सम्पूर्ण भारत में इन महाविद्यालयों और विभागों की संख्या 286 थी।[1]

भारत में प्रशिक्षण-महाविद्यालय दो प्रकार के हैं :—(1) परम्परागत या गैर-बुनियादी (Traditional or Non-Basic) और (2) बुनियादी (Basic)। 1965-66 में 25% बुनियादी महाविद्यालय थे और 75% गैर-बुनियादी।[2]

5. शिक्षा के प्रादेशिक कॉलिज —"मुदालियर कमीशन" का एक सुझाव यह था कि कृषि, वाणिज्य, गृह-विज्ञान, ललित कलाओं आदि की शिक्षा के लिए बहु-उद्देशीय विद्यालयों (Multipurpose Schools) की स्थापना की जाय। परम्परागत प्रशिक्षण-कॉलिजों द्वारा इन विषयों की शिक्षा देने के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षण नहीं दिया जा सकता था। यह अनुभव करके भारत-सरकार के शिक्षा-मंत्रालय ने बहु-उद्देशीय विद्यालयों के शिक्षकों को व्यावहारिक एवं वैज्ञानिक विषयों (Practical & Scientific Subjects) में प्रशिक्षण देने के लिए जुलाई, 1963 में 4 प्रादेशिक शिक्षा-महाविद्यालयों (Regional Colleges of Education) की स्थापना की। इन रीजनल कॉलिजों की स्थितियाँ एवं प्रादेशिक सीमाएँ इस प्रकार हैं :—

(i) रीजनल कॉलिज ऑफ ऐजूकेशन, भोपाल—यह कॉलिज पश्चिमी प्रदेश, अर्थात् गुजरात, महाराष्ट्र और मध्य-प्रदेश के लिए है।

(ii) रीजनल कॉलिज ऑफ ऐजूकेशन, मैसूर—यह कॉलिज दक्षिणी प्रदेश, अर्थात् मद्रास, केरल, मैसूर और आंध्र-प्रदेश के लिए है।

(iii) रीजनल कॉलिज ऑफ ऐजूकेशन भुवनेश्वर—यह कॉलिज पूर्वी प्रदेश, अर्थात् नेफा, आसाम, बिहार, उड़ीसा, मनीपुर और पश्चिमी बंगाल के लिए है।

(iv) रीजनल कॉलिज ऑफ ऐजूकेशन, अजमेर—यह कॉलिज उत्तरी प्रदेश, अर्थात् दिल्ली, पंजाब, राजस्थान, जम्मू व काश्मीर, उत्तर-प्रदेश और हिमाचल प्रदेश के लिए है।

---

1. IATE *Teacher Training Institutions in India*, p 9
2. NCERT *Second National Survey of Secondary Teacher Education*, p 113

रीजनल कॉलिजों के मुख्य उद्देश्य अधोलिखित हैं :—

1. बहु-उद्देशीय स्कूलों के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित करना।
2. शिक्षण की प्रचलित विधियों में सुधार करना, नवीन विधियों की योजना और उनको क्रियान्वित करना।
3. प्रसार-सेवाओं (Extension Services) के लिए प्रादेशिक केन्द्रों के रूप में कार्य करना।
4. एक "आदर्श प्रदर्शन बहु-उद्देशीय विद्यालय" (Model Demonstration Multipurpose School) का संगठन एवं विकास करना।
5. कृषि, शिल्प (Crafts), विज्ञान, वाणिज्य, गृह-विज्ञान और ललित कलाओं की शिक्षा देने के लिए शिक्षकों को प्रशिक्षित करना।
6. बहु-उद्देशीय स्कूलों में कार्य करने वाले व्यावहारिक विषयों (Practical Subjects) के शिक्षकों के लिए "सेवा-कालीन शिक्षा" (In-Service Education) की व्यवस्था करना।
7. अपने क्षेत्रों में स्थित बहु-उद्देशीय स्कूलों से सम्बन्धित शिक्षकों, प्रशासकों एवं सुपरवाइजरों के लिए "सेवा-कालीन शिक्षा" एवं "क्षेत्रीय कार्य" (Field Work) की व्यवस्था करना।

रीजनल कॉलिजों के कार्यक्रम अथवा पाठ्यक्रम (Courses) निम्नलिखित हैं :—

1. सेवाकालीन शिक्षा का अल्पकालीन कोर्स।
2. बी० एड० का ग्रीष्मकालीन एवं पत्राचार-कोर्स।
3. विज्ञान के शिक्षकों के लिए 4 वर्ष का कोर्स।
4. प्रौद्योगिकी (Technology) के शिक्षकों के लिए 4 वर्ष का कोर्स।
5. उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के बाद शिक्षा में 4 वर्ष का एकीकृत (Integrated) कोर्स।[1]
6. शिल्प-अध्यापकों (Craft Teachers) के लिए अग्रलिखित 3 प्रकार के विशेष कोर्स :—(i) 1 वर्ष का डिप्लोमा कोर्स, (ii) 2 वर्ष का डिप्लोमा कोर्स, और (iii) 2 वर्ष का डिग्री कोर्स।
7. अग्रलिखित में से प्रत्येक में 1 वर्ष का कोर्स :—(i) कृषि, (ii) विज्ञान, (iii) वाणिज्य, (iv) प्रौद्योगिकी, (v) ललित कलाएँ (केवल भोपाल और भुवनेश्वर के कॉलेजों में), और (vi) गृह-विज्ञान (केवल मैसूर और अजमेर के कॉलेजों में)।

1. "शिक्षा में चार-वर्षीय डिग्री कोर्स" (Four-Year Degree Course in Education) सर्वप्रथम पंजाब राज्य के कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय में 1960 में आरम्भ किया गया था।

6. शिक्षा के राज्य-संस्थान—"तीसरी पंचवर्षीय योजना" में भारत के प्रायः प्रत्येक राज्य और दिल्ली में "शिक्षा के राज्य-संस्थान" की स्थापना की गई। इन संस्थानों के व्यय का पूर्ण भार—भारतीय शिक्षा-मंत्रालय द्वारा वहन किया जाता है। इन संस्थाओं के 5 मुख्य कार्य हैं :—(i) शिक्षा का विस्तार करना, (ii) पुस्तकों का प्रकाशन करना, (iii) शिक्षकों को प्रशिक्षण देना, (iv) शिक्षा-सम्बन्धी शोध-कार्य करना, और (v) क्षेत्रीय कार्य करना।[1]

"प्राथमिक शिक्षक-प्रशिक्षण के अध्ययन दल" ने सुझाव दिया है कि शिक्षा की राज्य-संस्थाओं को निम्नलिखित कार्यों का भार भी सौंपा जाना चाहिए[2] :—

1. प्राथमिक शिक्षा से सम्बन्धित निरीक्षकों और शिक्षकों को शिक्षा देने वाले अध्यापकों के लिए सेवाकालीन प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
2. प्राथमिक विद्यालयों से सम्बन्धित शिक्षा की समस्याओं की खोज करना, शिक्षण-विधियों के विषय में अनुसंधान करना और पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में शोधकार्य करना।
3. बुनियादी और गैर-बुनियादी प्राथमिक प्रशिक्षण संस्थाओं के कार्यक्रमों का समय-समय पर मूल्यांकन करना।

7. पत्राचार-पाठ्यक्रम-केन्द्र—हमारे देश में शिक्षक-प्रशिक्षण से सम्बन्धित एक अत्यन्त दुष्कर समस्या—विद्यालयों में कार्य करने वाले अप्रशिक्षित शिक्षकों की है। इस समय हमारे देश में प्राथमिक, मिडिल और हाई/हायर सेकण्डरी स्कूलों में अप्रशिक्षित शिक्षकों का प्रतिशत क्रमश: 17·1, 15·1 और 18·8 है।[3]

इन अप्रशिक्षित शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए विभिन्न राज्यों में विभिन्न विधियों का प्रयोग किया जा रहा है, यथा —आंध्र में बी० एड० का 5 माह का और मद्रास में 4 माह का संक्षिप्त पाठ्यक्रम, जोधपुर-विश्वविद्यालय में 2 ग्रीष्मकालीन अवकाशों का पाठ्यक्रम और उत्तर-प्रदेश में 3 माह का सेवाकालीन-प्रशिक्षण।

उपर्युक्त विधियों में से किसी ने भी अप्रशिक्षित शिक्षकों की समस्या का समाधान नहीं किया है। इस तथ्य से अवगत होने के कारण भारत-सरकार ने "पत्राचार-विद्यालयों एवं पाठ्यक्रमों" की योजना का निर्माण किया और 1962 में दिल्ली में "पत्राचार-पाठ्यक्रम-निदेशालय" (Directorate of Correspondence Courses) की सृष्टि की।

1. S. N. Mukerji : *op. cit*, p. 377.
2. *Report of the Study Group on the Training of Elementary Teachers in India*, p. 37
3. *India*, 1974, p. 50.

इस "निदेशालय" के परामर्श को स्वीकार करके, सन् 1966 में माध्यमिक स्कूलों में सेवारत अप्रशिक्षित शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए 5 स्थानों पर "पत्राचार-पाठ्यक्रम-केन्द्रों" की स्थापना की गई :—दिल्ली का "सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ़ एजूकेशन" और मैसूर, भोपाल, अजमेर तथा भुवनेश्वर के शिक्षा के रीजनल कॉलिज। इन स्थानों पर आरम्भ किए जाने वाले पत्राचार-पाठ्यक्रमों की मुख्य विशेषताएँ दृष्टव्य हैं[1] :—

1. पत्राचार-कोर्स की अवधि साधारण प्रशिक्षण की अवधि से अधिक है। साधारण प्रशिक्षण की अवधि लगभग 10 माह की है। किन्तु, पत्राचार-कोर्स की अवधि रीजनल कॉलिजों में 14 माह की और सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ़ ऐजूकेशन में 16 माह की है।
2. पत्राचार-कोर्स का लाभ, विद्यालयों में कार्य करने वाले वही शिक्षक उठा सकते हैं, जो स्नातक एवं परस्नातक हों और जिनको शिक्षण का अनुभव हो। रीजनल कॉलिजों के कोर्स के लिए अनुभव की अवधि 5 वर्ष की है और सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ़ ऐजूकेशन के कोर्स के लिए 3 वर्ष की है।
3. पत्राचार-कोर्स समाप्त करने वाले शिक्षकों को बी० एड० की उपाधि प्रदान की जाती है।
4. पत्राचार-कोर्सों और ट्रेनिंग कॉलिजों के कोर्सों में कोई अन्तर नहीं है।
5. प्रशिक्षण-काल में शिक्षकों को कुछ समय "पत्राचार-पाठ्यक्रम-केन्द्रों" में व्यतीत करना पड़ता है। समय की यह अवधि—रीजनल कॉलिजों में दो ग्रीष्मकालीन अवकाशों में 6-6 सप्ताह और केन्द्रीय शिक्षा-संस्थान (Central Institute of Education) में एक ग्रीष्मकालीन अवकाश में 8 सप्ताह की है।
6. उक्त अवधि में शिक्षकों को प्रशिक्षण से सम्बन्धित विभिन्न कार्य करने पड़ते हैं; यथा :—शिल्प-कार्य, शारीरिक शिक्षा, ट्यूटोरियल कार्य, वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं का प्रयोग, श्रव्य-सामग्री का प्रयोग, पाठ्यक्रम-सहगामी-क्रियाओं में भाग, आदि।

प्राथमिक विद्यालयों के अप्रशिक्षित शिक्षकों के लिए पत्राचार-पाठ्यक्रमों की योजना तैयार हो चुकी है। इसे लगभग सभी राज्यों ने स्वीकार कर लिया है। राजस्थान के "राज्य-शिक्षा-संस्थान" ने इस योजना के अनुसार कार्य करना भी आरम्भ कर दिया है।

8. विशेषज्ञ-प्रशिक्षण-केन्द्र—इन केन्द्रों का उद्देश्य—व्यक्तियों को विशेष विषयों में प्रशिक्षण देना है। इस समय भारत में अग्रांकित विषयों के प्रशिक्षण केन्द्र

1. S. N. Mukerji : *op. cit.*, pp. 385-386.

हैं :—(1) शारीरिक शिक्षा, (2) ललित कलाओं की शिक्षा, (3) गृह-विज्ञान की शिक्षा, (4) शिल्पों की शिक्षा, (5) भाषा-अध्यापकों की शिक्षा, और (6) विज्ञान की शिक्षा। हम इनमें से कुछ मुख्य विषयों के प्रशिक्षण-केन्द्रों का विवरण उपस्थित कर रहे हैं; यथा :—

(i) शारीरिक शिक्षा : *Physical Education*—यह शिक्षा—स्नातक और स्नातकोत्तर, दोनों स्तरों पर दी जाती है। दोनों स्तरों पर इस शिक्षा की अवधि 1 वर्ष की है। इस समय भारत में शारीरिक शिक्षा के 55 प्रशिक्षण-केन्द्र हैं, जिनमें से मुख्य हैं :—(1) गवर्नमेन्ट कॉलेज ऑफ फिजिकल ऐजूकेशन, पटियाला और (2) लक्ष्मीबाई कॉलेज ऑफ फिजिकल ऐजूकेशन, ग्वालियर।

(ii) ललित कलाओं की शिक्षा : Aesthetic Education—इन कलाओं का प्रशिक्षण देने वाली मुख्य संस्थाएँ हैं :—(1) कला-क्षेत्र, अडयार (मद्रास)—नृत्य; (2) टीचर्स कॉलेज ऑफ म्यूजिक, मद्रास—संगीत, (3) बड़ौदा विश्वविद्यालय—संगीत व चित्रकला; (4) सर जे० जे० स्कूल ऑफ आर्ट्‌स, बम्बई—ड्राइंग; (5) गवर्नमेन्ट स्कूल ऑफ आर्ट्‌स, लखनऊ—कला, (6) विश्वभारती, शान्तिनिकेतन—नृत्य, संगीत व चित्रकला, और (7) इंस्टीट्यूट ऑफ आर्ट्‌स ऐजूकेशन, जामिया मिलिया इस्लामिया, दिल्ली—कला व शिल्प।

(iii) गृह-विज्ञान : **Home Science**—गृह-विज्ञान के प्रशिक्षण की व्यवस्था—महिलाओं के लिए है। इसके मुख्य प्रशिक्षण-केन्द्र हैं :—(1) बड़ौदा विश्वविद्यालय; (2) लेडी इरविन कॉलेज, दिल्ली (3) शिक्षा के चारों रीजनल कॉलेज; (4) डोमेस्टिक साइंस ट्रेनिंग कॉलेज, हैदराबाद, (5) एस० एन० डी० टी० वीमेन्स यूनीवर्सिटी, बम्बई; और (6) गवर्नमेन्ट कॉलेज ऑफ होम साइंस फॉर वीमेन, इलाहाबाद।

(iv) भाषा-अध्यापकों की शिक्षा : Education of Language Teachers—भाषा अध्यापकों को विभिन्न भाषाओं में प्रशिक्षण देने के लिए देश के विभिन्न स्थानों में केन्द्रों की स्थापना की गई है। अंग्रेजी की शिक्षा देने के लिए विभिन्न राज्यों में 11 संस्थाएँ हैं। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध हैदराबाद का "सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ इंगलिश" है। हिन्दी की शिक्षा के लिए हिन्दी और अहिन्दी—दोनों क्षेत्रों में 26 संस्थान हैं। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध आगरा का "केन्द्रीय हिन्दी संस्थान" है। इसी प्रकार, देश के विभिन्न स्थानों में उर्दू, अरबी, तामिल, कन्नड़, संस्कृत, मलयालम आदि भाषाओं में प्रशिक्षण देने के केन्द्र हैं।

सेवाकालीन शिक्षक-शिक्षा
In-Service Teacher-Education

सेवाकालीन शिक्षा का अर्थ—शिक्षक-शिक्षा के दो पक्ष हैं। पहला, व्यक्ति को प्रशिक्षण-संस्था में प्रशिक्षण देकर, शिक्षक के रूप में तैयार किया

शिक्षक को सेवा-काल में शिक्षा-सम्बन्धी नवीन तथ्यों, विधियों, सिद्धान्तों आदि से परिचित कराके, उसकी व्यावसायिक दक्षता एवं कुशलता में वृद्धि की जाती है। शिक्षा के इसी पक्ष को "सेवाकालीन शिक्षक-शिक्षा" की संज्ञा दी गई है।

सेवाकालीन शिक्षा का महत्त्व व आवश्यकता—शिक्षा—आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। अतः सच्चा शिक्षक वही व्यक्ति हो सकता है, जो स्वयं अपने सम्पूर्ण जीवन में विद्यार्थी बना रहता है। जो व्यक्ति अपने 9 या 10 माह के प्रशिक्षण के पश्चात् फिर कभी कुछ सीखने का प्रयत्न नहीं करता है, वह सच्चा शिक्षक कहलाने का अधिकारी नहीं है। अतः यह आवश्यक है कि वह अपने सम्पूर्ण शिक्षण-काल में अपने ज्ञान में वृद्धि और उसका परिमार्जन करता रहे। यह तभी सम्भव है, जब उसे सेवाकालीन शिक्षा की सुविधाएँ उपलब्ध हों। इस शिक्षा के महत्त्व एवं आवश्यकता के सम्बन्ध में आपके अवलोकनार्थ कुछ उद्धरण प्रस्तुत हैं; यथा :—

1. **रवीन्द्रनाथ टैगोर** :—"शिक्षक तब तक सच्ची शिक्षा कदापि नहीं दे सकता है, जब तक कि वह स्वयं न सीख रहा हो। एक दीपक दूसरे दीपक को तब तक कदापि नहीं जला सकता है, जब तक कि वह स्वयं न जल रहा हो।"

"A teacher can never truly teach unless he is still learning himself. A lamp can never light another lamp unless it continues to burn its own flame."—Rabindranath Tagore : *Siksa*, p 264.

2. **राधाकृष्णन् कमीशन**[1] :—"यह विलक्षण बात है कि हमारे विद्यालय-शिक्षक 24 या 25 वर्ष की आयु तक पहुँचने से पहले ही उन विषयों के सम्बन्ध में सब-कुछ सीख लेते हैं, जो उनको पढ़ाने होते हैं और उसके पश्चात् उनकी सब भावी शिक्षा—अनुभव पर छोड़ दी जाती है।"

3. **मुदालियर कमीशन**[2] :—"शिक्षक-प्रशिक्षण का कार्यक्रम चाहे जितना भी उत्तम क्यों न हो, पर यह स्वयं उत्तम शिक्षक का निर्माण नहीं कर सकता है। यह प्रशिक्षण—न्यूनतम अनुभव वाले शिक्षक को पर्याप्त आत्म-विश्वास से अपने शिक्षण-कार्य को आरम्भ करने की क्षमता प्रदान करता है। शिक्षक अपने कार्य में अधिक कुशलता केवल व्यक्तिगत एवं सामूहिक प्रयासों के फलस्वरूप ही प्राप्त कर सकता है। सेवा-काल की इस स्थिति में प्रशिक्षण-संस्थाओं को शिक्षक की सहायता करनी चाहिए।"

4. **कोठारी कमीशन** :—"ज्ञान के समस्त क्षेत्रों में होने वाली तीव्र प्रगति और शिक्षा के सिद्धान्तों एवं प्रयोगों में होने वाले निरन्तर विकास के कारण शिक्षण-व्यवसाय में सेवाकालीन शिक्षा की अत्यधिक आवश्यकता है।"

---

1. *Radhakrishnan Commission Report*, p. 152.
2. *Mudaliar Commission Report*, p. 137.

"The need of in-service education is most urgent in the teaching profession, because of the rapid advance in all fields of knowledge and continuing evolution of pedagogical theory and practice."—*Kothari Commission Report*, p 84.

सेवाकालीन शिक्षा की विधियाँ—"मुदालियर कमीशन" (p. 137) ने सेवाकालीन शिक्षा के लिए अग्रांकित विधियों का सुझाव दिया है :—

1. विचार-गोष्ठियाँ : Seminars.
2. अभिनवन-पाठ्यक्रम : Refresher Courses
3. व्यावसायिक सम्मेलन : Professional Conferences.
4. कार्यशालाओं में व्यावहारिक प्रशिक्षण : Practical Training in Workshops.
5. विशेष विषयों में संक्षिप्त-गहन पाठ्यक्रम : Short Intensive Courses in Special Subjects

सेवाकालीन शिक्षा की अवधि—शिक्षकों को सेवाकालीन शिक्षा कब और कितने समय तक प्राप्त होनी चाहिए, इस विषय में "कोठारी कमीशन" का मत है[1] :—"प्रत्येक शिक्षक को अपने सेवा-काल में प्रति 5 वर्ष के पश्चात् कम-से-कम 2 या 3 माह की सेवाकालीन शिक्षा प्राप्त होनी चाहिए।"

भारत-सरकार द्वारा "सेवाकालीन शिक्षक-शिक्षा" की आवश्यकता एवं उपयोगिता को स्वीकार किया गया है। अत "पाँचवीं योजना" में प्रकाशित किया गया है :—"वर्तमान शिक्षकों के सेवाकालीन प्रशिक्षण का व्यापक कार्यक्रम कार्यान्वित किया जायगा।"

"A comprehensive programme of in-service training of existing teachers will be implemented"—*Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. II, p 198.

समस्याएँ व उनके समाधान
Problems & Their Solutions

डा० मुकर्जी का कथन है —"पिछले कुछ वर्षों में शिक्षक-शिक्षा का तीव्र विकास हुआ है, पर उसकी वर्तमान स्थिति किसी भी प्रकार संतोषजनक नहीं है। इस विकास के साथ-साथ उसमें अनेक समस्यायें उपस्थित हो गई है।"

"The present position in relation to teacher-education is by no means satisfactory, in spite of its rapid progress during recent years. Numerous problems have arisen with this development."—S. N. Mukerji : *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 401.

---

1. *Kothari Commission Report*, p 624.

नीचे की पंक्तियों में हम शिक्षक-शिक्षा की मुख्य समस्याओं और उनके समाधान के उपायों पर विचार कर रहे हैं, यथा :—

1. समस्या—विभाजित उत्तरदायित्व : Divided Responsibility—शिक्षक शिक्षा के 2 मुख्य पक्ष हैं—संख्यात्मक और गुणात्मक। संख्यात्मक पक्ष अर्थात् विस्तार का उत्तरदायित्व—राज्य-सरकारों पर और गुणात्मक उन्नति का उत्तरदायित्व—केन्द्रीय सरकार पर है।

केन्द्रीय स्तर पर शिक्षक-शिक्षा का उत्तरदायित्व 4 निकायों के मध्य विभाजित है :—शिक्षा-मंत्रालय, योजना-आयोग (Planning Commission), राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान तथा प्रशिक्षण-परिषद् (National Council of Educational Research & Training), और विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग।

"शिक्षा-मंत्रालय"—शिक्षक-शिक्षा की योजनाओं का निर्माण करता है। "योजना-आयोग" उनमें से आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण को अपनी स्वीकृति प्रदान करता है और उनको कार्यान्वित करने के लिए धन देता है। "राष्ट्रीय परिषद्" स्वीकृत योजनाओं को कार्यान्वित करती है। "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" यह निश्चित करता है कि उनका सम्बन्ध विश्वविद्यालय-शिक्षा से है या नहीं।

ये चारों निकाय अपने-अपने सिद्धान्तों के अनुसार कार्य करते हैं। अतः उनके उद्देश्यों में समानता नहीं है। परिणामतः हमारे देश में शिक्षक-शिक्षा—अनियोजित, असंगठित एवं अव्यवस्थित दशा में है।

समाधान—विभाजित उत्तरदायित्व की समाप्ति : End of Divided Responsibility—उल्लिखित समस्या का समाधान करने का एकमात्र उपाय है—केन्द्रीय स्तर पर विभाजित उत्तरदायित्व की समाप्ति। यह तभी सम्भव है, जब शिक्षक-शिक्षा का नियोजन, संगठन एवं सर्वेक्षण करने और उसे आर्थिक सहायता देने के लिए अखिल-भारतीय स्तर पर शिक्षक-शिक्षा की समिति का निर्माण किया जाय। जिस प्रकार देश में चिकित्सा-शिक्षा का पूर्ण उत्तरदायित्व—"भारतीय चिकित्सा-समिति" (Indian Medical Council) पर और प्राविधिक शिक्षा का पूर्ण उत्तरदायित्व—"अखिल-भारतीय प्राविधिक शिक्षा-समिति" (All India Council of Technical Education) पर है, उसी प्रकार शिक्षक-शिक्षा का पूर्ण उत्तरदायित्व एक अखिल-भारतीय समिति पर होना चाहिए।

इस प्रकार की समिति की स्थापना का सुझाव—"शिक्षक-शिक्षकों के भारतीय संघ" (Indian Association of Teacher Educators), अनेक "अध्ययन-दलों" (Study Groups), समितियों एवं आयोगों द्वारा दोहराया जा चुका था। इसकी स्थापना के विषय में "कोठारी कमीशन" का सुझाव था[1] :—"विश्वविद्यालय-अनुदान

1. *Kothari Commission Report*, p. 624.

आयोग—राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् के सहयोग से शिक्षक-शिक्षा के लिए एक स्थायी समिति का निर्माण करे, जिसे शिक्षक-शिक्षा के स्तरों को बनाए रखने का कार्य सौंपा जाय।"

"कोठारी कमीशन" के सुझाव को स्वीकार करके, भारत-सरकार ने "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" की अधीनता में "शिक्षक-शिक्षा की स्थायी समिति" (Standing Committee on Teacher Education) का निर्माण किया है। किन्तु, इस "समिति" का कार्यक्षेत्र सीमित है, क्योंकि इसका नियंत्रण केवल उन प्रशिक्षण-संस्थाओं पर है, जो विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध हैं। शेष प्रशिक्षण-संस्थाएँ इसके अधिकार-क्षेत्र से बाहर हैं। इस त्रुटि को दूर करने के लिए राज्य-स्तर पर भी शिक्षक-शिक्षा की समितियाँ या परिषदें होनी चाहिए। उक्त "समिति" और इन परिषदों के कार्यों में समन्वय होना चाहिए तभी शिक्षक-शिक्षा की गुणात्मक उन्नति होगी और उसका नियोजित विस्तार होगा।

इस दिशा में भारत के सभी राज्य प्रयत्नशील हैं। मद्रास, महाराष्ट्र एवं राजस्थान में "शिक्षक-शिक्षा की राज्य-परिषद्" (State Board of Teacher Education) और आंध्र प्रदेश में "शिक्षक-शिक्षा की राज्य-समिति" (State Council of Teacher Education) की स्थापना की जा चुकी है। शेष राज्यों के विषय में भारत-सरकार ने "पाँचवीं योजना" में अपना यह निर्णय लिपिबद्ध किया है :—"शेष राज्यों में शिक्षक-शिक्षा के कार्यक्रमों में समन्वय स्थापित करने के लिए शिक्षक-शिक्षा की राज्य-परिषदों की स्थापना की जायगी।"

"State Boards of Teacher Education will be set up in the remaining States for co-ordinating teacher education programmes."
—*Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol II, p 198

2. समस्या—प्रवेश के मानदण्डों में विविधता Diversity in Admission Criteria—शिक्षक-शिक्षा की बहुरंगी समस्याओं में से एक समस्या—प्रशिक्षण-संस्थाओं के मानदण्डों में विविधता है। इन मानदण्डों में इतनी विलक्षण विविधता है कि कभी-कभी उनके कारण परेशानी के अलावा हार्दिक दुःख भी होता है। इसका कारण यह है कि अनेक प्रशिक्षण-संस्थाओं में प्रवेशार्थियों के चुनाव के 2 मुख्य आधार हैं—धन और सिफारिश। ऐसी स्थिति में निम्न योग्यताओं के व्यक्तियों का चुनाव तो हो जाता है, जबकि उच्च मानसिक योग्यताओं एवं शिक्षण में अभिरुचि रखने वाले व्यक्ति—प्रवेश पाने से वंचित रह जाते हैं।

प्रशिक्षण-संस्थाओं में निम्न कोटि के व्यक्तियों के प्रवेश के दो [illegible] परिणाम उभर कर सामने आ गए हैं—छात्र-अनुशासनहीनता में वृद्धि और [illegible] शिक्षण के स्तरों में अधिक गिरावट। अतः प्रशिक्षण के लिए [illegible] का चुनाव—शिक्षाविदों के लिए चिन्ता का विषय बन गया है। इ[illegible]

सैयदैन ने लिखा है[1] :—"जब तक लोगों में अध्यापक बनने की इच्छा थी और प्रशिक्षित अध्यापकों की संख्या, माँग से अधिक नहीं थी, तब तक परिस्थिति उतनी उग्र और संकटमय नहीं थी, जितनी कि आज है। अब एक ओर तो वर्तमान प्रशिक्षण-कॉलिजों में भरती होने का प्रयत्न करने वालों की संख्या बहुत अधिक है और दूसरी ओर सभी योग्य तथा प्रशिक्षित अध्यापकों के लिए काफी नौकरियाँ नहीं हैं। इसलिए, उचित लोगों को चुनने की समस्या स्वयं इन लोगों के हित में और अध्यापनवृत्ति के हित में भी बहुत महत्त्वपूर्ण बन गई है।"

समाधान—प्रवेश के मानदण्डों का निर्धारण : **Determination of Admission Criteria**—भारतीय शिक्षा की पुनर्रचना में शिक्षक सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण कारक है, पर शिक्षण का कार्य सभी व्यक्ति नहीं कर सकते हैं। अतः प्रशिक्षण-संस्थाओं के प्रबंधकों एवं प्रधानाचार्यों द्वारा स्वनिर्मित मानदण्डों के प्रयोग का समय बीत चुका है। अब इन मानदण्डों का प्रयोग न केवल भारतीय शिक्षा के पुनर्संगठन, वरन् देश के भावी नागरिकों और स्वयं देश के लिए महान् संकट का कारण है। अतः यह अति आवश्यक है कि प्रवेश के मानदण्ड निर्धारित किए जायँ और उनको बिना किसी अपवाद के प्रत्येक प्रशिक्षण-संस्था द्वारा प्रयोग किया जाय। इन मानदण्डों को निर्धारित करने के लिए, डा० सैयदैन के 2 महत्त्वपूर्ण सुझाव उल्लेखनीय हैं; यथा[2] :—

1. प्रत्येक राज्य की प्रशिक्षण-संस्थाएँ और शिक्षा-विभाग संयुक्त रूप में प्रत्येक 5 वर्ष के पश्चात् यह सर्वेक्षण करें कि उनके राज्य के लिए कितने प्रशिक्षित शिक्षकों की माँग है। इसी माँग के आधार पर विभिन्न स्तरों की प्रशिक्षण-संस्थाओं में छात्रों को प्रवेश दिया जाय।
2. इस समय प्रशिक्षण-संस्थाओं में छात्रों को प्रवेश देने के लिए जिन अव्यवस्थित विधियों का प्रयोग किया जा रहा है, उनके स्थान पर ऐसे मानदण्ड निर्धारित किये जायें, जिनसे छात्रों के नैतिक एवं मानसिक गुणों की पर्याप्त जानकारी प्राप्त हो जाय।

डा० सैयदैन के दूसरे सुझाव के अनुसार दिल्ली के "सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ एजूकेशन" ने छात्रों के चयन के लिए एक योजना तैयार की है। इस योजना में 4 साक्षात्कार (आचार्य, उपआचार्य, अध्यापक-मंडल एवं स्वास्थ्य-अधिकारी द्वारा), 5 परीक्षाएँ (Tests) (रुचि-परीक्षा, बुद्धि परीक्षा, अभिवृत्ति-परीक्षा, सामान्य ज्ञान-परीक्षा एवं संवेदनशीलता-परीक्षा) और एक सामूहिक विचार-विमर्श को स्थान दिया गया है।[3]

1. के० जी० सैयदैन : शिक्षा की पुनर्रचना, p. 272.
2. के० जी० सैयदैन : पूर्वोक्त पुस्तक, pp. 272-273.
3. E. A. Pires : *Better Teacher Education*, p. 81.

प्रशिक्षण-संस्थाओं द्वारा इस योजना को स्वीकार नहीं किया गया है, क्योंकि इसमें एक प्रवेशार्थी के चयन-सम्बन्धी तथ्यों को एकत्र करने में 4 घंटे का समय लगता है। अतः यह आवश्यक है कि इसमें केवल अग्रांकित 4 बातों को स्थान देकर, इसे संक्षिप्त बनाया जाय।—रुचि-परीक्षा, बुद्धि-परीक्षा, भाषा में लिखित परीक्षा और अध्यापक-मंडल से साक्षात्कार।

3. समस्या—स्वतंत्रताविहीन वातावरण : Unfree Environment—शिक्षक-शिक्षा पर एक गम्भीर आरोप यह लगाया जाता है कि छात्राध्यापक अपना सम्पूर्ण परीक्षण-काल स्वतन्त्रताविहीन वातावरण में व्यतीत करते हैं। उनको "नई शिक्षा" (New Education) में निहित नेतृत्व, स्वतन्त्रता, पहलकदमी, सामुदायिक जीवन एवं सामाजिक प्रेरणा आदि विचारों की शिक्षा तो दी जाती है, पर उनको इन विचारों का वास्तविक अनुभव प्राप्त करने का कोई अवसर नहीं दिया जाता है।

इसके विपरीत, उनसे यह आशा की जाती है कि वे इन विचारों के सार-तत्त्व को प्रत्यक्ष पूर्वाभास की किसी प्रक्रिया द्वारा अपनी पाठ्य-पुस्तकों से ग्रहण कर लें और फिर उनको अपने विद्यालयों में सप्राण वास्तविकता का रूप प्रदान करें। उनसे यह भी आशा की जाती है कि वे बिना सोचे-समझे, बिना तर्क-वितर्क किए अपने गुरुजनों के बेबुनियाद विचारों को भी आत्मसात् कर लें। भाग्य द्वारा ठुकराए हुए व्यक्ति—शिक्षण-व्यवसाय में प्रवेश करके, इन सब बातों के विरुद्ध अपनी आत्मा की चीत्कार को सुनकर भी अनसुनी कर देते हैं और अपनी प्रशिक्षण-संस्थाओं के दम घोंटने वाले वातावरण में अपनी आत्माओं का हनन करके, ज्यों-त्यों करके अपने प्रशिक्षण-काल के दिन गुजारते हैं।

कटु सत्य यह है कि जो प्रशिक्षण-संस्थाएँ स्वयं "करके सीखने" के सिद्धान्त की शिक्षा देती हैं, वही अपने इस सर्वप्रिय सिद्धान्त का कार्य रूप में कभी पालन नहीं करती हैं। इस विरोधाभास पर क्षोभ प्रकट करते हुए, डा० सैयदेन ने लिखा है[1] :—"स्वतन्त्रता या आत्म-क्रिया या सहयोगी कार्य जैसी किसी भी महत्वपूर्ण एवं सारगर्भित धारणा के पूरे महत्त्व को उस समय तक नहीं समझा जा सकता है, जब तक कि इन धारणाओं में निर्दिष्ट परिस्थितियों में कार्य करने का वास्तविक अनुभव प्राप्त न किया जाय।"

समाधान—स्वतन्त्र वातावरण : Free Environment—शिक्षक-शिक्षा को उपर्युक्त आरोप से मुक्त करने के लिए यह परम आवश्यक है कि प्रशिक्षण-संस्थाओं को कठोर नियमों के बंधनों से और छात्राध्यापकों के जीवन तथा उनकी गतिविधियों को दमनकारी नियंत्रण से मुक्त किया जाय। इसके अतिरिक्त, यह भी परम

1. K. G Saiyidain : *Problems of Educational F*
320-21.

आवश्यक है कि प्रशिक्षण-संस्थाओं को ऐसे सक्रिय तथा स्वतंत्र समुदायों (Communities) के रूप में संगठित किया जाय, जिनमें छात्राध्यापक उन्हीं प्रेरणाओं तथा परिस्थितियों के अधीन कार्य करें, जिनको स्वतंत्र भारत अपने नवीन तथा प्रगतिशील विद्यालयों में स्थान देने की चेष्टा कर रहा है। यदि इस दिशा में तत्काल सक्रिय पग नहीं उठाया गया, तो प्रशिक्षण-संस्थाओं के दम घोंटने वाले तथा स्वतंत्रता-विहीन वातावरण में शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्राध्यापक इस दूषित वातावरण की प्रक्रिया को और अपनी शिक्षा की ग़लत धारणाओं को अपने-अपने विद्यालयों में अन्त समय तक चलाते रहेंगे।

पिछले कुछ वर्षों से प्रशिक्षण-संस्थाओं के वातावरण में प्रत्यक्ष परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है। इस बात पर हर्ष प्रकट करते हुए और इसका कारण बताते हुए डा० सैयदेन ने लिखा है[1] :—"बुनियादी प्रशिक्षण-कालेजों को सहकारी उत्पादनशील कार्य पर आधारित 'सामुदायिक केन्द्रों' के रूप में संगठित किया जा रहा है और स्नातकोत्तर प्रशिक्षण के कॉलेजों में भी अपेक्षतः अधिक स्वतंत्रता दी जा रही है। परन्तु, सचमुच प्रभावशाली बनने के लिये इस आन्दोलन को अभी काफ़ी प्रगति करनी होगी।"

4. समस्या—मानवीय पक्ष की उपेक्षा : Neglect of Human Aspect—प्रशिक्षण-काल में शिक्षण के प्राविधिक पक्ष (Technical Aspect) पर इतना अधिक बल दिया जाता है कि मानवीय पक्ष की पूर्ण उपेक्षा हो जाती है। सैद्धान्तिक विषयों, अध्यापन-विधियों, शिक्षण-अभ्यास एवं व्यावहारिक कार्यक्रमों को इतना अधिक महत्त्व दिया जाता है कि छात्राध्यापकों को शिक्षा के लक्ष्यों, मूल्यों एवं प्रयोजनों पर आलोचनात्मक ढंग से विचार करने का कोई अवसर प्राप्त नहीं होता है। अतः वे भूल जाते हैं कि वे समाज के अभिन्न अंग हैं और उनका मुख्य उद्देश्य—अपने विद्यार्थियों का सर्वतोमुखी विकास करके, उत्तम समाज के निर्माण में अपनी भूमिका अदा करनी है।

इस प्रकार, प्रशिक्षण-संस्थाओं में मानवीय पक्ष की पूर्ण अवहेलना की जाती है। वे यह भूल जाती हैं कि जिन छात्राध्यापकों को वे शिक्षकों के रूप में तैयार कर रही हैं, वे मानव हैं, मशीन नहीं। प्रशिक्षण-संस्थाओं की इस हताशकारी प्रवृत्ति पर प्रहार करते हुए, डा० सैयदेन ने लिखा है :—"अदूरदर्शिता के कारण छोटी-छोटी ब्योरे की बातों एवं प्राविधिक आवश्यकताओं पर ध्यान केन्द्रित रखने के कारण समाज के साथ विद्यालय का सम्बन्ध एवं उसकी जीती-जागती समस्याएँ और मसले दृष्टि से कुछ ओझल हो गए हैं।"

"The relation of the school to society and its living problems and issues have been obscured by concentrating short-sightedly on

1. के० जी० सैयदेन : पूर्वोक्त पुस्तक, p. 271.

minor details and technical requirements"—K. G. Saiyidain : *op. cit.*, p. 318.

समाधान—प्रशिक्षण-संस्थाओं के मानदण्डों में परिवर्तन : **Change in the Values of Training Institutions**—हमारी प्रशिक्षण-संस्थाओं में मानवीय पक्ष की उपेक्षा करने की अपराध-चेतन्यता तो है, पर फिर भी वे अपने अपराध को निर्भीकता से अस्वीकार करती हैं। वे इस निराधार तर्क का प्रचार करती हैं कि उनको छात्राध्यापकों को प्रशिक्षण देने के लिए इतना थोड़ा समय मिलता है कि उनके लिए मानवीय पक्ष पर यदा-कदा भी ध्यान केन्द्रित करना सम्भव नहीं है।

तर्क की दृष्टि से तो यह तर्क मान्य है, पर सचमुच यह है केवल बहाना। यदि हम इस बहाने के आधार पर प्रशिक्षण-संस्थाओं में दशाब्दियों से विद्यमान इस परिस्थिति में सुधार करने का प्रयत्न नहीं करते हैं, तो यह इस बात का सजीव प्रमाण होगा कि हम गलत मानदण्डों में आस्था रखते हैं और उनमें सुधार किए जाने के पक्ष में नहीं हैं।

अतः उल्लिखित समस्या के समाधान का स्पष्ट उपाय यह है कि प्रशिक्षण-संस्थाएँ अपने मानदण्डों में परिवर्तन करें और मानवीय पक्ष पर अपना प्रचुर ध्यान केन्द्रित करें। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रशिक्षण-संस्थाओं को समाज-केन्द्रित बनाना होगा और सामाजिक आवश्यकताओं के अनुसार उनके पाठ्यक्रमों में संशोधन करना होगा। हम अपने इस कथन का समर्थन डा० सैयदेन के अग्रांकित उद्धरण से कर रहे हैं[1] :—"प्रशिक्षण-संस्थाएँ अपने मानदण्डों को बदलें और गुफा में रहने वाले मनुष्य की उस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति से बचें, जो अपने चारों ओर के नयनाभिराम दृश्य को केवल इसलिए नहीं देख सकता था, क्योंकि उसकी दृष्टि उसके बन्दीगृह की चारदीवारों तक सीमित थी। शैक्षणिक कार्य की सामाजिक तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को पर्याप्त महत्त्व नहीं दिया जाता है और इस कमी को दूर किया जाना चाहिए।"

5. समस्या—सिद्धान्त पर अनावश्यक बल **Unnecessary Emphasis on Theory**—शिक्षक-शिक्षा-सम्बन्धी कार्य के क्षेत्र में प्रशिक्षण-संस्थाओं की यह कह कर आलोचना की जाती है कि उनमें सिद्धान्तों को शिक्षा आवश्यकता से अधिक दी जाती है। छात्राध्यापकों के लिए सिद्धान्त के रूप में जिन विषयों का अध्ययन अनिवार्य है, उनमें से अनेक ऐसे हैं, जो उनके वास्तविक शिक्षण-कार्य के लिए पूर्णतया निरर्थक एवं निष्प्रयोजन हैं। उदाहरणस्वरूप, इस प्रकार के कुछ विषय हैं :—सांख्यिकी, क्रिया-अनुसंधान, शिक्षा में विभिन्न 'वाद', अनेक रोगों के कारण और उपचार, प्रत्येक शिक्षा-आयोग और समिति के विचार, इत्यादि। छात्राध्यापक मनो-

1. के० जी० सैयदेन पूर्वोक्त पुस्तक, p 270

removed, its effectiveness will continue to be very questionable indeed."—K. G. Saiyidain : *op., cit.* p. 323.

समाधान—सिद्धान्त व व्यवहार में अपृथकता : **No Divorce between Theory & Practice**—उपर्युक्त दोष का मूलभूत कारण यह है कि ऐसी प्रशिक्षण-संस्थाओं की संख्या प्रायः नगण्य है, जिनसे उचित प्रकार के "प्रदर्शन-स्कूल" (Demonstration Schools) सम्बद्ध हैं। अतः छात्राध्यापकों को इस बात का अवसर नहीं मिल पाता है कि वे उन सिद्धान्तों एवं प्रणालियों को जिनको उन्होंने बड़े परिश्रम से सीखा है, व्यवहार में परख सकें। फलस्वरूप, जैसा कि डा० सैयदैन ने लिखा है[1] :—"उनके अध्यापन में जीवन तथा वास्तविकता का वह पुट नहीं होता है, जो केवल सफल व्यावहारिक अनुभव से ही आ सकता है।"

इस दोष के निराकरण का उपाय बताते हुए, डा० सैयदैन ने लिखा है :—"व्यवहार एवं सिद्धान्त—दोनों ही की कल्पना विकासवान इकाइयों के रूप में की जानी चाहिए। सिद्धान्त—व्यवहार का पथ आलोकित करे और व्यवहार—सिद्धान्तों में नित्य नए सुधार करे।"

"Practice and theory must both be visualized as growing entities : theory illuminating practice; practice constantly modifying theory."—K. G. Saiyidain : *op. cit.*, p. 314.

किन्तु, यह तभी सम्भव है, जब प्रत्येक प्रशिक्षण-संस्था से सम्बद्ध और सभी आवश्यक साधनों से परिपूर्ण एक प्रदर्शन-विद्यालय हो, जो प्रायोगिक पद्धति (Experimental Method) के अनुसार चलाया जाता हो और जिसमें छात्राध्यापकों को बताए जाने वाले सिद्धान्तों एवं प्रणालियों के बारे में छानबीन की जाती हो। डा० सैयदैन के शब्दों में[2] :—"यदि प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले छात्र इन प्रणालियों को व्यवहार में परख कर वैयक्तिक रूप से उनका प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर लेंगे और यदि अध्यापन के अभ्यास के दौरान में वे स्कूल को इन सिद्धान्तों के अनुसार चलाने में सहायता दे चुके होंगे, तो इस बात की सम्भावना अधिक होगी कि उनमें अपने काम के प्रति नए-नए प्रयोग करने का रवैया पैदा हो और आगे चलकर अपने जीवन में सैद्धान्तिक ज्ञान और व्यवहार के बीच फलप्रद क्रिया-प्रतिक्रिया स्थापित कर सकें।"

7. समस्या—शिक्षक-शिक्षा की पृथकता : **Isolation of Teacher Education**—"कोठारी-कमीशन" के अनुसार, शिक्षक-शिक्षा की पृथकता के 3 रूप हैं; यथा[3] :—

---

1. के० जी० सैयदैन : पूर्वोक्त पुस्तक, पृ० 266.
2. के० जी० सैयदैन : पूर्वोक्त पुस्तक, p. 267.
3. *Kothari Commission Report*, p. 68.

1. विश्वविद्यालयों से साहित्यिक जीवन से पृथकता—प्रशिक्षण-संस्थाओं का विश्वविद्यालयों के साहित्यिक जीवन से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि ये सभी संस्थाएँ पूर्णतया पृथक् इकाइयों के रूप में कार्य करती हैं। इसके कारण स्वयं विदित हैं। प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं का सचालन, राज्यों के शिक्षा-विभागों द्वारा किया जाता है। माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वाली अधिकांश संस्थाएँ, विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध अवश्य होती हैं, किन्तु उनका विश्वविद्यालयों के शैक्षिक जीवन से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता है।

2. विद्यालयों से पृथकता—प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों को प्रशिक्षण देने वाली संस्थाओं का विद्यालयों और विद्यालय-शिक्षा की प्रचलित विधियों से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता है।

3. एक-दूसरे से पृथकता—विभिन्न श्रेणियों की प्रशिक्षण-संस्थाओं की एक-दूसरे से पूर्ण पृथकता है, क्योंकि उनके छात्रों एवं शिक्षकों में किसी प्रकार का पारस्परिक सम्बन्ध नहीं होता है। वे अपने को एक-दूसरे से श्रेष्ठतर या निम्नतर समझते हैं। अतः वे बिल्कुल पृथक् इकाइयों में विभाजित हैं।

इस प्रकार, सब प्रशिक्षण-संस्थाओं का अपना-अपना पृथक् अस्तित्व है। उनका विश्वविद्यालयों के साहित्यिक जीवन, प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों और एक-दूसरे से कोई सम्बन्ध नहीं है। शिक्षक-शिक्षा का यह ऐसा गम्भीर दोष है, जिसका उन्मूलन किया जाना आवश्यक है। इस सदर्भ में "'शिक्षा-आयोग'' ने लिखा है:—"हम प्रशिक्षण-संस्थाओं की पृथकता की समाप्ति के प्रस्ताव को अत्यधिक महत्त्व देते हैं। हमारी राय में यह एक ऐसा सुधार है, जो शिक्षक-शिक्षा में जीवन का संचार कर सकता है।"

"We attach great importance to the proposal to break the isolation of training institutions In our opinion, this is the one reform that can vitalize teacher education"—*Education Commission Report*, p 68

समाधान—पृथकता का अन्त Removal of Isolation—'कोठारी कमीशन'' ने शिक्षक-शिक्षा की पृथकता के तीनों रूपों का अन्त करने के लिए अनेक महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये हैं; यथा —

1. विश्वविद्यालयों से पृथकता का अन्त

(i) चुने हुए विश्वविद्यालयों में शिक्षक-शिक्षा के कार्यक्रमों का विकास किया जाय।

1. *Kothari Commission Report* pp 68-71

(ii) विश्वविद्यालयों के बी० ए० और एम० ए० के पाठ्यक्रमों में "शिक्षा" को वैकल्पिक विषय के रूप में स्थान दिया जाय ।

(iii) "शिक्षा" विषय का चयन करने वाले छात्रों को विद्यालयों में शिक्षण-अभ्यास की सुविधा दी जाय ।

2. विद्यालयों से पृथकता का अन्त

(i) प्रशिक्षण-संस्थाओं में "पुरातन छात्र-समितियों" का संगठन किया जाय ।

(ii) प्रशिक्षण-संस्थाओं में "प्रसार-सेवा-विभाग" की अनिवार्य रूप से स्थापना की जाय ।

(iii) प्रशिक्षण-संस्थाओं एवं उनसे सम्बद्ध 'शिक्षण-अभ्यास' के स्कूलों के अध्यापकों में समय-समय पर विनिमय किया जाय ।

3. एक-दूसरे से पृथकता का अन्त

(i) सब प्रशिक्षण-संस्थाओं को ट्रेनिंग कॉलिजों की संज्ञा दी जाय और उनको विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध किया जाय ।

(ii) शिक्षक-शिक्षा के सब स्तरों के छात्रों को प्रशिक्षण देने के लिए, "सघन कॉलिजों" (Comprehensive Colleges) की स्थापना की जाय ।

टिप्पणी—"कोठारी कमीशन" का सुझाव है कि विभिन्न स्तरों के छात्रों के प्रशिक्षण के लिए पृथक् संस्थाएँ नहीं होनी चाहिए । इसके विपरीत, सबको एक ही प्रशिक्षण-संस्था में प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए । "कमीशन" ने इस संस्था को "सघन कॉलिज" की संज्ञा दी है । सघन कालेजों में पूर्व-प्राथमिक, प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों में कार्य करने वाले शिक्षकों को एक ही स्थान पर प्रशिक्षण दिया जाता है । इसके अतिरिक्त, इनमें छात्रों को एम० एड० की उपाधि के लिए भी शिक्षा दी जाती है । "सघन कालिज"—पिलानी, उदयपुर, सरदार शहर आदि स्थानों में अनेक वर्षों से कार्य कर रहे हैं ।

सघन कॉलिजों की स्थापना के फलस्वरूप विभिन्न प्रकार की प्रशिक्षण-संस्थाओं में विद्यमान पृथकता का अन्त हो जायगा । अतः भारत-सरकार ने इनके निर्माण के प्रति विशेष ध्यान देने का निर्णय किया है । "पाँचवीं पंचवर्षीय योजना" के अनुसार :—"शिक्षा के कुछ कॉलिजों का सघन कॉलिजों के रूप में विकास किया जायगा, जिनमें प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों के सब प्रकार के शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जायगा ।"

"A few colleges of education will be developed as comprehensive colleges, where training will be provided for all types of teachers in elementary and secondary schools."—*Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. II, p. 198.

8. समस्या—शिक्षक-शिक्षा का निम्न स्तर : Low Standard of Teacher Education—शिक्षक-शिक्षा के कार्यक्रम का सार-तत्व उसका गुण या श्रेष्ठता (Quality) है। यदि उसमें श्रेष्ठता का अभाव है, तो वह न केवल आर्थिक अपव्यय का, वरन् विद्यालय-शिक्षा के सब स्तरों के पतन का कारण बन जाती है। यदि हम अपने देश की शिक्षक-शिक्षा की स्थिति का ध्यानपूर्वक अवलोकन करें, तो हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचेंगे कि यद्यपि उसका हाल के वर्षों में यथेष्ट विस्तार हुआ है, पर उसके स्तर का अनिवार्य रूप में पतन हुआ है। इसके कारण पर प्रकाश डालते हुए "शिक्षा-आयोग" ने लिखा है :—"शिक्षक-शिक्षा के वर्तमान कार्यक्रम अधिकांश रूप में परम्परागत, कठोर और स्कूलों की वास्तविक दशाओं एवं शैक्षिक पुनर्गठन के वर्तमान या प्रस्तावित कार्यक्रमों से असम्बद्ध हैं।"

"Existing programmes of teacher education are largely traditional, rigid and divorced from the realities of schools and existing or proposed programmes of educational reconstruction."

—*Education Commission Report*, p 72.

समाधान—शिक्षक-शिक्षा का पुनर्गठन : Reorganisation of Teacher Education—शिक्षक-शिक्षा को आर्थिक अपव्यय एवं शैक्षिक स्तरों के पतन के दोषारोपण से सुरक्षा प्रदान करने के लिए, उसकी श्रेष्ठता में उन्नति की जानी आवश्यक है। यह तभी सम्भव है, जब उसका आमूल परिवर्तन करके, उसका पुनर्सङ्गठन किया जाय। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, "कोठारी कमीशन" ने पुनर्सङ्गठन के निम्नांकित सिद्धान्तों का उल्लेख किया है[1] :—

1. विश्वविद्यालयों में सामान्य एवं व्यावसायिक शिक्षा के एकीकृत पाठ्यक्रमों का आयोजन किया जाय।
2. स्नातकों, परस्नातकों, प्रधानाचार्यों एवं प्रशिक्षण-संस्थाओं के अध्यापकों के लिए विशिष्ट पाठ्यक्रमों का निर्माण किया जाय।
3. प्रशिक्षण-संस्थाओं में व्यावसायिक अध्ययन को सजीव बनाया जाय और उसको भारतीय दशाओं पर आधारित किया जाय।
4. प्रशिक्षण-संस्थाओं के पाठ्यक्रमों की विषय-सामग्री को छात्राध्यापकों की वैयक्तिक एवं व्यावसायिक आवश्यकताओं के अनुसार पुनः निर्धारित किया जाय।
5. प्रशिक्षण-संस्थाओं में अध्यापन-अभ्यास को महत्त्व दिया जाय और छात्राध्यापकों के प्रत्येक पाठ का उचित प्रकार से निरीक्षण किया जाय।

1. *Kothari Commission Report*, pp. 622-623.

6. प्रशिक्षण-संस्थाओं में प्रयोग की जाने वाली शिक्षण एवं मूल्यांकन की प्राचीन एवं परम्परागत विधियों के स्थान पर नवीनतम एवं प्रगतिशील विधियों का प्रयोग किया जाय।

उपरिअंकित सिद्धान्तों में "कोठारी कमीशन" ने पाठ्यक्रमों के पुनः निर्धारण पर सबसे अधिक बल दिया है। "पाँचवीं पंचवर्षीय योजना" में उस सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने का निश्चय किया गया है :—"भावी शिक्षकों की शैक्षिक एवं व्यावसायिक तैयारी में अभिवृद्धि करने के लिए, प्रशिक्षण-विद्यालयों एवं महाविद्यालयों के पाठ्यक्रमों का पुनः निर्धारण किया जायगा।"

"The curricula of the training schools and colleges will b reoriented so as to ensure the deepening of the prospective teachers academic and professional preparation."—*Draft Fifth Five-Yea Plan*, Vol. II, p. 198.

9. **समस्या—प्रशिक्षण-संस्थाओं के कार्यक्रमों में विभिन्नता : Diversity in Programmes of Training Institutions**—भारत की प्रशिक्षण-संस्थाओं के कार्य क्रमों और उनके संचालन की विधियों में आश्चर्यजनक विभिन्नता है। उदाहरणार्थ— (1) शिक्षा-विभागों द्वारा संचालित बुनियादी और गैर-बुनियादी "प्राइमरी ट्रेनि स्कूलों" में सर्टिफिकेट का कार्यक्रम; (2) विश्वविद्यालयों एवं शिक्षा-विभागों द्वार संचालित "सेकन्डरी ट्रेनिंग स्कूलों" में डिप्लोमा या सर्टिफिकेट का कार्यक्रम; (3 विश्वविद्यालयों और शिक्षा-विभागों द्वारा संचालित "ट्रेनिंग कॉलिजों" में बी० टी० एल० टी०, बी० एड० या डिप० एड० का कार्यक्रम; और शिक्षा के पोलिटेकनिक कॉलिज में 6–7 प्रकार से अधिक के कार्यक्रम।

इतना ही नहीं, इन कार्यक्रमों के कार्यकाल में भी विभिन्नता है। य विभिन्नता 1 वर्ष से लेकर 4 वर्ष तक की है। डिप्लोमा, सर्टिफिकेट और उपाधि कार्यक्रमों का काल 1 या 2 वर्ष का है। पोलिटेकनिक कॉलिजों में विभिन्न कार्यक्रमों क काल 1 वर्ष से 4 वर्ष तक का है।

प्रशिक्षण-संस्थाओं में पाई जाने वाली इन विभिन्नताओं की ओर देश क सरकार और शिक्षाशास्त्रियों का ध्यान आकृष्ट करते हुए, "शिक्षा-आयोग" ने लिख है :—"प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों के लिए अध्यापकों को तैयार करने वाल संस्थाओं के पाठ्यक्रमों, कार्य की दशाओं एवं प्रशिक्षित किए गए अध्यापकों में विनाश विभिन्नता परिलक्षित होती है।"

"Institutions that prepare teachers for the primary and secon dary schools show a bewildering variety of courses, conditions work, and quality of teachers turned out."—*Education Commissio Report*, p. 67.

समाधान—कार्यक्रमों में समरूपता : Uniformity in Programmes—प्रशिक्षण-संस्थाओं के कार्यक्रमों, कार्यकालों आदि में इस विलक्षण विभिन्नता का कारण यह है कि इनमें समरूपता स्थापित करने के लिये राज्य या केन्द्रीय स्तर पर कोई निकाय या सस्था नहीं है। इस तथ्य से अवगत होने के कारण "कोठारी-कमीशन" का यह सुझाव है कि राज्य-स्तर पर प्रशिक्षण-संस्थाओं के कार्यक्रम में एक-रूपता स्थापित करने का उत्तरदायित्व—"शिक्षक-शिक्षा की राज्य-परिषदों" (State Boards of Teacher Education) पर रखा जाय और केन्द्रीय स्तर पर यह कार्य—"विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" को सौंपा जाय और वह इस कार्य को "शिक्षक-शिक्षा की स्थायी समिति" (Standing Committee on Teacher Education) के माध्यम से सम्पन्न करे।[1]

10. समस्या—प्रशिक्षण-संस्थाओं की निम्न कोटि : Low Quality of Training Institutions—स्वातन्त्र्योत्तर काल में शिक्षक-शिक्षा की संख्यात्मक वृद्धि के साथ-साथ प्रशिक्षण-संस्थाओं की सख्या में भी यथेष्ट वृद्धि हुई है। जबकि 1950-51 में सब स्तरों की प्रशिक्षण-संस्थाओं की सख्या 835 थी, 1970-71 में यह संख्या बढ़कर 1665, अर्थात् लगभग दूनी हो गई।[2] किन्तु, गुणात्मक दृष्टि से इन सस्थाओं के अनवरत ह्रास से साक्षात्कार होता है। परिस्थितियों की विडम्बना कुछ ऐसी रही है कि विभिन्न आयोगों, समितियों एवं अध्ययन-गोष्ठियों की चेतावनी के बावजूद भी उनकी दशा में सुधार करने के लिए बहुत समय तक एक भी पग नहीं उठाया गया। परिणामत. उनमें से अधिकांश सस्थाएँ किस स्थिति में पहुँच चुकी हैं, इसकी कल्पना 'शिक्षा-आयोग' के इस शब्द-चित्र से कीजिए :—"कुछ प्रशिक्षण-संस्थाओं के अलावा शेष सब साधारण या निम्न कोटि की हैं।"

"The quality of training institutions remains, with a few exceptions, either mediocre or poor."—*Education Commission Report*, p. 67.

ये प्रशिक्षण-सस्थाएँ किन दृष्टियों से निम्न कोटि की हैं, इसका स्पष्टीकरण, डा० एस० एन० मुकर्जी ने स्वतन्त्रता से पूर्व और बाद की प्रशिक्षण-संस्थाओं का चित्रांकन करके किया है; यथा[3] :—पहली प्रशिक्षण-सस्थाओं में लम्बे-चौड़े खेल के मैदानों, भव्य भवनों, पूर्णतया सुसज्जित पुस्तकालयों एवं प्रयोगशालाओं के दर्शन होते थे। उनमें योग्य, अनुभवी और पर्याप्त अध्यापक होते थे। इसके विपरीत, आज की प्रशिक्षण-सस्थाओं में सुसज्जित पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं, शिक्षण-सामग्री और साज-सज्जा का पूर्ण अभाव है।

1. *Kothari Commission Report*, p. 87.
2. *India*, 1974, p 50.
3. S. N Mukerji · *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 421.

इन वर्षों में 244 प्रशिक्षण-संस्थाओं के सर्वेक्षण से ज्ञात हुआ है कि उनमें से 68 किराए के भवनों में स्थित हैं, केवल 37 में अपनी स्वयं की प्रयोगशालाएँ हैं और केवल 144 से शिक्षण-अभ्यास के लिए विद्यालय संलग्न हैं। इन निम्नकोटि प्रशिक्षण-संस्थाओं का उल्लेख करते हुए, डा० एस० एन० मुकर्जी ने लिखा है[1] :—
"निस्सन्देह, रूप से आज की कुछ प्रशिक्षण-संस्थाएँ—महलों और किलों में चल रही हैं, पर कुछ घुड़सालों में भी कार्य कर रही हैं। किन्तु, किराए के भवन या महल या घुड़साल का निर्माण निश्चित रूप से शिक्षक-प्रशिक्षण-संस्था की आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए नहीं किया गया है।"

समाधान—प्रशिक्षण-संस्थाओं का सुधार : Improvement of Training Institutions—शिक्षक-प्रशिक्षण-संस्थाओं के सुधार-सम्बन्धी उपायों का वर्णन करने से पूर्व इस बात की जानकारी आवश्यक है कि वे निम्न कोटि की क्यों हैं? इसका सर्वविदित कारण यह है कि हमारी सरकार ने स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से लेकर 25 वर्ष के लम्बे अरसे तक उनके साथ सौतेली संतान का सा व्यवहार किया और उनमें तनिक भी रुचि व्यक्त न करके, उनकी अनुचित अवहेलना की। इसका दीर्घ-कालीन प्रभाव यह है कि शिक्षक-शिक्षा को पृथक् एवं स्वतन्त्र इकाई के रूप में मान्यता प्राप्त नहीं हुई। यही कारण था कि शिक्षा-मंत्रालय, विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग एवं राज्य-सरकारों ने प्रशिक्षण-संस्थाओं को एक पैसा भी सहायता-अनुदान के रूप में नहीं दिया। शिक्षक-शिक्षा के सौभाग्य से सन् 1969 से उनके दृष्टिकोण में परिवर्तन आया और इसलिए "चौथी पंचवर्षीय योजना" (1969-74) में प्रथम बार शिक्षक-शिक्षा पर व्यय किए जाने के लिए एक धनराशि निर्धारित की गई।[2] फलस्वरूप, शिक्षक-शिक्षा में गुणात्मक उन्नति के चिह्न दिखाई देने लगे।

इस प्रकार आर्थिक समस्या का समाधान हो जाने के बाद, प्रशिक्षण-संस्थाओं में सुधार करने के लिए "कोठारी कमीशन" द्वारा प्रस्तावित निम्नांकित उपायों का प्रयोग किया जाना चाहिए[3] :—

1. ट्रेनिंग कालिजों में उन्हीं अध्यापकों को नियुक्त किया जाय, जिनके पास शिक्षा की उपाधि के अतिरिक्त दो विषयों में स्नातकोत्तर-उपाधियाँ हों।
2. ट्रेनिंग स्कूलों में उन्हीं अध्यापकों को नियुक्त किया जाय, जिनके पास बी० एड० की उपाधि के अतिरिक्त किसी विषय में स्नातकोत्तर-उपाधि हो।
3. प्रशिक्षण-संस्थाओं के पाठ्यक्रमों, शिक्षण-अभ्यास और अध्यापन एवं मूल्यांकन की विधियों में सुधार किया जाय।

1. S N Mukerji : *op. cit.*, p. 422.
2. *Ibid*, p. 422.
3. *Kothari Commission Report*, pp. 623–624.

4. प्रशिक्षण-सस्थाओं मे वर्कशॉपों, पुस्तकालयों, प्रयोगशालाओं आदि की सुविधाओं में पर्याप्त विस्तार किया जाय।
5. प्रत्येक प्रशिक्षण सस्था से एक प्रयोगात्मक या प्रदर्शन-विद्यालय का सम्बद्ध होना अनिवार्य कर दिया जाय।

UNIVERSITY QUESTIONS

1. What 'shortcomings' do you find in your Teacher-Training Programme ? Give your suggestions in the light of the recommendations of Mudaliar Commission and those of the Kothari Commission given thereafter to improve the Teacher-Training Programmes in the country.
   आप अपने शिक्षक-प्रशिक्षण के कार्यक्रम मे क्या-क्या कमियाँ पाते हैं ? शिक्षक-प्रशिक्षण के कार्य मे सुधार लाने हेतु मुदालियर आयोग के सुझावों तथा उसके पश्चात् कोठारी आयोग की सिफारिशों के संदर्भ मे अपने सुझाव दीजिए।
2. Describe some chief problems of Teacher-Education and suggest measures to solve them.
   भारत मे अध्यापक-शिक्षा की कुछ प्रमुख समस्याओं का उल्लेख कीजिए और उनके समाधान के लिए सुझाव दीजिए।
3. What reforms have been suggested by the Education Commission to break down the isolation of Primary and Secondary teachers' training institutions from the academic life of the universities and the everyday problems of schools ?
   प्राथमिक तथा माध्यमिक अध्यापकों की प्रशिक्षण-सस्थाओं का विश्वविद्यालयों के विद्वत्परिषद् के जीवन तथा विद्यालयों की दैनिक समस्याओं से पार्थक्य को हटाने के लिए शिक्षा-आयोग ने क्या सुधार प्रस्तुत किये हैं ?
4. Write short notes on the following :—(i) Teacher Education by Correspondence Courses, (ii) In-Service Teacher-Education, (iii) Regional Colleges of Education, and (iv) State Institutes of Education.
   अग्रलिखित पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए —(1) पत्र-व्यवहार पाठ्यक्रम द्वारा अध्यापक शिक्षा, (2) सेवाकालीन अध्यापक शिक्षा, (3) शिक्षा के प्रादेशिक कॉलेज, और (4) शिक्षा के राज्य-सस्थान।

27

प्रौढ़ व समाज शिक्षा

ADULT & SOCIAL EDUCATION

"Adult education is education for everybody at all times and in all conditions."—Bryson.

विषय-प्रवेश

आधुनिक भारत में प्रचलित शिक्षा के समस्त अंगों के समान प्रौढ़-शिक्षा की धारणा भी यूरोपीय है। जब यूरोप-निवासियों के शिक्षा-सम्बन्धी विचारों का भारत में प्रवेश हुआ, तब नगरों में निवास करने वाले प्रौढ़ों में भी अपनी भौतिक सम्पन्नता में वृद्धि करने के लिए, ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा उदय हुई। उनकी इस इच्छा की पूर्ति के लिए ब्रिटिश सरकार से सर्वप्रथम सिफारिश—सन् 1882 में "हन्टर कमीशन" ने की। इसने सिफारिश की कि निरक्षर प्रौढ़ों के लिए जहाँ-जहाँ सम्भव हो, वहाँ-वहाँ रात्रि-विद्यालयों (Night Schools) की स्थापना की जाय।

यद्यपि "कमीशन" की सिफारिश का कोई तात्कालिक फल न निकला, तथापि द्वैध शासन (1921-1937) एवं प्रान्तीय स्वशासन (1937-1947) में भारतीय शिक्षा-मन्त्रियों ने प्रौढ़-शिक्षा के लिए सराहनीय कार्य किए। स्वतन्त्र भारत में आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक, औद्योगिक एवं सांस्कृतिक दृष्टियों से प्रौढ़-शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार किया गया है। इसीलिए, 1949 में "प्रौढ़-शिक्षा" (Adult Education) को "समाज-शिक्षा" (Social Education) का नाम देकर, इसके कार्य-क्षेत्र का विस्तार किया गया है।

भारत में प्रौढ़-शिक्षा का विकास
Development of Adult Education in India

हम सरलता की दृष्टि से भारत में प्रौढ़-शिक्षा के विकास का विवरण निम्नांकित शीर्षकों एवं कालों के अन्तर्गत कर रहे हैं :—

1. प्रौढ़-शिक्षा के लिए प्रारम्भिक प्रयास—भारत में प्रौढ़-शिक्षा के लिए प्रारम्भिक प्रयास का श्रेय—ईसाई मिशनरियों को प्राप्त है। उनका यह प्रयास सर्वप्रथम 19वीं शताब्दी के मध्य में मद्रास-प्रान्त में आरम्भ हुआ। डा० मुखोपाध्याय के अनुसार[1] :—ईसाई मिशनरियों ने मद्रास-प्रान्त में हरिजनों के लिए कतिपय रात्रि-विद्यालयों की स्थापना की। कुछ समय के बाद किसान भी उनमें शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाने लगे। मद्रास के बाद मिशनरियों ने बंगाल, बम्बई, मध्य-प्रदेश और संयुक्त प्रान्त में रात्रि-विद्यालयों की सृष्टि की। इस प्रकार, उन्होंने 19वीं शताब्दी में भारत में यत्र-तत्र प्रौढ़-शिक्षा के लिए पर्याप्त कार्य किया।

2. प्रौढ़-शिक्षा के लिए "हण्टर कमीशन" का सुझाव—सन् 1882 के "हन्टर कमीशन" ने अपने प्रतिवेदन में प्रौढ़-शिक्षा को स्थान दिया और बम्बई-प्रान्त में 357 रात्रि-विद्यालयों का उल्लेख किया। इन विद्यालयों में वयस्कों को साधारण लिखना-पढ़ना और अंकगणित सिखाया जाता था। इनकी लोकप्रियता में दिन-प्रति-दिन वृद्धि हो रही थी। अतः "कमीशन" ने सरकार का ध्यान इनकी ओर आकृष्ट किया और सुझाव दिया कि उपयुक्त स्थानों पर रात्रि-विद्यालयों के सचालन का कार्य आरम्भ किया जाय। किन्तु, भारतीयों की शिक्षा के प्रति उदासीन अंग्रेजी सरकार ने इस सुझाव की पूर्ण उपेक्षा की।

3 प्रौढ़-शिक्षा के लिए भारतीयों के प्रयास—"हण्टर कमीशन" के सुझाव से प्रेरणा प्राप्त करके, भारतीयों ने व्यक्तिगत रूप में अनेक प्रशसनीय कार्य किए। सन् 1910 में बड़ौदा राज्य में सार्वजनिक पुस्तकालयों की स्थापना का कार्य आरम्भ हुआ। सन् 1912 में मैसूर राज्य के दीवान श्री विश्वेश्वरैय्या ने इस राज्य में अनेक रात्रि-विद्यालय खोले। कुछ उत्साही भारतीयों ने बंगाल, मद्रास और बम्बई में रात्रि-विद्यालयों का आयोजन किया। परन्तु, धनाभाव और सरकार से आर्थिक सहायता न मिलने के कारण 1917 तक उनकी संख्या निरन्तर क्षीण होती चली गई।

4. प्रौढ़-शिक्षा के क्रमबद्ध इतिहास का आरम्भ—भारत में प्रौढ़-शिक्षा का क्रमबद्ध इतिहास सन् 1919 से आरम्भ हुआ। इसके 3 मुख्य कारण थे। पहला, प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान में भारत के अनेक निरक्षर सैनिक अन्य देशों के निवासियों के सम्पर्क में आए। वे वहाँ से नए विचार और ज्ञान की पिपासा लेकर स्वदेश लौटे। दूसरा, 1919 के "भारत-सरकार-अधिनियम" (Government of India Act) के फलस्वरूप भारतीय शिक्षा की बागडोर भारतीय शिक्षा-मन्त्रियों के हाथ में आ गई। उन्होंने प्रौढ़-शिक्षा के प्रति विशेष ध्यान दिया। तीसरा, उक्त "अधिनियम" के परिणामस्वरूप भारतीयों की अति विशाल जनसंख्या को वयस्क-मताधिकार प्राप्त हो

---

1. डा० श्रीधरनाथ मुखोपाध्याय : भारतीय शिक्षा का इतिहास (आधुनिक काल), p. 209.

गया। अतः प्रौढ़-शिक्षा की ओर उनका ध्यान जाना स्वाभाविक था, क्योंकि शिक्षा प्राप्त करके ही निरक्षर प्रौढ़ अपने मताधिकार का उचित प्रयोग कर सकते थे।

5. **1921 से 1937 तक प्रौढ़-शिक्षा**—सन् 1919 के "अधिनियम" ने भारत में द्वैध शासन की स्थापना की। इस "अधिनियम" के अनुसार, शिक्षा हस्तान्तरित विषय था। अतः उसे जनप्रिय भारतीय मन्त्रियों को सौंप दिया गया। अपने देशवासियों के लिए वयस्क-शिक्षा के महत्त्व से भली-भाँति अवगत होने के कारण, भारतीय मन्त्रियों ने अपने पदों को सम्हालते ही प्रौढ़-शिक्षा के व्यापक कार्यक्रमों का सूत्रपात किया।

ये कार्यक्रम विभिन्न प्रान्तों में समान एवं असमान रूपों में प्रकट हुए। 1921 में पंजाब में "प्रौढ़-निरक्षरता-निवारण-आन्दोलन" आरम्भ हुआ और रात्रि-विद्यालयों का शिलान्यास किया गया। उसी वर्ष संयुक्त प्रान्त की सरकार ने रात्रि-विद्यालयों की स्थापना के लिए 6 नगरपालिकाओं को अनुदान दिया। 1922 में बम्बई में 27 प्रौढ़-विद्यालयों का निर्माण किया गया। इसी प्रकार के विद्यालयों की बंगाल और मध्य-प्रान्त में सृष्टि की गई। 1924 में ट्रावनकोर की सरकार ने रात्रि-विद्यालयों को विधिवत् स्वीकार करने के लिए कानूनों का निर्माण किया।

इस प्रकार, देश के लगभग सभी प्रान्तों में भारतीय शिक्षा-मन्त्रियों ने प्रौढ़-शिक्षा का प्रसार करने में अदम्य उत्साह का प्रमाण दिया। फलस्वरूप, 1922 में प्रौढ़-विद्यालयों की जो संख्या 630 थी, वह 1927 में बढ़कर 3,784 हो गई। किन्तु, 1927 के विश्वव्यापी आर्थिक संकट ने प्रौढ़-शिक्षा के समक्ष धनाभाव की समस्या उपस्थित कर दी। परिणामतः उसके प्रसार में शिथिलता आ गई और प्रौढ़-शालाओं की संख्या कम होकर 1937 में 2,027 रह गई। पर फिर भी, यह कहना असंगत न होगा कि इस अवधि में प्रौढ़-शिक्षा के लिए जो चेष्टाएँ की गईं, उन्होंने उसको सुदृढ़ आधार प्रदान किया। 1937 के उपरान्त, जब परिस्थितियों ने करवट बदली, तब इसी आधार पर प्रौढ़-शिक्षा के प्रसार का कार्य पुनः आरम्भ किया गया।

6. **1937 से 1942 तक प्रौढ़-शिक्षा**—सन् 1935 के "भारत-सरकार-अधिनियम" (Government of India Act) के अनुसार, देश में प्रान्तीय स्वशासन की स्थापना हुई। यह "अधिनियम" सन् 1937 में क्रियान्वित किया गया और प्रान्त के समस्त विषय—लोकप्रिय भारतीय मन्त्रियों के अधिकार-क्षेत्र के अन्तर्गत आ गए। परिस्थितियों के इस परिवर्तन ने प्रौढ़-शिक्षा में नव-जीवन का संचार किया और उसने समस्त भूतल पर अपना अभियान आरम्भ किया। यह देखकर, केन्द्रीय सरकार का ध्यान प्रथम बार प्रौढ़-शिक्षा की ओर गया। अतः उसने 1939 में बिहार के शिक्षा-मंत्री, डा० सैयद महमूद की अध्यक्षता में "प्रौढ़-शिक्षा-समिति" (Adult Education Society) का निर्माण किया और उससे प्रौढ़ों को साक्षर बनाने के विषय में व्यावहारिक सुझाव देने को कहा।

उक्त "समिति" और भारतीय शिक्षा-मन्त्रियों ने प्रौढ़-शिक्षा के विस्तार में अभिनन्दनीय योग दिया। विभिन्न प्रान्तों में उनके कार्यों का विवरण दृष्टव्य है :—

1. आसाम—इस प्रान्त में प्रौढ़ों को साक्षर बनाने का उत्तरदायित्व—शिक्षा-विभाग पर रखा गया। इस विभाग ने अपने कर्मचारियों की सहायता से प्रौढ़-साक्षरता एवं साक्षरता के उपरान्त "अनवरत शिक्षा" (Continuation Education) की दिशा में प्रशंसनीय कार्य किए।

2. बंगाल—इस प्रान्त में प्रौढ़-शिक्षा को "ग्राम-पुनर्निर्माण-योजना" (Rural Reconstruction Scheme) का अंग बनाया गया। इस "योजना" के अन्तर्गत सरकार ने ग्राम-सभाओं को प्रौढ़-शालाओं की स्थापना एवं संचालन के लिए अनुदान दिया।

3 बिहार—इस प्रान्त के शिक्षा-मंत्री, डा० सैयद महमूद ने 1938 में "अपना परिवार साक्षर बनाओ" (Make your home literate) नामक साक्षरता-आन्दोलन आरम्भ किया। इस आन्दोलन की अवधि में हजारों ग्रामों में वाचनालयों एवं पुस्तकालयों की स्थापना की गई।

4 बम्बई—इस प्रान्त की सरकार ने 1937 में "प्रान्तीय प्रौढ़-शिक्षा-परिषद्" (Provincial Board of Adult Education) का संगठन किया। इस "परिषद्" के तत्वावधान में बम्बई नगर में वयस्क-साक्षरता की योजना क्रियान्वित की गई। इस योजना को सफल बनाने के लिए सरकार ने व्यक्तिगत संस्थाओं द्वारा संचालित प्रौढ़-शालाओं को उदार आर्थिक सहायता दी। यह योजना इतनी अधिक सफल हुई कि सरकार ने "बम्बई नगर प्रौढ़-शिक्षा-समिति" का निर्माण करके, नगर की प्रौढ़-शिक्षा का भार उसे सौंप दिया।

5. पंजाब—इस प्रान्त में सरकार ने निरक्षर वयस्कों के लिए उपयोगी हजारों पुस्तकें प्रकाशित करवा के, उनको बिना कोई मूल्य लिए वितरित करवाया।

6 मद्रास—मद्रास के मुख्यमंत्री श्री राजगोपालाचार्य ने प्रौढ़ों के लिए तामिल भाषा में एक पुस्तक लिखी।

7. मध्य-प्रान्त—इस प्रान्त में सरकार ने प्रौढ़-शालाओं की स्थापना के लिए 2,000) रुपए की धनराशि स्वीकृति की।

8. उत्तर प्रदेश—इस प्रान्त की सरकार ने 1930 में "प्रौढ़ शिक्षा-विभाग" की स्थापना की और अगले 8 वर्षों में पुरुषों के लिए 100, एवं स्त्रियों के लिए 62 प्रौढ़-शालाओं की और 1,319 पुस्तकालयों की स्थापना की।[1]

सारांश में, 1937-42 की अवधि में भारतीय शिक्षा-मंत्रियों ने भारतीय शिक्षा के इतिहास में "प्रौढ़-शिक्षा" का नवीन अध्याय आरम्भ किया। उन्होंने अपने प्रान्तों के आय-व्यय (Budget) में प्रौढ़-शिक्षा को स्थान दिया। उन्होंने प्रौढ़-शालाओं,

1. S. N. Mukerji *History of Education in India*, p. 2

रात्रि-विद्यालयों, ग्रामीण पुस्तकालयों और चलते-फिरते पुस्तकालयों की व्यवस्था करके चिरस्मरणीय कार्य किया। इसीलिए, जैसा कि डा० मुखोपाध्याय ने लिखा है[1] :—"यथार्थ में, सन् 1937-42 की अवधि—प्रौढ़-शिक्षा का स्वर्ण-युग गिनी जा सकती है।"

7. **1942 से 1947 तक प्रौढ़-शिक्षा**—इस अवधि में द्वितीय विश्व-युद्ध, पर विशेष रूप से 1942 के राजनीतिक आन्दोलन और ब्रिटिश दमन-नीति का विषमय प्रभाव प्रौढ़-शिक्षा पर भी पड़ा। इस नीति के परिणामस्वरूप, 1942 से 1947 तक सभी प्रान्तों में प्रौढ़-शिक्षा के कार्य में शिथिलता आ गई। इसका कारण बताते हुए, डा० मुखोपाध्याय ने लिखा है[2] :—"भिन्न-भिन्न राज्य-सरकारों ने अपने आय-व्यय की रकम को घटा कर सीमित क्षेत्र में तथा सीमित ढंग पर साक्षरता-प्रसार के कार्य को जीवित रहने दिया।"

8. **योजना से पूर्व प्रौढ़-शिक्षा (1947-1951)**—इस अवधि में प्रौढ़-शिक्षा के सम्बन्ध में काफी छान-बीन करके, उसके भावी स्वरूप एवं कार्यक्रम को निश्चित किया गया। इसीलिए, इस अवधि को प्रौढ़-शिक्षा का "अन्वेषण-काल" (Period of Exploration) कहा जाता है।

इस अवधि में सर्वप्रथम 1948 में "केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड" ने अपनी एक बैठक में यह प्रस्ताव पारित किया कि स्वतन्त्र भारत में प्रौढ़-शिक्षा का पुनर्संगठन किया जाना आवश्यक है। भारत-सरकार ने इस प्रस्ताव से सहमत होकर, सन् 1948 में श्री मोहनलाल सक्सेना की अध्यक्षता में एक "समिति" का निर्माण किया और उससे प्रौढ़-शिक्षा के पुनर्संगठन के विषय में अपने सुझाव देने को कहा।

इस "समिति" का सर्वप्रमुख सुझाव यह था कि प्रौढ़-शिक्षा की धारणा अत्यन्त संकुचित है। अतः उसके कार्य-क्षेत्र को व्यापक बनाने के लिए, उसे "समाज-शिक्षा" की संज्ञा दी जाय, ताकि वह देश के नागरिकों को नवीन सामाजिक व्यवस्था में सक्रिय भाग लेने की क्षमता प्रदान कर सके।

सरकार ने "समिति" के सुझाव का स्वागत किया। सन् 1949 में "केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार-बोर्ड" का 15वां अधिवेशन इलाहाबाद में हुआ। उस अवसर पर भारत के तत्कालीन शिक्षा-मंत्री, मौलाना आज़ाद ने उपस्थित सदस्यों को "प्रौढ़-शिक्षा" के स्थान पर "समाज-शिक्षा" शब्द के प्रयोग का संदेश दिया। उसी समय से केन्द्रीय एवं राज्य-स्तरों पर समाज-शिक्षा के प्रसार के लिए विभिन्न कार्यक्रम संचालित किए गए; यथा :—

केन्द्रीय स्तर पर—दिल्ली में "केन्द्रीय चलचित्र पुस्तकालय" (Central Film Library) और "केन्द्रीय श्रव्य-दृश्य-संस्था" (Central Audio-Visual

1. डा० सोहनलाल मुखोपाध्याय : पूर्वोक्त पुस्तक, p. 210.
2. डा० सोहनलाल मुखोपाध्याय : पूर्वोक्त पुस्तक, p. 210.

Institute) की स्थापना की गई। ग्रामीण वयस्कों को शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान करने के लिए "जनता कॉलिजों" की सृष्टि की गई। डेन्मार्क के "लोक-विद्यालयों" (Folk Schools) की पद्धति पर मैसूर में ग्रामीण विद्यापीठों का निर्माण किया गया। 1951 में "यूनेस्को" के सहयोग से "दिल्ली सार्वजनिक पुस्तकालय" (Delhi Public Library) में ग्रामीण वयस्कों के लिए चलते-फिरते पुस्तकालयों की योजना आरम्भ की गई।

राज्य-स्तर पर—मैसूर राज्य की "वयस्क शिक्षा-समिति" (Adult Education Council) ने वाचनालय-सेवा का सूत्रपात किया। आंध्र प्रदेश और दिल्ली के जामिया मिलिया ने प्रौढ़-शिक्षा-साहित्य के उत्पादन में प्रशंसनीय कार्य किया। मद्रास में "फ़िरका-विकास-योजना" (Firka Development Scheme) के अन्तर्गत शिक्षकों एवं युवक-नेताओं पर प्रौढ़-शिक्षा के कार्य का उत्तरदायित्व रखा गया। उत्तर प्रदेश में भी इसी उदाहरण का अनुसरण किया गया। बिहार में प्रौढ़-शिक्षा को औपचारिक शिक्षा-व्यवस्था के अन्तर्गत स्थान दिया गया और विद्यालयों के शिक्षकों एवं पुस्तकालयाध्यक्षों को प्रौढ़-शिक्षा का कार्य सौंपा गया। पश्चिमी बंगाल में लोकगीतों, लोकनाटकों एवं भजन-मंडलियों द्वारा यह कार्य आरम्भ किया गया।

इस प्रकार, 1947 से 1951 तक केन्द्रीय एवं राज्य-स्तरों पर प्रौढ़-शिक्षा-प्रसार की विविध गतिविधियाँ परिलक्षित हुईं। मुकर्जी व ओड के अनुसार[1]—"ये गतिविधियाँ इस बात की सूचक हैं कि प्रौढ़ शिक्षा के क्षेत्र में उन्नतिशील दृष्टिकोण अपनाया जा रहा था।"

पंचवर्षीय योजनाओं में समाज-शिक्षा
Social Education Under Five-Year Plans

स्वतन्त्र भारत में समाज-शिक्षा के क्षेत्र को केवल साक्षरता प्रसार तक ही सीमित नहीं रखा गया है। उसके अन्तर्गत वयस्कों के लिए स्वास्थ्य-शिक्षा, अपने समय का सदुपयोग एवं नागरिकता की शिक्षा को भी सम्मिलित किया गया है। "पहली पंचवर्षीय योजना" के अनुसार[2]—"व्यापक रूप में समाज-शिक्षा के अन्दर सामाजिक कल्याण के लिए सामाजिक रूप से किए गए सभी कार्य आ जाते हैं।"

पंचवर्षीय योजनाओं में ये कार्य किस प्रकार सम्पादित किए जा रहे हैं, इसका संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है।

पहली योजना में समाज-शिक्षा (1951-56)—इस "योजना" के अन्तर्गत सन् 1952 में "सामुदायिक विकास-कार्यक्रम" (Community Development Programme) आरम्भ किया गया। इस "कार्यक्रम" के अनुसार, प्रत्येक विकास-

1. डा० मुकर्जी व डा० ओड़ : भारतीय शिक्षा, पृ० 140।
2. पहली पंचवर्षीय योजना, पृ० 307।

खंड में दो समाज-शिक्षा-अधिकारी (एक पुरुष और एक महिला) नियुक्त किए गए। इन दोनों अधिकारियों के मुख्य कार्य थे :—साक्षरता-आन्दोलन चलाना, ग्रामों में वाचनालय स्थापित करना, शिक्षा-सम्बन्धी प्रदर्शनियों का आयोजन करना और सांस्कृतिक एवं मनोरंजनात्मक कार्यों की व्यवस्था करना।

इस "योजना" के दौरान में 5 "समाज-शिक्षा-संगठनकर्त्ता-प्रशिक्षण-केन्द्र" (Social Education Organizers' Training Centres) एवं 116 "आदर्श सामुदायिक केन्द्र" (Model Community Centres) स्थापित किए गए। साथ ही, 454 प्राथमिक विद्यालयों को "विद्यालय एवं सामुदायिक केन्द्रों" (School-cum-Community Centres) का रूप प्रदान किया गया। इनके अतिरिक्त, देश के विभिन्न भागों में 55,000 "युवक गोष्ठियां" (Youth Clubs), "ग्रामीण रेडियो फ़ोरम" (Rural Radio Forums) और जिला एवं ग्राम-स्तरों पर वाचनालयों एवं पुस्तकालयों की व्यवस्था की गई।

"पहली पंचवर्षीय योजना" में समाज-शिक्षा के लिए 7·5 करोड़ रुपए का प्रावधान था।[1]

दूसरी योजना में समाज-शिक्षा (1956-61)—इस "योजना" के मुख्य कार्यक्रम अग्रलिखित थे :—समाज-शिक्षा की प्रणालियों में सुधार, विभिन्न स्तरों पर समाज-शिक्षा की कक्षाओं का विस्तार, राज्य-सरकारों द्वारा साक्षरता एवं समाज-शिक्षा के केन्द्रों का उद्घाटन, समाज-शिक्षा के कार्यकर्त्ताओं एवं संगठनकर्त्ताओं का प्रशिक्षण, प्रौढ़-साहित्य का प्रकाशन, दृश्य-श्रव्य-शिक्षा की व्यवस्था और जनता-कॉलेजों की स्थापना। ये कार्यक्रम—समाज-शिक्षा के प्रति सरकार की बढ़ती हुई रुचि एवं जागरूकता के द्योतक थे।

इस "योजना" के दौरान में यूनेस्को एवं अमरीका के सहयोग से 1956 में दिल्ली में "राष्ट्रीय मूलभूत शिक्षा-केन्द्र" (National Centre for Fundamental Education) की स्थापना की गई। इस "केन्द्र" के मुख्य उद्देश्य हैं :—उच्च कर्मचारियों को समाज-शिक्षा का प्रशिक्षण देना एवं समाज-शिक्षा की मुख्य समस्याओं पर अनुसंधान करना। 1958 में पुस्तकालयाध्यक्षों के अभाव की पूर्ति करने के लिए दिल्ली-विश्वविद्यालय में "पुस्तकालय-विज्ञान का केन्द्रीय संस्थान" (Central Institute of Library Science) खोला गया। नवसाक्षरों के लिए उपयोगी पुस्तकों का उत्पादन करने के लिए दिल्ली में "राष्ट्रीय बुक ट्रस्ट' (National Book Trust) का संगठन किया गया।

इसी बीच इन्दौर में "औद्योगिक कार्यकर्त्ताओं का समाज-शिक्षा-संस्थान" (Social Education Institute for Industrial Workers) संगठित किया गया। साथ ही, 8 "समाज-शिक्षा-संगठनकर्त्ता-प्रशिक्षण-केन्द्र" खोले गए। महिलाओं की

1. पहली पंचवर्षीय योजना, p. 307.

समस्याओं का समाधान करने के लिए "केन्द्रीय समाज-कल्याण-परिषद्" (Central Social Welfare Board) की आधारशिला रखी गई। स्त्रियों को शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान करने के लिए "संक्षिप्त कार्यक्रमों" (Condensed Courses) का श्रीगणेश किया गया। स्त्रियों के लिए "महिला-श्रवण-गोष्ठियों' (Listening Clubs for Women) का आयोजन किया गया। 1960 में दिल्ली के किसानों को कृषि-सम्बन्धी ज्ञान प्रदान करने के लिए "टेलीविजन-सेवाओं" (T. V. Services) का सूत्रपात किया गया।

उपर्युक्त के अतिरिक्त, "ग्रामीण रेडियो फोरमों", "औद्योगिक श्रम-फोरमों" (Industrial Labour Forums) और "युवक गोष्ठियों" की संख्या में वृद्धि करने का सराहनीय कार्य किया गया। समुदाय एवं विश्वविद्यालय को एक-दूसरे के निकट लाने के लिए "विश्वविद्यालय-अनुदान-आयोग" ने 1960 में विश्वविद्यालयों के शिक्षकों के लिए *"प्रसार-व्याख्यानों" (Extension Lectures) की योजना आरम्भ* की।

"दूसरी पंचवर्षीय योजना" में समाज-शिक्षा के लिए 10 करोड़ रुपए की व्यवस्था की गई थी।[1]

तीसरी योजना में समाज-शिक्षा (1961-66)—इस "योजना" के कार्यक्रमों में "चीन-भारत-युद्ध" के कारण कुछ शिथिलता आ गई। फिर भी, सरकार ने समाज-शिक्षा और वयस्क-साक्षरता की प्रगति के लिए कुछ उत्साहवर्द्धक कदम उठाए।

इस "योजना" की अवधि में सन् 1962 में दिल्ली-विश्वविद्यालय ने *"पत्राचार-पाठ्यक्रमों" (Correspondence Courses) द्वारा शिक्षा प्रदान करने का* कार्य आरम्भ किया। पूना, मैसूर और राजस्थान-विश्वविद्यालयों में "प्रौढ़-शिक्षा-विभाग" की स्थापना की गई। मैसूर में "जनता-कॉलेजों" के साथ-साथ 6 विद्यापीठों का सृजन किया गया। महाराष्ट्र में ग्राम-निवासियों को साक्षर बनाने के लिए *"ग्राम-शिक्षण-मोहिम" (Gram Shikshan Mohim) का गठन किया गया।*

मुकर्जी व ओड़ के अनुसार[2] :—"इसी काल में "श्रमिक-शिक्षा-योजना" (Workers' Education Scheme) के अन्तर्गत 18 "क्षेत्रीय केन्द्र" (Regional Centres) आरम्भ किए गए, *जिनमें 217 शिक्षा-अधिकारियों और 6,340 "श्रमिक* शिक्षकों" (Worker Teachers) को प्रशिक्षण दिया गया। साथ में, इसी काल में "साक्षरता" (Literacy) के स्थान पर "क्रियात्मक साक्षरता" (Functional Literacy) शब्द का प्रचलन हुआ।"

---

1. *Third Five-Year Plan*, p. 577.
2. **डा० मुकर्जी व डा० ओड़** : पूर्वोक्त पुस्तक, p. 143.

"तीसरी पंचवर्षीय योजना" में समाज-शिक्षा के लिए 12 करोड़ रुपए की धनराशि निर्धारित की गई थी।[1]

चौथी योजना में समाज-शिक्षा (1969-1974)—पिछली तीन योजनाओं की तुलना में इस "योजना" में सरकार ने समाज-शिक्षा के प्रसार में अत्यधिक रुचि प्रदर्शित की। इस "योजना" में अग्रलिखित दिशाओं में सक्रिय प्रयास किए गए।

फार्मों और कारखानों के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए प्रौढ़-शिक्षा का व्यापक आन्दोलन किया गया। ग्रामों का विकास करने के लिए, प्रौढ़-शिक्षा को जनता के जीवन और कार्यों से सम्बद्ध किया गया। साक्षरता को प्रभावशाली बनाने के लिए, ग्रामीण क्षेत्रों में पुस्तकालयों की स्थापना की गई। समाज-शिक्षा के कार्यकर्ताओं और पुस्तकालयाध्यक्षों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। दिल्ली के "पुस्तकालय-विज्ञान के केन्द्रीय-संस्थान" का विकास और दिल्ली नगर में पुस्तकालय-सेवा का विस्तार किया गया। जनता-कालिजों, प्रौढ़-शालाओं एवं अनवरत शिक्षा का आयोजन किया गया।

उपर्युक्त के अलावा, यूनेस्को की सहायता से नवसाक्षरों के लिए विभिन्न भाषाओं में पुस्तकों का भारी संख्या में प्रकाशन किया गया। यूनेस्को और शिक्षा-मंत्रालय के पारस्परिक सहयोग से औद्योगिक कार्यकर्ताओं की शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओं का समाधान करने के लिए "श्रमिक विद्यापीठों" (Polyvalent Centres) का शिलान्यास किया गया। "ज्ञान-सरोवर" नामक प्रौढ़-विश्वकोष एवं 10 खंडों में "हिन्दी विश्वभारती" का प्रकाशन किया गया। राष्ट्रीय प्रौढ़-शिक्षा-परिषद्" (National Adult Education Board) की सृष्टि की गई।

"चौथी पंचवर्षीय योजना" में समाज-शिक्षा के लिए 64 करोड़ रुपए की स्वीकृति दी गई थी।[2]

राष्ट्रीय प्रौढ़-शिक्षा-परिषद्—इस "परिषद्" को "चौथी पंचवर्षीय योजना" का सबसे मूल्यवान् उपहार माना जाता है। अतः हम इसकी स्थापना के कारण और इसके कार्यों को संक्षेप में प्रस्तुत कर रहे हैं।

मुकर्जी व ओड़ के विचारानुसार[3] :—"भारत में साक्षरता की वृद्धि एक प्रतिशत प्रति वर्ष के हिसाब से हो रही है।" इस वृद्धि को देखकर भारतीय राजनीतिज्ञों द्वारा यह अनुमान लगाया गया कि देश के समस्त निरक्षर वयस्कों को साक्षर बनाने में लगभग 70 वर्ष लगेंगे। इस दीर्घकालीन अवधि में कमी करने के लिए, राष्ट्रीय स्तर पर प्रौढ़-शिक्षा परिषद् की स्थापना की आवश्यकता का अनुभव किया

1. *Third Five-Year Plan*, p. 577.
2. चौथी पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), p. 231.
3. डा० मुकर्जी व डा० ओड़ : पूर्वोक्त पुस्तक, p. 144.

गया। अतः "कोठारी कमीशन" के सुझाव के अनुसार, 5 दिसम्बर, 1969 को "राष्ट्रीय प्रौढ़-शिक्षा-परिषद्" का गठन किया गया। इस "परिषद्" को निम्नलिखित कार्यों का उत्तरदायित्व सौंपा गया है[1] :—

1. प्रौढ़-शिक्षा के प्रसार के लिए उपयुक्त साहित्य का उत्पादन करना।
2. प्रौढ़-शिक्षा के सम्बन्ध में अन्वेषण, अनुसंधान एवं मूल्यांकन को प्रोत्साहन देना।
3. प्रौढ़-शिक्षा के प्रसार में योग देने वाले कार्यों के विषय में परामर्श देना और उनको सफल बनाना।
4. विभिन्न मन्त्रालयों, सरकारों और व्यक्तिगत संस्थाओं के प्रौढ़-शिक्षा-विषयक कार्यों में समन्वय स्थापित करना।
5. केन्द्रीय सरकार, राज्य-सरकारों एवं केन्द्र-प्रशासित प्रदेशों की सरकारों को प्रौढ़-शिक्षा से सम्बन्धित सब विषयों पर परामर्श देना।
6. प्रौढ़-शिक्षा के लिए सुनिश्चित नीति का निर्धारण करना, उससे सम्बन्धित कार्यक्रमों एवं योजनाओं का निर्माण करना, और समय-समय पर उसकी प्रगति का पुनरावलोकन करना।

पाँचवीं योजना में समाज-शिक्षा (1974-1979)—इस "योजना" में समाज शिक्षा के अग्रांकित कार्यक्रम निर्धारित किए गए हैं[2] :—प्रौढ़-शिक्षा, देश के आर्थिक एवं सामाजिक विकास की आधारशिला है। अतः प्रौढ़-शिक्षा का अधिक-से-अधिक प्रसार करने का प्रयास किया जायगा। इस कार्य को सफल बनाने के लिए, प्रौढ़-शिक्षा को कृषि, स्वास्थ्य, प्राथमिक शिक्षा, परिवार-नियोजन आदि से सम्बद्ध करने का निश्चय किया गया है। यह भी निश्चय किया गया है कि प्रौढ़-शिक्षा का श्रमिकों के कार्यों से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया जाय, ताकि उनमें स्वयं ही शिक्षा ग्रहण करने की रुचि उत्पन्न हो जाय।

एक प्रस्ताव यह है कि प्रौढ़-शिक्षा का विकास के सब कार्यक्रमों से सम्बन्ध स्थापित किया जाय और प्रौढ़-शिक्षा के अभिकरणों (Agencies) को इसके लिए उत्तरदायी बनाया जाय। इस दिशा में "सघन कृषि-विकास-कार्यक्रम" (Intensive Agricultural Development Programme) की सहायता से 100 जिलों में कार्य आरम्भ किया जा चुका है। इस कार्य का "पाँचवीं योजना" में अधिक विस्तार किया जायगा।

"पाँचवीं योजना" में समाज-शिक्षा के अन्य उल्लेखनीय कार्यक्रम अधोलिखित हैं[3] :—

---

1. डा० मुकर्जी व डा० ओड़ : पूर्वोक्त पुस्तक, pp. 144-145.
2. *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. II, p. 200.
3. *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol II, pp. 200-201.

1. निरक्षर प्रौढ़ों के लिए विभिन्न भारतीय भाषाओं में "राष्ट्रीय बुक ट्रस्ट" द्वारा पुस्तकों का प्रकाशन।
2. "जिला-पुस्तकालयों" (District Libraries) की सृष्टि और जिले के समस्त प्रौढ़-पुस्तकालयों से उनके सम्बन्ध की स्थापना।
3. प्रौढ़-शिक्षा एवं क्रियात्मक साक्षरता के कार्यक्रमों का ग्रामों एवं विकास-खण्डों के पुस्तकालयों की सहायता से विस्तार।
4. शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में स्थित "युवक-गोष्ठियों" और "नेहरू-युवक-केन्द्रों" का अनौपचारिक शिक्षा के केन्द्रों के रूप में परिवर्तन।
5. मैसूर की विद्यापीठों, बम्बई की "श्रमिक विद्यापीठों", "केन्द्रीय समाज कल्याण-परिषद्" द्वारा वयस्क स्त्रियों के लिए संक्षिप्त पाठ्यक्रमों और महाराष्ट्र के "ग्राम-शिक्षण-मोहिम" द्वारा समाज-शिक्षा के सम्बन्ध में किए जाने वाले कार्यों का विस्तार।

"पाँचवीं योजना" में समाज-शिक्षा पर 35 करोड़ रुपए व्यय किए जाने का निश्चय किया गया है।[1]

प्रौढ़-शिक्षा का अर्थ व परिभाषा

Meaning & Definition of Adult Education

प्रौढ़-शिक्षा का सामान्य अर्थ है—निरक्षर प्रौढ़-पुरुषों एवं स्त्रियों को साधारण लिखना, पढ़ना और अंकगणित सिखाना। विभिन्न लेखकों ने विभिन्न परिभाषाओं द्वारा प्रौढ़-शिक्षा के अर्थ का स्पष्टीकरण किया है; यथा :—

1. ब्राइसन :—"प्रौढ़-शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति के लिए सब अवसरों पर और सब परिस्थितियों में शिक्षा है।"

"Adult Education is education for everybody at all times and in all conditions."—Lymon Bryson : *Adult Education*, p. 6.

2. मॉरगन, होम्स व बंडी :—"प्रौढ़-शिक्षा किसी नई बात को सीखने के लिए प्रौढ़ व्यक्ति का जान-बूझ कर किया जाने वाला प्रयास है।"

"Adult Education may be thought of as the conscious effort of a mature person to learn something new."—Morgan, Holmes & Bundy : *Methods in Adult Education*, p. 12.

3. रीस, फ्रैन्सर व हाउल्स :—"प्रौढ़-शिक्षा का सम्बन्ध व्यक्ति के जीवन के तीन पक्षों में से किसी एक से या अधिक से हो सकता है—उसका व्यावसायिक जीवन, उसका व्यक्तिगत जीवन या नागरिक के रूप में उसका जीवन।"

"Adult education may be concerned with any or more of the three aspects of an individual's life—his work life, his personal

---

1. *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. II, p. 207.

life, or his life as a citizens."—Reenes, Fensler & Hoale : *Adult Education*, p. 171.

*उल्लिखित परिभाषाओं के आधार पर हम यह कहते हैं कि साधारणतः प्रौढ़-*शिक्षा में प्रौढ़ों को दी जाने वाली सम्पूर्ण औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा सम्मिलित है। भारत में प्रौढ़-शिक्षा के इसी अर्थ को स्वीकार किया गया है। अतः हम भारतीय दृष्टिकोण से प्रौढ़-शिक्षा की परिभाषा को डा० मुकर्जी के अग्रांकित शब्दों में लेखबद्ध कर सकते हैं :—"भारत में प्रौढ़-शिक्षा के दो पहलू हैं : (1) प्रौढ़-साक्षरता, अर्थात् उन प्रौढ़ों की शिक्षा—जिनको विद्यालयों में कभी किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त नहीं हुई है, और (2) साक्षर-प्रौढ़ों की अनवरत शिक्षा।"

"In India, adult education has two aspects : (i) Adult literacy, i e. education of those adults who never had any schooling, and (ii) Continuation education of the adult literate."—S N. Mukerji : *Education in India, Today and Tomorrow*, p. 434.

प्रौढ़ कौन है ? : Who is an Adult ?

सामान्यतया 40 वर्ष या इससे अधिक आयु के व्यक्ति को प्रौढ़ों में स्थान दिया जाता है। किन्तु, प्रौढ़-शिक्षा की दृष्टि से यह आयु विभिन्न देशों में विभिन्न है। इंगलैंड में सब व्यक्तियों के लिए 15 वर्ष की आयु तक अनिवार्य शिक्षा और 18 वर्ष की आयु तक अल्पकालीन शिक्षा का आयोजन है। अतः वहाँ 18 वर्ष से अधिक आयु का व्यक्ति—प्रौढ़ों की श्रेणी में आता है। संयुक्त राज्य अमरीका में लगभग 20 वर्ष या इससे अधिक आयु के व्यक्ति की प्रौढ़ों में गणना की जाती है।

भारत के कुछ राज्यों में अभी तक केवल 11 वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था है।[1] अतः हमारे देश में वय के अनुसार प्रौढ़ों को मोटे तौर पर अग्रलिखित क्रम में रखा गया है :—(1) 12 वर्ष से 18 वर्ष तक प्रौढ़, (2) 19 वर्ष से 35 वर्ष तक के प्रौढ़ और (3) 35 वर्ष से अधिक आयु के प्रौढ़।

प्रौढ़-शिक्षा की नवीन धारणा
New Concept of Adult Education

जनतन्त्र की सफलता के 3 मुख्य आधार हैं :—उसके नागरिकों की साक्षरता, उनका प्रगतिशील दृष्टिकोण और उनमें नागरिकता की समान भावना का विकास। इस दृष्टि से स्वतन्त्र भारत के लिए प्रौढ़-शिक्षा को केवल प्रौढ़-साक्षरता तक सीमित रखना, देश की जनतन्त्रीय व्यवस्था के लिए अहितकर माना गया। साथ ही यह

1. S N. Mukerji *op cit*, p 434.

स्वीकार किया गया कि देश की प्रगति के लिए निरक्षर नागरिकों को साक्षर बनाने के अतिरिक्त, उनका नैतिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक उत्थान भी आवश्यक है। अतः सरकार ने 1948 में श्री मोहनलाल सक्सेना की अध्यक्षता में नियुक्त की जाने वाली समिति के परामर्श को स्वीकार करके, प्रौढ़-शिक्षा को समाज-शिक्षा की संज्ञा देने का निर्णय किया।

"केन्द्रीय शिक्षा-सलाहकार बोर्ड" का 15वाँ अधिवेशन जनवरी, 1949 में इलाहाबाद में हुआ। उस अवसर पर भारत के तत्कालीन शिक्षा-मंत्री मौलाना अबुल कलाम आज़ाद ने अपने भाषण के माध्यम से प्रौढ़-शिक्षा की नवीन धारणा का संदेश देते हुए कहा[1] :—"प्रौढ़-शिक्षा को केवल व्यक्तियों को साक्षर बनाने तक ही सीमित नहीं रखा जाना चाहिए। इसमें उस शिक्षा को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए, जो प्रत्येक नागरिक को जनतंत्रीय सामाजिक व्यवस्था में भाग लेने के लिए तैयार करे।" उसी समय से भारत में प्रौढ़-शिक्षा की धारणा में परिवर्तन हो गया और उसे "समाज-शिक्षा" कहा जाने लगा।

प्रौढ़-शिक्षा व समाज-शिक्षा में अन्तर
Difference between Adult & Social Education

प्रौढ़-शिक्षा एवं समाज-शिक्षा के अन्तर को वंशीधर श्रीवास्तव के अग्रांकित शब्दों द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है[2] :—"प्रौढ़-शिक्षा की संकल्पना में आज बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया है। साक्षरता के अपने छोटे दायरे से निकलकर वह सामाजिक शिक्षा का व्यापक रूप ग्रहण कर चुकी है। पहले उसका आयोजन केवल औपचारिक था और व्यक्ति को साक्षर बनाकर तथा उसके लिए थोड़ा-बहुत पढ़ने-लिखने का प्रबन्ध कर वह अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेती थी। अब उसका लक्ष्य प्रौढ़ों को इस प्रकार की शिक्षा देना हो गया है जिससे वे व्यक्ति के रूप में और समाज के एक अंग के रूप में अपनी अभावग्रस्त दशा से ऊपर उठकर पहले से अधिक सम्पन्न और समृद्ध जीवन व्यतीत कर सकें।"

समाज-शिक्षा का अर्थ व परिभाषा
Meaning & Definition of Social Education

समाज-शिक्षा वास्तव में प्रौढ़-शिक्षा का व्यापक एवं विकसित रूप है। इसमें शिक्षा के सामाजिक पक्ष पर बल दिया जाता है और व्यक्ति को अपने हित-साधन के

---

1. Maulana Abul Kalam Azad's Address at the 15th Meeting of the Central Advisory Board of Education held in Allahabad in January, 1949.
2. नवसाक्षरोपयोगी साहित्य-निर्माण-गोष्ठी की आख्या, शिक्षा-विभाग, उत्तर प्रदेश, 1958, pp. 54-55.

साथ-साथ समाज के हित-साधन मे क्रियात्मक भाग लेने की शिक्षा दी जाती है। ह

समाज-शिक्षा के अर्थ को और अधिक स्पष्ट करने के लिए कुछ विद्वानों की परिभाषाओं को उद्धृत कर रहे हैं; यथा :—

1. मौलाना आजाद :—"समाज शिक्षा से हमारा अभिप्राय—पूर्ण मानव की शिक्षा है।"

"By social education, we mean an education for the complete man."—Maulana Abul Kalam Azad's Inaugural address to UNESCO Seminar on *Rural Adult Education*, held in December, 1949 in Mysore

2. हुमायूँ कबीर :—"समाज-शिक्षा को एक प्रकार के अध्ययन के पाठ्य-क्रम के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है, जिसका उद्देश्य—व्यक्तियों में नागरिकता की चेतना का निर्माण करना एव सामजिक सुदृढ़ता का विकास करना है।"

"Social Education may be defined as a course of study directed towards the production of conciousness of citizenship among the people and the promotion of social solidarity among them."—Humayun Kabir *Education in New India*, p 82

3. "एजूकेशन इन इंडिया —'समाज-शिक्षा के तीन पक्ष हैं —(1) अधिक आयु के निरक्षर व्यक्तियों मे साक्षरता का प्रसार, (2) साहित्यिक शिक्षा प्राप्त न करने वाले जन-समूहो मे शिक्षित मस्तिष्क का निर्माण, और (3) व्यक्तियों में व्यक्तियों के रूप मे एवं शक्तिशाली राष्ट्र के सदस्यों के रूप में नागरिकता के अधिकारों एव कर्त्तव्यों की तीव्र भावना का समावेश।"

"Social education has three aspects (1) the spread of literacy among grown-up illiterates (2) the production of an educated mind in the masses in the absence of literary education, and (3) the inculcation of a lively sense of rights and duties of citizenship, both as individuals and as members of a powerful nation."—*Education in India*, 1947-48 Vol I, p 113

उद्धृत परिभाषाओं के आधार पर हम समाज-शिक्षा की धारणा मे निहित अर्थों का विश्लेषण इस प्रकार कर सकते है :—

1. समाज-शिक्षा—प्रौढ़ शिक्षा है।
2. समाज-शिक्षा—नागरिकता की भावना को उत्पन्न करने की शिक्षा है।
3. समाज-शिक्षा—समाज की प्रगति मे योग देने की शिक्षा है।
4. समाज-शिक्षा—व्यक्ति के नैतिक, आर्थिक, वैयक्तिक, सामाजिक और राजनीतिक जीवन को अधिक उन्नत बनाने की शिक्षा है।

5. समाज-शिक्षा—व्यक्ति को अधिक उत्तम कार्य, आराम, अवकाश का सदुपयोग और मनोरंजन की विधियाँ बताने की शिक्षा है।

समाज-शिक्षा का पंचमुखी कार्यक्रम
Five-Point Programme of Social Education

भारत-सरकार ने समाज-शिक्षा की नवीन धारणा के अंतर्गत न केवल साक्षरता को, अपितु वयस्कों की व्यक्तियों और समाज के सदस्यों के रूप में सर्वतोमुखी उन्नति को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। इस लक्ष्य तक पहुँचने के लिए सरकार ने समाज-शिक्षा के अधोलिखित पंचमुखी कार्यक्रम का सृजन किया है[1] :—

1. निरक्षर वयस्कों में साक्षरता का प्रसार।
2. वयस्कों के लिए स्वास्थ्य एवं स्वास्थ्य-विज्ञान के नियमों की शिक्षा की व्यवस्था।
3. वयस्कों की आर्थिक उन्नति के लिए उद्योग-धन्धों की शिक्षा की व्यवस्था।
4. वयस्कों के लिए व्यक्ति एवं समाज की आवश्यकताओं के अनुकूल मनोरंजन के स्वस्थ साधनों की व्यवस्था।
5. वयस्कों में कर्त्तव्यों एवं अधिकारों के प्रति पर्याप्त जागरूकता के साथ-साथ नागरिकता की भावना का विकास।

भारत-सरकार द्वारा प्रकाशित किया जाने वाला समाज-शिक्षा का यह पंचमुखी कार्यक्रम अत्यन्त व्यापक एवं विस्तृत है। इसका चरम लक्ष्य—वयस्कों को साक्षर बनाने के साथ-साथ उनकी आर्थिक, शारीरिक, मानसिक, सांस्कृतिक एवं व्यावसायिक उन्नति भी करना है, ताकि उनके जीवन का बहुमुखी विकास हो और वे विकसित मानवों की श्रेणी में अपना स्थान ग्रहण करें।

समाज-शिक्षा की संस्थाएँ
Institutions of Social Education

समाज-शिक्षा का पंचमुखी कार्यक्रम उसके उद्देश्यों का स्पष्ट संकेत देता है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति तभी हो सकती है, जब समाज-शिक्षा की ऐसी संस्थाओं की सृष्टि की जाय, जो वयस्कों की चेष्टाओं एवं अभिलाषाओं को स्वस्थ दिशाओं में मोड़कर, उनको उत्कृष्ट मानव-प्राणियों का ऐसा रूप प्रदान करें, जिससे उनकी और समाज की हितवृद्धि हो। इस विचार को अपना पथ-प्रदर्शक मानकर, समाज-शिक्षा के कार्यकर्ताओं ने निम्नलिखित प्रकार की संस्थाओं का आयोजन किया है :—

1. साक्षरता-कक्षाएँ : Literary Classes—इन कक्षाओं का संचालन

1. *India*, 1958, p. 110.

मुख्यत. "सामुदायिक योजनाओं" (Community Projects) द्वारा किया जाता है। निरक्षरता के उन्मूलन में इनका योगदान प्रशंसनीय है।

2 सामुदायिक केन्द्र : Community Centres—इन केन्द्रों में मनोरंजन, सूचना-प्राप्ति और विचार-विमर्श-गोष्ठियों की व्यवस्था है। कुछ केन्द्रों में वयस्कों को विभिन्न प्रकार के हस्तशिल्पों की शिक्षा ग्रहण करने की सुविधाएँ भी प्रदान की जाती हैं।

3. युवक गोष्ठियाँ Youth Clubs – ये गोष्ठियाँ साधारणतः युवकों के लिए खेल-कूद की व्यवस्था करती हैं। इनका शैक्षिक महत्त्व इस बात में है कि ये युवकों को सामूहिक जीवन की नवीन विधियों में प्रशिक्षण देती हैं।

4 महिला-समितियाँ Mahila Samitees—इन समितियों में ग्रामीण स्त्रियों के लिए अग्रलिखित कार्यों का आयोजन किया जाता है :—स्त्री-साक्षरता; गीत और भजन, खेल और मनोरंजन, धार्मिक और सामाजिक समारोह; बाल-कल्याण और पारिवारिक कार्यों पर व्याख्यान, सिलाई, कढ़ाई और अन्य शिल्पों की शिक्षा; सतुलित आहार, सामान्य रोगों और उनके उपचारों की शिक्षा, इत्यादि।

प्रौढ़-शिक्षा का षट्मुखी कार्यक्रम
Six-Point Programme of Adult Education

"कोठारी कमीशन" द्वारा प्रौढ़-शिक्षा का षट्-मुखी कार्यक्रम प्रस्तावित किया गया है। इसका वर्णन अध्याय 20 में किया जा चुका है। देखिए—पृष्ठ 257।

समाज-शिक्षा के उद्देश्य
Aims of Social Education

भारत-सरकार ने समाज-शिक्षा के उद्देश्यों को 2 स्पष्ट वर्गों में विभाजित किया है[1] —

1. व्यक्तिगत उद्देश्य Individual Aims
2. सामाजिक उद्देश्य Social Aims

हम इन उद्देश्यों का विस्तृत विवेचन प्रस्तुत कर रहे है, यथा —

1. व्यक्तिगत उद्देश्य : Individual Aims

समाज-शिक्षा का मुख्य प्रयोजन—वयस्कों का व्यक्तियों के रूप में सर्वांगीण [वि]कास करना है। अतः व्यक्तिगत दृष्टि से समाज-शिक्षा के निम्नलिखित 6 उद्देश्य [निश्चि]त किए गए हैं[2] :—

1 वयस्कों का आत्म-विकास Self-Development—वयस्कों का आत्म-[विकास] करने के लिए, उनकी आवश्यकताओं एवं परिस्थितियों के अनुकूल किसी

[1] Teachers' Handbook of Social Education, p. 21

[2] Ibid, p. 21

विशिष्ट ज्ञान की प्राप्ति, जीवन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन या किसी कला के अनुसरण के लिए उपयुक्त सुविधाओं की व्यवस्था करना।

2. वयस्कों का शारीरिक विकास : Physical Development—वयस्कों का शारीरिक विकास करने के लिए स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों, बाल-स्वास्थ्य, अस्वस्थता से बचने के उपायों, वयस्कों के क्षेत्रों में फैलने वाले मुख्य रोगों को रोकने एवं पौष्टिक भोजन की समस्या का समाधान करने के लिए, उपयुक्त प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।

3. वयस्कों का मानसिक विकास : Mental Development—जो वयस्क अपनी आर्थिक एवं पारिवारिक परिस्थितियों के कारण औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं कर पाए हैं, उनका मानसिक विकास करने के लिए, शिक्षा की व्यवस्था करना।

4. वयस्कों का सांस्कृतिक विकास : Cultural Development—वयस्कों का सांस्कृतिक विकास करने और उनको अपने देश के प्राचीन एवं वर्तमान सांस्कृतिक कार्यों से परिचित कराने के लिए, गीतों, लोकगीतों, नृत्यों, लोकनृत्यों, वार्तालापों, व्याख्यानों आदि की व्यवस्था करना।

5. वयस्कों की सामाजिक कुशलता का विकास : Development of Social Skill—वयस्कों की सामाजिक कुशलता का विकास करने के लिए, उन्हें अन्य व्यक्तियों के मध्य रहने, जीवन में उन्नति करने, पारिवारिक जीवन को सुखमय बनाने और आधुनिक जटिल संसार में अपने कर्त्तव्यों एवं अधिकारों का ज्ञान प्रदान करने की व्यवस्था करना।

6. वयस्कों की व्यावसायिक कुशलता का विकास (Development of Professional Skill)—वयस्कों की व्यावसायिक कुशलता का विकास करने के लिए, नगरों में व्यावसायिक एवं प्राविधिक शिक्षा की और ग्रामों में कृषि एवं कुटीर उद्योगों की शिक्षा की व्यवस्था करना।

2. समाजगत उद्देश्य : Social Aims

यद्यपि समाज-शिक्षा का मुख्य प्रयोजन—वयस्कों का व्यक्तियों के रूप में सर्वाङ्गीण विकास करना है, तथापि उसका प्रयोजन—वयस्कों को समाज का लाभप्रद सदस्य बनाना भी है, ताकि उनका और उनके माध्यम से समाज का उत्थान हो। अतः समाजगत दृष्टि से समाज-शिक्षा के 4 उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं :—

1. सामाजिक एकता का विकास : Promotion of Social Unity—आधुनिक भारतीय समाज—समूहों एवं व्यक्तियों के मध्य पारस्परिक द्वेषों एवं संघर्षों का महाजाल बन गया है। परिणामतः भारतीय समाज—पृथकता के कगार की ओर बड़ी तेजी से बढ़ रहा है। इसमें यह पृथकता अनेक रूपों में दृष्टिगोचर होती है; यथा :—विभिन्न धार्मिक समूहों, भाषा-भाषी समूहों, वृद्धों और युवकों, श्रमिकों

"समाज-शिक्षा का उद्देश्य—उन विधियों का निर्माण करना है, जिनमें सहकारी समुदायों एवं संस्थाओं का निर्माण इस प्रकार किया जाय कि व्यक्ति अपनी स्वतंत्रता एवं सम्मान से वंचित न हों।"[1]

4. सामाजिक आदर्श का समावेश : Inculcation of Social Ideal—प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तिगत हित का, अपने समूह, अपने समाज और अपने देश के हित के लिए सहर्ष बलिदान करने के लिए तैयार रहना चाहिए। इस सामाजिक आदर्श को समस्त युगों में सब देशों एवं समाजों द्वारा सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया है। इस आदर्श को एक प्रख्यात अंग्रेज लेखक के अग्रांकित वाक्य में व्यक्त किया जा सकता है :—"यदि इंगलैंड जीवित है, तो अन्त किसका है और यदि इंगलैंड का अन्त होता है, तो जीवित कौन है?" ("Who dies if England lives; who lives if England dies")

वस्तुतः उक्त सामाजिक आदर्श का अनुसरण करके ही विश्व की महान् विभूतियों ने मानव-जाति की प्रगति में योग दिया है। अस्तु,

"समाज-शिक्षा का उद्देश्य—भारत के जन-जन में इस भावना का समावेश करना है कि प्रत्येक व्यक्ति, समाज एवं मानव-जाति की प्रगति में योग प्रदान करना अपना सर्वोच्च आदर्श समझे।"[2]

समाज (प्रौढ़) शिक्षा का स्थान व महत्त्व
Place & Importance of Social (Adult) Education

भारत की वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों के संदर्भ में प्रौढ़ अथवा समाज-शिक्षा के स्थान एवं महत्त्व का विवेचन करते हुए, डा० के० जी० सैयदैन ने लिखा है[3] :—"हम राष्ट्रीय जीवन के एक ऐसे नये युग में प्रवेश कर रहे हैं, जो शायद आने वाली कई शताब्दियों के लिये हमारे देश की भावी व्यवस्था की रूपरेखा निर्धारित कर देगा। हमारे राष्ट्रीय जीवन को विषाक्त करने वाले आपस के संगीन झगड़ों की घनघोर घटायें भी विनाश की बदली की तरह छँट जायेंगी और हम फिर न्याय और स्वतन्त्रता और समझदारी के प्रकाशमय वातावरण में पहुँच जायेंगे। यदि आप मुझे एक स्वतः स्पष्ट सत्य को दोहराने की अनुमति दें, तो मैं कहूँगा कि अकेले राजनीतिक स्वतन्त्रता किसी भी समाज या राष्ट्र के लिये, 'अच्छे जीवन' का आश्वासन नहीं दे सकती है। हम भली-भाँति जानते हैं कि कई राष्ट्र राजनीतिक दृष्टि से स्वतन्त्र होते हुए भी ऐसी जंजीरों से जकड़े हुए हैं, जो उन्हें 'अच्छे जीवन' की ओर नहीं बढ़ने देती हैं क्योंकि इस प्रकार का जीवन कठिन परिश्रम तथा समाजोपयोगी कार्य द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। वास्तव में, जब तक जनता 'निरन्तर सतर्कता'

1. *Teachers' Handbook of Social Education*, p. 23.
2. *Ibid.*
3. के० जी० सैयदैन : शिक्षा की पुनर्रचना, pp. 182-183.

के रूप में अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता का मूल्य चुकाने को तैयार न हो, तब तक यह इस स्वतन्त्रता को भी सुरक्षित नहीं रख सकती है, और इस 'सतर्कता' के लिये उचित नागरिक तथा सामाजिक-शिक्षा की आवश्यकता होती है। यदि हमारा लक्ष्य ऊँचा है और हम अपनी राजनीतिक स्वतन्त्रता के सहारे सामाजिक स्वतन्त्रता तथा आर्थिक लोकतन्त्र के लक्ष्य तक पहुँचना चाहते हैं, तो स्पष्टतः हमें जनसाधारण के लिये कहीं अधिक उच्च-स्तर की शिक्षा की आवश्यकता होगी। नहीं तो हमेशा इस बात का खतरा रहेगा कि चतुर लेकिन बेईमान दल या व्यक्ति अपने निकृष्ट उद्देश्यों की पूर्ति के लिए इस तथाकथित 'स्वतन्त्रता' का अनुचित लाभ उठायें। इसी बात को मैं तत्काल और बड़े पैमाने पर 'प्रौढ़-शिक्षा' का आन्दोलन शुरू करने के राजनीतिक औचित्य का आधार कहूँगा।"

इन सारगर्भित शब्दों में समकालीन शिक्षा-शास्त्रियों के अधिराज डा० सैयदैन ने हमारे देश के राष्ट्रीय जीवन में समाज-शिक्षा के स्थान एवं महत्व का सन्देश दिया है। इसी संदेश को कुछ भिन्न शब्दावली में "कोठारी कमीशन" ने इस प्रकार पुनरावृत्ति की है[2] :—"कोई भी राष्ट्र अपनी सुरक्षा के भार को केवल पुलिस एवं सेना को नहीं सौंप सकता है। वस्तुतः राष्ट्रीय सुरक्षा बहुत बड़ी सीमा तक नागरिकों की शिक्षा, विभिन्न कार्यक्रमों के उनके ज्ञान, उनके चरित्र, उनकी अनुशासन की भावना एवं सुरक्षा-सम्बन्धी कार्यों में उनके कुशलतापूर्वक भाग लेने की क्षमता पर आधारित रहती है।" अतः हमारे देश के राष्ट्रीय जीवन में समाज-शिक्षा का विशिष्ट स्थान और महत्व होना चाहिए।

समाज (प्रौढ़) शिक्षा की आवश्यकता
Need of Social (Adult) Education

डा० मणि के शब्दों में :—"समाज-शिक्षा बहुमुखी प्रयास है, क्योंकि भारत ऐसे जनतंत्रीय धर्म-निरपेक्ष राज्य में इसका प्रमुख उद्देश्य—व्यक्ति में न केवल नागरिकता के अधिकारों की, वरन् उत्तरदायित्वों की भी सजीव चेतना का विकास करना है।"

"Social education is a many-sided endeavour, since its aim is primarily to develop in an individual a live sense not only of the privileges but also of the responsibilities of citizenship in a democratic secular state like India."—Dr R. S Mani *Educational Ideas & Ideals of Eminent Indians*, p. 128

समाज-शिक्षा के इस उद्देश्य में उसकी आवश्यकता समाविष्ट है। इस आवश्यकता के अनेक रूप हैं, जिनका दिग्दर्शन निम्नांकित पंक्तियों में कराया जा रहा है।

---

1. *Kothari Commission Report*, p. 422

1. अशिक्षित वयस्कों की आवश्यकता : Need of Illiterate Adults—"कोठारी कमीशन" के अनुसार, हमारे देश के 70 प्रतिशत व्यक्ति अशिक्षित हैं।[1] इसके दो आधारभूत कारण हैं। पहला, प्राथमिक शिक्षा को अभी तक देश के सब बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य नहीं बनाया जा सका है। 6-14 वर्ग के 40 प्रतिशत से अधिक बच्चे अब भी ऐसे हैं, जो प्राथमिक शिक्षा के लाभ से वंचित रह जाते हैं।[2] दूसरा, अनेक बच्चों के परिवारों की आर्थिक स्थिति इतनी संकटग्रस्त है कि वे अपने अभिभावकों द्वारा अल्प आयु ही में किसी-न-किसी कार्य में लगा दिए जाते हैं।

दोनों प्रकार के बच्चे बड़े होकर निरक्षर वयस्कों की श्रेणी में अपना स्थान ग्रहण करते हैं। शिक्षा प्राप्त न कर सकने के कारण उनका मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। अतः समाज में उनका स्थान—शिक्षित व्यक्तियों से निम्नतर होता है, जो विविध विधियों का प्रयोग करके, उनका शोषण करते हैं। यह भारतीय संविधान की भावना के विरुद्ध है, क्योंकि वह देश के सब नागरिकों को समानता एवं स्वतन्त्रता के समान अधिकार प्रदान करता है। अशिक्षित वयस्क इन अधिकारों का उपभोग करने से वंचित रह जाते हैं। इन अशिक्षित वयस्कों के लिए समाज-शिक्षा की आवश्यकता है, ताकि वे शिक्षित होकर समानता एवं स्वतन्त्रता के अधिकारों का उपभोग कर सकें।

2. अर्द्ध-शिक्षित वयस्कों की आवश्यकता : Need of Half Illiterates—भारत में अनेक बच्चों को आर्थिक, पारिवारिक या किसी अन्य कारण से प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम पूर्ण करने से पहले ही अपना अध्ययन स्थगित करने के लिए विवश होना पड़ता है। ये अर्द्ध-शिक्षित बच्चे—वयस्कों के रूप में भी अर्द्ध-शिक्षित रहते हैं।

प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम पूर्ण करने वाले व्यक्तियों को ही साक्षर माना जाता है। अतः अर्द्ध-शिक्षित व्यक्तियों की शिक्षा को पूर्ण करने और उनको समझदार नागरिक बनाने के लिए समाज-शिक्षा की आवश्यकता है।

3. वयस्क-नागरिकों की आवश्यकता : Need of Adult Citizens—जो देश आर्थिक उन्नति, सामाजिक परिवर्तन एवं राष्ट्रीय सुरक्षा चाहता है, उसे अपने वयस्क नागरिकों को विकास कार्यक्रमों में कुशलता एवं बुद्धिमत्ता से भाग लेने की शिक्षा देनी चाहिए। यह बात भारत के लिए विशेष रूप से सत्य है, क्योंकि यहाँ के विशाल जनसमूहों को विद्यालयों में किसी प्रकार की शिक्षा प्राप्त नहीं हुई है और जिनको शिक्षा प्राप्त भी हुई है, वह विकास-कार्यक्रमों के लिए व्यर्थ है। जो कृषक, भूमि को जोतता है, उसे भूमि की बनावट का ज्ञान होना चाहिए। जो श्रमिक,

1. *Kothari Commission Report.*, p. 422.
2. *India*, 1974, p. 50.

मशीन को चलाता है, उसे मशीन के अंगों का ज्ञान होना चाहिए। दूसरों, श्रमिकों आदि को अपने कार्यों का ज्ञान नहीं है। इन सभी वयस्क-नागरिकों को उनके कार्यों से सम्बन्धित ज्ञान प्रदान करने के लिए समाज-शिक्षा की आवश्यकता है।

भारत मे वयस्क-नागरिकों के लिए समाज-शिक्षा की आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए, 'कोठारी कमीशन" ने लिखा है[1] :—"भारत—जनतन्त्रीय गणतन्त्र है। अतः उसका कर्तव्य प्रत्येक वयस्क-नागरिक को ऐसी शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान करना है, जो वह प्राप्त करना चाहता है और जो उसे अपनी व्यक्तिगत उन्नति, व्यावसायिक प्रगति और सामाजिक एव राजनीतिक कार्यों मे सक्रिय भाग लेने के लिए प्राप्त करनी चाहिए।"

4. पूर्ण शिक्षा की आवश्यकता : Need of Complete Education—हमारी शिक्षा-सस्थाओं मे प्रदान की जाने वाली शिक्षा अपूर्ण होने के कारण दोषपूर्ण है। इसका कारण यह है कि वह व्यक्तियो के वास्तविक जीवन, आकाक्षाओं एव आवश्यकताओं से असम्बद्ध है। अत. जब व्यक्ति जीवन मे प्रवेश करते है, तब वे अपनी शिक्षा को अपूर्ण पाते हैं। इस अपूर्ण शिक्षा के दोषो को दूर करने और उसे पूर्ण बनाने के लिए समाज-शिक्षा की आवश्यकता है।

इस आवश्यकता पर बल देते हुए, "कोठारी कमीशन" ने लिखा है[2] :—"विद्यालय-शिक्षा के बाद शिक्षा का अन्त नही होता है, क्योंकि शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। आज के वयस्क को तीव्र गति से परिवर्तित होने वाले समाज की और समाज की बढ़ती हुई जटिलताओं की जानकारी होना आवश्यक है। जिन व्यक्तियों ने सर्वोत्तम प्रकार की शिक्षा प्राप्त की है उनके लिए भी जीवन मे शिक्षा की आवश्यकता है।"

5. आर्थिक आवश्यकता Economic Need—भारत के असख्य निवासियो और उनके पूर्वजो के लिए आर्थिक सम्पन्नता सपनोंकी बात है और रही है। वे वर्षों से नही, अपितु शताब्दियो से आर्थिक विवशताओं के शिकार हैं। उनको इन विवशताओं से मुक्त करने के लिए नगरों मे व्यावसायिक एव प्राविधिक शिक्षा की और ग्रामों मे कृषि एव कुटीर उद्योग-धधो की शिक्षा की व्यवस्था की गई है। समाज-शिक्षा के संगठनकर्त्ताओं द्वारा इस व्यवस्था के किए जाने के कारण ही, उसकी आवश्यकता को स्वीकार किया जाता है।

6 सामाजिक आवश्यकता · Social Need—समाज की प्रगति का मूलाधार, उसके सदस्यो का पारस्परिक सहयोग है। सहयोग ही समाज को बल देता है, उसकी रक्षा करता है और उसके अस्तित्व को बनाए रखता है। आज के भारतीय समाज मे सहयोग की अनुपस्थिति मे शोषण साक्षात्कार होता है। उसके स्थान पर

1. *Kothari Commission Report*, p. 422
2. *Ibid*

देखने को मिलते हैं—पारस्परिक द्वेष, संघर्ष एवं वैमनस्य, जिन्होंने देश के निवासियों के जीवन को विशृंखलित कर दिया है।

समाज-शिक्षा—देश के नागरिकों को पारस्परिक सहयोग से समुदायों एवं संस्थाओं का निर्माण करने के लिए प्रोत्साहित करती है। इसीलिए, समाज-शिक्षा की आवश्यकता का एक स्वर से अनुमोदन किया जाता है।

डाक्टर राव ने समाज-शिक्षा की आर्थिक एवं सामाजिक आवश्यकताओं के विषय में अपने विचारों को इस प्रकार लेखबद्ध किया है[1] :—"प्रौढ़-शिक्षा एवं प्रौढ़-साक्षरता के अभाव में आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति की उस सीमा एवं गति को प्राप्त करना असम्भव है, जिसकी हमें आवश्यकता है। अतः आर्थिक एवं सामाजिक विकास के प्रत्येक कार्यक्रम में प्रौढ़-शिक्षा और प्रौढ़-साक्षरता के कार्यक्रमों को सर्वोच्च स्थान ग्रहण करना चाहिए।"

7. राजनीतिक आवश्यकता : Political Need—समाज-शिक्षा—देश की राजनीतिक आवश्यकता को पूर्ण करने में किस सीमा तक सहायक सिद्ध हो सकती है। इस सम्बन्ध में 1958 में उत्तर प्रदेश के शिक्षा-मंत्री, माननीय कमलापति त्रिपाठी के अग्रलिखित शब्द उल्लेखनीय हैं[2] :—

"आज का समय हमारे देश के लिए पुनर्नियोजन एवं पुनर्निर्माण का, उत्थान एवं विकास का समय है। हमने अपने देश में धर्म-निरपेक्ष कल्याणकारी लोकतन्त्र की स्थापना की है। हमें उसे सुदृढ़ एवं शक्तिशाली बनाना है, किन्तु यह तब तक सम्भव नहीं हो सकता, जब तक कि उसकी आधारशिला सुदृढ़ एवं शक्तिशाली न हो। और यह आधारशिला है—इस देश की वह समस्त जनता, जिसके ऊपर आज राज्य सरकारों का सुयोग्य निर्वाचन निर्भर है तथा समूचे राष्ट्र के मंगलमय स्वरूप का निर्धारण अवलम्बित है। इस उद्देश्य के लिए आवश्यक है—उस दिशा की ओर अग्रसर करने वाली जन-जन को उपयुक्त शिक्षा एवं उपयुक्त साहित्य।"

अतः जिस प्रकार हम अपने बालकों एवं बालिकाओं, युवकों एवं युवतियों के लिए उपयुक्त शिक्षा एवं उपयुक्त साहित्य की व्यवस्था करते हैं, उसी प्रकार की व्यवस्था हमें अपने देश के वयस्कों के लिए भी करनी चाहिए। इस व्यवस्था का भार—समाज-शिक्षा ने अपने ऊपर लिया है। इसीलिए, समाज-शिक्षा की आवश्यकता का नारा बुलन्द किया जाता है।

8. देश की आवश्यकता : Need of the Country—अशिक्षित व्यक्ति—देश के लिए अभिशाप है। देश भले ही उनके द्वारा की जाने वाली हानि से अनभिज्ञ

1. Dr. V. K. R. V. Rao : *Education & Human Resource Development*, p. 80.
2. माननीय शिक्षा-मन्त्री कमलापति त्रिपाठी : नव-साक्षरोपयोगी साहित्य निर्माण-गोष्ठी की आस्था के "प्राक्कथन" से।

हो, पर उसे उनकी अशिक्षा का बहुत भारी मूल्य चुकाना पड़ता है। इसका कारण बताते हुए, "कोठारी कमीशन" ने लिखा है[1] :—"निरक्षरता—आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति को अवरुद्ध कर देती है और आर्थिक उत्पादकता, जनसंख्या-नियमन, राष्ट्रीय एकीकरण, सुरक्षा तथा स्वास्थ्य और सफाई की उन्नति पर दूषित प्रभाव डालती है।"

"कमीशन" का यह कथन हमारे देश पर अक्षरशः लागू होता है। यहाँ के 70 प्रतिशत व्यक्ति अशिक्षित हैं। मानसिक शक्तियों से विहीन होने के कारण, उनको स्वयं निम्न स्तर का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। अतः उनसे देश की उत्पादकता में वृद्धि करने की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। यही कारण है कि भारत की उत्पादकता का स्तर निम्न है और उसकी आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति में गतिरोध उत्पन्न हो गया है। समाज-शिक्षा इन व्यक्तियों को साक्षर बनाकर, इनको देश की प्रगति में योग देने की सामर्थ्य प्रदान करती है। यही कारण है कि समाज शिक्षा के पक्ष में शक्तिशाली तर्क प्रस्तुत किए जाते हैं।

सारांश में, हम कह सकते हैं कि समाज-शिक्षा की न केवल हमारे देश के लिए, वरन् हमारे देशवासियों के लिए भी आवश्यकता है। इस शिक्षा को प्राप्त करके उनकी बौद्धिक शक्तियों का विकास होगा। फलस्वरूप, उनका आर्थिक एवं चारित्रिक उत्थान होगा। साथ ही, वे भारत की सामाजिक एवं व्यावसायिक उन्नति में अभूतपूर्व योग देंगे। परिणामतः राष्ट्रीय सम्पत्ति में वृद्धि होगी और आवश्यक समाज-सेवाओं का विस्तार होगा। इस प्रकार, एक दिन, भारत का कल्याणकारी राज्य का स्वप्न साकार होगा। अतः हम हुमायूँ कबीर के शब्दों में आग्रहपूर्वक कह सकते हैं :—"समाज-शिक्षा ही वह आधार है, जिस पर स्वतन्त्र भारत, कल्याणकारी राज्य का निर्माण कर सकता है, जो वैयक्तिक स्वतन्त्रता एवं सामाजिक सुरक्षा की माँग को स्वीकार करेगा।"

"Social education is the foundation on which alone free India can build up a Welfare State which will recognize the *claims* of both individual freedom and social security"—**Humayun Kabir** : *Education in New India*, p. 96.

समस्याएँ व उनके समाधान
Problems & Their Solutions

भारत के प्रशासकों, राजनीतिज्ञों, शिक्षा-शास्त्रियों एवं समाज-सेवकों का यह विश्वास है कि जब तक समाज-शिक्षा का समुचित आयोजन करके, भारतवासियों की निरक्षरता का विनाश नहीं किया जायगा, तब तक न तो देश के औद्योगिक विकास के लिए बनाई जाने वाली योजनाएँ ही सफल होंगी और न आर्थिक एवं सामाजिक

---

1. *Kothari Commission Report*, p. 423.

पुनर्निर्माण का कार्य ही सम्भव होगा । इसी विश्वास से प्रेरित होकर समाज-शिक्षा एवं साक्षरता-प्रसार के लिए "पहली पंचवर्षीय योजना (1951-56) के समय से ही विभिन्न कार्यक्रमों का सूत्रपात किया गया है । परन्तु, 20 वर्ष से अधिक अवधि के पश्चात् भी इन कार्यक्रमों में पूर्ण सफलता प्राप्त नहीं हुई है । इसका आधारभूत कारण है—समाज-शिक्षा के कार्य में बाधाएँ उत्पन्न करने वाली सहगामी समस्याएँ (Concomitant Problems) । हम इस प्रकार की कतिपय मुख्य समस्याओं एवं उनके समाधान के उपायों को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं; यथा :—

1. समस्या—निरक्षरता : Illiteracy—भारत में निरक्षरता की समस्या—जटिल भी है और गम्भीर भी है । यह जटिल इसलिए है, क्योंकि हमारे ग्रामों में निवास करने वाले 80 प्रतिशत व्यक्तियों में से अधिकांश निरक्षर होते हुए भी अशिक्षित नहीं हैं । इसकी पुष्टि में एन० ए० टूथी के अधोंकित शब्दों को पढ़िए :—"यद्यपि भारतीय ग्रामवासी निरक्षर है, पर इसलिये वह अशिक्षित नहीं है । वह एक अर्थ में शिक्षित है । उसकी स्मृति विलक्षण है, जिसमें उसने अपने देश के प्राचीन समय के विशाल ज्ञान का संचय कर रखा है ।"

"Although the Indian villager is illiterate, he is not, therefore, uneducated. He is educated in a sense. He has a tremendous memory in which he carries a vast amount of folklore."—N. A. Toothi : *The Vaishnavas of Gujarat*, p. 130.

यह समस्या, गम्भीर इसलिए है, क्योंकि विश्व के निरक्षर वयस्कों में से आधे से अधिक हमारे देश में हैं । इस तथ्य के समर्थन में पी० एन० चटर्जी के इन वाक्यों का अवलोकन कीजिए :—"विश्व के निरक्षर वयस्कों की सम्पूर्ण संख्या के आधे से अधिक भारत में निवास करते हैं । उनको ज्ञान के अल्प प्रकाश से आलोकित करने का कार्य भी अति विशाल है ।"

"More than half of the total number of adult illiterates in the world live in India. The work of bringing some light to them is one of tremendous magnitude."—P. N. Chatterjee.

निरक्षरता की समस्या की जटिलता एवं गम्भीरता के इन चित्रों की आपके मानस-पटल पर धुँधली सी स्पष्ट छाप छोड़कर, अब हम इसका थोड़ा-सा विस्तृत विवेचन कर देना आवश्यक समझते हैं । विश्व के सबसे अधिक जनसंख्या वाले देशों में भारत का स्थान दूसरा है । सन् 1971 की जनगणना के अनुसार, भारत की जनसंख्या 54·80 करोड़ है ।[1] इस जनसंख्या में केवल 29.45 प्रतिशत व्यक्ति साक्षर हैं । इन व्यक्तियों में पुरुषों और स्त्रियों का अनुपात क्रमशः 39·45 और 18·70 है ।[2]

1. *India*, 1974, p. 6.
2. *India*, 1974, p. 6.

अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति के यूरोपीय अर्थशास्त्री, गुन्नार मिरडल ने इन आँकड़ों की प्रामाणिकता पर दो कारणों से अनास्था प्रकट की है। पहला, साक्षर बनाए जाने वाले व्यक्तियों की साक्षरता की कोई परीक्षा नहीं ली जाती है। दूसरा, जन-गणना के अवसर पर जो व्यक्ति अपने को साक्षर बताते हैं, उनको बिना किसी प्रमाण के साक्षर मान लिया जाता है। इन दोनों कारणों के आधार पर, मिरडल ने सम्पूर्ण विश्व को यह समाचार दिया है :—"भारत में प्रौढ़-शिक्षा के क्षेत्र में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई है और यदि विशेष प्रगति हुई भी है तो उसका कोई परिणाम नहीं निकला है।"

"No very significant progress was made in India in adult education; even if significant progress had been made, it could have had no result."—Gunnar Myrdal . *Asian Drama*, Vol. III, p. 1671.

शहरी क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में निरक्षरता अधिक है।[1] इसके अतिरिक्त, निरक्षरता में उत्तरोत्तर वृद्धि होती जा रही है। "कोठारी कमीशन" का कथन है[2] :—"भारत 1951 की अपेक्षा 1961 में अधिक निरक्षर था, क्योंकि इस अवधि में लगभग 36 लाख निरक्षर व्यक्तियों की संख्या बढ़ गई।" इस कथन के आधार पर हम बलपूर्वक कह सकते हैं कि इस समय तक यह संख्या और भी बढ़ गई होगी, क्योंकि 1961 से 1971 तक जनसंख्या में लगभग 11 करोड़ की वृद्धि हो चुकी थी।[3]

आश्चर्य इस बात का है कि यह वृद्धि प्राथमिक शिक्षा के असाधारण विस्तार और साक्षरता-प्रसार के अनेक कार्यक्रमों एवं आन्दोलनों के बावजूद हुई है। इस वृद्धि का उत्तरदायित्व—भारत-सरकार पर रखते हुए, मिरडल ने लिखा है :—"भारत में ब्रिटिश शासन के अन्त में प्रौढ़-शिक्षा के प्रति अत्यधिक उत्साह था, किन्तु स्वतन्त्रता के पश्चात् उसका कोई विशेष समर्थन नहीं किया गया है।"

"In India there had been marked enthusiasm for adult education toward the end of the British rule, but after independence there was no significant support."—Myrdal : *op cit.*, p 1686.

समाधान—निरक्षरता का उन्मूलन Liquidation of Illiteracy—निरक्षरता की समस्या की गम्भीरता और उसके उन्मूलन के प्रति सरकार की उदासीनता के कारण, हमारे निरक्षर देशवासी बड़ी मुसीबतों में से होकर गुजर रहे हैं। इन मुसीबतों और इनके कारणों के सप्रमाण चित्र की थोड़ी-सी झाँकी हमें डॉ० संदरन

1. द्वितीय पंचवर्षीय योजना, p 482.
2. *Kothari Commission Report*, p. 423
3. *India*, 1974, p 5

के इस शब्द-चित्र में मिलती है[1] :—"हमारे निरक्षर देशवासी न तो छपी हुई पुस्तक का एक भी पृष्ठ पढ़ सकते हैं, न वे मतदान की पर्ची पर समझदारी के साथ निशान लगा सकते हैं, और न ही रोजमर्रा के छोटे-छोटे हिसाब लगा सकते हैं। अगर संसार का एक ऐसा मानचित्र बनाया जाय जिसमें साक्षरता की स्थिति दिखाई जाय और पृथ्वी के निरक्षर इलाकों को काला रँगा जाय, तो भारत उस मानचित्र में अन्धकारपूर्ण महाद्वीप जैसा दिखाई देगा और यह हमारे लिए बड़ी लज्जा की बात है ! इस परिस्थिति पर हम लज्जित भी हैं और हमें क्रोध भी आता है—लज्जित इसलिए कि एक ऐसा देश, जो संसार की सबसे पुरानी सांस्कृतिक परम्पराओं का मालिक होने का गर्व करता है; आज इस दुर्दशा को पहुँच गया है; और क्रोध इसलिए कि हम इस कलंक को इतने समय से सहन करते आये हैं। यह सिर्फ इसलिए कि निरक्षरता को समूल नष्ट करने के लिए अब तक राष्ट्रव्यापी पैमाने पर डटकर कोई सुसंगठित आन्दोलन नहीं चलाया गया है।"

सम्भवतः डा० सैयदैन के विचारों से परिचित एवं प्रभावित होने के कारण, "कोठारी कमीशन" ने दृढ़तापूर्वक कहा है[2] :—"इस असह्य स्थिति का अन्त करने के लिए, हम राष्ट्रव्यापी पैमाने पर सामंजस्यपूर्ण एवं अविराम गति से चलने वाले निरक्षरता-उन्मूलन-आन्दोलन की सिफ़ारिश करते हैं।"

यह आन्दोलन जिन उपायों का प्रयोग करके, निरक्षरता का उन्मूलन कर सकता है, इस विषय में "कोठारी कमीशन" ने अनेक ठोस और व्यावहारिक सुझाव दिए हैं; यथा[3] :—

1. 6-11 वय-वर्ग के सब बच्चों लिए 5 वर्ष की सार्वभौमिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय।
2. 11-14 वय-वर्ग के उन बच्चों के लिए अल्पकालीन शिक्षा की व्यवस्था की जाय, जिन्होंने बीच में विद्यालय जाना बन्द कर दिया हो, या जिन्होंने विद्यालय जाने की सुविधा से लाभ न उठाया हो।
3. 15-30 वय-वर्ग के पुरुषों एवं स्त्रियों के लिए अल्पकालीन एवं व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था की जाय।
4. सब विद्यालयों को सामुदायिक जीवन के केन्द्रों का रूप प्रदान किया जाय, उन पर अपने-अपने क्षेत्र की निरक्षरता के उन्मूलन का दायित्व रखा जाय और उनके शिक्षकों द्वारा निरक्षरता-उन्मूलन के आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया जाय।

---

1. के० जी० सैयदैन : शिक्षा की पुनर्रचना, p. 185.
2. *Kothari Commission Report*, p. 424.
3. *Kothari Commission Report*, pp. 665-666.

5. सब स्तरों की शिक्षा-संस्थाओं के छात्रों द्वारा वयस्कों को पढ़ाया जाना, "अनिवार्य राष्ट्रीय सेवा-कार्यक्रम" (Compulsory National Service Programme) का अभिन्न अंग बना दिया जाय।
6. फार्मों, मिलों, उद्योगों एवं व्यवसायों आदि के मालिकों को एक अधिनियम बनाकर अपने कर्मचारियों को 3 वर्ष में साक्षर बनाने के लिए उत्तरदायी ठहराया जाय।
7. ग्रामों में निवास करने वाली स्त्रियों को साक्षर बनाने के लिए, "ग्राम-सेविकाओं" (Village Sisters) की नियुक्ति की जाय।
8. नगरों में निवास करने वाली स्त्रियों में साक्षरता की उन्नति करने के लिए, "केन्द्रीय समाज-कल्याण-परिषद्" (Central Social Welfare Board) द्वारा "सघन पाठ्यक्रमों" (Condensed Courses) का संचालन किया जाय।
9. साक्षरता को कायम रखने के लिए पुस्तकालयों की स्थापना की जाय, पठन-सामग्री का निर्माण किया जाय एवं "अनुसरण कार्यक्रम" (Follow-up Programme) क्रियान्वित किया जाय।

आकाश का शिक्षक : Teacher in the Sky—"कोठारी कमीशन" द्वारा प्रस्तावित निरक्षरता-उन्मूलन के उपायों के वर्णन के उपरान्त एक नवीनतम उपाय का विवरण आपके ज्ञानार्थ अप्रासंगिक न होगा। निरक्षरता-उन्मूलन के इस उपाय का प्रयोग—संयुक्त राज्य अमरीका द्वारा किया जा रहा है। उसने 30 मई, 1974 को एक शैक्षिक उपग्रह वायुमंडल में भेजा है, जिसे "आकाश का शिक्षक" कहा गया है। भारत-सरकार को एक वर्ष के लिए इस शिक्षक की सेवाएँ प्राप्त हुई हैं।

इस अवधि में यह अद्भुत शिक्षक—शिक्षा-प्रसार का कार्य करेगा। यह बिहार, उड़ीसा, मध्य-प्रदेश, कर्नाटक और राजस्थान के निवासियों के लिए आकाश से शैक्षिक कार्यक्रम प्रसारित करेगा। ये कार्यक्रम 2,400 टेलीविजनों की सहायता से उक्त राज्यों के प्रत्येक ग्राम के निवासियों तक पहुँचाये जायेंगे। इन कार्यक्रमों के अन्तर्गत कृषि, स्वास्थ्य, परिवार-नियोजन एवं शिक्षा के अन्य अंगों को स्थान दिया गया है। जुलाई 1975 से जून 1976 तक आकाश का यह शिक्षक लगभग 1,500 घण्टों की अवधि में शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रसार करेगा।[1]

2. समस्या—पाठ्यक्रम : Curriculum—समाज-शिक्षा की दूसरी महत्त्वपूर्ण समस्या—पाठ्यक्रम की है। अभी तक वयस्कों के लिए किसी उपयुक्त पाठ्यक्रम का निर्माण नहीं किया जा सका है, जिसके फलस्वरूप समाज-शिक्षा के कार्य की सीमाएँ

1. *The Hindustan Times* Dated 31st of May, 1974.

अभी तक संकुचित है और उसकी गति में तीव्रता नहीं आ पाई है। वयस्कों के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम का निर्माण न किए जा सकने के 4 मुख्य कारण हैं; यथा :—

(i) वयस्कों की अभिरुचियाँ, अभिवृत्तियाँ, आवश्यकताएँ एवं जीवन-सम्बन्धी धारणाएँ बालकों से भिन्न होती हैं। अतः जिस पाठ्यक्रम का प्रयोग बालकों के लिए किया जाता है उसका प्रयोग वयस्कों के लिए नहीं किया जा सकता है।

(ii) कुछ वयस्क बिल्कुल निरक्षर होते हैं, जिनके लिए सर्वप्रथम अक्षर-ज्ञान की व्यवस्था की जानी अनिवार्य है। कुछ वयस्क अर्द्ध-शिक्षित होते हैं, जिनके लिए कुछ विशिष्ट विषयों की शिक्षा का प्रबन्ध किया जाना आवश्यक है। कुछ वयस्क नवसाक्षर होते हैं, जिनको कुछ लिखना-पढ़ना आता है। डा० सीताराम जायसवाल के विचार से[1] :— "इन वयस्कों में नागरिकता की भावना का विकास करने के लिए सभ्यता, संस्कृति, इतिहास, भूगोल, नागरिक-शास्त्र आदि विषयों का ज्ञान आवश्यक हो जाता है।" अतः तीनों प्रकार के वयस्कों के लिए एक ही पाठ्यक्रम का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

(iii) भारत के समस्त वयस्कों को आयु के अनुसार, तीन वर्गों में विभाजित किया गया है :—(i) 12 वर्ष से 18 वर्ष तक के वयस्क, (ii) 19 वर्ष से 35 वर्ष तक के वयस्क, और (iii) 35 वर्ष से अधिक आयु के वयस्क। इन वयस्कों में बालक और बालिकाएँ, युवक और युवतियाँ, पुरुष और स्त्रियाँ सभी हैं। विभिन्न लिंगों और विभिन्न अवस्थाओं के होने के कारण, उनकी रुचियों, झुकावों, प्रवृत्तियों, मानसिक योग्यताओं आदि में अन्तर होना स्वाभाविक है। अतः इन सबके लिए एक ही पाठ्यक्रम का प्रयोग नहीं किया जा सकता है।

(iv) समाज-शिक्षा का उद्देश्य—वयस्कों को केवल साक्षर बना कर, उनका मानसिक विकास करना ही नहीं है, वरन् उनको किसी उपयोगी हस्त-शिल्प का प्रशिक्षण देना भी है, ताकि वे अपने समय का सदुपयोग करके, अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार कर सकें। क्षेत्रीय माँगों के अनुसार, इन हस्तशिल्पों की विभिन्नता में बाहुल्य है। अतः विभिन्न क्षेत्रों के वयस्कों के लिए विभिन्न शिल्पों का प्रशिक्षण दिए जाने की व्यवस्था करना, यदि असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य है।

उपर्युल्लिखित कठिनाइयों के कारण वयस्कों के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम के संगठन-कार्य ने एक जटिल समस्या का रूप धारण कर लिया है।

---

1. डा० सीताराम जायसवाल : प्रौढ़ शिक्षा-प्रसार, p. 50

समाधान—उपयुक्त पाठ्यक्रम का निर्माण : Construction of Suitable Curriculum—वयस्कों के लिए उपयुक्त पाठ्यक्रम का निर्माण अग्रलिखित 4 आधारों पर किया जा सकता है :—

(i) निरक्षर, अर्द्ध-साक्षर एवं नवसाक्षर वयस्कों की आवश्यकताओं का अध्ययन।

(ii) विभिन्न लिंगो एवं वय-वर्गों के वयस्कों की रुचियों, स्वभावों, प्रवृत्तियों एवं मानसिक योग्यताओं का अध्ययन।

(iii) *वयस्कों का मानसिक, सामाजिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक विकास* करने के लिए, उपयुक्त विषयों का चयन।

(iv) वयस्कों की आर्थिक उन्नति करने के लिए, उनके पर्यावरणों की आवश्यकताओं के अनुकूल हस्तशिल्पों का चयन।

उपर्युक्त आधारों को ध्यान में रखते हुए, हम कह सकते हैं कि वयस्कों के लिए एक नहीं, वरन् अनेक पाठ्यक्रमों का निर्माण करना पड़ेगा। किन्तु, इन पाठ्यक्रमों के विषय समान होंगे। अन्तर केवल यह होगा कि इन विषयों की सामग्री का स्तर—निम्न, उच्च या विस्तृत होगा। दूसरे शब्दों में, पाठ्यक्रम—प्रारम्भिक, मध्य एवं उच्च स्तरों के लिए भिन्न होंगे। इस प्रकार के पाठ्यक्रम निम्नांकित हो सकते हैं :—

1. प्रारम्भिक स्तर—सामान्य ज्ञान, पढ़ना, लिखना और प्रारम्भिक अंकगणित।

2. मध्य स्तर—मातृभाषा, गणित, नागरिक शास्त्र, भारत का भूगोल एवं इतिहास, सामान्य विज्ञान, स्वास्थ्य-विज्ञान, स्थानीय आवश्यकताओं के अनुकूल एक *या अधिक शिल्प, कृषि (केवल बालकों और पुरुषों के लिए) और सगीत एवं चित्रकला* (केवल बालिकाओं और स्त्रियों के लिए)।

3. उच्च स्तर—साहित्य, भारत का सांस्कृतिक इतिहास, विश्व का भूगोल एवं इतिहास, परिवार-नियोजन, प्रजातन्त्र एवं राष्ट्रीयता के सिद्धान्त, सहकारी समितियों एवं संस्थाओं का संगठन और संचालन, इत्यादि।

वयस्कों के पाठ्यक्रम से सम्बन्धित एक उपयोगी सुझाव—राजस्थान राज्य-शिक्षा-संस्थान के भूतपूर्व निदेशक, श्री बालगोविन्द तिवारी ने अपने 'प्रयोजनशील प्रौढ़-शिक्षा" शीर्षक लेख में दिया है, जो इस प्रकार है[1] :—

"बहुत-सा ज्ञान ऐसा होता है, जो बिना पढ़ा-लिखा किसान या मजदूर जानता है। परन्तु, बहुत-सा ऐसा है, जिसको वह प्राप्त करना चाहता है, परन्तु बिना *साक्षरता के उसका लाभ उसको नहीं मिल सकता है। उदाहरण के लिए, घर-घर* में बालक जन्म लेते हैं और बीमार भी होते हैं। यदि ऐसी छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ तैयार कर ली जायें जिनमें कि घरेलू नुस्खे दिए हों, तो वह प्रत्येक प्रौढ़ को साक्षरता

1. नया शिक्षक का प्रौढ़-शिक्षा विशेषांक, p. 103.

की ओर ले जाने में बहुत सहायक होंगे। यह भी आवश्यक है कि विभिन्न उपयोगी विषयों पर छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ साधारण भाषा में लिख कर उपलब्ध की जायें। जहाँ पढ़े-लिखे लोगों को ये पुस्तिकाएँ साक्षरता की ओर अग्रसर करेंगी, वहाँ साक्षरता-प्राप्त लोगों की साक्षरता की रक्षा करने में तथा उसके दृढ़ीकरण में भी वे अमूल्य सहायता करेंगी।"

श्री तिवारी ने लगभग 30 विषयों की सूची दी है, जिन पर पुस्तिकाएँ तैयार करवाई जा सकती हैं। इन विषयों में मुख्य हैं :—(1) बच्चों के खेल, (2) बच्चों की कहानियाँ, (3) पशुपालन, (4) दाना-चारा, (5) पशु-चिकित्सा, (6) सफल खेती, (7) बीज, (8) खाद, (9) जुताई, (10) बुआई, (11) पौधों की सम्हाल, (12) सिंचाई, (13) ऋतु-फल, (14) शाक-भाजी, (15) नीम, बड़, बबूल, इत्यादि।

3. समस्या—शिक्षण-विधि : Method of Teaching—वयस्कों के लिए उपयुक्त शिक्षण-विधि का निर्धारण इतनी जटिल समस्या है कि अभी तक इसका समाधान नहीं किया जा सका है। यह समस्या जटिल इसलिए है, क्योंकि वयस्क आर्थिक एवं सामाजिक स्वतन्त्रता का उपभोग करते हैं, जिस पर वे किसी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं चाहते हैं। उनमें अहम् की भावना होती है, जिस पर वे किसी प्रकार का प्रहार सहन नहीं कर सकते हैं। उनकी अपनी कुछ आदतें होती हैं, अपने कुछ सिद्धान्त होते हैं, जिनके प्रतिकूल वे कार्य नहीं करना चाहते हैं। उनका अपना जीवन-दर्शन होता है, संसार के प्रति अपना दृष्टिकोण होता है, जिनमें वे सरलता से परिवर्तन करने के लिए तैयार नहीं होते हैं।

उपर्युक्त सभी तथ्यों ने वयस्कों के लिए उपयुक्त शिक्षण-विधि के निर्धारण को एक दुःसाध्य समस्या बना दिया है। यदि शिक्षण-विधि का कोई भी तत्व, उनकी आदतों, सिद्धान्तों, स्वतन्त्रता, जीवन-दर्शन, अहम् की भावना आदि से टकराता है, तो उस शिक्षण-विधि की असफलता अवश्यम्भावी है। यही कारण है कि अभी तक वयस्कों के लिए कोई निश्चित विधि निर्धारित नहीं की जा सकी है। बच्चों के मस्तिष्क के समान वयस्कों के मस्तिष्क कोरी पटिया नहीं हैं, जिन पर शिक्षक स्वेच्छा से कुछ भी या चाहे जैसे लिख दे। इसीलिए, किसी भी वयस्क को शिक्षा देते समय शिक्षक अपने को दुर्बोध स्थिति में पाता है। डा० राव का यह कथन अक्षरशः सत्य है :—"वयस्क निरक्षर भले ही हो, पर उसका मस्तिष्क विकसित होता है और उसकी रुचियों का निर्माण हो चुका है। अतः जब हम उसे शिक्षा प्रदान करते हैं, तब हम कोरी पटिया पर नहीं लिखते हैं।"

"An adult may be illiterate, but his mind is grown-up and his interests are already cultivated. We are not writing on a blank slate, when we are dealing with an adult."—Dr. V. K. R. V. Rao : *op. cit.*, p. 82.

समाधान—उपयुक्त शिक्षण-विधि : Suitable Method of Teachi

हमारे देश के शिक्षा-मर्मज्ञ पर्याप्त समय से वयस्कों के लिए उपयुक्त शिक्षण-विधि खोज करने में यथेष्ट रूप से सक्रिय हैं। उन्होंने वयस्कों के मनोविज्ञान का अध्ययन करके, कतिपय शिक्षण-विधियों की खोज भी की है। हम इनमें से कुछ प्र विधियों का तथा लेखक की विधि का संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं; यथा :—

1 वर्ण-परिचय-विधि—इस विधि में वयस्कों को पहले वर्णों का, उसके बा शब्दों का और अन्त में वाक्यों का ज्ञान कराया जाता है। हमारे प्राथमिक स्कूलों में यही विधि प्रचलित है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय की "मोशन सर्विस लीग" ने इस विधि के आधार पर वयस्कों के लिए 'दीपक प्राइमर" तैयार की है।

2 वाक्य-विधि—इस विधि में वयस्कों को पहले वाक्यों का, उसके बाद शब्दों का और अन्त में अक्षरों का ज्ञान कराया जाता है।

3 शब्द-वाक्य-विधि—यह शब्दों और वाक्यों की मिश्रित विधि है। इस विधि में वयस्कों को पहले दो शब्दों का एक-साथ ज्ञान कराया जाता है। उसके बाद, उन शब्दों को विभिन्न क्रम में रखकर, उनको वाक्यों में परिचित कराया जाता है। उदाहरणार्थ—हम "आ' और "मा" दो शब्द ले सकते हैं। हम इन शब्दों को विभिन्न क्रमों में रखकर, अनेक प्रकार के वाक्य बना सकते हैं, जैसे—आ मा। मा आ। आ मा आ। आ मामा। मामा आ। आ मामा आ। मा मामा आ।

4. कहानी-विधि—इस विधि की खोज करने का श्रेय—श्री राम मान अग्रवाल को प्राप्त है। इस विधि में प्रत्येक अक्षर, श्यामपट पर लिखा जाता है और फिर उसके विषय में कोई कहानी सुनाई जाती है। इस प्रकार, कहानी द्वारा उस अक्षर को वयस्क के मानस-पटल पर अंकित कर दिया जाता है।

5. सरस शब्द-विधि— यह विधि - श्री पथिक ने निकाली है। इसमें गीतों का प्रधान स्थान है। वयस्कों द्वारा पहले इन गीतों को गाया जाता है और फिर उनको गाए जाने वाले शब्दों का चार्टों की सहायता से ज्ञान प्रदान किया जाता है। उदाहरणार्थ—"कलम से लिखेंगे, कलम से पढ़ेंगे। कलम से बढ़ेंगे, कलम से बिकेंगे।"

6 रायसम की विधि—श्री वेंकट राव रायसम ने एक नवीन विधि की खोज की है। यह विधि 6 भागों और 2 परीक्षाओं में विभाजित है। श्री रायसम ने इस विधि का प्रयोग—हिमाचल प्रदेश के ग्राम-निवासियों और तिब्बती शरणार्थियों के लिए किया है। इस विधि द्वारा उन्होंने वयस्कों को 6 मास की अवधि में अक्षर-ज्ञान आरम्भ करके, गणित, भूगोल, इतिहास, सफाई, स्वास्थ्य, देश-रक्षा, पंचायती राज दि से भली भाँति परिचित कर दिया है। उनका आग्रह है कि जब कि प्रचलित धि में एक वयस्क को शिक्षा देने में 1,500) रुपए व्यय होते हैं, उनकी विधि में व्यय केवल 6 या 7 रुपए है।[1]

---

[1] दिनमान साप्ताहिक, 11 जुलाई, 1971।

7. लॉबक की विधि—डा० फ्रैंक लॉबक (Dr. Frank Laubach) अमरीका का विख्यात मिशनरी और शिक्षा-विशारद था। उसने फिलिपाइन द्वीप-समूह के लानाव (Lanao) नामक प्रान्त में निवास करने वाली मोर जाति (Moros) के व्यक्तियों को साक्षर बनाने के लिए जिस विधि का प्रयोग किया, उसकी विश्व के सभी उच्च कोटि के शिक्षा-विशेषज्ञों द्वारा भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। उसकी पद्धति इस प्रकार थी। उसने आरम्भ में मोर जाति के लोगों द्वारा सबसे अधिक प्रयोग किए जाने वाले शब्दों को चुनकर, उनको शिक्षा देने का कार्य आरम्भ किया। वह प्रति दिन उन शब्दों की संख्या में वृद्धि करता रहता था। वह चार्टों की सहायता से वयस्कों को एक दिन में 17 अक्षरों का ज्ञान करा देता था। जिन वयस्कों को वह साक्षर बना देता था, उनको वह दूसरे वयस्कों को साक्षर बनाने के लिए भेज देता था। इस प्रकार, उसने 5 वर्ष में लानाव प्रान्त के 70,000 व्यक्तियों को साक्षर बना दिया।[1]

उपरिवर्णित सभी विधियां अच्छी हैं और वयस्कों को शिक्षा देने के लिए सभी का प्रयोग किया जा सकता है। किन्तु, हमारे विचार से इन विधियों में सर्वोत्तम डा० लॉबक की विधि है। हमें इसको इसलिए त्याज्य नहीं ठहराना चाहिए, क्योंकि वह एक विदेशी की विधि है। डा० लॉबक ने 1935, 1937 और 1938 में भारत पधार कर हिन्दी, बंगाली, तामिल, तेलगू, मराठी और गुजराती भाषाओं के लिए अपनी विधि की उपादेयता सिद्ध की। उसकी पद्धति का प्रयोग करके, पंजाब में मोगा के मिशनरियों को साक्षरता-प्रसार के कार्य में अद्भुत सफलता मिली। स्वयं लॉबक ने लानाव प्रान्त में वयस्कों को साक्षर बनाने का असाधारण कार्य किया। उसकी शिक्षण-विधि की सफलता के इतने सजीव प्रमाण हैं। अतः हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि भारत-सरकार—वयस्कों की शिक्षा के लिए इस विधि को प्रचलित कर दे, तो अल्प समय में ही भारत के प्रत्येक वयस्क को साक्षर बनाया जा सकता है।

4. समस्या—धन का अभाव : Dearth of Money—सन् 1971 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल जनसंख्या 54·80 करोड़ है।[2] इनमें से 37·67 करोड़ व्यक्ति निरक्षर हैं।[3] इस समय सरकार एक व्यक्ति को साक्षर बनाने में 1,500 रुपए व्यय कर रही है।[4] अब यदि हिसाब लगाया जाय, तो 37·67 करोड़ व्यक्तियों को साक्षर बनाने के लिए अरबों रुपयों की आवश्यकता है।

भारत-सरकार ने "चौथी पंचवर्षीय योजना" (1969-1974) में समाज-

1. T. N. Siqueira : *Modern Indian Education*, p. 162.
2. *India*, 1974, p. 6.
3. *India*, 1974, p. 51.
4. "दिनमान" साप्ताहिक, 11 July, 71, p. 44.

शिक्षा पर 64 करोड़ रुपए व्यय किए।[1] "पाँचवीं योजना" में यह धनराशि घटा 35 करोड़ रुपए कर दी गई है।[2] स्पष्ट है कि ये धनराशियाँ भारत के ना निरक्षर व्यक्तियों को साक्षर बनाने के लिए अत्यन्त कम हैं। किन्तु, अधिक धन व्यय नहीं किया जा सकता है, क्योंकि 1971-72 में भारत की राष्ट्रीय आय 19,0 करोड़ रुपए थी।[3] अतः सरकार का औचित्यपूर्ण तर्क है कि वह धनाभाव के कार समाज-शिक्षा पर अधिक धन व्यय करने के लिए पूर्णतया असमर्थ है। ऐसी स्थि में भारत के निरक्षर वयस्कों को साक्षर बनाने की समस्या का समाधान करना असम्भव है।

समाधान—धन का अभाव, एक बहाना. Dearth of Money, A Pretence—सरकार का यह तर्क प्रत्येक दृष्टि से औचित्यपूर्ण है कि वह धनाभाव के कारण साक्षरता-प्रसार के लिए अधिक धन व्यय करने में असमर्थ है। किन्तु शिक्षा विशारद, डा० सैयदैन ने धनाभाव को बहाना-मात्र बताया है। वे इस बात को स्वीकार करने के लिए उद्यत नहीं हैं कि भारत—धनाभाव या निर्धनता के कारण निरक्षरता की समस्या का समाधान करने में असमर्थ है। अपने इस विचार को युक्तिसंगत तर्कों द्वारा पुष्ट करते हुए, डा० सैयदैन ने लिखा है[4] :—

"क्या यह तर्क दिया जा सकता है कि हमारा निर्धन देश इस पैमाने की शिक्षा-सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान करने का खर्च नहीं कर सकता है? वास्तव में केवल एक ही प्रकार की दरिद्रता होती है, जिसका कोई इलाज नहीं होता है, और वह होती है—'उत्साह की दरिद्रता'। यदि हम गम्भीरतापूर्वक प्रयत्न करें तो अन्य सभी प्रकार की दरिद्रताएँ दूर की जा सकती हैं। यह एक बहुत घिसी पिटी बात है, फिर भी मैं उसे दोहराना चाहूँगा कि इसी निर्धन देश ने एक ऐसे युद्ध के लिए जिस में उसका कोई हाथ नहीं था, करोड़ों रुपए खर्च कर दिए थे। इन परिस्थितियों को देखते हुए इस बात का क्या कारण हो सकता है कि शिक्षा के क्षेत्र में भी, जो शान्ति और मानवीय गुणों का मूल आधार है, इतना ही बड़ा प्रयास न किया जा सके? मेरा विश्वास है कि राष्ट्र के पुनर्निर्माण की बड़ी-बड़ी समस्याओं को संकुचित वित्तीय दृष्टिकोण से नहीं देखना चाहिए। हमारे बजट में इतने करोड़ों को गुंजाइश है और इतने 'बड़े' पैमाने पर अकेले प्रौढ़ शिक्षा पर ही इतना खर्च आ जायगा—इसलिए व्यवहारतः असम्भव होने के कारण इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया जा सकता है।' मेरी राय में समस्या पर विचार करने का सही तरीका यह नहीं है कि हम एक अच्छी शिक्षा-व्यवस्था का, या एक अच्छी स्वास्थ्य नीति बनाने का खर्च बर्दाश्त नहीं

1. चौथी पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा) p. 231
2. Draft Fifth Five-Year Plan Vol II p. 21[illegible]
3. India, 1974, p. 132.
4. के० जी० सैयदैन : शिक्षा की पुनर्रचना pp. 1[illegible]

कर सकते; बल्कि हमें इस तरह सोचना चाहिए कि इन 'चीजों के बिना क्या हमारा काम चल सकता है?' यदि इस बात को स्वीकार किया जाता है कि कोई भी देश बहुत बड़ी हद तक अस्वस्थ और जाहिल तथा सांस्कृतिक दृष्टि से दरिद्र नहीं रह सकता है, तो इसके लिए धन जुटाना—सरकार, वित्त-विभाग और राष्ट्रीय अर्थतन्त्र की योजना बनाने वालों की जिम्मेदारी है।"

5. समस्या—शिक्षकों का अभाव : Dearth of Teachers—वयस्क-विद्यालयों के लिए शिक्षकों के अभाव ने समाज-शिक्षा के विस्तार में एक दुरूह समस्या उपस्थित कर दी है। इस अभाव के दो स्वरूप हैं। पहला स्वरूप यह है कि वयस्कों को शिक्षा देने के लिए प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव है। सामान्य रूप से, उनको शिक्षा देने का कार्य—प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों को सौंपा जाता है। ये अध्यापक—वयस्कों के मनोविज्ञान से पूर्णतया अपरिचित होते हैं। अतः उनमें वयस्कों के लिए उपयुक्त शिक्षण-सामग्री एवं शिक्षण-विधियों का चयन करने की क्षमता नहीं होती है। यही कारण है कि वे प्रौढ़-शिक्षा-केन्द्रों का दक्षतापूर्वक संचालन करने में असफल होते हैं।

दूसरा स्वरूप यह है कि प्रौढ़-शालाओं के लिए शिक्षकों की वांछित संख्या उपलब्ध नहीं है। इसके दो मुख्य कारण हैं। पहला, वयस्क-विद्यालयों के शिक्षकों को इतना अल्प वेतन मिलता है कि वे अपनी जीवन-सम्बन्धी आवश्यकताओं को जुटाने में भी असमर्थता का अनुभव करते हैं। दूसरा, अधिकांश प्रौढ़-विद्यालय—ग्रामों में स्थित हैं। ग्रामों में शिक्षकों को दैनिक प्रयोग की वस्तुओं, निवास-स्थानों, मनोरंजन की सुविधाओं आदि का स्थायी अभाव रहता है। अतः ग्रामों के कष्टपूर्ण जीवन की कल्पना करके ही वे व्यग्र हो जाते हैं।

प्रौढ़-शालाओं के लिए अध्यापिकाओं का और भी अधिक अभाव है। शिक्षित होने के कारण, वे अपने परिवारों से पृथक् दूर के गाँवों के गँवारू और मैले-कुचैले वातावरण में अल्प धनराशि का अर्जन करने के लिए जाना अपनी मान-हानि समझती हैं। साथ ही, उनको उन ग्रामीण स्त्रियों से स्वाभाविक घृणा होती है, जिनकी शिक्षा का भार उनको दिया जाता है, क्योंकि वे उनको वंश और परम्परा—दोनों दृष्टियों से अशिष्ट एवं असभ्य समझती हैं।

समाधान – शिक्षकों की पूर्ति : Supply of Teachers—प्रौढ़-विद्यालयों के लिए आवश्यक योग्यताओं से युक्त शिक्षकों की वांछित संख्या की उपलब्धि के लिए दो उपायों को काम में लाया जा सकता है। पहला, वयस्कों को शिक्षा देने वाले अध्यापकों के प्रशिक्षण की सरकार द्वारा शीघ्र ही समुचित व्यवस्था की जाय। उनको प्रशिक्षण-काल में प्रौढ़-मनोविज्ञान एवं प्रौढ़-शिक्षा की नवीनतम् विधियों से अवगत कराया जाय। साथ ही, उनको कृषि, वृक्षारोपण, पशुपालन, कुटीर उद्योगों, स्वास्थ्य-विज्ञान, प्रारम्भिक चिकित्सा, कताई और बुनाई में इतना प्रशिक्षित कर दिया जाय

कि वे ग्रामीण वयस्कों को लाभप्रद ज्ञान प्रदान करके, उनके उत्कर्ष में वास्तविक योग दे सकें। दूसरा, प्रौढ़-शालाओं के शिक्षकों को प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों से पर्याप्त अधिक वेतन दिया जाय। जहाँ तक अध्यापिकाओं का प्रश्न है, उनके लिए विशेष वेतन-क्रम निर्धारित किए जायें। इसके अतिरिक्त, उनको ग्रामों में आवास की विशेष सुविधाएँ प्रदान की जायें।

इन दोनों उपायों के विषय में किसी प्रकार की मत-विभिन्नता नहीं हो सकती है। किन्तु, प्रौढ़-विद्यालयों के लिए वांछित संख्या में शिक्षकों को प्रशिक्षित करने में पर्याप्त समय लगेगा। उस समय तक के लिए वयस्क शिक्षा के कार्य को स्थगित करना, वयस्कों के लिए अमानवीय एवं देश की प्रगति के लिए अनर्थकारी होगा। अतः इस अन्त.कालीन समय में "कोठारी कमीशन" द्वारा अंकित किए जाने वाले इन सुझावों को व्यावहारिक रूप प्रदान करना, दोनों के लिए हितप्रद सिद्ध होगा[1] :—"देश के समस्त उपलब्ध शिक्षित पुरुषों एवं स्त्रियों के दल बना दिए जायें और व्यापक एवं सुनियोजित साक्षरता-अभियान में उनका उपयोग किया जाय। सब स्तरों की शिक्षा-संस्थाओं के छात्रों द्वारा वयस्कों को पढ़ाया जाना, 'अनिवार्य राष्ट्रीय सेवा-कार्यक्रम' का अभिन्न अंग बना दिया जाय।"

6. समस्या—उपयुक्त साहित्य का अभाव : Dearth of Suitable Literature—वयस्कों के लिए उपयुक्त साहित्य का अभाव होने के कारण समाज शिक्षा का कार्य अत्यन्त मन्थर गति से चल रहा है। उनके लिए प्राथमिक विद्यालयों में प्रयोग की जाने वाली पाठ्य-सामग्री का उपयोग किया जाता है। यह सामग्री उनको साक्षर अवश्य बना सकती है, पर समाज-शिक्षा के अन्य उद्देश्यों की प्राप्ति में रंचमात्र भी सहायता नहीं दे सकती है। उनके लिए ऐसी पाठ्य-सामग्री की आवश्यकता है, जो उनका बौद्धिक विकास करने के साथ-साथ उनमें नागरिक, सामाजिक एवं राजनीतिक चेतना का भी विकास करे। इसके अतिरिक्त, यह भी आवश्यक है कि प्राथमिक शिक्षा समाप्त करने वाले नवसाक्षरों के लिए उपयुक्त साहित्य हो। अन्यथा, कुछ समय के उपरान्त उनका पुनः निरक्षर हो जाना स्वाभाविक है।

वयस्कों की साक्षरता एवं उनके साहित्य के विषय में डा० सैयदैन के अग्रांकित शब्द ध्यान देने के योग्य हैं[2] :—"यदि हमारी समस्त जनता पढ़ना-लिखना और जोड़-बाकी तथा गुणा-भाग के सवाल सही-सही लगाना सीख भी ले, तो उससे उसे क्या फायदा होगा? इससे अखबारों में तथा सार्वजनिक मंच पर लफ्फाजी करने वालों को उन्हें बेवकूफ बनाने का उतना ही ज्यादा मसाला और मिल जायगा। इससे न तो उनके मानदण्ड ऊँचे होंगे, न उनकी रुचियों में सुधार होगा और उनका

1. *Kothari Commission Report*, p. 427.
2. के० जी० सैयदैन : पूर्वोक्त पुस्तक, p. 211.

जीवन ही समृद्ध बनेगा। उनकी सहानुभूति या समझ या सामाजिक चेतना में कोई गहराई नहीं पैदा होगी। इसलिए, हमें इस समस्या को बिल्कुल ही दूसरे तथा अधिक व्यापक दृष्टिकोण से देखना चाहिए। हमें जनता में चीजों को परखने की क्षमता, आलोचनात्मक शक्ति और सामाजिक भावना का विकास करने में योग देना चाहिए, ताकि वे कला के क्षेत्र में उत्कृष्ट तथा निकृष्ट के बीच, ज्ञान के क्षेत्र में सच और झूठ के बीच और आचरण के क्षेत्र में भले और बुरे के बीच अन्तर कर सकें।"

उक्त प्रकार के साहित्य के अभाव ने समाज-शिक्षा के कार्य में भारी बाधा उत्पन्न कर दी है। डा० सैयदैन के शब्दों में :—"वयस्कों की रुचियों के अनुकूल पाठ्य-सामग्री के अभाव के कारण समाज-शिक्षा के कार्य में भारी बाधा उत्पन्न हो गई है।"

"The work of social education is greatly handicapped by the paucity of suitable reading material graded to appeal to the adults"—K. G. Saiyidain : *Proceedings of the 19th Meeting of the Central Advisory Board of Education in India,* Appendix C (d).

समाधान—उपयुक्त साहित्य का उत्पादन : Production of Suitable Literature—समाज-शिक्षा की मन्थर गति में तीव्रता उत्पन्न करने के लिए, उपयुक्त वयस्क-साहित्य का उत्पादन किया जाना एक आवश्यक शर्त है। यह साहित्य ऐसा होना चाहिए, जो वयस्कों को अपनी सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति के प्रति जागरूक करे, उनको अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के ज्ञान से सम्पन्न करे, उनकी व्यावसायिक क्षमता में अभिवृद्धि करे, एवं अन्ततोगत्वा उनको भारतीय गणतंत्र का आदर्श नागरिक बनाए।

वयस्कों की आयु, लिंग आदि में भेद होने के कारण, सबके लिए समान साहित्य का निर्माण किया जाना अविवेकपूर्ण कार्य होगा। अतः उत्तर प्रदेश की "नवसाक्षरोपयोगी साहित्य-निर्माण-गोष्ठी की आख्या" का सुझाव है कि साहित्य का निर्माण करते समय अग्रांकित 5 बातों को ध्यान में रखा जाना चाहिए :—(i) आयु-भेद, (ii) लिंग-भेद, (iii) क्षेत्र-भेद, (iv) मांग एवं आवश्यकता, और (v) समाज-शिक्षा के उद्देश्य।

वयस्कों के लिए उपयुक्त साहित्य से सम्बन्धित अन्तिम बात यह है कि उसमें भिन्न-भिन्न वस्तुओं को स्थान दिया जाना चाहिए। इन वस्तुओं में ऐसे चार्टों, चित्रों, पुस्तकों और समाचार-पत्रों को स्थान प्राप्त होना चाहिए, जो वयस्कों की विभिन्न रुचियों एवं जिज्ञासाओं को संतुष्ट कर सकें। इसके अतिरिक्त, वयस्कों के लिए, चित्रपूर्ण मासिक एवं साप्ताहिक पत्रिकाओं का भी प्रकाशन किया जाना चाहिए। इनमें कृषि, स्वास्थ्य, खेल-कूद, देश-विदेश के समाचारों एवं ग्रामों से सम्बन्धित प्रमुख समस्याओं को स्थान दिया जाना चाहिए।[1]

---

1. *Teachers' Hand-book of Social Education,* p. 28.

पिछले कुछ वर्षों से भारत के सभी राज्य—वयस्कों के लिए उपयुक्त साहित्य का उत्पादन करने में संलग्न हैं। इस दिशा में "साक्षरता-निकेतन", लखनऊ; मैसूर राज्य की "प्रौढ़-शिक्षा-परिषद्" और 'राष्ट्रीय प्रौढ़-शिक्षा-परिषद्" महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। सरकार ने निश्चय किया है कि पाँचवी पंचवर्षीय योजना के दौरान में वयस्कों के लिए विभिन्न भारतीय भाषाओं में कम मूल्य की पुस्तकों का भारी संख्या में प्रकाशन किया जायगा।[1]

7. समस्या—शिक्षा के साधनों का अभाव : Dearth of Agencies of Education—"समाज-शिक्षा की अध्यापक-निर्देशन-पुस्तिका" में समाज-शिक्षा के साधनों की व्याख्या इस प्रकार की गई है :—"समाज-शिक्षा के साधनों से तात्पर्य है—वे समूह या संस्थाएँ, जो समाज शिक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्तियों से सम्पर्क रखती हैं, उनको ज्ञान प्रदान करती हैं, एवं उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं।"

"By agencies of social education is meant the bodies or institutions which 'deliver the goods' and which contact the 'consumers' of social education and satisfy their needs"

—*Teachers' Hand-Book of Social Education*, p 66.

समाज-शिक्षा के उपयुक्त साधनों का चयन करना सरल कार्य नहीं है। इसका कारण यह है कि यदि इनका चयन—वयस्कों की आयु, लिंग, रुचियों, आवश्यकताओं आदि के अनुकूल नहीं किया जाता है, तो इनका प्रयोग पूर्णतया निष्फल हो जाता है। फलस्वरूप, वयस्कों के ज्ञान-कोष में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं होती है। ऐसी स्थिति में समाज-शिक्षा के कार्यकर्त्ताओं के सम्मुख एक विचित्र समस्या आ खड़ी होती है।

समाधान—शिक्षा के उपयुक्त साधन Suitable Agencies of Education—प्रौढ़-मनोविज्ञान में दक्ष व्यक्तियों ने अथक परिश्रम करके उक्त समस्या का समाधान किया है। उन्होंने ऐसे अनेक साधनों के सुझाव दिए हैं, जो वयस्कों को ज्ञान से सम्पन्न करने में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। इस प्रकार के कुछ सुझाव सन् 1958 में उत्तर प्रदेश की "नवसाक्षरोपयोगी साहित्य-निर्माण-गोष्ठी" द्वारा प्रस्तुत किए गए थे, जो इस प्रकार हैं —(i) वाचन, (ii) विनोद-वार्त्ता, (iii) कथा-कहानी, (iv) पत्र एवं दैनिकी, (v) वर्णन-प्रधान गद्य, (vi) नाटक, प्रहसन एवं सम्वाद, और (vii) काव्य, लोकगीत एवं पहेलियाँ।

वयस्कों के मानसिक, चारित्रिक, सामाजिक सांस्कृतिक एवं राजनीतिक उत्थान के लिए इन सुझावों की उपादेयता को स्वीकार किया गया है। किन्तु, साथ ही यह भी स्वीकार किया गया कि इन सुझावों को मूर्त रूप देकर भी, वयस्कों का सर्वाङ्गीण विकास किया जाना असम्भव है। अतः प्रौढ़-मनोविज्ञान-विशेषज्ञों ने गहन

1. *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol II, p. 200.

अध्ययन के पश्चात् शिक्षा के अग्रगामी साधनों को पर्याप्त प्रभावोत्पादक बताया है :—(1) चार्ट, पोस्टर, प्रदर्शनी, संग्रहालय, वाचनालय एवं पुस्तकालय। (2) कथा-कहानी, पत्र-पत्रिकाएँ, साहित्यिक एवं वादविवाद गोष्ठियाँ। (3) श्रव्य-दृश्य साधन :—रेडियो, सिनेमा, ग्रामोफ़ोन, टेलीविज़न एवं फ़िल्मस्ट्रिप। (4) ऐतिहासिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक कार्यक्रम :—मेले, नाटक, नृत्य, संगीत, धार्मिक एवं सामाजिक समारोह।

8. समस्या—अनवरत शिक्षा का अभाव : Absence of Continuation Education—हमारे देश में निरक्षरता का उन्मूलन करने के लिए पर्याप्त उत्साह से कार्य किया गया है। सभी पंचवर्षीय योजनाओं में भारत के भाल से इस कलंक-कालिमा को मिटाने की सतत चेष्टाएँ की गई हैं। केन्द्रीय एवं राज्य-स्तरों पर साक्षरता-प्रसार के लिए आन्दोलनों का संगठन किया गया है और अनेक प्रकार के कार्यक्रमों का कार्यान्वयन किया गया है। भारत-सरकार के अनुसार[1] :—"वयस्कों में निरक्षरता समाप्त करने के लिए शिक्षा-मंत्रालय एक योजना चला रहा है। इसका मुख्य उद्देश्य—उन्हें ऐसी शिक्षा देना है, जिससे वे अपना जीवन अधिक उत्तम बना सकें और उनमें परम्परागत के स्थान पर प्रगतिशील समाज बनाने की इच्छा उत्पन्न हो।"

किन्तु, सरकार में जितना उत्साह—निरक्षरता-उन्मूलन के लिए है, उसका दशांश भी साक्षरता को क़ायम रखने के लिए नहीं है। वयस्कों को साक्षर बनाने के उपरान्त साक्षरता-आन्दोलनों की इतिश्री हो जाती है। ऐसा होना स्वाभाविक प्रतीत होता है, क्योंकि वयस्कों को साक्षर बनाने के लक्ष्य की प्राप्ति कर ली जाती है। किन्तु, सरकार द्वारा इस सामान्य अनुभव को विस्मृत कर दिया जाता है कि साक्षरता-आन्दोलनों के समाप्त होते ही वयस्क—निरक्षरता की ओर बड़ी तेज़ी से बढ़ने लगते हैं और कुछ ही समय के पश्चात् अपनी पूर्वकालीन स्थिति में पहुँच जाते हैं। इस सामान्य अनुभव के आधार पर "कोठारी कमीशन" ने बलपूर्वक घोषित किया है :—"यदि सीखने की प्रक्रिया को किसी रूप में जीवित नहीं रखा जायगा, तो साक्षरता-आन्दोलन का उद्देश्य नष्ट हो जायगा।"

"The very purpose of the literacy campaign will be defeated, if it does not continue in some form to keep the process of learning alive."—*Kothari Commission Report*, pp. 430-431.

समाधान—अनवरत शिक्षा की व्यवस्था : Provision for Continuation Education—शिक्षा की प्रक्रिया का कभी अन्त नहीं होता है। प्रत्येक व्यक्ति अपने व्यवसाय, स्वास्थ्य, पारिवारिक जीवन, अवकाश के सदुपयोग और कितने ही अन्य

1. *India*, 1974, p. 54.

बातों के बारे में कुछ-न-कुछ सीखना रहता है। यदि वह सीखना बन्द कर देता है, तो उसके व्यावसायिक एवं अन्य कार्यों में सम्बन्धित उसकी कुशलता का ह्रास होने लगता है। फलस्वरूप, वह त्वरित गति से परिवर्तित होने वाले संसार से अपना सामंजस्य स्थापित नहीं कर पाता है और असंतुष्ट जीवन व्यतीत करने लगता है। अतः औपचारिक शिक्षा या साक्षरता की प्राप्ति के पश्चात् भी प्रत्येक व्यक्ति के लिए निरन्तर शिक्षा की आवश्यकता है। इसकी आवश्यकता पर प्रकाश डालते हुए, "कोठारी कमीशन" ने लिखा है :—"तीव्र परिवर्तन और बढ़ते हुए ज्ञान की दशाओं में पूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए मनुष्य को निरन्तर सीखते रहना चाहिए।"

"In conditions of rapid change and advancing knowledge, man must continue to learn in order to live a full life."—*Kothari Commission Report*, p 431

अनुभव सभी का शिक्षक है। सरकार ने भी अनुभव से यह शिक्षा प्राप्त करके कि साक्षरता-प्रसार के लिए प्रयोग की जाने वाली जन-शक्ति एवं धनराशि का अपव्यय हो रहा है, अनवरत शिक्षा के प्रति ध्यान देना आरम्भ कर दिया है। शिक्षा-मन्त्रालय ने विभिन्न व्यवसायों में संलग्न व्यक्तियों के लिए कुछ विशिष्ट विषयों में पत्राचार-पाठ्यक्रमों का संचालन आरम्भ कर दिया है। दिल्ली विश्वविद्यालय ने भी इन पाठ्यक्रमों का सूत्रपात कर दिया है।

पत्राचार-पाठ्यक्रमों को अनवरत शिक्षा का एक चरण माना जाता है। अन्य चरणों की ओर "कोठारी कमीशन" के संकेत इस प्रकार हैं[1] :—

1. सब प्रकार की शिक्षा-संस्थाओं को अपने शिक्षण-समय से पहले या बाद में उन व्यक्तियों को ऐसे पाठ्यविषयों की शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जिनकी शिक्षा वे प्राप्त करना चाहते हैं।
2. उक्त शिक्षा-संस्थाओं को उक्त समय में इस प्रकार के पाठ्यक्रमों का आयोजन करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए, जिनसे वयस्कों को अपनी समस्याओं का समाधान करने और अधिक ज्ञान एवं अनुभव प्राप्त करने में सहायता मिले।
3. साक्षर वयस्कों को स्कूलों एवं कॉलिजों के छात्रों के समान डिप्लोमा एवं डिग्री प्राप्त करने का अवसर देने के लिए अल्पकालीन शिक्षा की प्रणाली प्रचलित की जानी चाहिए।
4. अनवरत शिक्षा प्रदान करने के लिए "केन्द्रीय वयस्क-महिला समाज-कल्याण-परिषद्" और मैसूर राज्य की विद्यापीठों के समान विशिष्ट संस्थाओं की स्थापना की जानी चाहिए।

---

1. *Kothari Commission Report*, p. 666.

8. नियोजन का अभाव : Absence of Planning—भारत-सरकार अनेक वर्षों से साक्षरता-प्रसार के कार्य में यथेष्ट रूप से सक्रिय है। अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए, उसने अनेक कार्यक्रम क्रियान्वित किए हैं। फिर भी, उसे सफलता के दर्शन नहीं हुए हैं। इस प्रसंग में "कोठारी कमीशन" ने लिखा है[1] :—"साक्षरता-प्रसार के कार्यक्रम अत्यधिक शक्ति एवं उत्साह से आरम्भ किए गए, पर शनैः-शनैः उनमें शिथिलता आती चली गई और कुछ वर्षों के पश्चात् वे पूर्णतया समाप्त हो गए।"

उक्त कार्यक्रमों की शिथिलता एवं समाप्ति का कारण यह था कि उनमें नियोजन का पूर्ण अभाव था। इसकी पुष्टि में "कोठारी कमीशन" ने 4 तथ्यों का उल्लेख किया है; यथा[2] :—

1. साक्षरता-प्रसार के कार्यक्रमों के क्षेत्र इतने अधिक सीमित थे कि वे भविष्य में अधिक कार्य के लिए उत्साह उत्पन्न न कर सके।
2. उक्त कार्यक्रमों को वयस्कों की रुचियों एवं आवश्यकताओं का सतर्कता से अध्ययन किए बिना, बड़ी जल्दबाजी में आरम्भ किया गया।
3. उक्त कार्यक्रमों को वयस्क-साक्षरता में जनता की रुचि जाग्रत किए बिना और अनवरत शिक्षा की व्यवस्था किए बिना आरम्भ किया गया।
4. उक्त कार्यक्रमों को पूर्ण करने के लिए जिन विभागों, निकायों, संस्थाओं आदि का साधनों के रूप में प्रयोग किया गया उनके कार्यों में किसी प्रकार का समन्वय एवं सामंजस्य नहीं था। अतः उन्होंने पारस्परिक सहयोग से कार्य न करके अलग-अलग कार्य किया।

"कोठारी कमीशन" का मत है कि नियोजन की अनुपस्थिति में सरकार द्वारा क्रियान्वित किए जाने वाले निरक्षरता-उन्मूलन के आन्दोलनों का असफल होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

समाधान --नियोजन की आवश्यकता : Need of Planning—साक्षरता-प्रसार के प्रयास में सफलता प्राप्त करने के लिए सुनिश्चित एवं सुसंगठित नियोजन पहली शर्त है। नियोजन किस प्रकार किया जाना चाहिए, अर्थात् साक्षरता-प्रसार की योजना किस प्रकार निर्मित एवं क्रियान्वित की जानी चाहिए, इस सम्बन्ध में "कोठारी कमीशन" ने कुछ अत्यन्त विवेकपूर्ण सुझाव दिए हैं; यथा[3] :—

1. योजना का निर्माण भली-भाँति सोच-विचार कर किया जाना चाहिए और उसके अंतर्गत सभी कार्यक्रमों को संगठित रूप प्रदान किया जाना चाहिए।

1. *Kothari Commission Report*, pp. 423-424.
2. *Kothari Commission Report*, p. 424.
3. *Kothari Commission Report*, p. 425.

...ी कार्यक्रमों परियोजनाएँ चलाना है, जो समूचे देश में समाज-शिक्षा के लिए उपयोगी हों।"

समाधान—दो सुझाव : Two Suggestions—उत्तरदायित्व-सम्बन्धी समस्या का समाधान किस प्रकार किया जा सकता है? इस विषय में दो सुझाव उल्लेखनीय हैं—एक, डा० सैयदैन का और दूसरा, "कोठारी कमीशन" का।

डा० सैयदैन ने संयुक्त उत्तरदायित्व का सुझाव देते हुए लिखा[1] :—"यह एक ऐसी जिम्मेदारी है, जिसे न शिक्षा-विभाग अकेले पूरा कर सकता है, और न पूरी शासन-व्यवस्था ही। इसके लिए सरकारी तथा गैर-सरकारी—सभी संस्थाओं और सद्भावना तथा सामाजिक चेतना रखने वाले उन सभी व्यक्तियों के योग, जो भारत का कल्याण चाहते हैं, परिश्रम तथा हार्दिक सहयोग आवश्यक है। अभी हमारे सामने इतना बहुत-सा और इतना विविध प्रकार का काम करने को पड़ा है कि जो भी इस सेवा-दल में शामिल होना चाहे, उसके लिए उसमें स्थान है—विद्यार्थी, अध्यापक, घर बैठकर खाने वाले लोग, राजनीतिक कार्यकर्ता, लेखक, श्रमिक, दस्तकार, डाक्टर, वकील—सभी के लिए।"

"कोठारी कमीशन" ने समाज-शिक्षा का पूर्ण उत्तरदायित्व केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय पर रखा और यह सुझाव दिया कि शिक्षा-मंत्रालय द्वारा एक राष्ट्रीय प्रौढ़-शिक्षा-परिषद् का निर्माण किया जाय और उसे "समाज-शिक्षा" से सम्बन्धित सब कार्य सौंप दिया जाय। "कोठारी कमीशन" के शब्दों में[2] :—"एक राष्ट्रीय प्रौढ़-शिक्षा परिषद् का निर्माण किया जाना चाहिए और उसमें समाज-शिक्षा से सम्बन्धित सब मंत्रालयों एवं संस्थाओं के प्रतिनिधि होने चाहिए।"

डा० सैयदैन के सुझाव की तुलना में "कोठारी कमीशन" का सुझाव अधिक विवेकपूर्ण एवं व्यावहारिक था। अतः सरकार ने कमीशन के सुझाव को स्वीकार करके, सन् 1969 में "राष्ट्रीय प्रौढ़-शिक्षा-परिषद्" (National Board of Adult Education) की सृष्टि की। (इसका वर्णन इसी अध्याय में "चौथी पंचवर्षीय योजना" के प्रसंग में किया जा चुका है।) इस प्रकार, उत्तरदायित्व की समस्या का समाधान इस तरह किया गया है। प्रौढ़-शिक्षा का मुख्य उत्तरदायित्व—केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय पर है। वह अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह "राष्ट्रीय प्रौढ़-शिक्षा-परिषद्" के द्वारा करता है। "परिषद्" में केन्द्रीय प्रशासन से सम्बन्धित लगभग सभी मंत्रालयों एवं विभागों के प्रतिनिधि होते हैं। इस प्रकार, प्रौढ़-शिक्षा का उत्तरदायित्व सम्पूर्ण प्रशासन पर है। इस प्रशासन-व्यवस्था की अधिक स्पष्टता की

1. डि० सी० सैयदैन : शिक्षा की पुनर्रचना, p. 214.
2. *Kothari Commission Report*, p. 667.

"शिक्षा-आयोग" के अग्रांकित शब्दों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है :—"यह सत्य है कि प्रौढ़-शिक्षा मुख्य रूप से शिक्षा-मन्त्रालय का कार्य है, पर ऐसी विधियों को अपनाना आवश्यक है, जिनसे प्रशासन के सभी अंग इस कार्य में व्यावहारिक योग दें।"

"It is true that adult education is mainly the function of the Ministry of Education, but it is necessary to adopt procedures which will ensure practical involvement of the entire administrative machinery."—*Education Commission Report*, p. 439.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. What are the aims and ideals of Social Education in India ? What efforts are being made to achieve them ?
   भारत में सामाजिक शिक्षा के मुख्य उद्देश्य तथा आदर्श क्या हैं ? उनकी प्राप्ति हेतु क्या प्रयत्न किए जा रहे हैं ?

2. Throw light on the need of Social Education in modern India and mention the reasons of its unsatisfactory progress in the country.
   वर्तमान भारत में समाज-शिक्षा की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए और देश में इसकी असंतोषजनक प्रगति के कारण बताइए।

3. What is meant by "Adult Education" and "Social Education" ? What efforts have been made by the Government in this direction ? Give your suggestions to make these efforts more effective and successful
   "प्रौढ़-शिक्षा" और "सामाजिक शिक्षा" से क्या तात्पर्य है ? इस दिशा में सरकार द्वारा क्या प्रयत्न किए गए हैं ? इन प्रयत्नों को अधिक प्रभावकारी और सफल बनाने के लिए अपने सुझाव दीजिए।

4. Discuss the importance of social education in a democracy How is the expenditure on social education justified in India when the country is facing the problem of free and compulsory education ?
   जनतन्त्र में समाज-शिक्षा के महत्व का विवेचन कीजिए। जबकि देश के सम्मुख निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की समस्या खड़ी है, तब भारत में समाज शिक्षा पर किया गया व्यय किस प्रकार न्यायोचित है ?

ी आजमाइशी परियोजनाएँ चलाना है, जो समूचे देश में समाज-शिक्षा ... के लिए उपयोगी हों।"

समाधान—दो सुझाव : Two Suggestions—उत्तरदायित्व-सम्बन्धी समस्या का समाधान किस प्रकार किया जा सकता है ? इस विषय में दो सुझाव उल्लेखनीय हैं—एक, डा० सैयदैन का और दूसरा, "कोठारी कमीशन" का।

डा० सैयदैन ने संयुक्त उत्तरदायित्व का सुझाव देते हुए लिखा[1] :—"यह एक ऐसी जिम्मेदारी है, जिसे न शिक्षा-विभाग अकेले पूरा कर सकता है, और न पूरी शासन-व्यवस्था ही। इसके लिए सरकारी तथा गैर-सरकारी—सभी संस्थाओं और सद्भावना तथा सामाजिक चेतना रखने वाले उन सभी व्यक्तियों के बीच, जो भारत का कल्याण चाहते हैं, घनिष्ठतम तथा हार्दिक सहयोग आवश्यक है। अभी हमारे सामने इतना बहुत-सा और इतना विविध प्रकार का काम करने को पड़ा है कि जो भी इस सेवा-दल में शामिल होना चाहे, उसके लिए उसमें स्थान है—विद्यार्थी, अध्यापक, घर बैठकर खाने वाले लोग, राजनीतिक कार्यकर्त्ता, लेखक, श्रमिक, दस्तकार, डाक्टर, वकील—सभी के लिए।"

"कोठारी कमीशन" ने समाज-शिक्षा का पूर्ण उत्तरदायित्व केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय पर रखा और यह सुझाव दिया कि शिक्षा-मंत्रालय द्वारा एक राष्ट्रीय प्रौढ़-शिक्षा-परिषद् का निर्माण किया जाय और उसे "समाज-शिक्षा" से सम्बन्धित सब कार्य सौंप दिया जाय। "कोठारी कमीशन" के शब्दों में[2] :—"एक राष्ट्रीय प्रौढ़-शिक्षा परिषद् का निर्माण किया जाना चाहिए और उसमें समाज-शिक्षा से सम्बन्धित सब मंत्रालयों एवं संस्थाओं के प्रतिनिधि होने चाहिए।"

डा० सैयदैन के सुझाव की तुलना में "कोठारी कमीशन" का सुझाव अधिक विवेकपूर्ण एवं व्यावहारिक था। अतः सरकार ने कमीशन के सुझाव को स्वीकार करके, सन् 1969 में "राष्ट्रीय प्रौढ़-शिक्षा-परिषद्" (National Board of Adult Education) की सृष्टि की। (इसका वर्णन इसी अध्याय में "चौथी पंचवर्षीय योजना" के प्रसंग में किया जा चुका है।) इस प्रकार, उत्तरदायित्व की समस्या का समाधान इस तरह किया गया है। प्रौढ़-शिक्षा का मुख्य उत्तरदायित्व—केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय पर है। वह अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह "राष्ट्रीय प्रौढ़-शिक्षा-परिषद्" के द्वारा करता है। "परिषद्" में केन्द्रीय प्रशासन से सम्बन्धित लगभग सभी मंत्रालयों एवं विभागों के प्रतिनिधि होते हैं। इस प्रकार, प्रौढ़-शिक्षा का उत्तरदायित्व सम्पूर्ण प्रशासन पर है। इस प्रशासन-व्यवस्था की अग्रिम रूपरेखा को

1. के० जी० सैयदैन : शिक्षा की पुनर्रचना, p. 214.
2. *Kothari Commission Report*, p. 667.

"शिक्षा-आयोग" के अग्रांकित शब्दों द्वारा व्यक्त किया जा सकता है :—"यह सत्य है कि प्रौढ़-शिक्षा मुख्य रूप से शिक्षा-मन्त्रालय का कार्य है, पर ऐसी विधियों को अपनाना आवश्यक है, जिनसे प्रशासन के सभी अंग इस कार्य में व्यावहारिक योग दें।"

"It is true that adult education is mainly the function of the Ministry of Education, but it is necessary to adopt procedures which will ensure practical involvement of the entire administrative machinery."—*Education Commission Report*, p. 439.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. What are the aims and ideals of Social Education in India ? What efforts are being made to achieve them ?

   भारत में सामाजिक शिक्षा के मुख्य उद्देश्य तथा आदर्श क्या हैं ? उनकी प्राप्ति हेतु क्या प्रयत्न किए जा रहे हैं ?

2. Throw light on the need of Social Education in modern India and mention the reasons of its unsatisfactory progress in the country.

   वर्तमान भारत में समाज-शिक्षा की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए और देश में इसकी असंतोषजनक प्रगति के कारण बताइए।

3. What is meant by "Adult Education" and "Social Education" ? What efforts have been made by the Government in this direction ? Give your suggestions to make these efforts more effective and successful

   "प्रौढ़-शिक्षा" और "सामाजिक शिक्षा" से क्या तात्पर्य है ? इस दिशा में सरकार द्वारा क्या प्रयत्न किए गए हैं ? इन प्रयत्नों को अधिक प्रभावकारी और सफल बनाने के लिए अपने सुझाव दीजिए।

4. Discuss the importance of social education in a democracy. How is the expenditure on social education justified in India when the country is facing the problem of free and compulsory education ?

   जनतन्त्र में समाज-शिक्षा के महत्व का विवेचन कीजिए। जबकि देश के सम्मुख निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की समस्या खड़ी है, तब भारत में समाज-शिक्षा पर किया गया व्यय किस प्रकार न्यायोचित है ?

का अनेक भागों में विभाजन कर दिया है। इन भागों से सम्बन्धित कार्यों को प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् ही व्यक्ति कुशलतापूर्वक कर सकते हैं। अतः इस शिक्षा की उपयुक्त व्यवस्था की माँग की जा रही है।

उक्त दोनों कारणों के फलस्वरूप प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की माँग में निरन्तर वृद्धि हो रही है। अतः इस शिक्षा की व्यवस्था न केवल पृथक् शिक्षा-संस्थाओं में की जा रही है, वरन् स्कूलों और कॉलिजों के पाठ्यक्रमों में भी प्राविधिक एवं व्यावसायिक विषयों को स्थान प्रदान किया जा रहा है। राबर्ट यूलिच के शब्दों में :—"स्कूलों और कॉलिजों में अधिक हो अधिक नवीन विषयों को समाविष्ट किया जा रहा है और प्राचीन मानवशास्त्रों तथा नवीन वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक विषयों में सामंजस्य स्थापित किया जा रहा है।"

"More and more new subjects are forced into schools and colleges; and reconciliation is being found between the older humanities and the new scientific and vocational interests."—Robert Ulich : *op cit*, p. 315

प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के इस सामान्य परिचय के पश्चात् अब हम इसके विस्तृत अध्ययन पर अपना ध्यान केन्द्रित कर रहे हैं।

प्राविधिक व व्यावसायिक शिक्षा का अर्थ व उद्देश्य
Meaning & Aims of Technical & Vocational Education

अर्थ—प्राविधिक शिक्षा—व्यावसायिक शिक्षा का अंग है। व्यावसायिक शिक्षा—व्यक्ति को किसी कार्य या व्यवसाय से सम्बन्धित प्राविधिक प्रशिक्षण प्रदान करती है, ताकि वह उस व्यवसाय के द्वारा अपनी जीविका का उपार्जन कर सके। अतः हम व्यावसायिक शिक्षा के अर्थ को "सामाजिक विज्ञानों के विश्वकोष" के अनुसार, इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं[1] :—"व्यापक रूप में व्यावसायिक शिक्षा के अन्तर्गत उन सब प्रकार की शिक्षा को सम्मिलित किया जा सकता है, जिसके द्वारा किसी व्यक्ति को जीविकोपार्जन के लिये प्रशिक्षण प्राप्त होता है।"

उद्देश्य—"यूनेस्को" (UNESCO) के बारहवें अधिवेशन में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के अधोलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए :—

1. प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के समस्त पाठ्यक्रमों में सामान्य, वैज्ञानिक एवं विशिष्ट विषयों में समुचित संतुलन होना चाहिए।
2. इस शिक्षा के समस्त पाठ्यक्रम तीव्र गति से विकसित होने वाले विज्ञान की प्रकृति के अनुरूप होने चाहिए।

---

1. *Encyclopaedia of the Social Sciences*, Vol. XV, p. 272. Edited by E. R. A Seligman.

3. इस शिक्षा के कुछ कार्यक्रम ऐसे होने चाहिए, जो शारीरिक या मानसिक दृष्टि से दोषपूर्ण व्यक्तियों के लिए उपयुक्त हों, ताकि वे समाज एव उसके व्यवसायों में समायोजित हो जायें।
4. इस शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर शारीरिक कार्य के महत्व की भावना होनी चाहिए और उत्पादन की विधियों में इस महत्व को स्वीकार किया जाना चाहिए।
5. इस शिक्षा का लक्ष्य केवल आधारभूत कौशल का विकास करना ही नहीं होना चाहिए, वरन् आधारभूत वैज्ञानिक ज्ञान प्रदान करना भी होना चाहिए।
6. इस शिक्षा का संगठन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि व्यक्ति अपनी शिक्षा को उस समय तक जारी रख सके, जब तक उसकी कुशलताओं का पूर्णतम सम्भव विकास न हो जाय।

प्राविधिक व व्यावसायिक शिक्षा की आवश्यकता व महत्व
Need & Importance of Technical & Vocational Education

हम इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि आधुनिक शिक्षा में परिलक्षित होने वाला एक मुख्य परिवर्तन यह है कि प्राविधिक एव व्यावसायिक शिक्षा पर अधिक ही अधिक बल दिया जा रहा है। इसका आधारभूत कारण यह है कि इस शिक्षा के महत्व एवं आवश्यकता को सब देशों में एक स्वर से स्वीकार किया जा रहा है। यहाँ हमारा प्रयोजन इस तथ्य का स्पष्टीकरण करना है।

भारतीय शिक्षा-विशारद प्रो० हुमायूँ कबीर ने अपने एक लेख में संसार के कुछ प्रमुख देशों के उदाहरण देकर प्राविधिक एव व्यावसायिक शिक्षा के महत्व एव आवश्यकता को प्रमाणित किया है। हम उक्त लेख में निहित उनके विचारों को सार रूप में अक्षरबद्ध कर रहे हैं, यथा[1]—प्रो० कबीर का मत है कि किसी देश अथवा राष्ट्र की समुन्नति एव सुदृढ़ता का आधार—विज्ञान एव प्राविधिक विषयों की शिक्षा है।' यदि किसी देश में इस शिक्षा की सफल एवं समुचित व्यवस्था है और यदि यह शिक्षा—प्रगति की ओर अग्रसर हो रही है, तो उस देश की प्रगति भी अवश्यम्भावी है। संयुक्त राज्य अमरीका, सोवियत रूस, जर्मनी और जापान इसके सजीव उदाहरण हैं। आज से लगभग सौ वर्ष पूर्व संयुक्त राज्य अमरीका एक पिछड़ा हुआ और अविकसित देश था। परन्तु, प्राविधिक एव व्यावसायिक शिक्षा का उत्कृष्ट आयोजन एव उत्तरोत्तर उत्थान करने के कारण आज वह संसार का सबसे धनी देश है और अनेक देश उसके ऋण-भार से दबे हुए हैं। सन् 1918 में जब रूस से जारशाही का जनाजा

1. *"Need of Scientific & Technical Education"*—Article by *Humayun Kabir*, in *The Leader* : Republic Day Supplement, 1956

निकाल कर, गणतन्त्र को प्रतिष्ठित किया गया, तब उसका स्थान संसार के निर्धन एवं अप्रगतिशील देशों में था। किन्तु, प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का सुन्दर नियोजन करने के कारण आज उसका स्थान, संसार के सबल एवं सुदृढ़ देशों में है। द्वितीय विश्व-युद्ध ने जर्मनी और जापान को जर्जर बनाकर उनकी अर्थ-व्यवस्था को तहस-नहस कर दिया। पर उन्होंने प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के विकास के लिए जी-जान से मेहनत करके, अपनी पूर्व स्थिति को बहुत-कुछ पुनः प्राप्त कर लिया है। ये उदाहरण इस बात के सप्राण प्रमाण हैं कि किसी भी देश की उन्नति में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का कितना अपार महत्व है। वस्तुतः देश की उन्नति के लिए यह शिक्षा एक अनिवार्य आवश्यकता है।

प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के अतिरिक्त राष्ट्र की सम्पन्नता के दो आधार और हैं—भौतिक सम्पत्ति एवं जनशक्ति। किन्तु, इन दोनों आधारों को सहायक आधारों में स्थान दिया गया है। भौतिक सम्पत्ति के अन्तर्गत कच्चा माल और खनिज पदार्थ सम्मिलित हैं। यदि देश में भौतिक सम्पत्ति एवं जनशक्ति का बाहुल्य नहीं है, तो देश सम्पन्न हो सकता है। पर यह आवश्यक नहीं है। आवश्यक यह है कि भौतिक सम्पत्ति का प्रयोग करने वाली जनशक्ति—प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के ज्ञान से युक्त हो। यदि जनशक्ति इस ज्ञान से रिक्त है, तो भौतिक सम्पत्ति की प्रचुरता के बावजूद भी देश अविकसित एवं अप्रगतिशील दशा में रहता है।

भारत के विषय में यह बात अक्षरशः सत्य है। यहाँ भौतिक सम्पत्ति का बाहुल्य है। यहाँ की धरती—कपास, पटसन, कच्चा रेशम आदि के उत्पादन के लिए जगत्-प्रसिद्ध है। इस धरती के गर्भ में तेल, ताँबा, लोहा, कोयला आदि खनिज पदार्थों के अपार भण्डार छिपे पड़े हैं। परन्तु, प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के अभाव के कारण भारतवासी कच्चे माल और खनिज पदार्थों का न तो उपयुक्त उपयोग कर सके हैं और न कर रहे हैं।

भारत के विपरीत, जापान एक ऐसा देश है, जिसे भौतिक सम्पत्ति की दृष्टि से सम्पन्न नहीं माना जाता है। उसे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए कच्चे माल और खनिज पदार्थों का अन्य देशों से आयात करना पड़ता है। परन्तु, वहाँ प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की इतनी उत्तम व्यवस्था है कि वह जन-जन को उपलब्ध है। यही कारण है कि वहाँ के निवासियों ने भौतिक सम्पत्ति के अभाव में भी अपने देश को संसार के प्रमुख औद्योगिक देशों के बराबर लाकर खड़ा कर दिया है।

इस प्रकार, हम कह सकते हैं कि देश की समृद्धि के लिए सबसे अधिक आवश्यकता इस बात की है कि उसकी जनशक्ति—वैज्ञानिक, प्राविधिक एवं व्यावसायिक ज्ञान से युक्त हो। तभी वह देश की अपनी भौतिक सम्पत्ति का सर्वोत्तम उपयोग करके,

अपने देश को उन्नतिशील देशों की श्रेणी में सुनिश्चित स्थान प्रदान कर सकती है। इस ज्ञान के महत्त्व एवं आवश्यकता से सुपरिचित होने के कारण हमारी सरकार ने 1958 के अपने "विज्ञान-नीति-प्रस्ताव" में भारत के औद्योगिक विकास के लिए अग्रांकित नीति निर्धारित की है :—"राष्ट्र की सम्पदा एवं सम्पन्नता—औद्योगीकरण के द्वारा उसके मानव एवं भौतिक साधनों के समुचित उपयोग पर आधारित है। औद्योगीकरण के लिए मानव-साधनों का उपयोग—विज्ञान की शिक्षा और प्राविधिक कुशलताओं में प्रशिक्षण की माँग करता है। भारत की जनशक्ति के विशाल साधन—प्रशिक्षित एवं शिक्षित होकर ही आधुनिक संसार में उपयोगी हो सकते हैं।"

"The wealth and prosperity of a nation depends on the effective utilization of its human and material resources through industrialization. The use of human material for industrialization *demands its education in science and training in technical skills.* India's enormous resources of manpower can only become an asset in the modern world, when trained and educated "—*Science Policy Resolution*, Government of India, 4th March, 1958.

प्राविधिक व व्यावसायिक शिक्षा का इतिहास
History of Technical & Vocational Education

आधुनिक भारत में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का जिस रूप में विकास हो रहा है, वह पाश्चात्य देशों से ग्रहण किए जाने के कारण पूर्णतया नवीन है। किन्तु, प्राचीन भारत में इस शिक्षा का जो पुरातन रूप था, वह इसके आज के रूप से सर्वथा भिन्न था और कहीं अधिक विस्मित एवं विमुग्ध करने वाला है। उस रूप की कल्पना मात्र से ही हमारी चेतना गुनगुना कर कहने लगती है कि प्राचीन काल में हमारा देश इस शिक्षा के क्षेत्र में अपने चरम उत्कर्ष पर था। उस स्थिति से इस शिक्षा का अपकर्ष क्यों हुआ? किन प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझती हुई यह अतीत के गर्त में अदृश्य हो गई? किन कारणोंवश यह नवीन रूप धारण करके पुनः प्रकट हुई है और प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रही है? इन प्रश्नों से उत्पन्न होने वाली आपकी उत्कण्ठा का शमन करने के लिए हम भारत में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के इतिहास पर विहंगम दृष्टिपात कर रहे हैं।

वैदिक काल में प्राविधिक व व्यावसायिक शिक्षा

वैदिक काल में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का सुनियोजित विस्तार करके ही आर्य लोगों ने सभ्य जीवन की सभी वस्तुओं को अपने लिए उपलब्ध किया। इस शिक्षा से प्राप्त होने वाले ज्ञान के प्रमाण हमें इस काल के ग्रन्थों में यत्र-तत्र बिखरे हुए मिलते हैं। उदाहरणार्थ—ऋग्वेद में बाँधों और नहरों का उल्लेख है। वैदिक साहित्य में सूती और ऊनी वस्त्रों, रंगसाजी, कसीदाकारी,

शस्त्रों, रथों, नौकाओं, पाषाण की प्रतिमाओं, सौ पतवार वाले जलयानों, सहस्रों द्वारों वाले और सहस्रों स्तम्भों पर आधारित प्रासादों आदि के विवरण मिलते हैं।[1] "गौतम धर्म सूत्र" में 27 प्रकार के शिल्पियों का वर्णन है, जिनमें उल्लेखनीय हैं :—स्वर्णकार, धातुकार, रत्नकार, कुम्भकार, चित्रकार और वास्तुकार।[1]

इन शिल्पियों को प्रशिक्षण देने के लिए आजकल की सी शिक्षा-संस्थाएँ नहीं थीं। इसका कारण यह था कि वैदिक युग में श्रम का विभाजन था और सब जातियों के व्यक्तियों के लिए विभिन्न प्रकार के कार्य एवं व्यवसाय निर्धारित थे। इन व्यक्तियों में से कुछ अपने शिल्पों और व्यवसायों का उच्च कोटि का ज्ञान रखते थे। यही व्यक्ति अपने पुत्रों एवं शिष्यों को शिल्पों एवं व्यवसायों की शिक्षा प्रदान करते थे। इस प्रकार, प्राविधिक एवं व्यावसायिक ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होता रहता था। इस शिक्षा का यह अटूट क्रम राजपूत काल तक विधिवत् चलता रहा। इस अवधि में भारत ने इस शिक्षा के क्षेत्र में चमत्कारिक उन्नति की।

बौद्ध-काल में प्राविधिक व व्यावसायिक शिक्षा

वैदिक काल में धार्मिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा की प्रधानता थी। इसके विपरीत, बौद्ध-काल में धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ सामान्य शिक्षा और प्राविधिक एवं वैज्ञानिक शिक्षा की भी माँग थी। अतः इस युग में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के स्वरूप तथा व्यवस्था में परिवर्तन होना स्वाभाविक था।

"मिलिन्द पान्हा" में बौद्ध-काल में प्रचलित 19 शिल्पों का वर्णन मिलता है, जिनमें से 10 की शिक्षा तक्षशिला विश्वविद्यालय में दी जाती थी। भिक्षुओं के लिए मठों में विभिन्न प्रकार के हस्तशिल्पों की शिक्षा की व्यवस्था थी। बौद्ध-धर्म के अनुयायियों और जनसाधारण के लिए अनेक लाभप्रद व्यवसायों की शिक्षा का उत्तम प्रबन्ध था। बौद्ध-काल में चित्रकला, मूर्तिकला एवं भवन-निर्माण-कला की असाधारण प्रगति हुई।

मुस्लिम काल में प्राविधिक व व्यावसायिक शिक्षा

भारत के लगभग सभी मुस्लिम शासक शौकीन थे और उनके पास धन का अभाव नहीं था। अतः देश के समस्त व्यवसायों को उनका संरक्षण प्राप्त हुआ। यही कारण था कि मुस्लिम काल में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की चतुर्मुखी उन्नति हुई। इस काल का सबसे महत्वपूर्ण व्यवसाय—वस्त्रों का बनाना था। इन वस्त्रों में साटन, मखमल और जरीदार, सूती, ऊनी एवं रेशमी वस्त्र सम्मिलित थे।

---

1. बी० एन० लूनिया : भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति का विकास, pp. 51-52.
2. Dr Veda Mitra : *Education in Ancient India*, p. 25.

ये वस्त्र इतने बढ़िया किस्म के थे कि वे ब्रह्मा, मलाया, मध्य पूर्व आदि देशों को निर्यात किए जाते थे।[1]

भारत के मुस्लिम शासकों को अपने राज्य की सुरक्षा एवं सुदृढ़ता के लिए समय-समय पर युद्ध करने पड़ते थे। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि बारूद, भालों, बर्छियों, बन्दूकों आदि युद्ध-सामग्री से सम्बन्धित व्यवसायों की असाधारण प्रगति हुई। साथ ही, भारतीय पोतकला-निर्माण ने इतना अधिक यश प्राप्त किया कि उस समय के पुर्तगालियों ने अपने सर्वश्रेष्ठ पोतों का निर्माण भारत में करवाया।[2]

अधिकांश मुस्लिम शासक और विशेष रूप से मुगल सम्राट—ऐश्वर्य एवं विलासिता का जीवन व्यतीत करते थे। अतः इस जीवन से सम्बन्धित स्थापत्य-कला, चित्रकला, ललित कलाओं और प्रायः सभी हस्तकलाओं की आश्चर्यजनक उन्नति हुई। इनमें से अनेक कलाओं की शिक्षा कारखानों में दी जाती थी। मुहम्मद तुगलक और फ़िरोज़ तुगलक के शासनकाल में इन कारखानों का उल्लेख मिलता है। अकबर के समय में सब कारखाने एक सरकारी विभाग की अधीनता में थे। इन कारखानों में लड़कों को विशिष्ट कलाओं एवं दस्तकारियों में शिक्षा प्राप्त करने के लिए किसी शिल्पकार का शिष्य बना दिया जाता था।[3]

ब्रिटिश काल में प्राविधिक व व्यावसायिक शिक्षा

भारत में ब्रिटिश काल का आरम्भ सन् 1757 में प्लासी के युद्ध में अंग्रेजों की विजय के समय से माना जाता है। उस समय से लेकर सन् 1947 तक उन्होंने भारत पर अपार शासन किया। व्यापार के उद्देश्य से इस देश में आने के कारण उनका ध्यान अपने आर्थिक हित पर केन्द्रित होना स्वाभाविक था। अतः उन्होंने एक क्रमबद्ध योजना के अनुसार भारतीय उद्योगों का विनाश किया और ब्रिटिश उद्योगों द्वारा उत्पादित वस्तुओं का अपने मूल्य पर विक्रय करके, भारत के समस्त आर्थिक स्रोतों को शुष्क कर दिया। उन्होंने *यह किस प्रकार किया, इस विषय में कुछ पंक्तियाँ* लिख देना समीचीन प्रतीत होता है।

भारतीय उद्योग-धन्धों का विनाश—जिस समय भारत के शासन का सूत्र *अंग्रेजों के हाथ में आया, उस समय यहाँ प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा प्रदान* करने की पिता-पुत्र एवं गुरु-शिष्य की परम्परागत पद्धति प्रचलित थी। इस पद्धति ने भारत के उद्योग-धन्धों को चरम उत्कर्ष पर पहुँचा दिया था और भारतीय वस्तुएँ—यूरोप की मण्डियों में भी पहुँचती थीं। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के धन-लोलुप व्यापारियों ने उस पद्धति का गला घोंट कर, उसके अस्तित्व का एक चिह्न भी देश में नहीं रहने

---

1. बी० एन० लूनिया : पूर्वोक्त पुस्तक, p. 379
2. बी० एन० लूनिया : पूर्वोक्त पुस्तक, p. 380.
3. S. M. Jaffar : *Education in Muslim India*, pp. 12-13.

दिया। उनकी इस नीति के परिणामस्वरूप ब्रिटिश काल के पूर्व और अन्त में इस देश के उद्योगों एवं इनमें संलग्न व्यक्तियों की क्या दशा थी, इसकी कल्पना अधोलिखित दो उद्धरणों से सहज ही की जा सकती है।

1. 17वीं शताब्दी में लगभग सम्पूर्ण भारत का भ्रमण करने वाले फ्रांसीसी यात्री, बर्नियर (Bernier) ने इस देश की अमीरी का वर्णन करते हुए लिखा है :—"भारत एक ऐसा अथाह गड्ढा है जिसमें विश्व का अधिकांश सोना-चाँदी चारों ओर से अनेक मार्गों से आ-आकर जमा होता है, और जिससे बाहर निकलने का उसे एक भी मार्ग नहीं मिलता है।"
2. 20वीं शताब्दी के आरम्भ में भारत की ग़रीबी का चित्र प्रस्तुत करते हुए, विलियम डिग्बी (William Digby) ने लिखा है :—"बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में ब्रिटिश भारत में लगभग दस करोड़ व्यक्ति ऐसे हैं, जिनको किसी समय भी भरपेट भोजन नहीं मिलता है। ऐसे अधःपतन का दूसरा उदाहरण इस समय किसी भी सभ्य एवं उन्नतिशील देश में कहीं भी देखने को नहीं मिल सकता है।"

सुन्दर लाल के अनुसार इस असाधारण अधःपतन का मूलभूत कारण था[1] :—"अंग्रेज़ों का अपनी निर्धारित नीति के अनुसार भारत की ग्राम-पंचायतों, शिक्षा-प्रणाली, हज़ारों-लाखों पाठशालाओं और हज़ारों साल से उन्नत उद्योग-धंधों का नाश कर डालना।"

इन उद्योग-धंधों में सर्वप्रथम नष्ट किया गया—भारत के सबसे अधिक उन्नतिशील वस्त्र-उद्योग को। इसके पश्चात् बारी आई—काँच, कागज़, धातु, जलपोत आदि उद्योगों की। इस प्रकार, अंग्रेज़ों ने भारत को भारतीय वस्तुओं से रिक्त करके अंग्रेज़ी वस्तुओं से भर दिया।"

भारतीय उद्योगों के विनाश का एक भयावह परिणाम यह हुआ कि लाखों शिल्पी बेरोज़गार हो गए और उनमें से हज़ारों क्षुधा की असह्य वेदना से तड़प-तड़प कर निष्प्राण हो गए। उस समय के एक वीभत्स दृश्य का चित्र हमें भारत के तत्कालीन गवर्नर-जनरल, लार्ड विलियम बेंटिक के इन शब्दों में देखने को मिलता है :—"वाणिज्य के इतिहास में ऐसे दुर्भाग्य का अन्य उदाहरण मिलना कठिन है। जुलाहों की हड्डियों ने भारत के मैदानों को सफ़ेद कर दिया है।"

"The misery hardly finds a parallel in the history of Commerce. The bones of the cotton-weavers are bleaching the plains of

1. सुन्दर लाल : भारत में अंग्रेज़ी राज्य, प्रथम खंड, p. 23.
2. Jawaharlal Nehru : *The Discovery of India*, p. 351.

India."—Lord William Bentincks' *Report to the Court of Directors*, 1834

इस प्रकार, चिरकाल से चली आने वाली प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की परम्परागत पद्धति सदैव के लिए काल के गाल में समा गई। एक लम्बे अरसे के बाद उसका स्थान ग्रहण किया—प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की पाश्चात्य पद्धति ने। परिणामतः इस शिक्षा के इतिहास में एक नया अध्याय आरम्भ हुआ। हम सुविधा की दृष्टि से उसके आरम्भ एवं विकास का वर्णन निम्नलिखित कालों में कर रहे हैं; यथा :—

(1) 1800 से 1857 तक—इस अवधि में ईस्ट इंडिया कम्पनी ने प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। उसने कुछ इनी-गिनी संस्थाएँ अवश्य स्थापित कीं, जिनका मुख्य उद्देश्य—शासन की आवश्यकताओं की पूर्ति करना था। इन संस्थाओं में उल्लेखनीय हैं :—(1) रुड़की का टॉमसन इंजीनियरिंग कॉलिज (1847); (2) पूना का इंजीनियरिंग स्कूल (1854); और (3) कलकत्ता का इंजीनियरिंग कॉलिज (1856)।

(2) 1857 से 1902 तक—भारत में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का क्रमबद्ध इतिहास आरम्भ करने का श्रेय 1854 के "वुड के आदेश-पत्र" को प्राप्त है। इस "आदेश-पत्र" में बलपूर्वक कहा गया —'जनसाधारण को व्यावहारिक एवं लाभप्रद शिक्षा देने की व्यवस्था की जाय।" किन्तु, कम्पनी के भारत-स्थित कर्मचारियों ने इस ओर उचित ध्यान नहीं दिया। उन्होंने पूर्व के समान केवल शासकीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए शिक्षा-संस्थाओं की सृष्टि की। सन् 1866 में पूना के इंजीनियरिंग स्कूल को विस्तृत करके कॉलिज का रूप दिया गया। सन् 1887 में महारानी विक्टोरिया की हीरक जयन्ती के अवसर पर बम्बई में "विक्टोरिया जुबली टेकनिकल इंस्टीट्यूट" की स्थापना की गई।

इस प्रकार, ईस्ट इंडिया कम्पनी ने प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की तो कुछ व्यवस्था कर दी, पर उसने औद्योगिक शिक्षा की पूर्ण उपेक्षा की। इस शिक्षा के प्रति उसका ध्यान सर्वप्रथम 1877-78 के "दुर्भिक्ष-आयोग" (Famine Commission) द्वारा आकर्षित किया गया, पर उसने इस शिक्षा में किसी प्रकार की रुचि प्रकट नहीं की। *इस दिशा में मिशनरियों ने अवश्य कुछ कार्य किया। उन्होंने अनेक* स्थानों पर औद्योगिक स्कूलों (Industrial Schools) का निर्माण किया। इन स्कूलों का मुख्य उद्देश्य—भारतीय ईसाई बालकों को जीविकोपार्जन के लिए बढ़ई और *लुहार के कार्यों में प्रशिक्षित करना था।*

1882 में *हंटर कमीशन ने प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के महत्त्व* को समझकर सबसे पहले हाई स्कूल के पाठ्यक्रम में इस शिक्षा को स्थान दिया। कमीशन ने सुझाव दिया कि उस पाठ्यक्रम को दो वर्गों में विभाजित कर दिया जाय—

"अ" पाठ्यक्रम और "ब" पाठ्यक्रम। पहला पाठ्यक्रम साहित्यिक हो और उन छात्रों के लिए हो, जो विश्वविद्यालयों में प्रवेश करना चाहते हों। दूसरा पाठ्यक्रम असाहित्यिक एवं व्यावसायिक हो, और उन छात्रों के लिए हो, जो विश्वविद्यालयों में प्रवेश करने के बजाय किसी व्यावसायिक कार्य को अपनी जीविका का उपार्जन करने का साधन बनाना चाहते हों। इस सुझाव को सरकार की तत्काल स्वीकृति तो प्राप्त नहीं हुई, पर कुछ समय के पश्चात् हाई स्कूल के पाठ्यक्रम में औद्योगिक एवं व्यावसायिक विषयों को सम्मिलित कर दिया गया।

वस्तुतः सरकार आरम्भ से ही भारत में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के प्रसार की विरोधी थी। उसका विचार था कि इस शिक्षा का प्रसार होने से भारत की औद्योगिक उन्नति आरम्भ हो जायगी, जिससे इंगलैंड के उद्योगों को भारी क्षति पहुँचेगी। इसके विपरीत, भारत के राष्ट्रीय नेताओं का अडिग विश्वास था कि देश की दरिद्रता को दूर करने के लिए इस शिक्षा का अधिक-से-अधिक प्रसार किया जाना आवश्यक था। इस विश्वास से प्रेरित होकर, उन्होंने 1887 में होने वाले कांग्रेस के तीसरे अधिवेशन में सरकार से इस शिक्षा की जोरदार शब्दों में माँग की और अपनी माँग को वार्षिक अधिवेशनों में दोहराते रहे। किन्तु, निज स्वार्थ में लिप्त भारत की अंग्रेजी सरकार अपने हितों को सुरक्षित रखने के लिए, इस माँग का तिरस्कार करती रही[1]।

सन् 1902 में सम्पूर्ण अंग्रेजी भारत में 80 प्राविधिक एवं औद्योगिक स्कूल थे, जिनकी छात्र-संख्या 4,804 थी।[2]

(3) 1902 से 1937 तक—इस अवधि में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की पर्याप्त प्रगति हुई। इसके अनेक कारण थे; यथा :—

1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने अपने प्रत्येक अधिवेशन में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की माँग की। अतः सरकार को इस शिक्षा की ओर ध्यान देने के लिए बाध्य होना पड़ा।
2. भारत के अनेक उदार महानुभावों ने इस शिक्षा के लिए दान दिए और इसका आयोजन करने के लिए अनेक भारतीय सार्वजनिक संस्थाओं का संगठन हुआ।
3. भारतीय विश्वविद्यालयों ने इस शिक्षा के विविध विषयों में डिग्री और डिप्लोमा के कार्यक्रम आरम्भ किए।
4. सन् 1917 के सैडलर कमीशन ने इस शिक्षा के विकास के लिए दो मुख्य सुझाव दिए :—(1) इण्टरमीडिएट स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा

1. Madan Mohan Malviya's Views, Quoted in the *Report of the Indian Industrial Commission*, 1916-18, p. 250.
2. S. N. Mukerji : *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 279.

की व्यवस्था की जाय; और (2) विश्वविद्यालयों में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के कार्यक्रम आरम्भ किए जायें।

5. सन् 1929 की हर्टॉग समिति ने अनुरोध किया कि हाई स्कूल के पाठ्यक्रम में औद्योगिक एवं व्यापारिक विषयों को स्थान दिया जाय।
6. सन् 1936 की वुड एवं एबट समिति ने प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के विषय में तीन मुख्य सुझाव दिए :—(1) देश के उद्योगों की आवश्यकता के अनुसार इस शिक्षा का विस्तार किया जाय; (2) कुटीर उद्योग-धन्धों में संलग्न व्यक्तियों को प्राविधिक एवं व्यावसायिक प्रशिक्षण दिया जाय; और (3) जूनियर एवं सीनियर वोकेशनल स्कूलों की स्थापना की जाय।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस 1887 से अपने प्रत्येक अधिवेशन में सरकार से प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की माँग कर रही थी। सरकार इस माँग की उपेक्षा न कर सकी। अतः उसने भारतीय छात्रों को इंगलैंड में उच्च प्राविधिक शिक्षा का अध्ययन करने के लिए प्रति वर्ष दस छात्रवृत्तियाँ देने की योजना आरम्भ की। इस योजना के अनुसार 1905 से 1917 तक 113 भारतीय युवकों को छात्रवृत्तियाँ प्रदान की गईं।[1] किन्तु, इस योजना से कोई लाभ नहीं हुआ, क्योंकि भारत वापिस आने पर 113 युवकों में से एक को भी किसी उद्योग में प्रवेश नहीं मिला।[2] इसके अतिरिक्त, ये छात्रवृत्तियाँ अधिक व्ययपूर्ण होने के साथ-साथ इतनी कम थी कि प्राविधिक शिक्षा के अभिलाषी सब छात्रों को प्राप्त नहीं हो पाती थीं।

अतः कांग्रेस ने पुनः आन्दोलन प्रारम्भ किया और यह माँग की कि सरकार द्वारा संचालित की जाने वाली योजना में संशोधन की आवश्यकता है। सरकार ने इस माँग को स्वीकार करके, सन् 1917 में "मॉरिसन समिति" (Morrison Committee) की नियुक्ति की और उसे इस समस्या पर अपने विचार व्यक्त करने का आदेश दिया। समिति के सदस्यों ने परस्पर विचार-विमर्श करने के पश्चात् अग्रांकित सुझाव दिए :—(1) यूरोप में उच्च प्राविधिक शिक्षा के लिए छात्रवृत्तियों की संख्या 30 से अधिक नहीं होनी चाहिए, (2) इन छात्रवृत्तियों की अवधि कम-से कम दो वर्ष और अधिक-से-अधिक पाँच वर्ष की होनी चाहिए, और (3) छात्रवृत्तियाँ विशेष रूप से अग्रांकित विषयों के लिए दी जानी चाहिए :—वस्त्र-उद्योग, खनिज-विद्या, बर्तन-निर्माण, चमड़ा पकाना, दियासलाई, काँच, कागज, चीनी एवं रंजित व्यवसाय।[3]

---

1. S N. Mukerji : *History of Education in India*, p 287
2. श्रीधरनाथ मुखोपाध्याय : भारतीय शिक्षा का इतिहास, पृष्ठ 250.
3. Bhagwan Dayal : *The Development of Modren Indian Ed*——
p. 432.

सरकार ने "सॉर्जिन्स समिति" के सुझावों के अनुसार छात्रवृत्तियों की योजना में संशोधन कर दिया। परन्तु, इससे कोई लाभ नहीं हुआ, क्योंकि अंग्रेज उद्योग-पतियों ने अपने उद्योगों के गुप्त भेदों को भारतीयों को नहीं बताया। इसके अतिरिक्त, भारतीय छात्रों को ब्रिटेन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। इसी बीच में सन् 1921 में प्रान्तों में द्वैध शासन की स्थापना हो गई। इससे प्रोत्साहित होकर भारतीय जनता ने प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के लिए आन्दोलन आरम्भ किया और कहा कि इस शिक्षा की व्यवस्था भारत में की जानी चाहिए।

सरकार ने इस प्रश्न पर विचार करने के लिए लार्ड लिटन (Lord Lytton) की अध्यक्षता में एक विशिष्ट समिति की नियुक्ति की, जो "इंगलैंड में भारतीय छात्रों की समिति" (Committee on Indian Students in England, 1921-22) के नाम से प्रसिद्ध है। इस समिति ने भारतीय छात्रों की कठिनाइयों को दूर करने के लिए अनेक सुझाव दिए। इसका सबसे महत्वपूर्ण सुझाव यह था कि भारतीय छात्रों को भारत में ही उच्च प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा देने के लिए संस्थाओं की स्थापना की जाय और इस शिक्षा के विभिन्न अंगों का शीघ्र-से-शीघ्र अधिकतम विकास किया जाय।[1]

सारांश में, सरकार और जनता—दोनों के सम्मिलित प्रयासों के फलस्वरूप इस काल में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की विकास-प्रक्रिया में तीव्रता आ गई। इसका प्रमाण यह है कि भारतीय छात्रों को इस शिक्षा की सुविधाएँ प्रदान करने के लिए अग्रलिखित शिक्षा-संस्थाओं का निर्माण किया गया :—(1) इण्डियन स्कूल ऑफ माइन्स, धनबाद; (2) गवर्नमेंट स्कूल ऑफ टेक्नोलॉजी, मद्रास; (3) इण्डियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स, बंगलौर; (4) हारकोर्ट टेक्नोलॉजिकल इंस्टीट्यूट, कानपुर; (5) स्कूल ऑफ केमिकल टेक्नोलॉजी, बम्बई; और (6) कालेज ऑफ इंजीनियरिंग एवं टेक्नोलॉजी, जादवपुर। सन् 1937 में सम्पूर्ण भारत में 535 प्रौद्योगिक, प्राविधिक एवं औद्योगिक शिक्षा-संस्थाएँ थीं।

(4) 1937 से 1947 तक—इस अवधि में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा को तीन घटनाओं से प्रेरणा प्राप्त हुई, जिनके फलस्वरूप इसके प्रसार में तीव्रता आ गई। पहली, शिक्षित व्यक्तियों में बेरोजगारी की समस्या की बाढ़ के कारण भारतवासियों का ध्यान इस शिक्षा की ओर विशेष रूप से आकृष्ट हुआ। दूसरी, भारतीयों में इस शिक्षा के प्रति अब तक जो संकीर्ण विचार थे, उनमें परिवर्तन हो गया। अतः भारतीयों में इस शिक्षा को प्राप्त करने की तीव्र आकांक्षा का प्रादुर्भाव हुआ। तीसरी, द्वितीय विश्व-युद्ध ने इस देश की प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा में क्रान्ति उत्पन्न कर दी। युद्ध के लिए सामग्री और प्राविधिक शिक्षा प्राप्त

1. *Report of the Commission on Indian Students in England, Para 84.*

व्यक्तियों की माँग मे सहसा असाधारण वृद्धि हो गई। इस माँग की पूर्ति करने के लिए प्राविधिक एव व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओं का नव-निर्माण किया गया और सरकार द्वारा प्रत्येक फैक्ट्री को प्राविधिक प्रशिक्षण-केन्द्र के रूप मे प्रयोग किया गया।[1]

द्वितीय विश्व-युद्ध के दौरान मे ब्रिटिश सरकार को इस बात का प्रत्यक्ष अनुभव हो गया कि भारत मे प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की समुचित व्यवस्था की जानी अनिवार्य थी। अतः उसने एक देश-व्यापी प्राविधिक शिक्षा-योजना का सूत्रपात किया, जिसके प्रमुख अंग इस प्रकार थे[2] :—(1) सन् 1940 मे औद्योगिक अनुसंधान-कार्य में सहायता देने के लिए "वैज्ञानिक एव औद्योगिक अनुसंधान-परिषद्" (Board of Scientific & Industrial Research) की स्थापना; (2) सन् 1941 में "दिल्ली पॉलिटेक्नीक" (Delhi Polytechnic) की स्थापना; (3) सन् 1945 में उच्चतर प्राविधिक शिक्षा के आयोजन के विषय मे परामर्श देने के लिए नलिनीरंजन सरकार की अध्यक्षता मे "सरकार समिति" (Sarkar Committee) की नियुक्ति; (4) सन् 1945 मे "अखिल भारतीय प्राविधिक शिक्षा-परिषद्" (All-India Council for Technical Education) की स्थापना, और (5) सन् 1947 मे सम्पूर्ण देश की आवश्यकताओं को ध्यान मे रखते हुए विभिन्न स्तरों के वैज्ञानिक एवं प्राविधिक कार्यकर्ताओं की सूची तैयार करने के लिए "वैज्ञानिक मानवीय शक्ति-समिति" (Scientific Manpower Committee) की स्थापना।

1947 में सम्पूर्ण देश में इंजीनियरिंग एव प्राविधिक शिक्षा देने वाले 28 डिग्री संस्थान और 41 पॉलिटेक्नीक संस्थान थे।[3]

स्वतन्त्र भारत में प्राविधिक व व्यावसायिक शिक्षा

स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय से ही हमारे राष्ट्रीय नेता —भारत का औद्योगिक विकास करने के लिए कटिबद्ध हैं। यह तभी सम्भव है, जब देश के प्रत्येक उद्योग को अपनी आवश्यकता के अनुसार प्रशिक्षित व्यक्ति उपलब्ध हों। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्राविधिक एव व्यावसायिक शिक्षा का सुनियोजन अनिवार्य है। इस विषय मे स्वतन्त्र भारत मे नियुक्त किए जाने वाले शिक्षा आयोगों ने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए हैं। "योजना-आयोग" ने अपने विचारों से इन सुझावों को समृद्ध बनाया है।

भारत के प्रशासकों ने इन सुझावों एव विचारों और अपने स्वय के अनुभवों के आधार पर पचवर्षीय योजनाओं में प्राविधिक एव व्यावसायिक शिक्षा से सम्बन्धित

1. श्रीधरनाथ मुखोपाध्याय : पूर्वोक्त पुस्तक, पृ० 252
2. S N. Mukerji . *India Today & Tomorrow* pp 280-281.
3. श्रीधरनाथ मुखोपाध्याय : पूर्वोक्त पुस्तक, पृ० 255

अनेक प्रकार के कार्यक्रम संचालित किए हैं। इनके परिणामस्वरूप इस शिक्षा की आश्चर्यजनक प्रगति हुई है। हम इस प्रगति के आँकड़े प्रस्तुत करने से पूर्व शिक्षा-आयोगों के सुझावों और पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत इस शिक्षा से सम्बन्धित उपलब्धियों का विवरण लेखबद्ध कर रहे हैं।

शिक्षा-आयोगों के प्राविधिक व व्यावसायिक शिक्षा-विषयक सुझाव

1. विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग (1948-49) ने प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार करके अनेक सुझाव दिए, जिनमें से निम्नलिखित उल्लेखनीय हैं :—

1. प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा में कृषि की शिक्षा को सर्वप्रथम स्थान दिया जाना चाहिए।
2. वाणिज्य की शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों को 3 या 4 प्रकार की विभिन्न व्यावसायिक फ़र्मों में व्यावहारिक कार्य करने का अवसर दिया जाना चाहिए।
3. वर्तमान इंजीनियरिंग एवं टेकनॉलॉजी की संस्थाओं को देश की राष्ट्रीय सम्पत्ति समझा जाना चाहिए और उनकी उपयोगिता में वृद्धि की जानी चाहिए।
4. देश की विभिन्न आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए इंजीनियरिंग की विभिन्न शाखाओं में विभिन्न प्रकार की संस्थाओं का शिलान्यास किया जाना चाहिए।
5. उच्च व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने के लिए टेकनॉलॉजिकल संस्थाओं की शीघ्र-से-शीघ्र सृष्टि की जानी चाहिए।

2. माध्यमिक शिक्षा-आयोग (1952-53) ने माध्यमिक शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य—छात्रों में व्यावसायिक कुशलता की उन्नति करना बताया। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए एवं प्राविधिक शिक्षा के विषय में "आयोग" ने जो सुझाव दिए, उनमें निम्नांकित महत्त्वपूर्ण हैं :—

1. माध्यमिक शिक्षा में औद्योगिक एवं व्यावसायिक विषयों को स्थान दिया जाना चाहिए।
2. ग्रामीण स्कूलों में कृषि-शिक्षा की सुविधाओं में विस्तार किया जाना चाहिए। अतः इन स्कूलों में उद्यान-विज्ञान, पशु-पालन एवं कुटीर उद्योग-धंधों की शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।
3. औद्योगिक क्षेत्रों में टेकनिकल स्कूलों की बहुत बड़ी संख्या में स्थापना की जानी चाहिए।
4. बड़े नगरों में टेकनॉलॉजिकल इंस्टीट्यूटों का निर्माण किया जाना चाहिए।

5. उद्योगों पर "शिक्षा-कर" लगाया जाना चाहिए और इस प्रकार प्राप्त होने वाले धन को प्राविधिक शिक्षा का विस्तार करने में व्यय किया जाना चाहिए।

3. शिक्षा-आयोग (1964-66) ने देश के औद्योगीकरण को सफल बनाने के लिए प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की उत्कृष्ट व्यवस्था को आवश्यक बताया और इस सम्बन्ध में अधोलिखित मुख्य सुझाव प्रस्तुत किए :—

1. विद्यालय-स्तर पर व्यावसायिक शिक्षा के पाठ्यक्रम अपने-आप में सम्पूर्ण होने चाहिए, ताकि छात्रों को उच्च शिक्षा की संस्थाओं में शिक्षा ग्रहण करने में किसी प्रकार की कठिनाई का अनुभव न हो।
2. औद्योगिक प्रशिक्षण-संस्थाओं में सर्वेक्षण के आधार पर प्रशिक्षण की सुविधाओं का अधिक-से-अधिक विस्तार किया जाना चाहिए।
3. विद्यालय-शिक्षा समाप्त करने वाले छात्रों को व्यावसायिक एवं प्राविधिक-प्रशिक्षण प्रदान करने के लिए पत्राचार-पाठ्यक्रमों, अल्पकालीन पाठ्यक्रमों एवं संक्षिप्त-सघन पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जानी चाहिए।
4. टेकनिकल स्कूलों एवं औद्योगिक प्रशिक्षण-संस्थाओं में व्यावहारिक कार्य पर विशेष बल दिया जाना चाहिए एवं उनको उत्पादनोन्मुखी बनाया जाना चाहिए।
5. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर शिक्षा को अधिक-से-अधिक व्यावसायिक बनाया जाना चाहिए। अतः इस स्तर पर वाणिज्यिक, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक कार्यों के विभिन्न पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जानी चाहिए।

पंचवर्षीय योजनाओं में प्राविधिक व व्यावसायिक शिक्षा

"पाँचवीं पंचवर्षीय योजना" के अनुसार —"देश ने अपने लिए दो नीति-निर्देशक लक्ष्य निर्धारित किए हैं— निर्धनता का उन्मूलन एवं आर्थिक आत्म-निर्भरता की प्राप्ति। *हमारी योजनाएँ इन्हीं लक्ष्यों से अपनी मूल प्रेरणा ग्रहण करती हैं।*"

"Removal of poverty and attainment of economic self-reliance are the two strategic goals that the country has set for itself. Our Plans derive their basic inspiration from these objectives."—*Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. I, p. 1.

इसी प्रेरणा के परिणामस्वरूप पंचवर्षीय योजनाओं में अन्य कार्यों के साथ-साथ *प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की सुविधाओं की पर्याप्तता को प्राथमिकता दी* गई है। हम अपने इस कथन की सत्यता को सिद्ध करने के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का संक्षिप्त वर्णन उपस्थित कर रहे हैं; यथा :—

पहली योजना, 1951-56—किसी भी देश के आर्थिक विकास में प्रशिक्षित जनशक्ति का निश्चित रूप से महत्त्वपूर्ण भाग होता है। अतः स्वतन्त्र भारत की सम्भावित आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की सुविधाओं में सराहनीय विस्तार किया गया और इस कार्य पर 23 करोड़ रुपए व्यय किए गए।[1]

सन् 1947 में जब भारत स्वतन्त्र हुआ था, तब देश में डिग्री और डिप्लोमा प्रदान करने वाली संस्थाओं की संख्या क्रमशः 38 और 58 थी। इन संस्थाओं की वार्षिक प्रवेश-क्षमता क्रमशः 2,940 और 3,670 थी।[2] सन् 1956 में डिग्री और डिप्लोमा प्रदान करने वाली संस्थाओं की संख्या बढ़कर क्रमशः 71 और 109 हो गई। इन संस्थाओं की वार्षिक प्रवेश-क्षमता क्रमशः 6,612 और 10,118 थी।[3]

पहली योजना में बंगलौर के "इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ साइन्स" का विस्तार किया गया। इंजीनियरिंग की उच्च शिक्षा प्रदान करने के लिए 14 कॉलेजों की स्थापना का निश्चय किया गया, कुछ विशिष्ट विषयों में व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था की गई और इस शिक्षा को ग्रहण करने वाले छात्रों के लिए "परामर्शदाता केन्द्रों" का संगठन किया गया।

उपर्युक्त के अतिरिक्त, कलाकारों एवं शिल्पकारों को प्रशिक्षण देने की सुविधाओं में विस्तार किया गया और उनके लिए ग्रामों में भी प्रशिक्षण-केन्द्र स्थापित किए गए। प्रिंटिंग (छपाई) टेकनॉलॉजी, ऊन और रेशम की टेकनॉलॉजी, भवन-निर्माण-विज्ञान और नगर-आयोजन में प्रशिक्षण देने के कार्य आरम्भ किए गए।[4]

पहली पंचवर्षीय योजना की अन्य महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ अग्रलिखित थीं :—जूनियर बहु-उद्योगीय स्कूलों की स्थापना; क्राफ़्ट स्कूलों का जूनियर टेकनिकल हाई स्कूलों में रूपान्तर; सामान्य माध्यमिक स्कूलों का टेकनिकल हाई स्कूलों के रूप में विकास; वाणिज्यिक, प्राविधिक और प्रौद्योगिक स्कूलों का कॉलेजों में परिवर्तन; प्राविधिक, प्रौद्योगिक, औद्योगिक और व्यावसायिक स्कूलों की स्थापना; तथा विदेशों में उच्च शिक्षा के लिए 633 छात्रवृत्तियों की व्यवस्था।

दूसरी योजना, 1956-61—पहली योजना में होने वाली प्रगति के बावजूद देश में नवीन उद्योगों की स्थापना के कारण प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों की बहुत बड़ी संख्या में माँग थी। इस माँग की अधिक-से-अधिक पूर्ति करने के लिए दूसरी पंचवर्षीय योजना में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा पर 48 करोड़ रुपए व्यय करने का निश्चय किया गया।[5]

---

1. द्वितीय पंचवर्षीय योजना, पृ० 279.
2. S. N. Mukerji : *Administration of Education in India*, p. 234.
3. *India*, 1966, p. 72.
4. पहली पंचवर्षीय योजना, पृ० 308.
5. द्वितीय पंचवर्षीय योजना, पृ० 279.

दूसरी योजना के दौरान में डिग्री और डिप्लोमा प्रदान करने वाली संस्थाओं की संख्या को लगभग दूना कर दिया गया। सन् 1961 में इनकी संख्या क्रमश. 111 और 209 थी। इन संस्थाओं की वार्षिक प्रवेश-क्षमता क्रमश 15,497 और 26,525 थी।[1]

दूसरी योजना में प्राविधिक एवं प्रौद्योगिक शिक्षा का विकास करने पर बल दिया गया; दिल्ली के "पॉलिटेक्नीक स्कूल" में प्रौद्योगिकी एवं इंजीनियरिंग की शिक्षा-सुविधाओं में पर्याप्त विस्तार किया गया; खड़गपुर के "इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नोलॉजी" को स्नातक एवं स्नातकोत्तर अध्ययन के लिए पूर्ण रूप में विकसित किया गया; बंगलौर के "इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स" का धातु-विज्ञान, शक्ति-इंजीनियरिंग, विद्युत-इंजीनियरिंग, वायु एवं जल इंजीनियरिंग, एवं आन्तरिक ज्वलन्त इंजीनियरिंग की शिक्षा के लिए विकास किया गया, और धनबाद के "इंडियन स्कूल ऑफ माइन्स एण्ड ऐप्लाइड जियोलॉजी" का विस्तार करके, माइनिंग इंजीनियरिंग एवं उससे सम्बन्धित क्षेत्रों में प्रशिक्षण की अतिरिक्त सुविधाएँ प्रदान की गई।[2]

उपर्युक्त के अतिरिक्त, फोरमैनों को प्रशिक्षित करने की योजना को उद्योगों के सहयोग से पूर्ण किया गया। प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के सभी स्तरों में अधिक प्रवीणता उत्पन्न करने के लिए प्रौद्योगिक शिक्षकों के लिए रिफ्रेशर एवं अन्य पाठ्यक्रमों को सुसंगठित किया गया।

दूसरी पंचवर्षीय योजना की अन्य महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ अग्रलिखित थीं :— कानपुर एवं बम्बई में हायर टेक्नोलॉजिकल इन्स्टीट्यूट की स्थापना, छपाई-सम्बन्धी प्रौद्योगिक प्रवीणता के लिए एक केन्द्रीय संस्था का निर्माण, पहली योजना में स्थापित किए जाने वाले प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के केन्द्रों में स्नातकोत्तर और प्रौद्योगिक एवं इन्जीनियरिंग के अनुसन्धान की व्यवस्था, और विदेशों में उच्च अध्ययन के लिए 633 के स्थान पर 800 छात्रवृत्तियों की व्यवस्था।

तीसरी योजना, 1961-66 – दूसरी योजना में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की उल्लेखनीय प्रगति हुई। उद्योगों की भावी माँग को ध्यान में रखते हुए यह अनुमान लगाया गया कि तीसरी योजना के दौरान में 45,000 स्नातकों एवं 80,000 डिप्लोमाधारियों की आवश्यकता पड़ेगी। इस आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए तीसरी पंचवर्षीय योजना में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के कार्यक्रमों का विकास करने के लिए 142 करोड़ रुपए की धनराशि निर्धारित की गई।[3]

---

1. *India*, 1966, p 72
2. संक्षिप्त द्वितीय पंचवर्षीय योजना, पृष्ठ 159
3. *Third Five-Year Plan*, p 107

तीसरी योजना में डिग्री प्रदान करने की 3 और डिप्लोमा प्रदान करने की 10 संस्थाओं का निर्माण किया गया। सन् 1966 में इनकी संख्या क्रमशः 137 और 284 थी।[1]

तीसरी योजना की अवधि में खानों, धातु-शोधन एवं अन्य टेक्नॉलॉजियों के विशेषज्ञ तैयार करने के अतिरिक्त, मेकेनिकल, इलेक्ट्रिकल एवं केमिकल इंजीनियर तैयार करने पर अधिक बल दिया गया। डिग्री एवं डिप्लोमा के स्तर तक अतिरिक्त व्यक्तियों को प्रशिक्षित करने के लिए सरकारी अनुसंधानशालाओं; प्रतिरक्षा, रेलवे, सिंचाई और बिजली, परिवहन और संचार आदि मंत्रालयों और सार्वजनिक निर्माण-विभाग के तकनीकी संगठनों; और सरकारी तथा निजी औद्योगिक संस्थाओं का भी उपयोग किया गया।[2]

तीसरी योजना के अन्य कार्यक्रम अग्रलिखित थे :—धनबाद के "इंडियन स्कूल ऑफ़ माइंस एण्ड ऐप्लाइड जियोलॉजी; दिल्ली के "पॉलिटेकनीक स्कूल"; खड़गपुर के "इंडियन इंस्टीटयूट ऑफ़ टेकनॉलॉजी; और बम्बई, मद्रास एवं कानपुर में दूसरी योजना की अवधि में खोले जाने वाले इंस्टीट्यूटों का विकास; मुद्रण के चारों स्कूलों एवं" इंस्टीटयूशन ऑफ़ टाउन एण्ड कंट्री प्लानिंग" का विस्तार; व्यावसायिक प्रशिक्षण के लिए निर्वाह-वृत्तियाँ एवं अनुसंधान-प्रशिक्षण के लिए छात्रवृत्तियाँ देने की योजनाएँ; शिक्षकों को प्रशिक्षित करने एवं प्रशिक्षणार्थियों के छात्रावास खोलने की योजना; और 21 संस्थाओं में इंजीनियरिंग एवं टेकनॉलॉजी के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रमों का आरम्भ।

चौथी योजना, 1969-1974—पिछली तीन योजनाओं की अवधि में जिस अनुपात में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का विस्तार हुआ, उस अनुपात में इस शिक्षा के लिए भौतिक सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हुईं। "चौथी पंचवर्षीय योजना" (प्रारम्भिक रूपरेखा) (pp 226-227) के अनुसार:—"1964 के एक सर्वेक्षण से स्पष्ट हो गया था कि इंजीनियरी कॉलेजों और पॉलिटेकनीक संस्थानों में 35 प्रतिशत अध्यापक कम थे, 53 प्रतिशत उपकरण कम थे, 51 प्रतिशत शिक्षा देने के लिए भवन कम थे और 55 प्रतिशत छात्रावासों का अभाव था। अब यह प्रस्ताव है कि प्रथम प्राथमिकता के रूप में इन अभावों को दूर किया जाय।" इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए चौथी पंचवर्षीय योजना में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा पर 253 करोड़ रुपए व्यय किए गए।[3]

चौथी योजना में स्नातकोत्तर शिक्षा एवं अनुसंधान के लिए सुविधाओं में वृद्धि की गई। जो अध्यापक, शिक्षण-कार्य में संलग्न थे, उनको अपनी शैक्षिक योग्यताओं

1. *India*, 1971-72, p. 75.
2. तीसरी पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृ० 103-104.
3. *Fourth Five-Year Plan : A Draft Outline*, p. 325.

में वृद्धि करने में सहायता दी गई। उद्योगों एवं शिक्षा-संस्थाओं के कर्मचारियों की अदला-बदली को प्रोत्साहित करने के उपाय किए गए। उद्योगों में कार्य करने वाले इंजीनियरों को एक निश्चित अवधि तक शिक्षण-कार्य करने के लिए और अध्यापकों को उस अवधि में उद्योगों में कार्य करके औद्योगिक तरीकों की जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया गया।[1]

उच्च स्तरीय प्रबन्ध कर्मचारी तैयार करने के लिए तीसरी योजना में कलकत्ता एवं अहमदाबाद में दो "प्रबन्ध संस्थान" स्थापित किए गए थे। इन संस्थानों का दो वर्ष का पूर्णकालीन पाठ्यक्रम था और ये "मास्टर आफ बिजनेस एडमिनिस्ट्रेशन" की उपाधि प्रदान करते थे। तीसरी योजना के अन्त तक इन संस्थानों में तैयार होकर निकलने वाले छात्रों की संख्या 300 थी। प्रबन्ध कर्मचारियों की बढ़ती हुई माँग को पूरा करने के लिए इन संस्थानों की प्रवेश-क्षमता को बढ़ाकर 600 कर दिया गया। इसके अलावा, दिल्ली, मद्रास एवं बम्बई जैसे विशिष्ट विश्वविद्यालयों में अल्पकालीन प्रबन्ध शिक्षा की व्यवस्था की गई।

चौथी योजना के अन्य कार्यक्रम अग्रलिखित थे :—शिक्षा-संस्थाओं की वार्षिक प्रवेश-क्षमता में वृद्धि; डिप्लोमा-स्तर की शिक्षा-संस्थाओं का विस्तार; नवीन एवं वर्तमान संस्थाओं और देश के विकासशील औद्योगिक केन्द्रों में निकट सम्बन्ध की स्थापना; छात्रों को बड़े कारखानों में व्यावहारिक कार्य की सुविधाएँ, और विभिन्न व्यवसायों में संलग्न व्यक्तियों के लिए अल्पकालीन एवं पत्राचार पाठ्यक्रमों का आयोजन।

पाँचवीं योजना 1974-79 —चौथी योजना में डिग्री स्तर पर 25,000 और डिप्लोमा-स्तर पर 50,000 छात्रों को प्रवेश देने का लक्ष्य था। परन्तु, इंजीनियरों की बढ़ती हुई बेरोजगारी की समस्या ने इस लक्ष्य की प्राप्ति को असम्भव बना दिया। पिछले कुछ वर्षों में इस समस्या का आंशिक समाधान हो जाने के कारण डिग्री और डिप्लोमा—दोनों स्तरों पर छात्रों की संख्या में कुछ वृद्धि हुई है। अतः पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का विस्तार न करके उसे सुदृढ़ किया जायगा। "पाँचवीं पंचवर्षीय योजना" के अनुसार :—"पाँचवीं योजना में प्राविधिक शिक्षा-व्यवस्था के दृढ़ीकरण एवं गुणात्मक पद्धति पर विशेष बल दिया जायगा।"

"The main stress in the Fifth Plan will continue to be on

---

1. चौथी पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृ॰ 227.

the consolidation and improvement of the quality of the technical education system."—*Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. II, p. 203.

उल्लिखित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए "पाँचवीं पंचवर्षीय योजना" में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के लिए 164 करोड़ रुपए की धनराशि निर्धारित की गई है।[1]

पाँचवीं योजना में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के दृढ़ीकरण एवं गुणात्मक उन्नति के लिए निम्नांकित कार्यक्रमों पर बल देने का निश्चय किया गया है :—

1. प्रत्येक संस्था की भौतिक सुविधाओं में विस्तार करके, शिक्षा की गुणात्मक उन्नति करना।
2. प्रत्येक संस्था के वर्कशॉप और प्रयोगशाला को आधुनिक उपकरणों से सुसज्जित करना।
3. पाठ्यक्रमों का आधुनिक आवश्यकताओं के अनुसार पुनर्गठन करना और व्यावहारिक कार्य को प्रमुखता देना।
4. जनशक्ति के संदर्भ में सब प्रकार की प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का आयोजन करना।
5. विशिष्ट उद्योगों की शिक्षा देने के लिए नवीन संस्थाओं का निर्माण करना।
6. विश्वविद्यालयों में "प्रबन्ध-शिक्षा" (Management Education) के विभागों की सृष्टि करना।
7. शिक्षकों को अल्पकालीन प्रशिक्षण देने की व्यवस्था करना।
8. प्राविधिक सेवाएँ आरम्भ करके जनता, संस्था और उद्योगों में समन्वय स्थापित करना।
9. प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का आर्थिक विकास से सम्बन्ध स्थापित करना।
10. व्यवसायों में संलग्न व्यक्तियों के लिए अनवरत शिक्षा की व्यवस्था करना।
11. रीजनल इन्जीनियरिंग कॉलिजों में स्थानीय उद्योगों के सहयोग से उद्योग पाठ्यक्रमों एवं अभ्यास-प्रयोगशालाओं का आयोजन करना।

1. *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. II, p. 207.

प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की प्रगति

तालिका 1—व्यावसायिक व टेकनिकल स्कूल शिक्षा[1]

वर्ष	स्कूल-संख्या	छात्र-संख्या	शिक्षक-संख्या	व्यय (करोड़ रुपए)
1961–62	3,751	4,08,443	28,857	12 80
1962–63	3,846	4,24,264	29,847	13·04
1963–64	4,137	4,57,350	33,494	16 24
1964–65	3,147	2,69,096	17,380	7·29
1965–66	2,775	2,47,021	17,785	7·66
1966–67	2,754	2,45,148	18,344	8·27

तालिका 2—उच्च टेकनिकल शिक्षा (इन्जीनियरिंग व टेक्नोलॉजी)[2]

वर्ष	संस्था		प्रवेश पा सकने वाले छात्र		उत्तीर्ण छात्र	
	डिग्री	डिप्लोमा	डिग्री	डिप्लोमा	डिग्री	डिप्लोमा
1951	53	89	4,788	6,716	2,693	2,626
1956	71	109	6,612	10,118	4,337	4 103
1961	111	209	15,497	26,525	7,026	10,349
1966	137	284	25,006	48,579	13,051	22,260
1969	136	277	21,340	43,412	15,686	21,751
1970	136	277	21,300	43,400	15,700	21,750
1974[3]	138	307	27,000	50,000	—	—

प्राविधिक व व्यावसायिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति
Present Position of Technical & Vocational Education

हम प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति का वर्णन अग्रांकित शीर्षकों के अन्तर्गत कर रहे हैं —

1. *India*, 1971–72, p 67
2. *India*, 1966, p. 72 & *India*, 1971-72, p. 75.
3. *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. II, p. 203.

प्राविधिक व व्यावसायिक स्कूल-शिक्षा—इस समय भारत के अधिकांश राज्यों में माध्यमिक एवं उच्चतर माध्यमिक स्तरों पर प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने के लिए संस्थाएं हैं। इन संस्थाओं में कृषि, वाणिज्य, इंजीनियरिंग, पशु-पालन एवं हस्तशिल्पों की शिक्षा दी जाती है। जो बालक 8वीं या 9वीं कक्षा के बाद पढ़ना नहीं चाहते हैं, उनके लिए "औद्योगिक प्रशिक्षण-संस्थाएं" (Industrial Training Institutes) प्राविधिक एवं व्यावसायिक पाठ्यक्रम चलाती हैं। जूनियर टेकनिकल स्कूल—छात्रों को इंजीनियरिंग से सम्बन्धित व्यवसायों के लिए तैयार करते हैं। देश में कुछ पूर्व-व्यावसायिक प्रशिक्षण-केन्द्र भी कार्य कर रहे हैं।[1]

उच्च प्राविधिक व व्यावसायिक शिक्षा—खड़गपुर, बम्बई, मद्रास, नई दिल्ली और कानपुर स्थित राष्ट्रीय महत्त्व की उच्च प्रौद्योगिकी संस्थाएं पिछले 10 वर्षों से कार्य कर रही हैं। इन संस्थाओं में पूर्व-स्नातक कक्षाओं में प्रवेश, परीक्षा के आधार पर होता है, जो देश के कई केन्द्रों में होती है। इन संस्थाओं में प्रति वर्ष 1,250 विद्यार्थी पूर्व-स्नातक कक्षाओं में और 1,200-1,500 विद्यार्थी स्नातकोत्तर और अनुसंधान स्तर पर प्रवेश लेते हैं। इनके अतिरिक्त, 14 प्रादेशिक इंजीनियरिंग कालेज और कई अन्य इंजीनियरिंग और औद्योगिक संस्थाएं और कई पॉलिटेकनीकों की भी स्थापना की गई है। खान और धातुकर्म-विज्ञान आदि विशिष्ट प्रशिक्षण के लिए डिग्री और डिप्लोमा स्तर के कई केन्द्रों की स्थापना की गई है। पुरानी संस्थाओं का विस्तार और विकास किया गया है। इंजीनियरिंग शिक्षा को व्यावहारिक प्रशिक्षण से सम्बद्ध करने के लिए उद्योगों के सहयोग से 60 इंजीनियरिंग कॉलेजों और पॉलिटेकनीकों में दोमुखे पाठ्यक्रम आरम्भ किए गए हैं। इंजीनियरिंग के डिग्री स्तर पर ऐसे पाठ्यक्रमों की अवधि 5½ वर्ष और डिप्लोमा स्तर की अवधि 3½ वर्ष की है।[2]

प्राविधिक व व्यावसायिक शिक्षा के स्तर—इस समय भारत में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के 4 स्तर या कोर्स हैं; यथा :—

1. स्नातकोत्तर कोर्स व अनुसंधान—स्नातकोत्तर कोर्सों की अवधि एक या दो वर्ष की है। अनुसंधान-कार्य की अवधि दो या तीन वर्ष की है और स्नातकोत्तर परीक्षा में उत्तीर्ण होने के बाद ही किया जा सकता है। स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम और अनुसंधान-कार्य के कुछ मुख्य विषय हैं :—धातु विज्ञान, उत्पादन टेकनॉलॉजी, पेट्रोलियम टेकनॉलॉजी और इंजीनियरिंग की अनेक शाखाएं।

2. स्नातक-कोर्स—स्नातक-कोर्सों की अवधि 3 से 5 वर्ष की है। इस कोर्स के

---

1. *India*, 1975, p. 52.
2. *India*, 1974, p. 53.

कुछ मुख्य विषय हैं :—धातु एवं खनिज विज्ञान और मैकेनिकल, इलेक्ट्रिकल, केमिकल, टेक्सटाइल एवं एग्रीकल्चरल इंजीनियरिंग।

3. डिप्लोमा-कोर्स—डिप्लोमा कोर्सों की अवधि साधारणतः 3 वर्ष की है। यह शिक्षा सामान्यतया पॉलिटेक्नीकों और [illegible] स्कूलों में दी जाती है।

4. सर्टिफिकेट-कोर्स—सर्टिफिकेट-कोर्सों का उद्देश्य—कारीगरों को प्रशिक्षण देना है। कारीगर दो प्रकार के होते हैं :—(1) कुशल कारीगर, और (2) अर्द्ध-कुशल एवं सामान्य कारीगर। दूसरे प्रकार के कारीगरों के प्रशिक्षण के लिए हमारे देश में कोई विशेष व्यवस्था नहीं है। कुशल कारीगरों को प्रशिक्षण देने के लिए 3 प्रकार की संस्थाएँ हैं :—टेक्निकल स्कूल, इंडस्ट्रियल ट्रेनिंग इंस्टीट्यूट और आर्ट्स एवं क्राफ्ट्स स्कूल।

समस्याएं व उनके समाधान
Problems & Their Solutions

अंग्रेजों के दो सौ वर्ष के लम्बे शासन-काल में भारत के उद्योग, धन्धे [illegible] तम स्तर पर थे। उन्होंने अपने देश के उद्योगों को सुविधा देने के लिए, हमारे देश में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा के मार्ग में [illegible] करके, हमारे उद्योगों को [illegible] एवं [illegible]। [illegible] के [illegible] ने इन उद्योगों को पुनर्जीवित [illegible]। [illegible] ने इनको पुनर्जीवित करके, अपने देश का [illegible] विकास करने के लिए, प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा को [illegible]। [illegible] इस शिक्षा के विकास और विस्तार के लिए [illegible] हैं और [illegible] हैं। [illegible] —

1. [illegible] Handwork—[illegible]

"Labour is life. [illegible]"—Carlyle [illegible]

[illegible]

श्रम से घृणा करते हैं और हस्तकार्य करने वाले व्यक्तियों को अपने से निम्नतर समझते हैं। वे भले ही कौशलों एवं हस्तकलाओं में प्रवीण होने के कारण असाधारण शिल्पी हों, पर हम उनका सम्मान नहीं करते हैं।

प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा में हस्तकार्य का मुख्य स्थान है। अत. हम इस कार्य को करके, अपने और अपने परिवार के सम्मान का संहार नहीं करना चाहते हैं। हमारे इस दृष्टिकोण को 'कोठारी कमीशन" ने अग्रलिखित शब्दों में अंकित किया है :—"दुर्भाग्य से, अब भी व्यापक रूप में यह अनुभव किया जाता है कि व्यावसायिक शिक्षा, निम्न कोटि की शिक्षा है।"

"It is unfortunately still widely felt that vocational education is an inferior form of education."—*Kothari Commission Report*, p 369.

प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा में निहित हस्तकार्य के प्रति हमारे इस अनुचित दृष्टिकोण ने इस शिक्षा के विस्तार में अलंघनीय अवरोध उपस्थित कर दिया है।

समाधान—दृष्टिकोण में परिवर्तन : Change in Attitude—इस समस्या का समाधान करने के लिए हस्तकार्य के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्तन किया जाना आवश्यक है। यह तभी सम्भव है, जब सरकार और कर्मठ समाज-सेवक देशव्यापी आन्दोलन आरम्भ करें और अग्रांकित तीन नारों के सिंहनाद से नवयुवकों में जागृति उत्पन्न कर दें :—(1) शारीरिक श्रम अपमानजनक न होकर, वरिष्ठतम गुण है। (2) प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा, देश की उन्नति का मूलाधार है। (3) भारतीय नवयुवकों पर ही अपने देश की उन्नति और नवनिर्माण का भार है।

उक्त आन्दोलन, भारतीय नवयुवकों के दृष्टिकोण में परिवर्तन करने में सहायता अवश्य करेगा, पर केवल आन्दोलन ही पर्याप्त नहीं है। इससे कहीं अधिक आवश्यक यह है कि सरकार, प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा ग्रहण करने वाले छात्रों को सभी प्रकार के सम्भव आकर्षण एवं सुविधाएँ प्रदान करें; यथा :—अध्ययन-काल में उदार छात्रवृत्तियाँ; अध्ययन की समाप्ति के पश्चात् उत्तम वेतन पर तत्काल नौकरियाँ; और मानसिक एवं शारीरिक श्रम करने वालों को समान सम्मान एवं पुरस्कार।

हमने हस्तकार्य के प्रति अनुचित दृष्टिकोण में परिवर्तन करने के लिए, जो सुझाव दिए हैं, उनको सार रूप में "कोठारी कमीशन" के इन शब्दों में प्रस्तुत किया जा सकता है[1] :—"कुशल कारीगरों और शिल्पकारों की स्थिति और महत्त्व को ऊँचा उठाने के लिए सरकार और उद्योगों—दोनों के द्वारा सम्मिलित प्रयास किए जाने की आवश्यकता है। अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिए, उनको उत्तम पारिश्रमिक

1. *Kothari Commission Report*, pp. 369-370.

नीतियों का निर्माण, व्यावसायिक निर्देशन का आयोजन एवं जनमत के दृष्टिकोण में परिवर्तन करना चाहिए।"

2 समस्या—सामान्य व प्राविधिक शिक्षा में स्पष्ट अन्तर : **Sharp Distinction between General & Technical Education**—हमारी प्राविधिक शिक्षा-सम्थाओं में सामान्य और प्राविधिक शिक्षा में स्पष्ट अन्तर किया जाता है। वे संस्थाएं केवल प्राविधिक शिक्षा को महत्व देती हैं और मानवीय पहलू की पूर्ण उपेक्षा करती हैं। अत. इनमें प्रदान की जाने वाली शिक्षा—एकांगी है। वह कुशल शिल्पकार या इंजीनियर का निर्माण तो करती है, पर श्रेष्ठ मानव का नहीं। वह उसे उत्पादन के आर्थिक एवं सामाजिक उद्देश्यों का लवमात्र भी ज्ञान प्रदान नहीं करती है।

इस एकांगी शिक्षा का परिणाम यह होता है कि जब छात्र अपना अध्ययन समाप्त करके, वास्तविक जगत् में पदार्पण करते हैं, तब उनको व्यावहारिक एवं कार्य-सम्बन्धी ससार का कोई ज्ञान नहीं होता है। वे इस तथ्य से पूर्णतया अनभिज्ञ होते हैं कि वे जिस उत्पादन-कार्य में संलग्न हैं, उसके आर्थिक एवं सामाजिक उद्देश्य क्या हैं? साथ ही, वे अपने सहयोगियों, अधीनस्थ कर्मचारियों एवं उच्च पदाधिकारियों से सामंजस्य नहीं कर पाते हैं। दूसरा परिणाम होता है—प्राविधिक जगत् में उनकी विफलता, जिसका उत्पादन कार्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है।

समाधान—सामान्य व प्राविधिक शिक्षा का उचित मिश्रण : **Appropriate Combination of General & Vocational Education**—इस समस्या का समाधान करने का सर्वोत्तम उपाय यह है कि प्राविधिक एवं सामान्य शिक्षा में विभाजन की स्पष्ट रेखा न खींची जाय। वस्तुत ये एक-दूसरे से भिन्न न होकर, शिक्षा-प्रक्रिया के दो रूप हैं। "वुड-एबट रिपोर्ट" के अनुसार —"सामान्य एवं व्यावसायिक शिक्षा अनिवार्य रूप से एक-दूसरे से भिन्न न होकर निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया के पहले और बाद के रूप हैं।"

"General and Vocational education are not essentially different branches, but the earlier and later phases of a continuous process."—*Wood-Abbott Report*, p. 40.

अत प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा-सम्थाओं में सामान्य शिक्षा और व्यावसायिक या प्राविधिक शिक्षा में विभाजन की स्पष्ट रेखा खींचा जाना सर्वथा अनुचित है। इंजीनियर—व्यावसायिक कार्यकर्त्ता है। इसलिए, उसमें व्यावसायिक कुशलता होना आवश्यक है। परन्तु, इंजीनियर होने से पूर्व वह मानव है। व्यावसायिक कार्यकर्त्ता होने के कारण उसे एकान्त में नहीं, वरन् समाज में अन्य व्यक्तियों के साथ कार्य करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में वह अपनी व्यावसायिक कुशलता का सर्वोत्तम प्रयोग तभी कर सकता है, जब उसे मानव-सम्बन्धों का और उस समाज के

आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों का पूर्ण ज्ञान हो, जिसका कि वह सदस्य है। अतः उसे इस ज्ञान से सम्पन्न किया जाना आवश्यक है।

यह तभी सम्भव है, जब प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओं में सामान्य शिक्षा को निश्चित स्थान प्रदान किया जाय। इस शिक्षा के अन्तर्गत छात्रों को मानव-शास्त्रों एवं सामाजिक विज्ञानों का ज्ञान प्रदान किया जाना चाहिए। यह ज्ञान उनकी व्यावसायिक कुशलता में वृद्धि करेगा। परिणामतः वे उत्पादन-कार्य में अधिक योग दे सकेंगे। इसीलिए, "कोठारी कमीशन" का यह सुझाव है :—**"सामान्य एवं प्राविधिक शिक्षा में स्पष्ट अन्तर नहीं किया जाना चाहिए। सब प्रकार की प्राविधिक शिक्षा में सामान्य शिक्षा का समुचित अंश होना चाहिए।"**

"Too sharp a distinction must not be drawn between general and vocational education. All technical education should contain an appropriate element of general education."—*Kothari Commission Report*, p. 370.

3. समस्या—दोषपूर्ण पाठ्यक्रम : Defective Curriculum—हमारी प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में दो मुख्य दोष हैं—संकीर्णता एवं समरूपता। उनमें व्यापकता और विविधता, बहुचयनता और बहु-उद्देशीयता का पूर्ण अभाव है। उनका निर्माण—छात्रों की विभिन्न रुचियों एवं उद्योगों की विभिन्न आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर नहीं किया जाता है। अतः वे छात्रों और उद्योगों—दोनों के लिए अहितकर, अनुपयुक्त एवं अनुपयोगी हैं। इसकी पुष्टि में तीन प्रमाण प्रस्तुत किए जा सकते हैं।

पहला, पाठ्यक्रम में निर्धारित समस्त विषयों का अध्ययन सब छात्रों के लिए अनिवार्य होता है। अतः उनको अपनी रुचियों एवं क्षमताओं के अनुसार विषयों का चयन करने का अवसर प्राप्त नहीं होता है। इसका परिणाम होता है—परीक्षा में असफलता, जो अपव्यय एवं अवरोधन को जन्म देती है।

दूसरा, समान पाठ्यक्रम का अध्ययन करने के कारण समान शैक्षिक योग्यताओं वाले इतने व्यक्ति उपलब्ध हो जाते हैं कि उनको नौकरियाँ नहीं मिल पाती हैं। इसका परिणाम होता है—बेरोजगारी। चौथी पंचवर्षीय योजना की अवधि में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओं में इस बेरोज़गारी के कारण ही छात्रों की संख्या कम हो गई थी।

तीसरा, समय की गति के साथ देश की आर्थिक एवं सामाजिक परिस्थितियों में परिवर्तन हो रहा है। परिणामतः देश के उद्योगों की माँगें बदल रही हैं। समरूप पाठ्यक्रम इन बदलती हुई माँगों की पूर्ति करने में विफल होते हैं।

समाधान—विविध व संशोधित पाठ्यक्रम : Diversified & Revised Curriculum—पाठ्यक्रम के उपरिलिखित दोषों का उन्मूलन करने के लिए दो सुझाव

दिए जा सकते हैं। पहला सुझाव यह है कि पाठ्यक्रम में अधिक-से-अधिक विभिन्न विषयों को समाविष्ट करके, उसे विविधता का गुण प्रदान किया जाय। इस प्रकार के पाठ्यक्रम से छात्रों को अपनी रुचियों एवं क्षमताओं के अनुसार विषयों का चयन करने का अवसर सुलभ हो जायगा। अतः उनकी असफलता का प्रश्न उपस्थित नहीं होगा और न इससे उत्पन्न होने वाले अपव्यय एवं अवरोधन का। दूसरा सुझाव यह है कि देश के विभिन्न उद्योगों की माँगों का सतर्कता से अध्ययन करने के पश्चात् पाठ्यक्रम में समय-समय पर संशोधन किया जाय। इस प्रकार संशोधित किया जाने वाला पाठ्यक्रम—देश और छात्रों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। देश के उद्योगों को आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति सरलता से उपलब्ध हो जायेंगे और छात्रों को बेरोजगारी का मुँह नहीं देखना पड़ेगा।

हम अपने सुझावों के समर्थन में "कोठारी कमीशन" के अग्रलिखित दो वाक्य उद्धृत कर रहे हैं:—"कठोर समरूपता को सावधानी से दूर रखकर, पाठ्यक्रम में निरन्तर संशोधन किया जाना चाहिए। बदलती हुई माँगों की पूर्ति करने के लिए, डिग्री और डिप्लोमा—दोनों स्तरों के पाठ्यक्रमों को विविधता प्रदान की जानी चाहिए।"

"Syllabus should be continually revised, avoiding any rigid conformity. Courses at both degree and diploma levels should be diversified to meet the changing needs"—*Kothari Commission Report*, pp 659-660

4. समस्या—शिक्षा का अनुपयुक्त माध्यम **Unsuitable Medium of Instruction**—2 सितम्बर, 1956 के राज्य-शिक्षा-मन्त्रियों के सम्मेलन में भाषण देते हुए, श्री नेहरू ने कहा था —'यह बिल्कुल स्पष्ट है कि वैज्ञानिक एवं प्राविधिक शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही रहेगा।'

उस समय से आज तक प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी ही है और हमारे देश के राजनीतिज्ञों ने इसमें परिवर्तन करने का कभी कोई विचार प्रकट नहीं किया है। सम्भवतः उनकी धारणा है कि श्री नेहरू ने जो मत व्यक्त किया था, वह केवल उसी समय के लिए नहीं, अपितु सदैव के लिए था। किन्तु, उस समय से आज तक हमारी माध्यमिक शिक्षा में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो चुके हैं। अंग्रेजी अपने पदासन से अपदस्थ हो चुकी है। भारतीय भाषाएँ शिक्षा के माध्यम के पद पर आसीन हो चुकी हैं। डिप्लोमा और डिग्री स्तर की प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओं में प्रवेश करने वाले अधिकांश छात्र उच्चतर माध्यमिक या इन्टरमीडिएट परीक्षा पास होते हैं।

जब ये छात्र इन संस्थाओं में प्रवेश करते हैं, तब वे अपने को बिल्कुल नई दुनिया में पाते हैं। उन्होंने वर्षों से अपनी मातृभाषा में सुना और समझा, पढ़ा और

दिया है। पर अब उनको अंग्रेज़ी में सुनने और समझने, पढ़ने और लिखने के लिए विवश होना पड़ता है। इसके सभी दुष्परिणाम स्वयंविदित हैं। न तो वे कक्षा में शिक्षकों के व्याख्यानों को समझ पाते हैं और न पुस्तकों में लिखी हुई बातों को। अतः वे अपना अधिकांश समय, माध्यम की भाषा पर अधिकार प्राप्त करने में व्यय करते हैं। इस कार्य में कुशाग्र बुद्धि वाले छात्रों को तो सफलता हस्तगत हो जाती है, पर शेष को नहीं। ये शेष छात्र या तो अपना अध्ययन स्थगित कर देते हैं या परीक्षा में अनुत्तीर्ण होकर, प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा से सदैव के लिए मुँह मोड़ लेते हैं। अब तनिक कल्पना कीजिए इन छात्रों की दयनीय दशा की, इनके अथक परिश्रम के निरर्थकता की और इनके अभिभावकों की गाढ़ी कमाई के नष्ट धन की। इन सभी बातों के लिए शिक्षा का अनुपयुक्त माध्यम ही उत्तरदायी है।

समाधान—क्षेत्रीय भाषाओं का प्रयोग : Use of Regional Languages— शिक्षा के माध्यम की समस्या का समाधान तभी हो सकता है, जब अंग्रेज़ी को सदैव के लिए अलविदा देकर, उसका स्थान क्षेत्रीय भाषाओं को प्रदान किया जाय। इस कार्य में समय अवश्य लगेगा, क्योंकि इन भाषाओं में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा से सम्बन्धित पुस्तकें तैयार करनी पड़ेंगी। यह कार्य कठिन अवश्य है, पर असम्भव नहीं है। रूस, जर्मनी, जापान आदि देशों के उदाहरण हमारे समक्ष हैं। इन देशों में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी नहीं है, वरन् उनकी स्वयं अपनी भाषाएँ हैं। यदि ये देश अपनी भाषाओं के माध्यम से अत्यन्त उच्च कोटि की प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा प्रदान कर सकते हैं, तो भारत क्यों नहीं कर सकता है ?

यदि भारत की सरकार किन्हीं कारणोंवश इस नीति का तुरन्त अनुसरण करने में अपने को असमर्थ पाती है, तो उसे "कोठारी कमीशन" के इस सुझाव का स्वागत करना चाहिए[1] :—"पॉलिटेक्नीकों (डिप्लोमा स्तर की शिक्षा-संस्थाओं) में शिक्षा का माध्यम—क्षेत्रीय भाषाएँ होनी चाहिए; अंग्रेज़ी कुछ समय तक इंजीनियरिंग की शिक्षा (डिग्री-स्तर की शिक्षा) का माध्यम रह सकती है। किन्तु, क्षेत्रीय भाषाओं में प्राविधिक विषयों की पाठ्य-पुस्तकों को तैयार करने के लिए उत्साहपूर्ण कार्य की आवश्यकता है।"

5. समस्या—व्यावहारिक प्रशिक्षण की उपेक्षा : Neglect of Practical Training— हमारे देश की प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओं के विरुद्ध एक आम शिकायत यह है कि उनमें जितना बल सैद्धान्तिक शिक्षा पर दिया जाता है, उसका दशांश भी व्यावहारिक प्रशिक्षण पर नहीं दिया जाता है। इस शिकायत की मारफोत से बचने के लिए शिक्षा-संस्थाएँ दो तर्क प्रस्तुत करती हैं। पहला, उनके वर्कशॉपों और प्रयोगशालाओं में उपकरणों का अभाव है और जो उपकरण हैं भी, वे

1. *Kothari Commission Report*, p. 382.

इतने पुराने हो चुके हैं कि आधुनिक उद्योगों की दृष्टि से उनकी उपादेयता नष्ट हो चुकी है। दूसरा, उनके क्षेत्रों में स्थित फैक्ट्रियाँ और औद्योगिक केन्द्र उनके छात्रों को अपने यहाँ व्यावहारिक अनुभव एवं प्रशिक्षण प्राप्त करने की अनुमति नहीं देते हैं।

तर्क अकाट्य हैं, यथार्थता पर आधारित हैं। किन्तु, पर्याप्त व्यावहारिक प्रशिक्षण प्राप्त न होने के कारण छात्रों का अकथनीय अहित होता है। वे व्यावहारिक कार्य में प्रवीणता प्राप्त नहीं कर पाते हैं, जिसकी उनको अपने भावी व्यावसायिक जीवन में प्रति पल आवश्यकता पड़ती है। इसका परिणाम यह होता है कि उन्हें अपने व्यवसायों से सम्बद्ध व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए अपने सहयोगियों और विशेष रूप से अपने अल्प शिक्षित अधीनस्थ कर्मचारियों से कृपा की याचना करनी पड़ती है। इस विधि द्वारा ज्ञान-प्राप्ति में विलम्ब भी होता है और उनकी मान-हानि भी होती है।

समाधान—कुछ सुझाव : Some Suggestions—प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओं के छात्रों को व्यावहारिक ज्ञान में परिपूर्ण करने के लिए, "कोठारी कमीशन" ने तीन सुदूरगामी सुझाव दिए हैं, यथा[1] —

1 डिग्री कोर्स के छात्रों को तीसरे वर्ष में ही व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाय।

2 डिप्लोमा कोर्स के छात्रों को सैद्धान्तिक ज्ञान की अपेक्षा व्यावहारिक ज्ञान अधिक दिया जाय।

3 छात्रों को स्थानीय उद्योगों में वास्तविक अनुभव प्राप्त करने की समुचित सुविधाएँ प्रदान की जायें। इन सुविधाओं को प्रदान करने के लिए, उद्योगों को कुछ धन दिया जाय।

जहाँ तक वर्कशॉपों और प्रयोगशालाओं का प्रश्न है, उनको नवीनतम् उपकरणों से सुसज्जित किया जाय। इस सम्बन्ध में "पाँचवीं पंचवर्षीय योजना" द्वारा व्यक्त किया जाने वाला सरकार का यह निर्णय अभिनन्दनीय है[2] — "वर्कशॉपों और प्रयोगशालाओं को आधुनिक रूप प्रदान किया जायगा और बदलती हुई प्रौद्योगिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए पुरानी संस्थाओं की अनुपयोगी साजसज्जा को उपयोगी साजसज्जा से बदला जायगा।"

6 समस्या—अपव्यय Wastage—प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा में अपव्यय की समस्या पर्याप्त गम्भीर है। "कोठारी कमीशन" के अनुसार [illegible]

1 *Kothari Commission Report*, pp. 659-660
2. *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. II, p. 204
3 *Kothari Commission Report*, pp. 373 & 381

स्तर पर अपव्यय लगभग 40% और डिग्री स्तर पर 20% है, पर कुछ विशिष्ट विषयों में 44% तक है।

उपर्युक्त दोनों स्तरों पर अपव्यय के प्रधान कारण द्रष्टव्य हैं :—

1. प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा इतनी मँहगी है कि साधारण आर्थिक स्थिति के छात्रों को अपने अभिभावकों से पाठ्यपुस्तकों और शिक्षा-सम्बन्धी विविध प्रकार की सामग्री के लिए पर्याप्त धन नहीं मिल पाता है।
2. इस शिक्षा की संस्थाओं में योग्य अध्यापकों का अभाव है। अतः इनमें शिक्षण का स्तर निम्न है।
3. इस शिक्षा की संस्थाओं में अध्यापकों का वेतन इतना अल्प है कि वे धन-लाभ से प्रलोभित होकर औद्योगिक या व्यावसायिक केन्द्रों में चले जाते हैं। उनके रिक्त स्थानों की पूर्ति या तो होती नहीं है या बहुत समय के बाद होती है। ऐसी दशा में छात्रों की शिक्षा का क्रम टूट जाता है।
4. इस शिक्षा की संस्थाओं में अनेक ऐसी हैं, जिनकी वर्कशॉपों और प्रयोगशालाओं में पर्याप्त उपकरण नहीं हैं, और जो हैं भी वे प्राचीन ढंग के हैं। अतः छात्र उचित और आवश्यक प्रशिक्षण से वंचित रह जाते हैं।
5. इस शिक्षा की संस्थाओं में शिक्षा का माध्यम, अंग्रेजी है। अतः जिन छात्रों को इस भाषा पर अधिकार नहीं होता है, वे परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाते हैं।
6. इस शिक्षा की संस्थाओं के पाठ्यक्रम संकीर्ण हैं। अतः छात्रों को अपनी रुचियों के अनुकूल विषयों का चयन करने का अवसर प्राप्त नहीं होता है।
7. इस शिक्षा की संस्थाओं में अनेक ऐसी हैं, जिनसे या तो छात्रावास सम्बद्ध नहीं हैं और यदि हैं भी, तो उनमें सब छात्रों के निवास के लिए स्थान नहीं होता है। अतः जो छात्र अपने सम्बन्धियों के पास या किराए के कमरों में रहते हैं, वे अध्ययन के प्रति अपना पूर्ण ध्यान नहीं दे पाते हैं।

समाधान—कुछ सुझाव : Some Suggestions—प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा में विद्यमान अपव्यय को समाप्त करने के लिए, उन कारणों को दूर किया जाना आवश्यक है, जिनकी चर्चा ऊपर की गई है। उनको समाप्त करने के लिए "कोठारी कमीशन" द्वारा प्रस्तावित किए जाने वाले अग्रांकित उपाय भी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं :—"अच्छे छात्रों का चुनाव, प्रवेश की निम्नतम शैक्षिक योग्यताओं से छात्रों को मुक्त करने की प्रचलित प्रथा की समाप्ति और अंग्रेजी पर अपर्याप्त अधिकार रखने वाले छात्रों के लिए इस भाषा के शिक्षण की व्यवस्था।"

"Further steps can be taken through the better selection of students, arresting the present practice of relaxing minimum academic requirements for admission, and the provision of remedial courses in English for students with an inadequate command over this language."—*Kothari Commission Report*, p. 381.

7. समस्या—शिक्षकों का अभाव : Paucity of Teachers—प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा की एक दुसाध्य समस्या—शिक्षकों का अभाव और इस अभाव की अविराम अभिवृद्धि है। हम अपने इस कथन की पुष्टि नीचे की तालिका में दिए गए तथ्यों से कर रहे हैं :—

शिक्षकों का अभाव

वर्ष	डिग्री स्तर पर	डिप्लोमा स्तर पर
1959	24 5%	25·3%[1]
1961	33%	25%[2]
1963	38 9%	31 2%[3]

उक्त दोनों स्तरों पर शिक्षकों के अभाव के दो आधारभूत कारण हैं — ...योगों द्वारा प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों की माँग और प्रावि... ...क संस्थाओं में इन व्यक्तियों की कार्य करने की अनिच्छा। प्राविधिक शिक्षा-प्राप्त ...व व्यक्तियों की सभी उद्योगों में माँग रहती है। उनको इन उद्योगों में उत्तम ..., बोनस, आवास और कितनी ही अन्य सुविधाएँ मिलती हैं। इसके विपरीत, ...-संस्थाओं में उनको मिलता है—अल्प वेतन और जीवन एवं कार्य करने की ...थापूर्ण दशाएँ। वे जानते हैं कि उद्योगों और व्यवसायों में कार्य करके, वे ठाट-...ा ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत करेंगे और साथ ही समाज में सम्मान भी प्राप्त ... इसके विपरीत, प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओं में वे सदैव धन ...व में ग्रस्त रहेंगे और शिक्षक होने के कारण समाज द्वारा तिरस्कृत व्यक्तियों ... अपने जीवन के दिन काटेंगे।

...vernment of India *Programme of Educational Development.*
...री पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृष्ठ 105
...istry of Education . *Survey of Technical Education*, 1963

अतः उनके मस्तिष्क में शिक्षकों के रूप में कार्य करने के विचार का प्रादुर्भाव नहीं होता है। वे शिक्षण-व्यवसाय को तभी ग्रहण करते हैं, जब भाग्य उनको ठुकरा देता और सब उद्योगों के द्वार उनके लिए बन्द हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओं में शिक्षकों का अभाव होना स्वाभाविक है। "कोठारी कमीशन" ने ठीक ही लिखा है :—"इंजीनियरिंग कॉलेजों में शिक्षकों का वर्तमान विशाल अभाव परेशानी में डालने वाला है।"

"The existing shortage of teachers in engineering colleges is disturbingly large."—*Kothari Commission Report*, p. 380.

समाधान—शिक्षकों की पूर्ति : Supply of Teachers—प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा-संस्थाओं में शिक्षकों के अभाव की पूर्ति करने की सबसे आवश्यक शर्त यह है कि उनके व्यवसाय को आकर्षक बनाया जाय। "कोठारी कमीशन" के अनुसार :—"आधारभूत कार्य—शिक्षण-व्यवसाय को आकर्षक बनाना है।"

"The key step is to make the profession attractive."—*Kothari Commission Report*, p. 379.

शिक्षण-व्यवसाय को आकर्षक बनाने के लिए "कोठारी कमीशन" ने चार व्यावहारिक सुझाव दिए हैं[1] :—(1) शिक्षकों के वेतनमान में पर्याप्त वृद्धि; (2) उनकी कार्य करने की दशाओं में सुधार; (3) उनके लिए अनुसंधान की सुविधाएँ; और (4) उनको स्थानीय उद्योगों में परामर्शदाताओं के रूप में कार्य करने की अनुमति।

भारत-सरकार ने शिक्षकों के अभाव की समस्या का समाधान करने की यथेष्ट चेष्टा की है और पंचवर्षीय योजनाओं में विभिन्न प्रकार के उपायों का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ—दूसरी और तीसरी योजनाओं में इंजीनियरिंग कॉलिजों में शिष्यवृत्तियाँ देकर शिक्षक तैयार किए गए और स्नातकों को विदेश में अध्ययन करने के लिए इस शर्त पर छात्रवृत्तियाँ दी गईं कि वे वहाँ से लौटकर शिक्षण-कार्य करेंगे।[2] चौथी योजना में स्नातकोत्तर शिक्षा एवं अनुसंधानों की सुविधाओं में विस्तार किया गया और शिक्षण-कार्य में संलग्न अध्यापकों को अपनी शैक्षिक योग्यताओं में वृद्धि करने में सहायता दी गई।[3] पाँचवीं योजना में शिक्षकों के लिए निवास-स्थानों और उनसे सम्बन्धित अन्य सुविधाओं की व्यवस्था किए जाने का आयोजन है।[4]

8. समस्या—अध्ययन के उपरान्त शिक्षा का अभाव : Absence of Education after Study—शिक्षा आजीवन चलने वाली प्रक्रिया है। परन्तु, जो छात्र

---

1. *Kothari Commission Report*, p. 379.
2. तीसरी पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृष्ठ 105.
3. चौथी पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), पृष्ठ 227.
4. *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. II, p. 203.

प्राविधिक या व्यावसायिक संस्थाओं में अपना अध्ययन करने के उपरान्त किसी उद्योग या व्यवसाय में प्रवेश करते हैं, उनके लिए शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। इसका परिणाम यह होता है कि वे अपने अध्ययन-काल में जिस ज्ञान का अर्जन करते हैं, वह समय की गति के साथ-साथ सीमित होता जाता है। अन्त में, एक स्थिति ऐसी आती है, जब उनकी स्मृति में ज्ञान का केवल कुछ ही अंश रह जाता है। इसका उनकी दक्षता पर विपरीत प्रभाव पड़ता है और उसकी अवनति आरम्भ हो जाती है।

विज्ञान की इस शताब्दी में नित्य नये अनुसंधान एवं आविष्कार हो रहे हैं। प्राविधिक कार्यकर्त्ता को इनका जितना अधिक ज्ञान होता है, उतनी ही अधिक कुशलता से वह अपने कार्य को करता है। यदि ऐसा नहीं है, तो उसकी कुशलता के स्तर में गिरावट अनिवार्य है। हमारे देश के लगभग सभी प्राविधिक या व्यावसायिक कार्यकर्ताओं के विषय में यह बात सत्य है। परन्तु, इसके लिए उन पर दोषारोपण किया जाना सर्वथा अनुचित है, क्योंकि उनके लिए अध्ययन के उपरान्त शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है।

समाधान—अनवरत शिक्षा की व्यवस्था . Provision of Continuation Education—उपरिअंकित समस्या का समाधान तभी हो सकता है, जब प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा-प्राप्त सब व्यक्तियों के लिए अनवरत शिक्षा की व्यवस्था की जाय। इस शिक्षा के अनेक रूप होने चाहिए, ताकि सभी व्यक्ति अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार उससे लाभान्वित हो सकें। इस तथ्य को ध्यान में रखकर, "कोठारी कमीशन" ने तीन ठोस सुझाव दिए हैं, यथा[1] —

1. उद्योगों एवं व्यवसायों में संलग्न प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा-प्राप्त कर्मचारियों के लिए सब प्रकार की शिक्षा-संस्थाओं में सायंकाल के समय अल्पकालीन शिक्षा (Part Time Education) की व्यवस्था की जाय और उनको यह शिक्षा ग्रहण करने के लिए अवकाश दिया जाय।
2. उक्त कर्मचारियों को प्राविधिक एवं व्यावसायिक शिक्षा प्रदान करने के लिए पत्राचार-पाठ्यक्रमों (Correspondence Courses) का आयोजन किया जाय।
3. उक्त कर्मचारियों को व्यावहारिक प्रशिक्षण (Practical Training) देने के लिए प्राविधिक संस्थाओं के वर्कशॉपों और प्रयोगशालाओं का छुट्टियों के दिनों में प्रयोग किया जाय।

भारत-सरकार—अल्पकालीन शिक्षा का कार्यक्रम आरम्भ कर चुकी है। इसके अतिरिक्त, अनवरत शिक्षा के लिए "पाँचवीं पंचवर्षीय योजना" में अग्रगामी

1. *Kothari Commission Report*, p 384

कार्यक्रमों का सूत्रपात किया जायगा[1] :—(1) अल्पकालीन एवं अनौपचारिक शिक्षा (Informal Education) के कार्यक्रमों का विस्तार; (2) विशिष्ट प्रशिक्षण कार्यक्रमों (Special Training Programmes) का संचालन; और (3) अल्प अवधि के एवं अभिनवन पाठ्यक्रमों (Short-Term & Refresher Courses) का आयोजन। इन सभी कार्यक्रमों का प्रयोजन औद्योगिक एवं व्यावसायिक केन्द्रों के प्राविधिक कर्मचारियों की कुशलता में वृद्धि करना है। इस तथ्य की ओर संकेत करते हुए "पांचवीं पंचवर्षीय योजना" में कहा गया है :—"उद्योगों को अपने इस उत्तरदायित्व को स्वीकार करने की आवश्यकता है कि उनको अपने कर्मचारियों को श्रेष्ठतर प्राविधिक कुशलता प्राप्त करने में सहायता देनी चाहिए।"

"The industry would need to recognise their responsibility to help its employees acquire higher technical competence."—*Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. II, p. 203.

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Write a critical note on the progress of Technical and Vocational Education in India during the Five-Year Plans.
   भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत प्राविधिक तथा व्यावसायिक शिक्षा की प्रगति पर आलोचनात्मक टिप्पणी लिखिए।

2. Discuss the present position of Technical and Vocational Education in India and summarize briefly the recommendations of the Kothari Commission, 1966 for vocationalising education in the country.
   भारतवर्ष में तकनीकी तथा व्यावसायिक शिक्षा की वर्तमान स्थिति की विवेचना कीजिए, तथा देश में शिक्षा के व्यावसायीकरण विषयक कोठारी कमीशन, 1966 द्वारा की गयी सिफ़ारिशों का संक्षिप्त सारांश लिखिए।

3. "The development of Technical and Vocational Education has been one of the major achievements in the Post-independent period of India." Comment.
   What have been the recommendations of the Mudaliar Commission and of the Kothari Commission thereafter for vocationalizing education in the country?
   "भारत में स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् की अवधि में प्रौद्योगिक तथा

---

1. *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. II, p. 203.

व्यावसायिक शिक्षा का विकास बड़ी उपलब्धियों में से एक रहा है।"
इस कथन की विवेचना कीजिये।
देश में शिक्षा के व्यावसायीकरण के लिए मुदालियर आयोग तथा उसके उपरान्त कोठारी आयोग की क्या सिफ़ारिशें रही हैं ?

4. What are the main handicaps responsible for the slow pace of progress in the sphere of technical education in India ? Suggest ways for its rapid expansion in the right direction.
भारत में तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में मन्द प्रगति के लिए उत्तरदायी प्रमुख रुकावटें क्या हैं ? उचित दिशा में इसके शीघ्र विस्तार के लिए सुझाव दीजिए।

5. The large-scale industrialization which India is undergoing has necessitated reconstruction of its technical and engineering education Discuss briefly the efforts of the States and the Central Government since 1947 to meet this situation.
जिस बड़े पैमाने पर भारत का औद्योगीकरण हो रहा है, उसके कारण उसकी तकनीकी और इन्जीनियरी-शिक्षा का पुनर्निर्माण आवश्यक हो गया है। इस परिस्थिति का सामना करने के लिए राज्य तथा केन्द्रीय सरकारों द्वारा सन् 1947 से अब तक किए गए प्रयत्नों की संक्षिप्त विवेचना कीजिए।

29

स्त्री-शिक्षा

WOMEN'S EDUCATION

"The question of the education of children cannot be solved unless efforts are made simultaneously to solve the women's education."—M. K. Gandhi.

विषय-प्रवेश

"देवि, माँ, सहचरि, प्राण"—भारतीय परम्परा में नारी के इतने रूप बताये हैं, कविवर पन्त ने। पर क्या पुरुष ने नारी के इन रूपों का सम्मान करके, उसकी शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था की है? इसका उत्तर सुनिए स्वामी विवेकानन्द से :—"स्त्रियों को सदैव असहायता और दूसरों पर दासवत् निर्भरता की शिक्षा दी गई है।"

"Women have all the time been trained in helplessness and servile dependence on others."—Swami Vivekananda : *Complete Works*, Part VII, p. 41.

यह शिक्षा देकर ही पुरुष—युगों से नारी पर शासन करता आ रहा है। उसने सहस्रों वर्षों से नारी को सरस्वती की वंदना से विमुख रखा है और उसे ज्ञान के आलोक से बाहर घसीट कर अज्ञानता से आवृत्त रखने में ही अपने कर्त्तव्यों की इतिश्री समझी है। तभी से नारी, विवशता की जंजीर में जकड़ी हुई, अपनी शिक्षा की बाट जोह रही थी। आज इस जंजीर की कड़ियाँ चटख्-चटख् कर टूट रही हैं। नारी, घर की चहारदीवारी के अन्दर घुट-घुट कर जिन्दगी के दिन काटने वाली, त्रेपट्टी-लिपी घूँघट की गुड़िया नहीं है। आज वह शिक्षित महिला के रूप में बाह्य जगत् में प्रवेश कर रही है और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष से होड़ ले रही है।

यह सब क्यों और कैसे हुआ ? स्त्री-शिक्षा की तस्वीर शुरू से ऐसी थी ? वह क्यों बिगड़ी और बिगड़ने के बाद क्यों और कैसी बन रही है ? इन सब प्रश्नों के उत्तर जानने के लिए, स्त्री-शिक्षा के इतिहास पर नज़र डालनी आवश्यक है। अतः हम इसकी ओर आपका ध्यान आकृष्ट कर रहे हैं।

प्राचीन भारत में स्त्री-शिक्षा

वैदिक काल में घोषा, गार्गी, मैत्रेयी, आत्रेयी, शकुन्तला आदि के समान अनेक विदुषी महिलाएँ थीं। यह इस बात का प्रमाण है कि उनको पुरुषों के समान शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। किन्तु, उनके लिए पृथक् शिक्षालयों की व्यवस्था नहीं थी। हाँ, गृह-शिक्षा का प्रचलन अवश्य था। शकुन्तला ने कण्व के आश्रम में और आत्रेयी ने वाल्मीकि के आश्रम में शिक्षा प्राप्त की थी। वस्तुतः उस युग में परिवार ही स्त्रियों की शिक्षा का केन्द्र था, जहाँ उनको अपने पिता, पति या कुल-गुरु से शिक्षा प्राप्त होती थी। इन तथ्यों के आधार पर एस० मुकर्जी ने यह मत प्रकट किया है — "यह सम्भव है कि इस युग में स्त्रियों की शिक्षा के लिए कोई संगठित व्यवस्था नहीं थी। किन्तु, इस विषय में हमारे पास कोई निश्चित प्रमाण नहीं है।"

"It is just possible that no organised system of education as such did exist for women at this period Anyway we have no definite proof to assert one way or the other"—I. Mukherjee *Problems of Administration of Education in India*, p 259

वैदिक काल के अन्तिम चरण में लगभग 200 ई० पू० से बालिकाओं की विवाह की आयु को कम करके, उनकी शिक्षा-प्राप्ति के मार्ग में अवरोध उपस्थित कर दिया गया। परन्तु, महात्मा बुद्ध ने स्त्रियों को संघ में प्रवेश करने की आज्ञा देकर, उनकी शिक्षा को नव जीवन प्रदान किया। ए० एस० अल्तेकर के अनुसार :— "स्त्रियों को संघ में प्रवेश करने की आज्ञा ने स्त्री-शिक्षा को पर्याप्त प्रोत्साहन प्रदान किया।"

"The permission given to women to enter the *order* gave a fairly good impetus to the cause of female education"—A S Altekar · *Education in Ancient India* p 233

किन्तु, यह आज्ञा केवल कुलीन और व्यावसायिक वर्गों की स्त्रियों को दी गई थी। अतः केवल उन्हीं की शिक्षा को प्रोत्साहन प्राप्त हुआ, न कि बहुसंख्यक सामान्य स्त्रियों की शिक्षा को।

मुस्लिम भारत में स्त्री-शिक्षा

मुस्लिम युग में हिन्दुओं और मुसलमानों — दोनों में पर्दा-प्रथा एवं बाल-विवाह का प्रचलन था। अतः छोटी बालिकाओं के अतिरिक्त, शेष सब स्त्रियों का विशाल समूह शिक्षा-प्राप्ति के लाभ से वंचित रहा। इससे स्पष्ट है कि मुस्लिम काल में

स्त्रियों की शिक्षा की उपेक्षा की गई। जहां तक अल्प आयु की बालिकाओं का प्रश्न था, वे भी केवल कुछ ही वर्षों की प्राथमिक शिक्षा से लाभान्वित होती थीं। इस संदर्भ में मजूमदार, रायचौधरी व दत्त ने लिखा है[1] :—"प्रायः प्रत्येक मसजिद से संलग्न मकतब होता था, जिसमें आस-पास के बालक और बालिकाएँ प्राथमिक शिक्षा ग्रहण करते थे। शाही घराने और धनी अमीरों की लड़कियाँ अपने घरों में ही शिक्षा प्राप्त करती थीं और हम यह मान सकते हैं कि हिन्दुओं में मध्य वर्ग के व्यक्तियों की लड़कियाँ स्कूलों में लड़कों के साथ प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करती थीं और उनमें से कुछ को धार्मिक साहित्य का ज्ञान था।"

शाही घरानों की अनेक विदुषी नारियों के नाम आज भी इतिहास में पढ़ने को मिलते हैं; यथा :—रजिया सुल्ताना, चांद सुल्ताना, गुलवदन बेगम, जेबुन्निसा बेगम आदि। हिन्दू विदुषियों में रानी रूपमती, रानी दुर्गावती, इन्दौर की शासिका अहिल्याबाई और शिवाजी की माता जीजाबाई के नाम स्त्री-शिक्षा के जगत् में आज भी स्मरणीय हैं।

ब्रिटिश भारत में स्त्री-शिक्षा

ईस्ट इंडिया कम्पनी के शासन-काल में—ईस्ट इंडिया कम्पनी ने स्त्री-शिक्षा को अनावश्यक समझकर, उसकी ओर रंचमात्र भी ध्यान नहीं दिया। सम्भवतः इसका कारण यह था कि उसे अपने प्रशासकीय एवं व्यावसायिक कार्यालयों के लिए शिक्षित महिलाओं की आवश्यकता नहीं थी। इसके अतिरिक्त, स्त्री-शिक्षा के प्रति भारतीयों का दृष्टिकोण अत्यधिक रूढ़िवादी था। सन् 1838 में विलियम एडम ने स्त्री-शिक्षा का वर्णन करते हुए लिखा :—"शिक्षा की समस्त स्थापित देशी संस्थाएँ केवल पुरुषों के लाभार्थ हैं और समस्त महिला-जगत् को विधिपूर्वक अज्ञानता को अर्पित कर दिया गया है।"

"All the established native institutions exist for the benefit of the male sex only, and the whole of the female sex is systematically consigned to ignorance."—William Adam. A. N. Basu : *Adam's Report*, p. 452.

कम्पनी के शासन-काल में बालिका-विद्यालयों की स्थापना—मिशनरियों और सरकारी एवं गैर-सरकारी मनुष्यों के व्यक्तिगत प्रयासों के फलस्वरूप हुई। सन् 1851 में मिशनरियों द्वारा 371 बालिका-विद्यालयों का संचालन किया जा रहा था, जिनमें शिक्षा ग्रहण करने वाली बालिकाओं की संख्या 11,193 थी।[2] व्यक्तिगत प्रयासों के

1. Majumdar, Raychaudhuri & Datta : *An Advanced History of India*, p. 579.
2. M. A. Sherring : *The History of Protestant Missions*, pp. 442-47.

फलस्वरूप स्थापित किए जाने वाले बालिका-विद्यालयों में सबसे प्रसिद्ध कलकत्ता का बेथ्यून स्कूल था। इसका शिलान्यास सन् 1849 में सरकार के कानून-सदस्य, जे० ई० डी० बेथ्यून (J. E. D. Bethune) के द्वारा किया गया था।

1854 से 1882 तक—सन् 1854 के "वुड के आदेश-पत्र" में सर्वप्रथम स्त्री-शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार किया गया और कहा गया कि इस शिक्षा का प्रसार करने के लिए सभी सम्भव प्रयास किए जायें। परिणामतः नव-निर्मित शिक्षा-विभागों ने अनेक स्थानों पर बालिकाओं के लिए प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा और प्रशिक्षण की समुचित व्यवस्था की। इस प्रकार कम्पनी द्वारा उपेक्षित स्त्री-शिक्षा की प्रगति आरम्भ हुई। सन् 1882 में 2,697 बालिका-विद्यालय थे और उनमें अध्ययन करने वाली छात्राओं की संख्या 1,27,066 थी।

1882 से 1902 तक—सन् 1882 के "हंटर कमीशन" ने तत्कालीन स्त्री-शिक्षा की दयनीय दशा से द्रवित होकर, जोरदार शब्दों में यह सिफारिश की :—
"स्त्री-शिक्षा अब भी अत्यधिक पिछड़ी हुई दशा में है और प्रत्येक उचित विधि से उसका विकास किया जाना आवश्यक है।"

"Female education is still in an extremely backward condition and needs to be fostered in every legitimate way."—*Hunter Commission Report.*

"कमीशन" के विचारों ने न केवल सरकार को वरन् जनता को भी स्त्री-शिक्षा का प्रसार करने की प्रेरणा प्रदान की। एस० एन० मुकर्जी के अनुसार[1] :—
जनता एवं सरकार के सम्मिलित प्रयासों के फलस्वरूप बालिकाओं की शिक्षा की अति द्रुत गति से प्रगति हुई और 1902 में सब प्रकार के बालिका-विद्यालयों की संख्या 6,107 हो गई।

1902 से 1921 तक—19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में आरम्भ होने वाले पुनरुत्थान के कारण स्त्री-शिक्षा की प्रभूत प्रगति हुई। किन्तु, इस प्रगति में महिलाओं की अपेक्षा सरकार और पुरुषों ने अधिक योग दिया। विद्या-प्रेमी लार्ड कर्जन ने स्त्री-शिक्षा की पतित अवस्था से क्षुब्ध होकर, उसका उत्थान करने का सकल्प लिया। अतः उसने 1904 का "शिक्षा-सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव" पारित करवा के स्त्री-शिक्षा के प्रसार के लिए अधिक धन व्यय किया, आदर्श बालिका-विद्यालयों की स्थापना की और अध्यापिका-प्रशिक्षण का प्रावधान किया। 1913 के "शिक्षा-सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव" की सिफ़ारिशों के फलस्वरूप स्त्री-शिक्षा की प्रत्येक स्तर पर प्रगति हुई।

---

1. S N. Mukerji : *Education in India, Today & Tomorrow*, p. 242.

ब्रह्म समाज, आर्य समाज, सर्वेन्ट्स ऑफ़ इण्डिया सोसायटी जैसी अने
सुधारवादी सामाजिक संस्थाओं ने स्त्री-शिक्षा के मार्ग को प्रशस्त किया। 1904
श्रीमती एनी बेसेन्ट ने बनारस में "सेन्ट्रल हिन्दू गर्ल्स स्कूल" का निर्माण किया
1916 में कर्वे और भंडारकर के प्रयासों के परिणामस्वरूप पूना में महिला विश्
विद्यालय (एस० एन० डी० टी०) का शिलान्यास हुआ। 1916 में दिल्ली में महिला
के लिए लेडी हार्डिज मेडिकल कॉलेज की स्थापना हुई।

उपर्युक्त प्रयासों के परिणामस्वरूप स्त्री-शिक्षा का श्लाघनीय विस्तार हुआ
सन् 1921 में बालिकाओं की कुल शिक्षा-संस्थाएँ 26,144 थीं और उनमें अध्यय
करने वाली छात्राओं की संख्या 14 लाख से अधिक थी।

1921 से 1947 तक—इस अवधि में अग्रांकित कारणों के फलस्वरूप स्त्री
शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में अद्वितीय प्रगति हुई :—(1) महात्मा गांधी के "राष्ट्री
आन्दोलन के कारण स्त्रियों में उत्पन्न होने वाली जागृति; (2) सन् 1925 में राष्ट्री
महिला परिषद्" (National Council of Women) की स्थापना; (3) 192
में आयोजित किए जाने वाले "अखिल-भारतीय स्त्री-शिक्षा-सम्मेलन" (All-Indi
Women's Education Conference) द्वारा शैक्षिक अवसरों की समानता की मांग
(4) द्वैध शासन की अवधि में भारतीय शिक्षा पर भारतीय मंत्रियों का नियंत्रण
(5) प्रान्तीय स्वशासन की अवधि में स्त्री-शिक्षा को प्रोत्साहन; (6) द्वितीय विश्
युद्ध की अवधि में विभिन्न प्रशासकीय एवं व्यावसायिक कार्यालयों के लिए शिक्षि
पुरुषों एवं महिलाओं की मांग; और (7) "शारदा अधिनियम" द्वारा बाल-विवा
का निषेध।

उल्लिखित कारणों ने स्त्री-शिक्षा के विकास में अपूर्व योग दिया। 194
में स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाओं की संख्या 28,196 थी और उनमें अध्ययन कर
वाली बालिकाओं की 42,97,785।[1]

स्वतंत्र भारत में स्त्री-शिक्षा

स्वतंत्र भारत में नारी की सामाजिक स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन
रहा है। जिन बन्धनों में वह बँधी हुई थी, वे शनैः-शनैः ढीले होते जा रहे हैं। जि
स्वतंत्रता से उसे वंचित कर दिया गया था, वह उसे पुनः प्राप्त हो रही है। उस
सम्बन्ध में पुरुषों का दृष्टिकोण बदल रहा है, उनकी मान्यताएँ भी बदल रही हैं
"भारतीय संविधान" ने भी नारी को समकक्षता प्रदान करते हुए घोषित किया है :
"राज्य किसी नागरिक के विरुद्ध केवल धर्म, प्रजाति, जाति, लिंग, जन्म-स्थान
इनमें से किसी के आधार पर कोई विभेद नहीं करेगा।"

"The State shall not discriminate against any citizen o

1. *First Year-Book of Education*, p. 914.

grounds only of religion, race, caste, sex, place of brith or an[y of] them"—Article 15 of the *Constitution of Free India.*

उपरिअंकित सभी तथ्यों के फलस्वरूप स्वतंत्र भारत में नारी-जाति ने कर[वट] बदली है। उसने अपने वास्तविक महत्त्व को जानना और पहिचानना शुरू कर दि[या] है और वह अपनी गिरी हुई दशा के प्रति सचेत हुई है। यही कारण है कि स्वत[ंत्र] भारत— नारी-जागरण का युग बन गया है और स्त्री-शिक्षा के सभी क्षेत्रों में विलक्ष[ण] क्रान्ति परिलक्षित हो रही है। हम इस क्रान्ति से सम्बन्धित तथ्यों एवं परिणामों का विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत यथास्थान वर्णन कर रहे हैं; यथा :—

राष्ट्रीय महिला-शिक्षा-समिति, 1958
National Committee on Women's Education, 1958

भारत-सरकार ने सन् 1958 में स्त्री-शिक्षा पर विचार करने के लिए श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में "राष्ट्रीय महिला-शिक्षा-समिति" की नियुक्ति की। इस समिति को 'देशमुख समिति" (Deshmukh Committee) भी कहा जाता है। इसका मुख्य कार्य— स्त्री-शिक्षा की विभिन्न समस्याओं का समाधान करने के लिए अपने सुझाव प्रस्तुत करना था। "समिति" ने जनवरी, 1959 में अपना प्रतिवेदन सरकार के समक्ष प्रस्तुत किया और उसमें निम्नांकित सुझाव दिए[1] :—

1 केन्द्रीय सरकार को स्त्री-शिक्षा को कुछ समय के लिए एक विशिष्ट समस्या के रूप में स्वीकार करना चाहिए और उसके प्रसार का भार अपने ऊपर लेना चाहिए।

2 केन्द्रीय सरकार को एक निश्चित योजना के अनुसार निश्चित अवधि में स्त्री-शिक्षा का विकास एवं विस्तार करना चाहिए।

3. केन्द्रीय सरकार को सब राज्यों के लिए स्त्री-शिक्षा के विस्तार की नीति निर्धारित करनी चाहिए और उनको इस नीति का अनुसरण करने के लिए पर्याप्त धन देना चाहिए।

4 ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्री शिक्षा का प्रसार करने के लिए विशेष प्रयास किए जाने चाहिए और केन्द्रीय सरकार को प्रसार-सम्बन्धी समस्त व्यय का भार अपने ऊपर लेना चाहिए।

5. पुरुषों एवं स्त्रियों की शिक्षा में विद्यमान विषमता को यथाशीघ्र समाप्त करके, दोनों की शिक्षा में समानता स्थापित की जानी चाहिए।

6 केन्द्रीय शिक्षा-मन्त्रालय को स्त्री-शिक्षा की समस्याओं पर विचार करने

Report of the National Committee on Women's Education

के लिए "राष्ट्रीय महिला शिक्षा-परिषद्" नामक एक पृथक् इकाई की सृष्टि करनी चाहिए।

7. राज्यों में स्त्री-शिक्षा का प्रसार करने के लिए "बालिका एवं स्त्री-शिक्षा की राज्य-परिषदों" (State Councils of Education for Girls & Women) का निर्माण किया जाना चाहिए।
8. प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तरों पर बालिकाओं को शिक्षा की अधिक सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए।

राष्ट्रीय महिला-शिक्षा-परिषद्, 1959
National Council of Women's Education, 1959

"देशमुख समिति" की सिफ़ारिश को स्वीकार करके, केन्द्रीय शिक्षा-मंत्रालय ने 1959 में "राष्ट्रीय महिला-शिक्षा-परिषद्" का निर्माण किया। 1964 में इसका पुनर्गठन किया गया। इस समय इसमें अध्यक्ष एवं सचिव के अतिरिक्त 27 सदस्य हैं। इसके मुख्य कार्य अधोलिखित हैं[1] :—

1. विद्यालय-स्तर पर बालिकाओं की और प्रौढ़ स्त्रियों की शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं पर सरकार को परामर्श देना।
2. उक्त क्षेत्रों में बालिकाओं एव स्त्रियों की शिक्षा के प्रसार एवं सुधार के लिए लक्ष्यों, नीतियों, कार्यक्रमों एवं प्राथमिकताओं के विषय में सुझाव देना।
3. उक्त क्षेत्रों में व्यक्तिगत प्रयासों का सर्वोत्तम प्रयोग करने के लिए उपायों का सुझाव देना।
4. बालिकाओं एवं स्त्रियों की शिक्षा के पक्ष में जनमत का निर्माण करने के लिए उचित उपायों का सुझाव देना।
5. उक्त शिक्षा के क्षेत्र में होने वाली प्रगति का समय-समय पर मूल्यांकन करना और भावी कार्यक्रमों की प्रगति पर दृष्टि रखना।
6. उक्त शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करने के लिए समय-समय पर आवश्यकतानुसार सर्वेक्षण, अनुसंधान एवं विचार-गोष्ठियों का आयोजन किए जाने की सिफ़ारिश करना।

हंसा मेहता समिति, 1962
Hansa Mehta Committee, 1962

"राष्ट्रीय महिला-शिक्षा-परिषद्" का एक मुख्य कार्य—विद्यालय-स्तर पर बालिकाओं की शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं का समाधान करना है। इन समस्याओं में सर्वप्रमुख यह है :— यथा विद्यालय-स्तर पर बालकों एवं बालिकाओं के पाठ्यक्रमों

1. S. N. Mukerji : *op. cit.*, pp. 250-251.

में अन्तर होना चाहिए ? "परिषद्" ने इस समस्या पर विचार करने के लिए श्रीमती हंसा मेहता की अध्यक्षता में एक समिति की नियुक्ति की, जिसे "हंसा मेहता समिति" कहा जाता है। इस समिति के सदस्यों ने पर्याप्त विचार-विमर्श के पश्चात् दो सुझाव प्रस्तुत किए; यथा :—

पहला सुझाव यह था कि विद्यालय-स्तर पर बालकों और बालिकाओं के पाठ्यक्रमों में अन्तर नहीं होना चाहिए। इस सम्बन्ध में अपने तर्क प्रस्तुत करते हुए, "समिति" ने कहा :—हम भारत में जनतंत्रीय एवं समाजवादी समाज की स्थापना करने की चेष्टा कर रहे हैं। ऐसे समाज में शिक्षा का सम्बन्ध व्यक्तिगत क्षमताओं, रुझानों एवं रुचियों से होना चाहिए, जिनका लिंग से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। "अत ऐसे समाज में लिंग के आधार पर पाठ्यक्रमों में अन्तर करने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

"There would, therefore, be no need in such a society to differentiate curricula on the basis of sex."—*Hansa Mehta Committee Rep rt.*

दूसरा सुझाव यह था कि भारत में अभी जनतंत्रीय एवं समाजवादी समाज के निर्माण की प्रक्रिया चल रही है। अत इस अन्तःकालीन अवधि में हमें पुरुषों एवं *स्त्रियों के मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक कार्यों के भेदों के आधार पर बालकों एवं* बालिकाओं के लिए विभिन्न पाठ्यक्रमों का निर्माण करना चाहिए। किन्तु, पाठ्यक्रमों की विभिन्नता को नए समाज के निर्माण में बाधा उपस्थित नहीं करनी चाहिए। "अत ऐसा कोई क़दम नहीं उठाया जाना चाहिए, जो पुरुषों एवं स्त्रियों के वर्तमान अन्तर को स्थायी या अधिक उग्र बना दे।"

"Care should be taken to see that no step is taken which will tend to perpetuate or intensify the existing difference"—*Hansa Mehta Committee Report.*

कोठारी कमीशन व स्त्री-शिक्षा

"कोठारी कमीशन" ने स्त्री-शिक्षा के समस्त पक्षों के विषय में महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए हैं। हम आपको इन सुझावों का संक्षिप्त परिचय दे रहे हैं, यथा :—

1. प्राथमिक शिक्षा—"कोठारी कमीशन" ने बालिकाओं की प्राथमिक शिक्षा के सम्बन्ध में अधोलिखित सुझाव दिए हैं[1] —

1. भारत संविधान द्वारा प्रतिपादित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए बालिकाओं में अनिवार्य शिक्षा का प्रसार करने के लिए विशेष प्रयास किए जायें।
2. बालिकाओं को बालकों के प्राथमिक विद्यालयों में भेजने के लिए जनमत का निर्माण किया जाय।

1. *Kothari Commission Report*, p. 164.

3. उच्च प्राथमिक स्तर पर बालिकाओं के लिए पृथक् विद्यालयों की स्थापना करने का प्रयत्न किया जाय।
4. बालिकाओं को मुफ्त पुस्तकें, लेखन-सामग्री एवं वस्त्र देकर, शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय।
5. 11-13 वय-वर्ग की बालिकाओं के लिए अल्पकालीन शिक्षा की व्यवस्था की जाय।

2. माध्यमिक शिक्षा—"कोठारी कमीशन" ने बालिकाओं की माध्यमिक शिक्षा के विषय में निम्नांकित विचार प्रकट किए हैं[1] :—

1. बालिकाओं के लिए पृथक् विद्यालयों की स्थापना की जाय। जहाँ यह सम्भव नहीं है, वहाँ के विद्यालयों में कुछ अध्यापिकाओं की अनिवार्य रूप से नियुक्ति की जाय।
2. बालिकाओं को छात्रावास एवं यातायात के साधनों की सुविधाएँ प्रदान की जायें।
3. बालिकाओं के लिए छात्रवृत्तियों और अल्पकालीन एवं व्यावसायिक शिक्षा की योजनाएँ आरम्भ की जायें।

3. उच्च शिक्षा—"कोठारी कमीशन" ने बालिकाओं की उच्च शिक्षा के बारे में अग्रांकित सुझाव अक्षरबद्ध किए हैं[2] :—

1. छात्रवृत्तियों एवं मितव्ययी छात्रावासों की व्यवस्था करके, बालिकाओं को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय।
2. बालिकाओं के लिए पूर्व-स्नातक स्तर पर पृथक् कॉलेजों का निर्माण किया जाय।
3. बालिकाओं को कला, विज्ञान, प्रौद्योगिकी, मानवशास्त्र आदि पाठ्य-विषयों में से चयन करने की स्वतंत्रता प्रदान की जाय।
4. शिक्षा, गृह-विज्ञान एवं सामाजिक कार्य के पाठ्य-विषयों को विकसित करके, उनको बालिकाओं के लिए अधिक आकर्षक बनाया जाय।
5. बालिकाओं को व्यावसायिक प्रबन्ध एवं प्रशासन (Business Management & Administration) की उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर दिया जाय।
6. एक या दो विश्वविद्यालयों में स्त्री-शिक्षा की समस्याओं का समाधान खोजने के लिए अनुसंधान-केन्द्रों की स्थापना की जाय।

---

1. *Kothari Commission Report*, pp. 175-176.
2. *Kothari Commission Report*, p. 651.

4. सामान्य सुझाव—"कोठारी कमीशन" ने स्त्रियों एवं बालिकाओं की शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ सामान्य सुझाव भी दिए हैं; यथा[1] :—

1. स्त्री-शिक्षा के मार्ग की समस्त बाधाओं को दूर करने के लिए ठोस और निश्चित कदम उठाए जायें।
2. स्त्रियों एवं पुरुषों की शिक्षा के बीच में जो खाई उत्पन्न हो गई है, उसे यथाशीघ्र समाप्त करने के लिए विशेष योजनाएँ बनाई जायें।
3. स्त्रियों एवं बालिकाओं की शिक्षा की देखभाल करने के लिए केन्द्रीय एवं राज्य-स्तरों पर उपयुक्त प्रशासकीय संगठनों का सृजन किया जाय।
4. स्त्रियों के लिए अंशकालीन रोजगारों की व्यवस्था की जाय, ताकि वे पारिवारिक कार्यों से निवृत्त होने के पश्चात् अपनी शिक्षा से आर्थिक लाभ उठा सकें।
5. अविवाहित स्त्रियों के लिए पूर्णकालीन रोजगारों की व्यवस्था की जाय।

पंचवर्षीय योजनाओं में स्त्री-शिक्षा

पहली योजना—इस योजना में स्त्रियों को पुरुषों के सदृश शिक्षा प्राप्त करने की सब सुविधाएँ प्रदान की गईं। क्योंकि भारत की अधिकांश स्त्रियों को किशोरावस्था में ही अपनी शिक्षा स्थगित करनी पड़ती है, इसलिए उन्हें प्राइवेट रूप में उच्च परीक्षाएँ पास करने के अवसर दिए गए। यह व्यवस्था भी की गई कि माध्यमिक एवं विश्वविद्यालय-शिक्षा इस प्रकार की हो कि वह स्त्रियों को किसी गृहोद्योग या हस्तशिल्प की शिक्षा दे सके।[2]

दूसरी योजना—इस योजना के अन्तर्गत बालिकाओं की शिक्षा के विस्तार एवं अध्यापिकाओं के प्रशिक्षण के लिए आरम्भ की जाने वाली योजनाओं में उत्तम प्रगति हुई। केन्द्रीय सरकार ने अध्यापिकाओं को प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए वृत्ति देकर, बालिकाओं की उपस्थिति के लिए छात्रवृत्तियाँ देकर एवं अध्यापिकाओं के लिए बिना किराए के क्वार्टरों का निर्माण करके विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, सहायता दी। स्त्री-शिक्षा से सम्बन्धित समस्याओं पर सरकार को परामर्श देने के लिए "राष्ट्रीय महिला-शिक्षा परिषद" का निर्माण किया गया।

तीसरी योजना—केन्द्रीय सरकार के परामर्श के अनुसार प्रत्येक राज्य के शिक्षा-विभाग में एक उप-निदेशक अथवा संयुक्त निदेशक नियुक्त किया गया, जिसे बालिकाओं एवं महिलाओं की शिक्षा से सम्बन्धित कार्यक्रमों का निर्माण करने और उनको कार्यान्वित करने का भार सौंपा गया। बालिकाओं और प्रौढ़ महिलाओं की शिक्षा के लिए एक विशेष कार्यक्रम तैयार किया गया। इस बात का प्रयत्न किया

1. *Kothari Commission Report*, pp 138-139
2. पहली पंचवर्षीय योजना, पृष्ठ 308

गया कि बालिकाओं की हॉकी, क्रिकेट, फुटबाल, वालीबॉल आदि आधुनिक खेलों में रुचि उत्पन्न हो। शिक्षा प्राप्त करने वाले बालकों एवं बालिकाओं की शिक्षा के बीच की दूरी को कम करने की चेष्टा की गई।[1]

चौथी योजना—पहली तीन योजनाओं में बालिकाओं की शिक्षा-सुविधाओं में विस्तार करने के प्रयत्न किए गए। फिर भी, बालकों एवं बालिकाओं की शिक्षा में पर्याप्त दूरी थी। विद्यालय-स्तर पर इस दूरी को और अधिक कम करने के लिए चौथी योजना में अग्रलिखित उपाय किए गए :—अध्यापिकाओं के लिए क्वार्टरों की व्यवस्था; ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करने वाली अध्यापिकाओं के लिए विशेष भत्ता; विद्यालय-माताओं (School Mothers) की नियुक्ति; बालिकाओं के लिए छात्रावासों का निर्माण; और अध्यापिकाओं के अभाव की पूर्ति करने के लिए वयस्क महिलाओं के लाभार्थ संक्षिप्त पाठ्यक्रमों का संचालन।[2]

पांचवीं योजना—यद्यपि बालिकाओं की शिक्षा का विस्तार किया जा चुका है, फिर भी शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर उनकी और बालकों की शिक्षा में पर्याप्त दूरी है। इस दूरी का मुख्य कारण है—अध्यापिकाओं का अभाव। पांचवीं योजना में इस अभाव की पूर्ति के लिए बालिकाओं को इस शर्त पर छात्रवृत्तियाँ दी जायेंगी कि वे शिक्षा समाप्त करने के बाद शिक्षण-व्यवसाय को ग्रहण करें। इसके अतिरिक्त, कम शिक्षित स्त्रियों एवं बालिकाओं के लिए संक्षिप्त एवं पत्राचार-पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की जायगी।[3]

बालिका-शिक्षा का विस्तार[4]

नामांकन लाखों में

वर्ष	कक्षा I-V		कक्षा VI-VIII		कक्षा IX-XI, XII	
	नामांकन		नामांकन		नामांकन	
	बालक	बालिकाएँ	बालक	बालिकाएँ	बालक	बालिकाएँ
1950-51	137·7	53·8	25 9	5·3	10.2	1·9
1955-56	175·3	76·4	34·2	8·7	16·5	3·3
1960-61	235 9	114·0	50·7	16·3	24·7	5·6
1965-66	321 8	182·9	76·8	28·5	40·8	12·0
1968-69	342·1	201·8	97·1	33·4	50·9	17·4
1973-74 संभावित	393·5	244 0	104·9	45·4	61·6	23·4

1. *The Hindustan Times*, May 4, 1966.
2. चौथी पंचवर्षीय योजना (प्रारम्भिक रूपरेखा), p. 224.
3. *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. II, p. 197.
4. *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. II, p. 197.

समस्याएँ व उनके समाधान
Problems & Their Solutions

स्वतन्त्र भारत में स्त्रियों की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ है। के० नटराजन के अनुसार :—"यदि सौ वर्ष पूर्व मरने वाला व्यक्ति आज फिर जीवित हो जाय, तो उसे आश्चर्यचकित करने वाला सर्वप्रथम एवं सबसे महत्त्वपूर्ण परिवर्तन —स्त्रियों की स्थिति में क्रान्तिकारी परिवर्तन होगा।"

"If a person who died a hundred years ago came to life today, the first and the most important change that would strike him is the revolution in the position of women."—K. Natrajan's Article in the *Indian Social Reformer*, September 25, 1937.

स्त्रियों की स्थिति में इस क्रान्तिकारी परिवर्तन के बावजूद अत्याचारी एवं अप्रगतिशील विचारों वाला पुरुष-वर्ग, नारी की महत्ता को स्वीकार नहीं करता है। वह नारी-शिक्षा का विरोध करके अट्टहास करता है, भले ही उसकी सन्तान निरक्षर रह जाय। वह अपनी रूढ़िवादिता, धार्मिक संकीर्णता एवं नारी-जाति पर शासन करने की चिरकाल से विरासत में मिलने वाली धारणा का परित्याग करने के लिए तैयार नहीं है, भले ही प्रजातन्त्र की माँगों की पूर्ति न हो और भले ही भारत, स्त्रियों की अशिक्षा के कारण प्रगति की दौड़ में अन्य देशों से पीछे रह जाय।

किन्तु सरकार और प्रगतिशील विचारों वाला पुरुष-वर्ग —नारी के साथ है। सरकार ने संविधान के माध्यम से स्त्रियों की समस्त अक्षमताओं का अन्त कर दिया है। प्रगतिशील विचारों वाला पुरुष-वर्ग, राष्ट्रीय जीवन में स्त्री-शिक्षा के महत्त्व को स्वीकार करके, उसके तीव्र प्रसार का प्रबल समर्थक है। यही कारण है कि स्वतन्त्र भारत में समस्त क्रान्तियों के मध्य शताब्दियों से शोषित नारी ने एक जबर्दस्त अंगड़ाई ली है। वह शिक्षा के समान अवसरों का उपभोग करके, राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक—सभी क्षेत्रों में सक्रिय है और पुरुष को चकित कर रही है। फिर भी, वस्तुस्थिति यह सन्देह पेश करती है कि स्त्रियों एवं बालिकाओं की शिक्षा दबे पाँव, रेंगती हुई आगे बढ़ रही है। इसके क्या कारण हैं? ऐसी कौन-सी भारी अड़चनें और गम्भीर समस्याएँ हैं, जिनके कारण यह शिक्षा सहज और सुलभ नहीं बन पाई है? इनमें से सभी का ध्यान आकृष्ट करने वाली समस्याएँ दृष्टव्य हैं; यथा :—

1. समस्या—रूढ़िवादिता एवं धर्मान्धता . Conservatism & Religiosity —आधुनिक युग, विज्ञान का युग है। विज्ञान ने अनेक रूढ़िवादी विचारों, धार्मिक अंधविश्वासों एवं प्राचीन परम्पराओं को सार गार करके सारहीन सिद्ध कर दिया है। किन्तु, अज्ञानता के कूप में पड़े हुए करोड़ों भारतीय (हिन्दू और मुसलमान) अब भी

उनसे चिपटे हुए हैं।[1] वे अब भी प्राचीन विचारों एवं विश्वासों का पोषण एवं समर्थन करते हैं। फलस्वरूप, स्त्री-शिक्षा अपने सीमित एवं संकुचित दायरे से बाहर नहीं निकल पा रही है। हम अपने इस कथन की पुष्टि में निम्नांकित 4 ठोस प्रमाण प्रस्तुत कर रहे हैं।

पहला, प्राचीन परम्पराओं का अनुसरण करने में गर्व का अनुभव करने वाले अनेक हिन्दू एवं मुसलमान—पर्दा-प्रथा में अब भी विश्वास करते हैं और उसका परित्याग करने में अपनी और अपने कुल की मानहानि समझते हैं। अतः वे अधिक आयु की बालिकाओं के विद्यालय जाने पर कठोर प्रतिबंध लगा देते हैं।

दूसरा, अंधविश्वासों के शिकंजे में जकड़े हुए, अनेक हिन्दू एवं मुसलमान—बालिकाओं का अल्प आयु में विवाह करना अपना परम पुनीत कर्त्तव्य समझते हैं। अतः वे "भारतीय वयस्कता-अधिनियम" (Indian Majority Act) एवं "बाल-विवाह-निषेध-अधिनियम" (Child Marriage Restraint Act) का उल्लंघन करके भी अपने कर्त्तव्य का पालन करने में संकोच नहीं करते हैं। परिणामतः बालिकाओं का शिक्षा से वंचित रह जाना स्वाभाविक है।

तीसरा, रूढ़िवादी विचारों के सीमित दायरे में निवास करने वाले अनेक हिन्दू एवं मुसलमान—स्त्री का उचित स्थान, घर के अन्दर मानते हैं। अतः उनके मतानुसार, बालिकाओं को घरेलू हिसाब-किताब के लिए थोड़ा-सा अक्षर-ज्ञान ही पर्याप्त है। इसके अतिरिक्त, उनकी धारणा है कि बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् समानता एवं स्वतंत्रता का दावा करने लगती हैं। उनके विचार से यह स्त्री-धर्म की प्रतिकूलता एवं चरित्रहीनता का सूचक है। अतः वे बालिकाओं की शिक्षा के विरोधी हैं।

चौथा—धार्मिक कट्टरता की भावना से सराबोर अनेक हिन्दू एवं मुसलमान—रजोदर्शन से पूर्व कन्याओं का विवाह करना धार्मिक कृत्य मानते हैं। ऐसे हिन्दुओं का स्मृतिकारों के इस नीति-वचन में अविचल विश्वास है:—"कन्या के दसवें वर्ष में पहुँचने पर जो पिता उसका विवाह नहीं करता है, वह प्रति मास उसका लाल रज पीता है।"[2]

इसी प्रकार, धार्मिक सिद्धान्तों में अडिग आस्था रखने वाले मुसलमान—रजोदर्शन से पूर्व ही अपनी कन्याओं का विवाह करने के लिए व्याकुल रहते हैं,

---

1. भारत की 54 करोड़ जनसंख्या में से केवल 16 करोड़ व्यक्ति साक्षर हैं। —*India*, 1954, p. 51.
2. "प्राप्ते तु दशमे वर्षे यस्तु कन्या न यच्छति।
मासि-मासि रजस्तस्या: पिता पिबति शोणितम्॥

क्योंकि वे प्रतिमास के रजोदर्शन को "गुनाह" मानते हैं।[1] दसवें वर्ष में या रजोदर्शन से पूर्व विवाह हो जाने पर बालिकाओं की शिक्षा का स्थगन अनिवार्य है।

समाधान—कुछ सुझाव : Some Suggestions—रूढ़िवादिता एवं धर्मान्धता जिन कारणों को जन्म देकर बालिका-शिक्षा के मार्ग में अवरोध उपस्थित कर रही है, उनका समाधान करने के लिए अनेक व्यावहारिक सुझाव दिए जा सकते हैं; यथा :—

1. अशिक्षित पुरुषों एवं स्त्रियों में प्रौढ़-शिक्षा का अधिकतम् प्रसार।
2. स्त्री-शिक्षा के राष्ट्रीय, सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व का व्यापक प्रचार।
3. स्त्री-शिक्षा के प्रति भारतीयों के अनुचित दृष्टिकोण में परिवर्तन करने के लिए देशव्यापी आन्दोलन।
4. भारतीयों के बाल-विवाह एवं विवाह की अनुचित धारणा में परिवर्तन करने के लिए चलचित्रों का प्रदर्शन।
5. भारतीयों की रूढ़िवादिता एवं धार्मिक कट्टरता में आमूल परिवर्तन करने के लिए व्याख्यानों, प्रदर्शनियों एवं सामाजिक समारोहों का आयोजन।
6. भारतीयों को स्त्री-शिक्षा के प्रति अपनी उदासीनता एवं विरक्तता का परित्याग करने में सहायता देने के लिए आकाशवाणी द्वारा विविध कार्यक्रमों का सूत्रपात।
7. स्त्रियों द्वारा शिक्षा प्राप्त करने के अपने अधिकार की दृढ़ता से माँग। म्यूरियल वासी के शब्दों में —"भारत में स्त्रियों के निश्चय, दृढ़ता, सद्विवेक एवं कार्य-कुशलता पर ही उनकी शिक्षा का भविष्य निर्भर है।"

   "Upon their determination, compactness, good sense and efficiency rests the future of education of women in India."—Muriel Wasi in *Women of India*, Edited by Tara Ali Beg
8. पुरुषों द्वारा स्त्रियों पर शासन करने की अपनी प्रवृत्ति का दमन। महात्मा गांधी के शब्दों में —"किसी-न-किसी प्रकार पुरुष—युगों से स्त्री पर शासन करता चला आ रहा है और इसलिए स्त्री में निम्न होने की भावना का विकास हो गया है।"

---

1. "Every month of menstruation is regarded as a period of *Gunah* by Muslims."

"Somehow or other man has dominated woman for ages past, and so woman has developed an inferiority complex."—Mahatma Gandhi's Article in the *Harijan,* dated February 25, 1940.

2. समस्या—अपव्यय व अवरोधन : Wastage & Stagnation—बालिका-शिक्षा की एक पर्याप्त गम्भीर समस्या—अपव्यय एवं अवरोधन की है। "कोठारी कमीशन" के अनुसार[1] :—सन् 1958-59 में पहली कक्षा में प्रवेश लेने वाली 100 बालिकाओं में से केवल 37·5 प्रतिशत 1961-62 में चौथी कक्षा में पहुँचीं और पाँचवीं कक्षा में प्रवेश लेने वाली 100 बालिकाओं में से केवल 66·2 प्रतिशत सातवीं कक्षा में पहुँचीं।[2]

बालकों की तुलना में बालिकाओं में अपव्यय एवं अवरोधन अधिक है। इसके कारणों का उल्लेख करना, "रूढ़िवादिता एवं धर्मान्धता" के अन्तर्गत वर्णित कारणों की पुनरावृत्ति करना होगा। किन्तु, विषय की क्रमबद्धता को बनाए रखने के लिए, ये कारण संक्षेप में इस प्रकार हैं :—(1) पर्दा प्रथा एवं बाल-विवाह का प्रचलन; (2) प्राचीन विचारों एवं परम्पराओं में विश्वास, (3) धार्मिक सिद्धान्तों एवं अन्धविश्वासों में आस्था; और (4) बालिकाओं की शिक्षा के प्रति संकुचित दृष्टिकोण।

उक्त कारणों के फलस्वरूप बालिकाएँ अपने को विवशता में इतना उलझा हुआ पाती हैं कि हार्दिक अभिलाषा के बावजूद भी वे बालकों के समान दीर्घकाल तक ज्ञान का अर्जन नहीं कर पाती हैं। यदि कुछ बालिकाओं को भाग्य सहारा दे देता है, तो वे कुछ वर्षों की माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कर लेती हैं। परन्तु, उसके उपरान्त उनकी शिक्षा पर उनके अनुदार अभिभावकों या तंगदिल पतियों के द्वारा स्थायी अंकुश लगा दिया जाता है।

उल्लिखित कारणों के अतिरिक्त, बालिकाओं की शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन के कुछ कारण और भी हैं; यथा :—

1. बालिका-विद्यालयों का अभाव।
2. यातायात के साधनों का अभाव।
3. दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली का प्रचलन।
4. विद्यालयों में नीरस शिक्षण-विधियों का प्रयोग।
5. बालिकाओं के लिए उपयोगी पाठ्यक्रम का अभाव।

समाधान—कुछ सुझाव : Some Suggestions—बालिकाओं की शिक्षा में

1. *Kothari Commission Report*, p. 158.
2. *Kothari Commission Report*, pp. 156 & 158.

विद्यमान अपव्यय एवं अवरोधन का उन्मूलन करने के लिए निम्नांकित सुझाव दि[illegible] जा सकते हैं :—

1 परीक्षा-प्रणाली मे परिवर्तन।
2. बालिका-विद्यालयों की संख्या मे वृद्धि।
3 मूल्यांकन की नवीन विधियों का प्रयोग।
4 निम्न कक्षाओं मे खेल-विधि का प्रयोग।
5 शिक्षण की प्रगतिशील एवं मनोवैज्ञानिक विधियों का प्रयोग।
6 बालिकाओ के लिए निर्देशन की व्यवस्था।
7 बालिकाओ के लिए उपयोगी पाठ्यक्रम का निर्माण।
8 बालिकाओ के लिए अल्पकालीन शिक्षा की व्यवस्था।
9 बालिकाओ के लिए यातायात के साधनो की सुविधा।
10 बालिकाओ की शिक्षा के प्रति संकुचित दृष्टिकोण मे परिवर्तन।

3 समस्या—दोषपूर्ण पाठ्यक्रम Defective Curriculum—बालिका एव स्त्री-शिक्षा की सर्वप्रधान समस्या—दोषपूर्ण पाठ्यक्रम की है। पाठ्यक्रम दोषपूर्ण क्यों है? इसका कारण डा० एस० एन० मुकर्जी के अग्रांकित वाक्यों में पढ़िए — ''आज के भारत मे बालिकाओं की शिक्षा—बालकों को दी जाने वाली शिक्षा की प्रतिलिपि मात्र है। यथार्थत बालकों के पाठ्यक्रम के अलावा बालिकाओं को अन्य किसी बात की शिक्षा देने की कोई विशेष व्यवस्था नहीं है।''

"Education of girls in India today is a mere replica of the education given to boys Practically, there is no special provision for teaching the girls anything outside the boys' curriculum "—Dr S. N. Mukerji : *Education in India, Today & Tomorrow*, p 264

वस्तुत शिक्षा के सब स्तरो पर बालको एव बालिकाओ के समान पाठ्यविषय [illegible]है। हाँ, इतना अवश्य है कि बालिकाओ को संगीत, चित्रकला, गृहविज्ञान जैसे कुछ [illegible]कल्पिक विषयो का अध्ययन करने की सुविधा उपलब्ध है। किन्तु, इससे न तो [illegible]का कोई तात्कालिक लाभ होता है और न दूरकालिक। अत प्रचलित पाठ्यक्रम द्वारा [illegible]को प्रदान की जाने वाली शिक्षा—भारतीयो की घोर निन्दा का लक्ष्य बन गई है। [illegible] शिक्षा की निन्दा के अनेक कारण है, यथा —

1 यह शिक्षा—ज्ञान-प्रधान, पुस्तक-प्रधान एव अव्यावहारिक होने के कारण बालिकाओ मे समाज की बदलती हुई परिस्थितियो मे अनुकूलन करने की सामर्थ्य का विकास नही करती है।
2 यह शिक्षा—बालिकाओ को गार्हस्थ्य जीवन के लिए तैयार नही करती है और उनको पारिवारिक उत्तरदायित्वो को वहन करने की [illegible] प्रदान नही करती है।

3. यह शिक्षा—बालिकाओं को पाश्चात्य स्त्री-जाति का अंधानुकरण करने का पाठ पढ़ाकर, उनका प्राचीन भारतीय आदर्श से सम्बन्ध-विच्छेद कर देती है।
4. यह शिक्षा—बालिकाओं को भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति से विमुख करके, पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति की उपासिका बना देती है।
5. यह शिक्षा—बालिकाओं के मस्तिष्क पर जो पाश्चात्य मुलम्मा चढ़ा देती है, उसके फलस्वरूप भारतीय परिवार का अति त्वरित गति से विघटन हो रहा है।
6. यह शिक्षा—बालिकाओं को सब प्रकार के कृत्रिम साधनों, रंग-बिरंगे वस्त्रों एवं आभूषणों से सज-सँवर कर कामिनी या मोहिनी बनने में और पुरुषों को रिझाने में दक्ष बना देती है, जिसके फलस्वरूप भारतीय समाज का नैतिक स्तर गिरता चला जा रहा है।
7. यह शिक्षा—महिलाओं में बेरोज़गारी की समस्या को उतना ही विकराल रूप प्रदान करती जा रही है, जितना कि वह पुरुषों की बेरोज़गारी की समस्या को प्रदान कर चुकी है। मनुष्यों के लिए बेरोज़गारी हानिकारक है, पर स्त्रियों के लिए भयंकर है।[1]
8. "राधाकृष्णन् कमीशन" के अनुसार :—"स्त्री-शिक्षा की वर्तमान पद्धति, पुरुषों की आवश्यकताओं पर आधारित होने के कारण उनको दैनिक जीवन की व्यावहारिक समस्याओं का समाधान करने की योग्यता प्रदान नहीं करती है।"
9. "विश्वविद्यालय-शिक्षा-आयोग" के अनुसार :—"स्त्रियों की वर्तमान शिक्षा उस जीवन लिए पूर्णतया निरर्थक है, जो उनको व्यतीत करना है। यह शिक्षा न केवल अपव्यय है, वरन् बहुधा उनकी निश्चित असमर्थता का कारण है।"

   "Women's present education is entirely irrelevent to the life they have to lead. It is not only a waste, but often a definite disability."—*University Education Commission.*

समाधान—विभिन्न पाठ्यक्रम की व्यवस्था : **Provision of Different Curriculum**—हमने प्रचलित पाठ्यक्रम से होने वाली जिन हानियों का वर्णन किया है, उनको देखते हुए सामान्य निष्कर्ष यही निकलता है कि बालिकाओं के लिए विभिन्न पाठ्यक्रम की व्यवस्था की जानी चाहिए। किन्तु, इस निष्कर्ष के सम्बन्ध में शिक्षा-विशेषज्ञों एवं राजनीतिज्ञों के विचारों में विभिन्नता है। इस प्रकार के कुछ विचार आपके अवलोकनार्थ प्रस्तुत किए जा रहे हैं; यथा :—

1. S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 264.

1. "हंसा मेहता समिति" ने बालकों एवं बालिकाओं के लिए समान पाठ्यक्रम की सिफ़ारिश करते हुए लिखा :—"जनतंत्रीय एवं समाजवादी समाज में शिक्षा का सम्बन्ध व्यक्तिगत क्षमताओं अभिवृत्तियों एवं रुचियों से होना चाहिए, जिनका लिंग से कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः ऐसे समाज में लिंग के आधार पर पाठ्यक्रमों में अन्तर करने की आवश्यकता नहीं है।"

2 'कोठारी कमीशन" ने "हंसा मेहता समिति" की सिफ़ारिशों से सहमत होते हुए लिखा :—"हम इन सिफ़ारिशों से सहमत हैं। यही कारण है कि हमने कक्षा दस के अन्त तक सब छात्रों के लिए समान पाठ्यक्रम का प्रस्ताव किया है।"

"We agree with these recommendations. This is why we have proposed a common curriculum for all the students till the end of class X"—*Kothari Commission Report*, p. 208.

3 भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने कन्या महाविद्यालय, जलन्धर के दीक्षान्त समारोह के अवसर पर बालिकाओं के लिए विभिन्न पाठ्यक्रम की आवश्यकता का संकेत देते हुए कहा[1] :—"प्रकृति और ईश्वर ने मानव-जाति को स्थिर बनाए रखने का भार स्त्री पर रखा है और मनुष्य का सृजन पुरुष नहीं, अपितु स्त्रियाँ ही कर सकती हैं। इस गौरवपूर्ण तथा विशिष्ट दायित्व को स्त्रियों और समाज को समझ लेना चाहिए और चाहे जो भी शिक्षा-पद्धति हो, उसमें इसकी गरिमा या अनिवार्यता को ध्यान में रखना चाहिए।'

4 महात्मा गांधी ने बालकों एवं बालिकाओं के लिए विभिन्न पाठ्यक्रम की आवश्यकता का उल्लेख करते हुए लिखा[2] :—"जबकि आधार रूप में पुरुष एवं स्त्री—दोनों समान हैं, यह भी बिल्कुल सत्य है कि शरीर की बनावट में दोनों में महान् भेद है। अतः दोनों के कर्तव्य भी भिन्न होने चाहिए। इस तर्क के आधार पर महात्मा गांधी ने घोषित किया :—"पुरुषों एवं स्त्रियों की शिक्षा में उसी प्रकार का अन्तर किया जाना आवश्यक है, जैसा कि स्वयं प्रकृति माता ने उनमें किया है।"

"There is need for similar distinction between the education of males and females as has been made between them by Mother Nature."—M K Gandhi *True Education*, p 31

उपर्युक्त विरोधी विचारों पर टीका-टिप्पणी करना, हमारे अधिकार क्षेत्र से बाहर की बात है। हम तो केवल इतना कह सकते हैं कि हमें "हंसा मेहता समिति"

1. राजेन्द्र प्रसाद (सकलित) भारतीय शिक्षा, पृ० 60.
2 Mahatma Gandhi's Article in the *Harijan*, dated 25th of February, 1940.

और "कोठारी कमीशन" के विचारों में यथार्थता की एक भी झलक नहीं मिलती है, भले ही उनके सदस्य—भारत एवं विदेशों के अग्रगण्य शिक्षा-विशारद क्यों न हों। इसका कारण यह है कि सभी दार्शनिकों, मनोवैज्ञानिकों एवं शरीरवैज्ञानिकों ने स्त्रियों एवं पुरुषों के कार्यों, रुचियों, रुझानों, क्षमताओं आदि में स्पष्ट अन्तर किया है। इस अन्तर के कारण बालकों एवं बालिकाओं के पाठ्यक्रम अनिवार्यतः भिन्न होने चाहिए।

अब प्रश्न केवल यह रह जाता है कि शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर बालिकाओं के लिए किस प्रकार के पाठ्यक्रमों का निर्माण किया जाना चाहिए। हम भारत के वर्तमान आर्थिक, सामाजिक एवं औद्योगिक परिवर्तनों के संदर्भ में उनके विषय में कुछ सुझाव दे रहे हैं; यथा :—

1. प्राथमिक स्तर—अनेक बालिकाएँ, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों की, प्राथमिक स्तर के बाद अपना अध्ययन स्थगित कर देती हैं। अतः इस स्तर पर सामान्य शिक्षा के साथ-साथ अग्रांकित विषयों को भी पाठ्यक्रम में स्थान दिया जाना चाहिए :—सिलाई, कढ़ाई, बुनाई और कोई स्थानीय हस्त-शिल्प। ये सभी कार्य उनके भावी जीवन में लाभप्रद सिद्ध होंगे और आवश्यकता पड़ने पर आर्थिक सहायता भी देंगे।

2. माध्यमिक स्तर—अनेक बालिकाएँ, विशेष रूप से शहरी क्षेत्रों की, माध्यमिक स्तर तक ही शिक्षा प्राप्त करती हैं। अतः इस स्तर के पाठ्यक्रम में सामान्य शिक्षा के साथ-साथ ऐसे विषय भी होने चाहिए, जो उनको सुमाता एवं सुगृहिणी के रूप में प्रशिक्षण देने के अलावा उनको किसी व्यवसाय के लिए भी तैयार करें। इस दृष्टि से उनके पाठ्यक्रम में संगीत, चित्रकला, हस्तशिल्प, गृह-विज्ञान, सिलाई-कढ़ाई, भोजनशास्त्र, शिशु-संरक्षण एवं पूर्व-व्यावसायिक शिक्षा के विभिन्न विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिए। इन विषयों की शिक्षा प्राप्त करके, वे आवश्यकता पड़ने पर किसी सामाजिक संस्था या औद्योगिक केन्द्र में कार्य करके धन का अर्जन कर सकती हैं।

3. उच्च स्तर—स्वतन्त्र भारत में उच्च शिक्षा प्राप्त करके, महिलाएँ सामाजिक, राजनीतिक, प्रशासकीय आदि सभी क्षेत्रों में पुरुषों से प्रतिद्वन्द्विता करके, अपने को उनके समकक्ष सिद्ध कर रही हैं। यही कारण है कि सभी क्षेत्रों में उनकी माँग में निरन्तर वृद्धि हो रही है। अतः जैसा कि "राधाकृष्णन् कमीशन" ने लिखा है :—"स्त्रियों की शिक्षा विशेषतया परिवारों की दृष्टि से उनको अच्छी माता, अध्यापिका, डाक्टर और नर्स बनाने के लिए व्यावहारिक होनी चाहिए।"

"The education of women should give them a practical bias, especially from the point of view of families, for making them good mothers, teachers, doctors, and nurses."—*Radhakrishnan Commission.*

"राधाकृष्णन् कमीशन" के कथन को ध्यान मे रखते हुए, हम कह सकते हैं कि बालिकाओं के लिए बालकों के समान सामान्य एवं व्यावसायिक शिक्षा के पाठ्यक्रमों का आयोजन किया जाना चाहिए। साथ ही, उनके पारिवारिक जीवन को सुखी बनाने के लिए, उनके पाठ्यक्रम मे अग्रांकित विषयों का समावेश किया जाना चाहिए :—मातृत्व-कला, गृह-प्रबन्ध, गृह-परिचर्या और गृह-अर्थशास्त्र।

4 समस्या—दोषपूर्ण प्रशासन Faulty Administration—दोषपूर्ण शिक्षा-प्रशासन के कारण स्त्रियों एवं बालिकाओं की शिक्षा के विस्तार मे भारी अड़चन का अनुभव किया जा रहा है। प्रशासन दोषपूर्ण इसलिए है, क्योंकि दिल्ली, पंजाब, बिहार, बंगाल, हैदराबाद जैसे कुछ राज्यों को छोड़कर शेष सब राज्यों में स्त्री-शिक्षा के प्रशासन का भार—पुरुष अधिकारियों पर है। पुरुष होने के कारण न तो उनकी स्त्रियों एवं बालिकाओं की शिक्षा में विशेष रुचि होती है और न उनको विशिष्ट आवश्यकताओं की जानकारी। अतः वे स्त्रियों एवं बालिकाओं के लिए उचित प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था करके, उसका वांछनीय विस्तार करने में सफलता प्राप्त नहीं करते हैं।

समाधान —प्रशासन में सुधार Reform in Administration—उपर्युक्त समस्या का समाधान करने के लिए शिक्षा-प्रशासन में सुधार किया जाना अनिवार्य है। इस लक्ष्य की प्राप्ति तभी हो सकती है, जब स्त्रियों एवं बालिकाओं की शिक्षा के प्रशासन का भार पुरुषों के बजाय स्त्रियों को सौंपा जाय। इस दृष्टि से यह आवश्यक है कि प्रत्येक राज्य के शिक्षा-विभाग में एक शिक्षा-उपसचालिका की और उसे प्रशासन-कार्य में सहायता देने के लिए विद्यालय-निरीक्षिकाओं एवं उप-निरीक्षिकाओं की नियुक्ति की जाय। स्त्रियाँ होने के कारण उनकी स्त्रियों एवं बालिकाओं की शिक्षा में रुचि होगी। साथ ही, वे उनकी विशिष्ट आवश्यकताओं को भली-भाँति समझेंगी। अतः वे उनकी शिक्षा के लिए उपयुक्त कार्यक्रमों का निर्माण करेंगी और उनको सफलतापूर्वक क्रियान्वित करके, स्त्री एवं बालिका-शिक्षा के विस्तार में योग देंगी।

5. समस्या—सरकार की उपेक्षा Indifference of Government—सरकार द्वारा स्त्रियों एवं बालिकाओं की शिक्षा की उपेक्षा, उसके लिए अभिशाप सिद्ध हो रही है। हमारे इस कथन को चुनौती नहीं दी जा सकती है कि सरकार की जितनी रुचि बालकों की शिक्षा में है, उससे कई गुना कम बालिकाओं की शिक्षा में है। इसके बजाय यह कहना अधिक न्यायसंगत होगा कि सरकार—बालकों की शिक्षा को प्रोत्साहित और बालिकाओं की शिक्षा को निरुत्साहित करती है।

स्त्रियों एवं बालिकाओं की शिक्षा के प्रति सरकार के इस रवैये को सिद्ध करने के लिए प्रमाणों का अभाव नहीं है। यदि सरकार को कभी व्यय में कमी करने की आवश्यकता पड़ती है तो वह इस कमी को बालकों की शिक्षा के बजाय बालिकाओं

की शिक्षा में करती है। उदाहरणार्थ—भारत-चीन-युद्ध के समय जब देश में आर्थिक संकट की घोषणा की गई, तब सब राज्यों ने इस संकट का सामना करने के लिए बालिका-शिक्षा के व्यय में कटौती की और यह कटौती 15 लाख रुपये की थी।[1]

कितनी हास्यास्पद नीति है। एक ओर तो सरकार - बालिका-शिक्षा के प्रसार को प्राथमिकताओं की सूची में स्थान देती है, और दूसरी ओर उस पर व्यय किए जाने वाले धन में कमी करती है। सरकार की इस हास्यास्पद नीति पर व्यंग्य करते हुए, डा० मुकर्जी ने लिखा है :—'यह निश्चय रूप से कुनियोजित प्राथमिकताओं का दुःखद उदाहरण है।"

'This is surely a sad case of badly placed priorities."—Dr. S. N. Mukerji : *op. cit.*, p. 250.

समाधान—सरकार की नीति में परिवर्तन : Change in Government's Policy—स्त्रियों एवं बालिकाओं की शिक्षा का समुचित प्रसार तभी हो सकता है, जब सरकार उसकी उपेक्षा करने की अपनी नीति में परिवर्तन करे। जब तक सरकार ऐसा नहीं करेगी और बालिकाओं की शिक्षा के प्रसार में अदम्य उत्साह एवं निस्स्वार्थ भावना से नहीं जुट जायगी, तब तक देश के समाज-सेवकों या सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा हिमालय पर्वत से कुमारी अन्तरीप तक फैली हुई स्त्री-अशिक्षा का और शिक्षा के अभाव के कारण सदियों से बेसुधी में पड़ी हुई नारी-जाति का उद्धार किया जाना असम्भव होगा। अतः यह अत्यन्त आवश्यक है कि सरकार अपनी स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी नीति में परिवर्तन करे और उसका प्रसार, विकास एवं विस्तार करने के अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक हो।

यह परिवर्तन इसलिए और भी अधिक आवश्यक है, क्योंकि सरकार ने संविधान में महिलाओं को पुरुषों के समान समस्त अधिकारों को प्रदान करने की उद्घोषणा की है। इस उद्घोषणा को साकार रूप प्रदान करना, सरकार का राजनीतिक कर्तव्य है। इस कर्तव्य का पालन करना, सरकार का चरम लक्ष्य होना चाहिए, और इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसे निम्नांकित सिद्धान्तों के आधार पर अपनी स्त्री-शिक्षा-सम्बन्धी नीति का निर्माण करना चाहिए :—

1. बालकों एवं बालिकाओं की संख्या के अनुपात में बालिका (एवं स्त्री) शिक्षा के लिए धनराशि निर्धारित करना।
2. उक्त धनराशि को केवल बालिका-शिक्षा पर व्यय करना और उसमें कमी न करना।
3. उक्त धनराशि का बालिका-शिक्षा के समस्त स्तरों के लिए आवश्यकतानुसार विभाजन करना।

1. *Times of India*, February 27, 1966.

6. समस्या—अध्यापिकाओं का अभाव : Dearth of Women Teachers—"पाँचवीं पंचवर्षीय योजना" के अनुसार :—"अध्यापिकाओं की अपर्याप्त पूर्ति की समस्या, बालिकाओं के कम नामांकन का प्रधान कारण है।"

"The problem of the inadequate supply of women teachers is a major reason for the low enrolment of girls."—*Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol II, p. 197.

अध्यापिकाओं की अपर्याप्त पूर्ति अर्थात् उनका अभाव प्रारम्भ से ही है और शिक्षा के सब स्तरों पर है। हम अध्यापकों की तुलना में उनके अभाव को नीचे की तालिका में प्रदर्शित कर रहे हैं —

तालिका—अध्यापिकाएँ 1950-1965[1]

विवरण	1950-51	1955-56	1960-61	1965-66
निम्न प्राथमिक स्कूल	18%	20%	21%	21%
उच्चतर प्राथमिक स्कूल	18%	19%	32%	37%
माध्यमिक स्कूल	19%	23%	27%	28%
व्यावसायिक स्कूल	23%	22%	17%	17%
व्यावसायिक कॉलिज	7%	8%	12%	11%
उच्च शिक्षा-संस्थाएँ	10%	13%	16%	17%

अध्यापिकाओं के अभाव के अनेक कारण हैं। स्त्रियों में शिक्षा का कम प्रसार ...ने के कारण शिक्षित स्त्रियों का अभाव है। जो स्त्रियाँ शिक्षित भी हैं, उनमें से ...िक इच्छा होते हुए भी नौकरी नहीं कर पाती हैं। इसका कारण यह है कि उनके ...ता-पिता, सास-ससुर या पति, उनसे नौकरी करवाना अपनी पारिवारिक या ...ाजिक प्रतिष्ठा के प्रतिकूल समझते हैं।

अधिकांश स्त्रियाँ उसी नगर या ग्राम में नौकरी चाहती हैं, जिसमें वे निवास ...ी हैं। इसका एक कारण यह है कि अन्य स्थानों में उनको सुरक्षा, आवास आदि ...विधाएँ प्राप्त होना कठिन होता है। दूसरा कारण यह है कि यदि वे अविवाहित ... उनके अभिभावक उनको अन्य स्थानों में नौकरी करने की अनुमति नहीं ...

अध्यापिकाओं के रूप में कार्य करने वाली कुछ स्त्रियाँ, विवाह के पश्चात् ...रिक झंझटों में उलझ जाने के कारण नौकरी छोड़ देती हैं। कुछ स्त्रियाँ अपन...

[1] ...othari Commission Report, p. 63.

पतियों के साथ किसी ऐसे स्थान में पहुँच जाती हैं, जहाँ के विचित्र वातावरण वाले विद्यालयों में उनकी कार्य करने की इच्छा नहीं होती है। कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी हैं, जो उत्तम आर्थिक स्थिति का वर प्राप्त हो जाने पर अल्प वेतन वाले अध्यापिका के पद पर कार्य करना अपना अपमान समझती हैं।

प्रशिक्षित अध्यापिकाओं का विशेष रूप से अभाव है। इसका कारण यह है कि स्त्री-प्रशिक्षण की व्यवस्था केवल बड़े नगरों में है। अतः आर्थिक या किसी अन्य कठिनाई के कारण उन नगरों से दूर निवास करने वाली अनेक स्त्रियाँ प्रशिक्षण प्राप्त नहीं कर पाती हैं।

नगरों की अपेक्षा ग्रामों में अध्यापिकाओं का अधिक अभाव है, क्योंकि ग्रामों में जीवन-यापन की सामान्य वस्तुओं की पूर्ति में अत्यधिक कठिनाई होती है। इसके अतिरिक्त, ग्रामों में चिकित्सा, मनोरंजन, सुरक्षित आवास आदि की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हो पाती हैं।

समाधान—अध्यापिकाओं की पूर्ति : Supply of Women Teachers—अध्यापिकाओं के अभाव की पूर्ति करने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व, सरकार पर है और वह अपने इस उत्तरदायित्व के प्रति सजग है। वह अध्यापिकाओं के अभाव को दूर करने के लिए अग्रांकित उपायों का प्रयोग कर रही है :—

1. अध्यापिकाओं के लिए बिना किराए के क्वार्टरों का निर्माण।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करने वाली अध्यापिकाओं को विशेष भत्ता।
3. वयस्क महिलाओं को अध्यापिकाओं के रूप में तैयार करने के लिए संक्षिप्त पाठ्यक्रमों का संचालन।
4. बालिकाओं को प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए छात्रवृत्तियाँ देने का कार्यक्रम। यह कार्यक्रम "दूसरी योजना" में आरम्भ किया गया था और "पाँचवीं योजना" में भी जारी रहेगा। "पाँचवीं पंचवर्षीय योजना" के अनुसार[1] :—"अध्यापिकाओं के अभाव का समाधान करने के लिए स्थानीय बालिकाओं को उनकी शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए इस शर्त पर छात्रवृत्तियाँ दी जायेंगी कि वे शिक्षण-व्यवसाय को ग्रहण करें।"

अध्यापिकाओं की संख्या में वृद्धि करने के लिए सरकार द्वारा प्रयोग किए जाने वाले सभी उपाय प्रशंसनीय हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त, कुछ अन्य उपाय भी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं; यथा :—

1. स्त्री-प्रशिक्षण-संस्थाओं की संख्या में वृद्धि।
2. अध्यापिकाओं के वेतनमान में पर्याप्त वृद्धि।
3. अध्यापिकाओं के लिए अल्पकालीन रोज़गारों की व्यवस्था।

---

1 *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. II, p. 197.

4. स्थानीय शिक्षित महिलाओं को अध्यापन-कार्य करने के लिए प्रोत्साहन ।
5. अध्यापकों की शिक्षित पत्नियों को शिक्षण-व्यवसाय में प्रवेश करने के लिए प्रोत्साहन ।
6. शिक्षण-व्यवसाय में पदार्पण करने की इच्छा रखने वाली अधिक आयु की महिलाओं को आयु-सीमा से मुक्ति ।
7. वयस्क महिलाओं को अधिक शिक्षित बनाने एवं प्रशिक्षित करने के लिए संक्षिप्त एवं पत्राचार पाठ्यक्रमों की सुविधाओं में विस्तार ।
8. कम शिक्षित एवं अप्रशिक्षित स्त्रियों की नियुक्ति और उनको अपनी शैक्षिक योग्यताओं की वृद्धि करने एवं प्रशिक्षण प्राप्त करने में सहायता ।

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Describe briefly the progress of women's education in India under the Five-Year Plans
पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में भारत में स्त्री-शिक्षा की प्रगति का संक्षेप में वर्णन कीजिए ।
2. What recommendations have been made by the Education Commission (1966) regarding women's education? How far can they help in improving the condition of women's education ?
स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में "शिक्षा-आयोग" (1966) ने क्या सिफारिशें की हैं ? वे स्त्री-शिक्षा की दशा में सुधार करने में कहाँ तक सहायता कर सकती हैं ?
3. What are the main problems of women's education in India ? Point out satisfactory solutions of these problems.
भारत में महिलाओं की शिक्षा की प्रमुख समस्याएँ क्या हैं ? इन समस्याओं के सन्तोषजनक समाधान बताइए ।
4. "Differentiation of curricula for boys and girls is unnecessary." Comment.
"बालकों एवं बालिकाओं के लिए पाठ्यक्रमों में अन्तर अनावश्यक है ।" इस कथन का विवेचन कीजिए ।

पतियों के साथ किसी ऐसे स्थान में पहुँच जाती हैं, जहाँ के विचित्र वातावरण वाले विद्यालयों में उनकी कार्य करने की इच्छा नहीं होती है। कुछ स्त्रियाँ ऐसी भी हैं, जो उत्तम आर्थिक स्थिति का वर प्राप्त हो जाने पर अल्प वेतन वाले अध्यापिका के पद पर कार्य करना अपना अपमान समझती हैं।

प्रशिक्षित अध्यापिकाओं का विशेष रूप से अभाव है। इसका कारण यह है कि स्त्री-प्रशिक्षण की व्यवस्था केवल बड़े नगरों में है। अत: आर्थिक या किसी अन्य कठिनाई के कारण उन नगरों से दूर निवास करने वाली अनेक स्त्रियाँ प्रशिक्षण प्राप्त नहीं कर पाती हैं।

नगरों की अपेक्षा ग्रामों में अध्यापिकाओं का अधिक अभाव है, क्योंकि ग्रामों में जीवन-यापन की सामान्य वस्तुओं की पूर्ति में अत्यधिक कठिनाई होती है। इसके अतिरिक्त, ग्रामों में चिकित्सा, मनोरंजन, सुरक्षित आवास आदि की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हो पाती हैं।

समाधान—अध्यापिकाओं की पूर्ति : Supply of Women Teachers—अध्यापिकाओं के अभाव की पूर्ति करने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व, सरकार पर है और वह अपने इस उत्तरदायित्व के प्रति सजग है। वह अध्यापिकाओं के अभाव को दूर करने के लिए अग्रांकित उपायों का प्रयोग कर रही है :—

1. अध्यापिकाओं के लिए बिना किराए के क्वार्टरों का निर्माण।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में कार्य करने वाली अध्यापिकाओं को विशेष भत्ता।
3. वयस्क महिलाओं को अध्यापिकाओं के रूप में तैयार करने के लिए संक्षिप्त पाठ्यक्रमों का संचालन।
4. बालिकाओं को प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए छात्रवृत्तियाँ देने का कार्यक्रम। यह कार्यक्रम "दूसरी योजना" में आरम्भ किया गया था और "पाँचवीं योजना" में भी जारी रहेगा। "पाँचवीं पंचवर्षीय योजना" के अनुसार[1] :—"**अध्यापिकाओं के अभाव का समाधान करने के लिए स्थानीय बालिकाओं को उनकी शिक्षा और प्रशिक्षण के लिए इस शर्त पर छात्रवृत्तियाँ दी जायेंगी कि वे शिक्षण-व्यवसाय को ग्रहण करें।**"

अध्यापिकाओं की संख्या में वृद्धि करने के लिए सरकार द्वारा प्रयोग किए जाने वाले सभी उपाय प्रशंसनीय हैं। किन्तु इनके अतिरिक्त, कुछ अन्य उपाय भी उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं; यथा :—

1. स्त्री-प्रशिक्षण-संस्थाओं की संख्या में वृद्धि।
2. अध्यापिकाओं के वेतनमान में पर्याप्त वृद्धि।
3. अध्यापिकाओं के लिए अल्पकालीन रोजगारों की व्यवस्था।

---

1 *Draft Fifth Five-Year Plan*, Vol. II, p. 197.

4. स्थानीय शिक्षित महिलाओं को अध्यापन-कार्य करने के लिए प्रोत्साहन ।
5. अध्यापकों की शिक्षित पत्नियों को शिक्षण-व्यवसाय में प्रवेश करने के लिए प्रोत्साहन ।
6. शिक्षण-व्यवसाय में पदार्पण करने की इच्छा रखने वाली अधिक आयु की महिलाओं को आयु-सीमा से मुक्ति ।
7. वयस्क महिलाओं को अधिक शिक्षित बनाने एवं प्रशिक्षित करने के लिए संक्षिप्त एवं पत्राचार पाठ्यक्रमों की सुविधाओं में विस्तार ।
8. कम शिक्षित एवं अप्रशिक्षित स्त्रियों की नियुक्ति और उनको अपनी शैक्षिक योग्यताओं की वृद्धि करने एवं प्रशिक्षण प्राप्त करने में सहायता ।

UNIVERSITY QUESTIONS

1. Describe briefly the progress of women's education in India under the Five-Year Plans
पंचवर्षीय योजनाओं की अवधि में भारत में स्त्री-शिक्षा की प्रगति का संक्षेप में वर्णन कीजिए ।
2. What recommendations have been made by the Education Commission (1966) regarding women's education? How far can they help in improving the condition of women's education?
स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में "शिक्षा-आयोग" (1966) ने क्या सिफारिशें की हैं? वे स्त्री-शिक्षा की दशा में सुधार करने में कहाँ तक सहायता कर सकती हैं?
3. What are the main problems of women's education in India? Point out satisfactory solutions of these problems.
भारत में महिलाओं की शिक्षा की प्रमुख समस्याएँ क्या हैं? इन समस्याओं के सन्तोषजनक समाधान बताइए ।
4. "Differentiation of curricula for boys and girls is unnecessary." Comment.
"बालकों एवं बालिकाओं के लिए पाठ्यक्रमों में अन्तर अनावश्यक है ।" इस कथन का विवेचन कीजिए ।

30

अपव्यय व अवरोधन

WASTAGE & STAGNATION

"The extent of wastage and stagnation in our system of education is very large."—*Kothari Commission Report.*

विषय-प्रवेश

जब कोई बालक (या बालिका) किसी शिक्षा-संस्था में प्रवेश करता है, तब हम उससे दो बातों की आशा करते हैं। पहली, वह अपनी शिक्षा को पूर्ण करने के पश्चात् ही संस्था को छोड़ेगा और इसलिए वह धन, शक्ति एवं समय के अपव्यय का कारण नहीं बनेगा। दूसरी, वह प्रति वर्ष, परीक्षा में उत्तीर्ण होगा और इसलिए उसकी शिक्षा में अवरोध उत्पन्न नहीं होगा। किन्तु, अनेक बालक हमारी आशा को पूर्ण नहीं करते हैं। उनमें से कुछ अपनी शिक्षा को पूर्ण करने से पहले ही संस्था को छोड़ देते हैं और कुछ परीक्षा में अनुत्तीर्ण होते हैं। इन दोनों बातों का परिणाम होता है—अपव्यय एवं अवरोधन। ये शिक्षा के प्रत्येक स्तर पर मिलते हैं और अति विशाल मात्रा में। "कोठारी कमीशन" के अनुसार[1] :—"हमारी शिक्षा-व्यवस्था में अपव्यय एवं अवरोधन की मात्रा अत्यन्त विशाल है।"

अपव्यय एवं अवरोधन के इस संक्षिप्त परिचय के पश्चात्, हम इनका विस्तृत विवेचन प्रस्तुत कर रहे हैं।

अपव्यय का अर्थ व परिभाषा

Meaning & Definition of Wastage

प्रत्येक स्तर पर शिक्षा की एक निश्चित अवधि है। उदाहरणार्थ—निम्न

1. *Kothari Commission Report,* p. 154.

प्राथमिक शिक्षा की अवधि 4 वर्ष की और उच्चतर प्राथमिक शिक्षा की अवधि 3 वर्ष की है। जो छात्र इन स्तरों की शिक्षा प्राप्त करते हैं, उनसे यह आशा की जाती है कि वे निश्चित अवधि में अपनी शिक्षा समाप्त कर लेंगे। किन्तु, अनेक छात्र निश्चित अवधि से पहले ही किसी कारणवश अपना अध्ययन स्थगित कर देते हैं। ऐसे छात्रों की शिक्षा अपूर्ण रह जाती है और इसलिए उन पर धन, शक्ति और समय का अपव्यय होता है।

प्राथमिक शिक्षा में होने वाले "अपव्यय" का उल्लेख सर्वप्रथम "हर्टाग समिति" ने किया। उसने यह विचार प्रकट किया कि जो छात्र प्राथमिक शिक्षा के पाठ्यक्रम को पूर्ण नहीं करते हैं, वे साक्षर नहीं हो पाते हैं। अतः उन पर धन, शक्ति एवं समय का अपव्यय होता है। अपने इस विचार के आधार पर 'हर्टाग समिति' ने "अपव्यय" का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा,—"अपव्यय से हमारा अभिप्राय है—प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम पूर्ण होने से पहले बच्चों को विद्यालय की किसी कक्षा से हटा लेना।"

"By *wastage* we mean the premature withdrawal of children from school at any stage before the completion of the primary course."—*Hartog Committee Report*, p. 47

अवरोधन का अर्थ व परिभाषा
Meaning & Definition of Stagnation

हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं कि छात्रों से यह आशा की जाती है कि वे प्रत्येक स्तर की शिक्षा को एक निश्चित अवधि में समाप्त कर लेंगे। किन्तु, अनेक छात्र किसी कारणवश परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाते हैं और एक कक्षा में एक से अधिक वर्ष व्यतीत करते हैं। ऐसे छात्रों की शिक्षा में "स्थिरता", "गतिहीनता" या "अवरोधन" उत्पन्न हो जाता है।

प्राथमिक शिक्षा में होने वाले "अवरोधन" का भी उल्लेख सर्वप्रथम 'हर्टाग समिति' ने ही किया और इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा,—"अवरोधन से हमारा अभिप्राय है—किसी बच्चे का किसी निम्न कक्षा में एक वर्ष से अधिक रोका जाना।"

"By *stagnation* we mean the retention in a lower class of a child for a period of more than one year."—*Hartog Committee Report*, p. 47.

अपव्यय व अवरोधन : स्वरूप व परिणाम
Wastage & Stagnation : Nature & Result

"अपव्यय" एवं "अवरोधन"—सिक्के के दो पहलू हैं और दोनों के ही कारण छात्र-संख्या में निरन्तर ह्रास होता चला जाता है। इन दोनों में 'अपव्यय'—शब्द

या ह्रास का अधिक शक्तिशाली कारण है। "हर्टाग समिति" के अनुसार :—"**हमें अपनी खोजों से ज्ञात हुआ है कि अपव्यय अधिक शक्तिशाली कारण है।**"

"Our enquiries show that by far the more important factor is *wastage*"—*Hartog Committee Report*, p. 47.

"अपव्यय" एवं "अवरोधन" के भयावह परिणाम के चित्र को सन् 1972 में शिक्षा-मन्त्री प्रोफ़ेसर नुरुल हसन ने इन शब्दों में अंकित किया[1] :—पिछले वर्षों में 100 बच्चों में से 80 ने कक्षा 1 में प्रवेश लिया। 11 वर्ष के होने पर उनमें से 40 ने पढ़ना छोड़ दिया। शेष 40 में से केवल 25 ने 14 वर्ष की आयु तक विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त की। 17 वर्ष की आयु में उनकी संख्या घट कर 10 और 21 वर्ष की आयु में 2 रह गई। इस प्रकार, 100 बच्चों में से केवल 2 ने 21 वर्ष की आयु तक शिक्षा ग्रहण की।

अपव्यय व अवरोधन : कारण व उपचार
Wastage & Stagnation : Causes & Remedies

"कोठारी कमीशन" के शब्दों में :—"**सिर-दर्द और बुखार के समान अपव्यय एवं अवरोधन स्वयं रोग नहीं हैं। वे वास्तव में शिक्षा-व्यवस्था के अन्य रोगों के लक्षण हैं।**"

"Wastage and stagnation, like headache and fever, are not diseases in themselves : they are really symptoms of other diseases in the educational system."—*Kothari Commission Report*, p. 161.

"कोठारी कमीशन" के कथन का अभिप्राय यह है कि "अपव्यय" एवं "अवरोधन" स्वयं दोष नहीं हैं वरन् शिक्षा-व्यवस्था के दोषों के परिणाम हैं। हम इस अभिप्राय को ध्यान में रखते हुए, प्राथमिक शिक्षा में "अपव्यय" एवं "अवरोधन" के कारणों और उनके निवारण के उपायों का वर्णन कर रहे हैं; यथा :—

1. कारण—दोषपूर्ण प्रशासन : Faulty Administration—प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन का पहला कारण—दोषपूर्ण प्रशासन है। इस प्रशासन का भार—स्थानीय संस्थाओं पर है, जो धनाभाव में ग्रस्त हैं। अतः उनका निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा के प्रति उदासीन होना स्वाभाविक है। इसके परिणामस्वरूप, प्राथमिक शिक्षा के प्रशासन में चार मुख्य दोष प्रकट हो गए हैं, जो अपव्यय एवं अवरोधन के लिए उत्तरदायी हैं।

पहला, प्राथमिक विद्यालयों की संख्या के अनुपात में शिक्षा-निरीक्षकों की संख्या अत्यन्त अल्प है। अतः वे अपने अधीन सब विद्यालयों का नियमित रूप से निरीक्षण कर पाते हैं। इसके अतिरिक्त, उनको यातायात, परिवहन, रात्रि-विश्राम

---

1 *The Hindustan Times*, May 5, 1972.

आदि की सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं। अत: वे दूर के विद्यालयों का, विशेष रूप से ग्राम-विद्यालयों का, नियमित निरीक्षण अपने सेवा-काल में सम्भवतः कभी नहीं करते हैं। नियमित निरीक्षण न करने के कारण, वे अपव्यय एवं अवरोधन के कारणों का अध्ययन नहीं कर पाते हैं। अतः वे उनके निवारण के उपायों के बारे में कभी सोचते भी नहीं हैं।

दूसरा, कम आयु एवं कम योग्यता के बालकों को उच्च कक्षाओं में प्रवेश मिल जाता है। फलस्वरूप, कक्षा में छोटे और बड़े, कम और अधिक मानसिक योग्यता वाले छात्र होते हैं। इससे कक्षा के बालकों में होने वाली समरूपता नष्ट हो जाती है। इसका कम आयु और कम योग्यता वाले बालकों पर बड़ा अनिष्टकारी प्रभाव पड़ता है। वे या तो परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो जाते हैं, या अपनी निम्नता से लज्जित होकर शिक्षा की ओर से अपना मुँह मोड़ लेते हैं।

तीसरा, बालकों को प्रत्येक कक्षा में वर्ष में किसी समय भी प्रवेश करने की अनुमति मिल जाती है। इनमें से अनेक बालक अपना पाठ्यक्रम पूर्ण नहीं कर पाते हैं। फलस्वरूप, वे वार्षिक परीक्षा में असफल हो जाते हैं।

चौथा, बालकों की नियमित उपस्थिति पर बल नहीं दिया जाता है। अतः वे स्वेच्छा से विद्योपार्जन के लिए विद्यालय में कभी-कभी आते हैं। इस प्रकार के बालक या तो बुरी संगति में पड़ कर पढ़ना छोड़ देते हैं या परीक्षा को एक से अधिक वर्ष में आराम से पास करते हैं।

उपचार—प्रशासन में सुधार : Reform in Administration—प्रचलित शिक्षा-प्रशासन से होने वाले अपव्यय एवं अवरोधन का निराकरण करने के लिए, उसमें सुधार किया जाना आवश्यक है। यह तभी सम्भव है, जब स्थानीय संस्थाएँ निम्नांकित आधारों पर प्राथमिक शिक्षा के प्रशासन की एक निश्चित नीति का निर्धारण करें :—

1. प्राथमिक विद्यालयों की संख्या के अनुपात में शिक्षा-निरीक्षकों की संख्या में वृद्धि की जाय।
2. शिक्षा-निरीक्षकों को यातायात, परिवहन, रात्रि-विश्राम आदि की सुविधाएँ प्रदान की जायँ।
3. विद्यालय-प्रवेश की आयु, समय, योग्यता एवं उपस्थिति-दिवसों के विषय में निश्चित नियमों का निर्माण किया जाय और उनका कठोरतापूर्वक पालन किया जाय।

2. कारण – दोषपूर्ण पाठ्यक्रम : Defective Curriculum—प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन का दूसरा कारण—दोषपूर्ण पाठ्यक्रम है। इस पाठ्यक्रम के दोषपूर्ण होने के पाँच मुख्य कारण हैं, यथा —

पहला, इस पाठ्यक्रम में विषयों की संख्या बहुत अधिक है। अतः अल्प आयु के बालकों एवं बालिकाओं के लिए उन सब का भली-भाँति अध्ययन करना असम्भव है।

दूसरा, यह पाठ्यक्रम, बालकों एवं बालिकाओं की रुचियों एवं आवश्यकताओं में किसी प्रकार का अन्तर नहीं करता है।

तीसरा, यह पाठ्यक्रम कठोर एवं एकमार्गीय है, क्योंकि ग्रामों एवं नगरों के सब बालकों एवं बालिकाओं को एक ही पाठ्यक्रम का अध्ययन करना पड़ता है।

चौथा, यह पाठ्यक्रम अरोचक एवं अव्यावहारिक है, क्योंकि यह बालकों को "करके सीखने" (Learning by doing) का कोई अवसर प्रदान नहीं करता है।

पाँचवाँ, जो विद्यालय, बेसिक प्रकार के नहीं हैं, उनमें हस्तशिल्प की शिक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है। अतः यह उनकी क्रियाशीलता की उपेक्षा करता है।

उक्त सभी कारणों के फलस्वरूप अनेक बालक परीक्षा में अनुत्तीर्ण होते हैं और अनेक विद्या-देवी की आराधना की इतिश्री कर देते हैं।

उपचार—पाठ्यक्रम में सुधार : Reform in Curriculum—प्रचलित पाठ्यक्रम से होने वाले अपव्यय एवं अवरोधन का निवारण करने के लिए, उसमें निम्नलिखित आधारों पर सुधार किया जाना आवश्यक है :—

1. पाठ्यक्रम में स्थानीय वातावरण एवं आवश्यकताओं के अनुसार विषयों को स्थान दिया जाय।
2. पाठ्यक्रम के वर्तमान विषयों में कमी की जाय या बालकों एवं बालिकाओं को अपनी रुचियों के अनुसार विषयों का चयन करने की स्वतंत्रता दी जाय।
3. पाठ्यक्रम को रोचक एवं व्यावहारिक बनाने के लिए, उसमें हस्तशिल्प, कार्य-अनुभव एवं सृजनात्मक क्रियाओं को सम्मिलित किया जाय।
4. ग्रामों एवं नगरों और बालकों एवं बालिकाओं के लिए विभिन्न पाठ्यक्रमों का निर्माण किया जाय।

3. कारण—दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली : Defective Examination System—प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन का तीसरा कारण—दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली है। के० जी० सैयदैन के अनुसार, प्राथमिक शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्रों में से लगभग 40% परीक्षा में अनुत्तीर्ण होते हैं।[1]

छात्रों की इस विशाल संख्या की असफलता के लिए उत्तरदायी है—प्रचलित परीक्षा-प्रणाली, जो केवल उनकी स्मरण करने या रटने की शक्ति की कसौटी है और जो उनके सम्पूर्ण वर्ष के कार्य के प्रति कोई ध्यान नहीं देती है। यह सम्भव है कि वार्षिक परीक्षा के अवसर पर कुछ छात्र रोगग्रस्त हों या सम्भावित प्रश्नों को न रट

---

1. K. G. Saiyidain : *Compulsory Education in India*, p. 58.

पाए हों। ये छात्र, वास्तव में, निरपराध होते हैं। फिर भी उनको वार्षिक परीक्षा में असफल होने का अकारण दण्ड मिलता है।

उपचार—परीक्षा-प्रणाली में सुधार : Reform in Examination System—प्रचलित परीक्षा-प्रणाली से होने वाले अपव्यय एवं अवरोधन का विनाश करने के लिए, उसमें अग्रांकित आधारों पर सुधार किया जाना आवश्यक है :—

1. निम्न प्राथमिक स्तर पर लिखित परीक्षाओं के बजाय मौखिक परीक्षाओं एवं निरीक्षण विधियों (Observation Techniques) का प्रयोग किया जाय।
2. उच्चतर प्राथमिक स्तर पर लिखित परीक्षाओं के साथ-साथ मौखिक परीक्षाओं का प्रयोग किया जाय।
3. दोनों स्तरों पर प्रत्येक छात्र के सम्पूर्ण वर्ष के कार्य का विवरण—अभिलेख-पत्र में रखा जाय और कक्षा-उन्नति के समय उसे विशेष महत्त्व दिया जाय।

4. कारण—विद्यालयों की निम्न कोटि : Low Quality of Schools—प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन का चौथा कारण है—विद्यालयों की निम्न कोटि। "राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्" ने अपने एक सर्वेक्षण के आधार पर प्राथमिक विद्यालयों का जो अप्रशंसित चित्र अंकित किया है, उसमें अनेक बिन्दुओं का बाहुल्य है[1] :—अधिकांश प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा के उपकरणों और योग्य एवं प्रशिक्षित शिक्षकों का अभाव है। उनमें परम्परागत एवं प्रभावहीन शिक्षण-विधियों का प्रयोग किया जाता है। उनका शिक्षण-स्तर निम्न है। उनमें पूरा पाठ्यक्रम कभी समाप्त नहीं किया जाता है। उनके भवनों में स्थान का अभाव है और वे स्वस्थ वातावरण में स्थित नहीं हैं। उनमें सहायक सेवाओं के दर्शन नहीं होते हैं। उनमें पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओं का कभी आयोजन नहीं किया जाता है। उनमें से अनेक एक शिक्षक वाले विद्यालय हैं।

इतनी निम्न कोटि के विद्यालयों से यह आशा करना व्यर्थ है कि वे छात्रों की शैक्षिक एवं मानसिक प्रगति में योग देंगे। इसके विपरीत, उनसे यह आशा करना व्यर्थ नहीं है कि वे अपव्यय एवं अवरोधन की वृद्धि में अपूर्व सहायता देंगे।

उपचार—विद्यालयों का सुधार : Improvement of Schools—निम्न कोटि के विद्यालयों से होने वाले अपव्यय एवं अवरोधन का उन्मूलन करने के लिए, उनका सुधार किया जाना आवश्यक है। इस कार्य का उत्तरदायित्व स्वयं सरकार को अपने ऊपर लेना चाहिए और अग्रांकित दिशाओं में सक्रिय पग उठाने चाहिए :—

1. NCERT : *Wastage & Stagnation in Primary & Middle Schools In India.*

शिक्षा के उपकरणों में वृद्धि, योग्य एवं प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति, प्रगतिशील एवं मनोवैज्ञानिक शिक्षण-विधियों का प्रयोग, शिक्षण-स्तर का उन्नयन, सम्पूर्ण पाठ्यक्रम की समाप्ति, स्वस्थ वातावरण में उपयुक्त विद्यालय-भवनों का निर्माण, सहायक सेवाओं एवं पाठ्यक्रम-सहगामी क्रियाओं की व्यवस्था, और एक शिक्षक वाले विद्यालयों की समाप्ति।

आज से लगभग 20 वर्ष पूर्व सरकार का ध्यान प्राथमिक विद्यालयों की निम्न कोटि के प्रति आकृष्ट हुआ था और उसने लिखित रूप में यह स्वीकार किया था[1] :—"एक अध्यापक वाले प्राथमिक विद्यालयों ने अपव्यय में अत्यधिक योग दिया है। विद्यालयों के अपूर्ण शिक्षा-उपकरण, अनुपयुक्त भवन और नीरस एवं उत्साहहीन वातावरण दुर्भाग्य से छात्रों को अध्ययन करते रहने के लिए प्रभावपूर्ण प्रेरणा प्रदान नहीं कर पाते हैं।"

खेद का विषय है कि प्राथमिक विद्यालयों की शोचनीय दशा और उससे उत्पन्न होने वाले अपव्यय एवं अवरोधन से भली-भाँति अवगत होते हुए भी, सरकार ने उनमें सुधार करने के लिए अभी तक कोई रचनात्मक क़दम नहीं उठाया है। जब तक सरकार अपने इस उत्तरदायित्व को हृदयंगम नहीं करेगी और उसे पूर्ण करके विद्यालयों को उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित नहीं करेगी, तब तक उन पर अपव्यय एवं अवरोधन का अखंड साम्राज्य स्थापित रहेगा।

5. कारण—सामाजिक कुरीतियाँ : Social Evils—प्राथमिक शिक्षा में होने वाले अपव्यय एवं अवरोधन का पाँचवाँ कारण—सामाजिक कुरीतियाँ हैं। इनका सम्बन्ध मुख्यतः बालिकाओं से है। भारतीय समाज को अपयश से निमज्जित करने वाली कुछ विश्व-विदित कुरीतियाँ हैं—पर्दा-प्रथा का प्रचलन, बाल-विवाह का बोलबाला और सह-शिक्षा का विरोध। इन कुरीतियों के कारण अधिक आयु की बालिकाओं के विद्यालय-गमन पर स्थायी अंकुश लगा दिया जाता है। इसका परिणाम होता है—अपव्यय।

उपचार—सामाजिक कुरीतियों की समाप्ति : Abolition of Social Evils—सामाजिक कुरीतियों से होने वाले अपव्यय एवं अवरोधन को अदृश्य करने के लिए, इन कुरीतियों की समाप्ति अनिवार्य शर्त है। इस कार्य में सफलता प्राप्त करने के लिए दो उपाय विशेष रूप से उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं :—बालिका-शिक्षा के महत्त्व एवं आवश्यकता का व्यापक प्रचार और सामाजिक कुरीतियों को विनष्ट करने के लिए सरकार, शिक्षित वर्ग एवं स्वयं स्त्रियों द्वारा राष्ट्रव्यापी आन्दोलन। (अधिक जानकारी के लिए "स्त्री-शिक्षा" का अध्याय देखिए।)

6. कारण—अभिभावकों की निर्धनता : Poverty of Guardians—प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन का छठवाँ कारण—अभिभावकों की

1. *Education in India*, 1955-56, p. 64.

निर्धनता है। "कोठारी कमीशन" के अनुसार[1] :—"प्राथमिक शिक्षा में होने वाले 65% अपव्यय का कारण इस देश के निवासियों की निर्धनता है।"

प्राथमिक शिक्षा निःशुल्क होने के कारण निर्धन भारतीय 6 से 9 वर्ष की आयु तक के बालकों एवं बालिकाओं को विद्यालयों में इसलिए भेज देते हैं, ताकि वे घर पर रह कर कष्ट का कारण न बनें। किन्तु, जब बालक 9 या 10 वर्ष के हो जाते हैं, तब वे अपने अभिभावकों के कार्य में हाथ बँटा सकते हैं या कहीं काम करके धन का अर्जन कर सकते हैं। जहाँ तक बालिकाओं का प्रश्न है, वे घरेलू कार्यों में अपनी माता की सहायता दे सकती हैं। अतः जैसा कि "कोठारी कमीशन" ने लिखा है :—जब बालक एवं बालिकाएँ 9 या 10 वर्ष के हो जाते हैं, तब उनको विद्यालयों से हटा लिया जाता है और इस प्रकार वे अपव्यय का कारण बनते हैं।[2]

उपचार—निर्धनता की समाप्ति (Abolition of Poverty)—निर्धनता से होने वाले अपव्यय एवं अवरोधन का लोप करने के लिए जनता की निर्धनता की समाप्ति आवश्यक है। सरकार अपने इस कर्त्तव्य के प्रति सजग है। वह जनता की निर्धनता का अन्त करने के लिए देश का आर्थिक एवं औद्योगिक विकास कर रही है और खाद्य-पदार्थों एवं कृषि-सम्बन्धी विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए प्राण-प्रण से चेष्टा कर रही है। किन्तु पिछले कुछ वर्षों से वस्तुओं के निरन्तर बढ़ते हुए मूल्यों ने जनता को आर्थिक परेशानियों से राहत देने के बजाय उसको उनके फन्दे में बहुत बुरी तरह से फँसा दिया है।

अतः सबसे पहली आवश्यकता यह है कि सरकार—वस्तुओं के मूल्यों में कमी करे, पर साथ ही जनता को आर्थिक कठिनाइयों से मुक्त करने के लिए औद्योगिक विकास की गति को तीव्रता प्रदान करे। जब तक सरकार इन दोनों कार्यों को सम्पादित न कर ले, तब तक वह अपव्यय एवं अवरोधन की मात्रा में कमी करने के लिए "कोठारी कमीशन" के अग्रांकित सुझाव को व्यावहारिक रूप में लाये[3] :—"अल्पकालीन अवधि में आर्थिक कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने के लिए अंशकालीन शिक्षा की व्यवस्था की जाय, ताकि छात्र शिक्षा प्राप्त करने के साथ-साथ धन का भी अर्जन कर सकें।"

7. कारण—अभिभावकों की अशिक्षा Illiteracy of Guardians

प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन का सातवाँ कारण —अभिभावकों की अशिक्षा है। "राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण-परिषद्" ने अपने सर्वेक्षण के आधार पर लिखा है[4] :—कृषकों, श्रमिकों, शिल्पियों और पिछड़ी एवं [illegible]

1. *Kothari Commission Report*, p 159
2. *Kothari Commission Report*, p 159
3. *Kothari Commission Report*, p 159
4. NCERT : *op. cit.*

शिक्षा का प्रसार बहुत कम हुआ है। अतः शिक्षित परिवारों के बच्चों की अपेक्षा उनके बच्चों की शिक्षा में अपव्यय एवं अवरोधन बहुत अधिक है।

अशिक्षित होने के कारण अभिभावक न तो शिक्षा के वैयक्तिक एवं सामाजिक महत्त्व को समझते हैं और न समझने की चेष्टा करते हैं। यदि वे अपने बच्चों को विद्यालय भेजने की कभी भूल भी कर देते हैं, तो यह ज्ञान होते ही वे उनको विद्यालय से पृथक् करके अपनी भूल को सुधार अवश्य लेते हैं। अपने इस अविवेकपूर्ण कार्य के द्वारा वे अपव्यय एवं अवरोधन के प्रकटीकरण को आमंत्रित करते हैं।

उपचार—अभिभावकों की शिक्षा : Education of Guardians—अभिभावकों की अशिक्षा से होने वाले अपव्यय एवं अवरोधन को नष्ट करने के लिए, उनको शिक्षित किया जाना आवश्यक है। शिक्षित होकर ही, वे व्यक्ति एवं समाज के लिए शिक्षा की उपयोगिता का अनुभव कर सकते हैं। अतः अशिक्षित अभिभावकों में शिक्षा का प्रसार करने के लिए प्रौढ़-शालाओं, रात्रि-विद्यालयों एवं अल्पकालीन शिक्षालयों का शीघ्रातिशीघ्र शिलान्यास किया जाना चाहिए।

8. कारण—छात्रों की शारीरिक निर्बलता : Students' Physical Weakness—प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय एव अवरोधन का अन्तिम कारण—छात्रों की शारीरिक निर्बलता है। यह तथ्य सर्वविदित है कि उनकी शारीरिक निर्बलता में अनुदिन वृद्धि हो रही है। विशुद्ध खाद्य-पदार्थों की विलुप्ति, पौष्टिक आहार की अनुपलब्धि एवं विविध रोगों की व्याप्ति के कारण हमारे देश के निवासियों एवं नौनिहालों की शारीरिक शक्ति निरन्तर क्षीण होती चली जा रही है। जेम्स हेमिंग का कथन है[1] :—"भारत के निवासियों की स्थायी अस्वस्थता के कारण देश की शक्ति क्षीण होती चली जा रही है। जहाँ तक बच्चों का प्रश्न है, उनमें से एक चौथाई, एक वर्ष की आयु से पूर्व और प्रति 10 बच्चों में से 4 बच्चे, पांच वर्ष की आयु से पूर्व काल के गाल में पहुँच जाते हैं। जन्म लेने वाले बच्चों में से आधे कभी भी दस वर्ष की आयु तक नहीं पहुँच पाते हैं।"

उक्त कथन के आधार पर प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षा ग्रहण करने वाले बालकों की निर्बलता एवं अस्वस्थता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इस प्रकार के बालकों से ज्ञान-प्राप्ति के लिए परिश्रम की आशा करना निराधार है। परिश्रम न कर सकने के कारण उनका एक वर्ष का पाठ्यक्रम एक से अधिक का हो जाता है। यदि कुछ दुराग्रही बालक अपने निर्बल शरीर से जूझकर परिश्रम करते हैं, तो वे किसी ऐसे असाध्य रोग द्वारा झकझोर दिए जाते हैं कि वे अपने मरघट की बाट जोहने लगते हैं।

उपचार—छात्रों की स्वास्थ्य-उन्नति : Improvement of Students' Health—छात्रों की शारीरिक निर्बलता से होने वाले अपव्यय एवं अवरोधन की

---

1. James Hemming : *Mankind Against the Killers*, p. 75.

दाहक्रिया करने के लिए उनके स्वास्थ्य में उन्नति की जानी आवश्यक है। सभी छात्र—बालक और नवयुवक—देश की भावी सम्पत्ति हैं। वे ही देश की भावी सुरक्षा एवं उन्नति के आधार-स्तम्भ हैं। यही कारण है कि संसार के अनेक देशों ने विद्यालयों में अध्ययन करने वाले बालकों एवं बालिकाओं के लिए निःशुल्क चिकित्सा, पौष्टिक स्वल्पाहार आदि की उपयुक्त व्यवस्था की है।

भारत की सरकार और जनता इन देशों के उत्कृष्ट उदाहरण का अनुसरण करके अपने छात्रों एवं छात्राओं की स्वास्थ्य-उन्नति कर सकती है और इस प्रकार उनकी दुर्बलता एवं अस्वस्थता से होने वाले अपव्यय एवं अवरोधन की अनेक की घटनाएँ बचा सकती है।

कोठारी कमीशन के अपव्यय व अवरोधन विषयक विचार

Kothari Commission's Views on Wastage & Stagnation

अपव्यय व अवरोधन के कारण—"कोठारी कमीशन" ने प्राथमिक शिक्षा में होने वाले अपव्यय एवं अवरोधन के अग्रलिखित कारण बताए हैं[1]:—

1. अनुपयुक्त पाठ्यक्रम।
2. दोषपूर्ण परीक्षा-प्रणाली।
3. कक्षाओं में बालकों की अत्यधिक संख्या।
4. प्रत्येक कक्षा में विभिन्न आयु के बालकों की उपस्थिति।
5. बालकों की अनियमित उपस्थिति।
6. बालकों को वर्ष में किसी समय भी प्रवेश देने की पद्धति।
7. *बालकों एवं विद्यालयों के पास शिक्षा-सामग्री का अभाव।*
8. शिक्षकों की शिक्षण-कार्य के लिए अपूर्ण तैयारी।
9. शिक्षकों में खेल-विधि का प्रयोग करने की अयोग्यता।
10. शिक्षकों में बालकों को प्रारम्भिक चरण में पढ़ना सिखाने की अयोग्यता।

अपव्यय व अवरोधन-उन्मूलन के उपाय—*"कोठारी कमीशन" ने अपव्यय* एवं अवरोधन का उन्मूलन करने के लिए अग्रांकित उपाय बताए हैं[2]

1. खेल-विधि का प्रयोग।
2. मूल्यांकन की नवीन विधियों का प्रयोग।
3. पूर्व-विद्यालय-शिक्षा की व्यवस्था।
4. *छात्रों एवं छात्राओं को निर्देशन देने की व्यवस्था।*
5. छात्रों एवं छात्राओं के लिए अंशकालीन शिक्षा की व्यवस्था।

---

1. *Kothari Commission Report* p. 1[illegible]
2. *Kothari Commission Report* pp. 157-161

6. छात्रों एवं छात्राओं के प्रति व्यक्तिगत ध्यान ।
7. अभिभावकों की आर्थिक स्थिति में सुधार ।
8. निरक्षर अभिभावकों में प्रौढ़-शिक्षा का प्रसार ।
9. शिक्षा का वास्तविक जीवन से सम्बन्ध ।
10. भारत के सब राज्यों में प्राथमिक शिक्षा की समरूपता ।
11. प्राथमिक शिक्षा के व्यय की पूर्ति के लिए "स्थानीय कर" का आरोपण ।
12. हाई स्कूल पास एवं दो वर्ष का प्रशिक्षण-प्राप्त शिक्षकों की नियुक्ति ।
13. कक्षा 1 के अन्त में होने वाली परीक्षा की समाप्ति ।
14. कक्षा 1 और 2, या कक्षा 1, 2 और 3, या कक्षा 1, 2, 3 और 4 का शिक्षण की एक इकाई के रूप में संगठन ।

UNIVERSITY QUESTIONS

1. "Wastage and stagnation in primary education in India still remain its major problems." Comment and suggest measures to overcome them.
   "भारत में प्राथमिक शिक्षा में अपव्यय और अवरोधन अब भी प्रधान समस्याएँ हैं ।" समीक्षा कीजिए और उनको दूर करने के उपायों का सुझाव दीजिए ।
2. Point out the main causes of wastage and stagnation at the Primary Stage. What suggestions have been made by Kothari Commission to remove these causes ?
   शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर अपव्यय तथा अवरोधन के मुख्य कारण बताइए । कोठारी आयोग ने इन कारणों का निराकरण करने के लिए किन उपायों को प्रस्तावित किया है ?

विविध विषय
MISCELLANEOUS TOPICS

1. राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण-परिषद्
National Council of Educational Research & Training

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के पश्चात् भारत की जनतन्त्रीय आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए शिक्षा के समस्त अंगों का असाधारण विकास हुआ। किन्तु, इन अंगों के विकास में समन्वय स्थापित करने के लिए कोई संस्था नहीं थी। अतः भारतीय शिक्षा-मंत्रालय ने सन् 1961 में "राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण-परिषद्" (NCERT) की स्थापना की। इस "परिषद्" के मुख्य लक्ष्य निम्नलिखित हैं :—

1. उच्च कोटि के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।
2. शिक्षक-प्रशिक्षण की नवीन विधियों की खोज करना और उनके प्रयोग को प्रोत्साहित करके, शिक्षक-प्रशिक्षण का उन्नयन करना।
3. शिक्षा के सब अंगों से सम्बन्धित अनुसंधान का पोषण, प्रसार एवं संगठन करना।
4. शिक्षा के विशिष्ट अंगों के सम्बन्ध में अध्ययन, अनुसंधान एवं सर्वेक्षण करना।
5. शिक्षा-संस्थाओं को शिक्षण की नवीन विधियों एवं प्रयोगों से परिचित करना।

"परिषद्" ने उपर्युल्लिखित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए "राष्ट्रीय शिक्षा-संस्थान" (National Institute of Education) का निर्माण किया है, जिसके मुख्य विभाग ये हैं :—(1) क्षेत्रीय सेवाएँ; (2) प्रौढ़-शिक्षा, (3) विज्ञान-शिक्षा, (4) तुलनात्मक शिक्षा; (5) श्रव्य-दृश्य-शिक्षा; (6) शैक्षिक प्रशासन, (7) पाठ्यक्रम एवं मूल्यांकन, (8) शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधार; और (9) शिक्षा के सामाजिक एवं दार्शनिक आधार।

2. ग्रामीण उच्चतर शिक्षा
Rural Higher Education

ग्रामीण उच्चतर शिक्षा के प्रति सरकार का ध्यान सर्वप्रथम राधाकृष्णन् कमीशन" ने आकृष्ट किया। "कमीशन" ने ग्रामीण कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयों की स्थापना की सिफ़ारिश करते हुए कहा[1] :—"ग्रामीण भारत की सामान्य प्रगति के लिए कुशलता एवं प्रशिक्षण की निरन्तर विस्तृत होने वाली सीमा एवं श्रेष्ठता आवश्यक है। इनकी और शिक्षित नागरिकता की माँगों को पूर्ण करने के लिये ग्रामीण कालेजों एवं विश्वविद्यालयों की प्रणाली आवश्यक है।"

भारत-सरकार ने "कमीशन" की सिफ़ारिश को मान्यता प्रदान करके अक्टूबर, 1954 में "राष्ट्रीय ग्रामीण उच्चतर शिक्षा-परिषद्" (National Council for Rural Higher Education) की स्थापना की और उससे ग्रामीण उच्चतर शिक्षा के सम्बन्ध में सलाह माँगी। "परिषद्" ने ग्रामीण भारत एवं नवयुवकों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर, "ग्रामीण उच्चतर शिक्षा-योजना" (Scheme of Rural Higher Education) का निर्माण किया। इस योजना में "परिषद्" ने ग्रामीण उच्चतर शिक्षा के दो मुख्य उद्देश्य निर्धारित किए; यथा[2] :—

1. ग्रामीण नवयुवकों में समुदाय-सेवा एवं ग्रामीण जीवन के लिए रुचि उत्पन्न करना।
2. ग्रामीण नवयुवकों को केन्द्रीय एवं राज्य-सरकारों के ग्राम-विकास-कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए प्रशिक्षित करना।

उक्त उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए, "परिषद्" ने यह सुझाव दिया कि ग्रामीण नवयुवकों के लिए माध्यमिक शिक्षा के पश्चात् उच्च शिक्षा की व्यवस्था की जाय और इस शिक्षा के लिए "ग्रामीण संस्थानों" (Rural Institutes) की स्थापना की जाय। इन संस्थानों के पाठ्यक्रमों के विषय में "परिषद्" ने अग्रांकित विचार व्यक्त किए :—(1) शिक्षण-डिप्लोमा का 1 वर्ष का कोर्स; (2) शिक्षण-सर्टिफ़िकेट का 1 वर्ष का कोर्स; (3) ओवरसियरों का 2 वर्ष का सर्टिफ़िकेट-कोर्स; (4) कृषि-विज्ञान का 2 वर्ष का सर्टिफ़िकेट-कोर्स; (5) ग्रामीण सेवाओं का 3 वर्ष का डिप्लोमा-कोर्स; और (6) ग्रामीण स्वास्थ्य-निरीक्षकों का 2 वर्ष का सर्टिफ़िकेट-कोर्स।

"परिषद्" द्वारा प्रस्तावित की जाने वाली योजना 1956 में कार्यान्वित की गई और देश के विभिन्न भागों में ग्रामीण संस्थाओं की स्थापना का कार्यक्रम आरम्भ किया गया। इस समय देश में 15 ग्रामीण संस्थान अग्रांकित स्थानों में कार्य कर रहे

1. *Radhakrishnan Commission Report*, p. 575.
2. *India*, 1974, p. 53.

है[1] :—1. श्री निकेतन, पश्चिमी बंगाल; 2. गांधीग्राम, तामिलनाडु 3. जामिया-मिलिया, दिल्ली; 4. उदयपुर, राजस्थान; 5. बिरौली, बिहार; 6. विषपुरी, आगरा; 7. सनोसर, गुजरात, 8. कोयम्बटोर, तामिलनाडु; 9. गरगोती, महाराष्ट्र; 10. अमरावती, महाराष्ट्र; 11. राजपुरा, पंजाब; 12. वर्धा, महाराष्ट्र; 13. हनुमानमठी, मैसूर; 14. तवानूर, केरल; 15. इन्दौर, मध्य-प्रदेश।

3. उत्तर प्रदेश में अध्यापक-शिक्षा
Teacher-Education in Uttar Pradesh

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से उत्तर प्रदेश में सभी प्रकार के स्कूलों में अति तीव्र गति से वृद्धि हो रही है। इन स्कूलों के लिए प्रशिक्षित अध्यापकों की माँग रहती है। अत: उत्तर प्रदेश की सरकार ने शिक्षक-शिक्षा अथवा अध्यापक-प्रशिक्षण की ओर विशेष ध्यान दिया है। हमारे राज्य में इस प्रशिक्षण की व्यवस्था का स्वरूप निम्नांकित है :—

प्राथमिक एवं जूनियर हाई स्कूलों के शिक्षकों का प्रशिक्षण—इन स्कूलों के शिक्षकों का प्रशिक्षण—नार्मल स्कूलों एवं जूनियर बेसिक ट्रेनिंग कॉलिजों में होता है। इनमें उपस्नातकों को प्रवेश दिया जाता है। उनके प्रशिक्षण की अवधि 1 वर्ष की है। परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले छात्रों को "सर्टिफिकेट" प्रदान किया जाता है। यह प्रशिक्षण लड़कों और लड़कियों—दोनों के लिए है। कुछ स्थानों में लड़कियों के लिए सी० टी० के प्रशिक्षण का प्रबन्ध है।

प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापिकाओं का अभाव है। इस अभाव की पूर्ति करने के लिए सरकार ने पाँचवीं वर्षीय योजना में राजकीय बालिका नार्मल स्कूलों की संख्या में वृद्धि करने का निश्चय किया है। विज्ञान के अध्यापकों एवं अध्यापिकाओं की माँग को पूरा करने के लिए लखनऊ के "गवर्नमेन्ट कान्स्ट्रक्टिव ट्रेनिंग कॉलिज" में सी० टी० का पाठ्यक्रम आरम्भ किया जायगा।[2]

हाई स्कूलों के शिक्षकों का प्रशिक्षण—इन स्कूलों के शिक्षकों का प्रशिक्षण—ट्रेनिंग कॉलिजों या सामान्य शिक्षा एवं विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध शिक्षा-विभागों में होता है। इनमें स्नातकों और पर-स्नातकों को प्रवेश दिया जाता है। उनके प्रशिक्षण की अवधि 1 वर्ष की है। परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले छात्रों को एम० टी० का प्रमाणपत्र या बी० एड० की उपाधि प्रदान की जाती है। कुछ ट्रेनिंग कॉलिजों और शिक्षा-विभागों में एम० एड० की शिक्षा की भी व्यवस्था है। एल० टी०, बी० एड० और एम० एड० पुरुषों और महिलाओं—दोनों के लिए हैं। कुछ स्थानों में महिलाओं के लिए पृथक् प्रशिक्षण-कॉलिज भी हैं।

---

1. *Hindustan Year-Book*, 1974, p. 182.
2. *Fifth Five-Year Plan*, Uttar Pradesh, *Annual Plan*, 1974-75, p. 305.

विशिष्ट प्रशिक्षण-संस्थाएँ—उत्तर प्रदेश में कुछ विशिष्ट प्रशिक्षण-संस्थाएँ भी हैं; यथा :—

1. राज्य-शिक्षा-संस्थान : State Institute of Education—इसकी स्थापना 1964 में इलाहाबाद में की गई थी। इस पर अग्रांकित पांच कार्यों का भार है :—(1) प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के प्रशिक्षण-कार्यक्रम में अनुसंधान करना; (2) प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के लिए प्रसार-सेवाओं का आयोजन करना; (3) प्राथमिक विद्यालयों के छात्रों एवं शिक्षकों के लिए साहित्य तैयार करना; (4) निरीक्षक-वर्ग को सेवाकालीन प्रशिक्षण देना; और (5) निरीक्षक-वर्ग एवं प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के लिए नवीन पाठ्यक्रमों का निर्माण करना।

4. शिक्षा-विज्ञान-केन्द्र : Pedagogical Institute—इसकी स्थापना 1948 में इलाहाबाद में की गई थी। इसके मुख्य कार्य हैं :—(1) शिक्षा-सम्बन्धी समस्याओं की जांच करना; (2) शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिए पाठ्यक्रम तैयार करना; और (3) उच्चतर माध्यमिक शिक्षा के सम्बन्ध में नवीन प्रयोग करना।

5. मनोवैज्ञानिक केन्द्र : Psychological Bureau—इसकी स्थापना 1947 में इलाहाबाद में की गई थी। इसमें विभिन्न विधियों द्वारा छात्रों की बुद्धि एवं रुचियों की परीक्षा लेकर, उनको शिक्षा, पाठ्यक्रम एवं व्यवसायों का चयन करने में सहायता दी जाती है। सन् 1952 में इसके क्षेत्रीय केन्द्रों की सृष्टि—मेरठ, बरेली, बनारस, लखनऊ और कानपुर में की गई। इस प्रकार के केन्द्रों की प्रत्येक जिले में स्थापना करने की योजना है।

4. नर्सरी ट्रेनिंग कॉलेज : Nursery Training College—इसकी स्थापना 1951 में इलाहाबाद में की गई थी। इसमें उन व्यक्तियों को प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है, जो नर्सरी या मांटेसरी स्कूलों में शिक्षण का कार्य करने के अभिलाषी होते हैं।

5. राजकीय रचनात्मक प्रशिक्षण-महाविद्यालय : Government Constructive Training College—इसकी स्थापना 1948 में इलाहाबाद में की गई थी। अब कई वर्षों से इसको लखनऊ ले आया गया है। इसमें छात्रों को अनेक प्रकार की हस्तकलाओं का प्रशिक्षण देकर, रचनात्मक वर्ग के विशिष्ट विषयों का शिक्षण देने के लिए तैयार किया जाता है। इसमें रचनात्मक पाठ्यक्रम की अवधि 2 वर्ष की एवं शैक्षिक प्रशिक्षण की अवधि 1 वर्ष की है। परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले छात्रों को एल० टी० का प्रमाणपत्र प्रदान किया जाता है।

6. शारीरिक प्रशिक्षण कालेज : Physical Training College—यह कालेज, लखनऊ में है। इसमें पुरुष एवं स्त्री स्नातक एवं उपस्नातक प्रवेश लेकर, शारीरिक व्यायाम का प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं।

पाँचवीं योजना में शिक्षक-शिक्षा—उत्तर प्रदेश की पाँचवीं पंचवर्षीय योजना में शिक्षक-शिक्षा के अनेक नवीन कार्यक्रमों को स्थान दिया गया है, जिनमें से अधोलिखित उल्लेखनीय हैं[1]:—

1. इलाहाबाद के "अंग्रेजी भाषा-शिक्षण-संस्थान" (English Language Teaching Institute) को सुदृढ़ बनाना।
2. जिन 19 जिलों में "राजकीय बालिका नार्मल स्कूल" नहीं हैं, उनमें इन स्कूलों का निर्माण करना।
3. फैजाबाद में "शारीरिक शिक्षा का जूनियर बेसिक प्रशिक्षण कालेज" (Junior Basic Training College of Physical Education) स्थापित करना।
4. वर्तमान नार्मल स्कूलों में से 42 में प्राथमिक विद्यालयों के शिक्षकों के लिए "अभिनवन पाठ्यक्रम केन्द्रों" (Refresher Course Centres) की सृष्टि करना।
5. माध्यमिक विद्यालयों के शिक्षकों को "सेवाकालीन प्रशिक्षण" (In-Service Training) देने के लिए "क्षेत्रीय सेवाकालीन केन्द्रों" (Regional In-Service Training Centres) का शिलान्यास करना।
6 राज्य-शिक्षा-संस्थान में अधोलिखित विभागों का आयोजन करना :—(1) पुस्तक-प्रकाशन विभाग, (2) निरीक्षक-वर्ग, बेसिक शिक्षा-अधिकारियों, नार्मल स्कूलों के प्रधानाचार्यों आदि को पूर्व-सेवा (Pre-Service) एवं सेवाकालीन (In-Service) प्रशिक्षण देने का विभाग; और (3) शिक्षकों के अभिनवन पाठ्यक्रम के विभिन्न विषयों के साहित्य का निर्माण, उसका प्रकाशन एवं उसे अभिनवन पाठ्यक्रम-केन्द्रों में वितरित करने का विभाग।

---

1. *Fifth Five-Year Plan*, Uttar Pradesh, *Annual Plan*, 1974-75, pp. 323-325.